खण्ड

1

प्रारम्भिक समाजशास्त्र

इकाई-1 यूरोप में समाजशास्त्र का उदय	5
इकाई-2 समाजशास्त्र के संस्थापक-1	17
इकाई-3 समाजशास्त्र के संस्थापक-2	36
इकाई-4 भारत में समाजशास्त्र का इतिहास और विकास-1	61
इकाई-5 भारत में समाजशास्त्र का इतिहास और विकास-2	71

परामर्श-समिति

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति - अध्यक्ष
	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
प्रो0(डा0) जी0एस0शुक्ला	कुलसचिव

विशेषज्ञ समिति

डा0 के0के0 मिश्र	प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

डॉ0एम0एन0सिंह	पूर्व निदेशक, समाजविज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ0 इति तिवारी	एसो0 प्रोफेसर, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद
श्री रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद

पाठ्यक्रम लेखन समिति

1- डॉ0 इति तिवारी	एसो0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट. मु. वि.वि., इलाहाबाद।
2. डॉ रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट.मु.वि.वि. इलाहाबाद।
3. अशीष अंशु,	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय डिग्री कालेज, गनाई गंगोली,पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड ।
4. डॉ0 अरूणा कुमारी	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी।
5. स्वाती एस0 मिश्रा	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आर्य महिला कन्या पी.जी.कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
6. डॉ0 अशोक कुमार श्रीवास्तव	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र,श्रीराम सुरेश सिंह महाविद्यालय, मीरजापुर।
7. डॉ0 वन्दना राव	असि. प्रो. समाजशास्त्र, राम सुभग सिंह महाविद्यालय,कुर्मी पट्टी पथरदेवा, देवरिया।
8. डॉ0 जय प्रकाश सिंह	असि. प्रो. समाजशास्त्र, ठाकुर जगन्नाथ सिंह महाविद्यालय, जौनपुर।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से डॉ अरूण कुमार गुप्ता, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, 2019,

मुद्रक - चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा.लि. 42/7 जवाहर लाल नेहरू रोड, प्रयागराज, 211002

खण्ड परिचय : प्रारम्भिक समाजशास्त्र

यह इस पाठ्यक्रम का प्रथम खण्ड हैं । इस खण्ड में प्रारम्भिक समाजशास्त्र के उदभव एवं विकास यात्रा की तथ्यपरक विवेचना की गयी है।इसके साथ ही साथ समाजशास्त्र को स्थापित करने एवं पुष्पित पल्लवित करने में समाज वैज्ञानिकों के योगदानों की भी गंभीर विवेचना की गयी है। इस खण्ड के अंतर्गत समाजशास्त्र के उदभव एवं विकास यात्रा से सम्बन्धित जिन पक्षों की चर्चा की गयी है, उसमें यूरोप में समाजशास्त्र का उदय, समाजशास्त्र के संस्थापक-1, समाजशास्त्र के संस्थापक-2 भारत में समाजशास्त्र का इतिहास और विकास-1 एवं भारत में समाजशास्त्र का इतिहास और विकास-2 आदि हैं। इन शीर्षकों के अन्तर्गत जिन बिन्दुओं की विवेचना की गई है, उसका संक्षिप्त परिचय इकाईवार निम्नलिखित है।

इकाई-1 : इस इकाई के अंतर्गत यूरोप मे समाजशास्त्र के उदय एवं विकास यात्रा की तथ्यपरक विवेचना की गई है। इस इकाई में प्राचीन लेखों में समाजशास्त्र के अस्तित्व को दिखलाने का प्रयास किया गया है, जिसे हम यूरोप में समाजशास्त्र की विकास यात्रा के प्रथम पायदान के रूप में देखते हैं । जबकि यूरोप में समाजशास्त्र के उदभव एवं विकास के द्वितीय चरण की शुरूआत को तब माना जाता है, जब मानव के सामाजिक विचारों में दर्शन एवं कल्पना का परम्परागत प्रभाव कमजोर होना शुरू हुआ। यूरोप में समाजशास्त्र के विकास के आधुनिक युग को फ्रांसीसी क्रान्ति तथा ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप देखा जाता है। इस तरह देखा जाय तो इन दोनों घटनाओं की परिस्थितियों ने समाजशास्त्र के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इकाई-2: इस इकाई के अन्तर्गत समाजशास्त्र के संस्थापकों की कड़ी के रूप में आगस्ट कॉम्ट एवं हर्बर्ट स्पेन्सर के जीवन परिचय एवं समाजशास्त्र में उनके अवदानों की तथ्यपरक विवेचना की गयी है। इस इकाई का शीर्षक समाजशास्त्र के संस्थापक- प्रथम है। मुख्यतः इस इकाई में समाजशास्त्र में सामाजिक विचारधारा, चिन्तन एवं सामाजिक सिद्धान्तों के बारे में जानकारी प्राप्त करने हेतु आरम्भिक समाजशास्त्रियों के विचारों एंवं कृतियों से परिचय कराया गया है। इस इकाई में आगस्ट कॉम्ट के जीवन परिचय एवं सामाजिक परिवेश के साथ-साथ समाजशास्त्र में उनकें प्रमुख अवदानों जैसे-तीन अवस्थाओं का नियम, विज्ञानों का श्रेणीक्रम, समाजशास्त्र की शाखाएँ एवं समकालीन समाज पर आगस्ट कॉम्ट के प्रभाव की विस्तृत विवेचना की गई है। हर्बर्ट स्पेन्सर के जीवन परिचय एवं सामाजिक परिवेश के साथ-साथ उनके प्रमुख अवदानों जैसे- सामाजिक उदविकास का सिद्धान्त, जैविक अनुरूपता, समाजों का विकास एवं समकालीन समाजशास्त्र का स्पेन्सर का प्रभाव आदि तथ्यों का भी गंभीर विवेचना किया गया।

इकाई-3 : इस इकाई के अन्तर्गत समाजशास्त्र के संस्थापकों की कड़ी के रूप में जार्ज सिमेल, विल्फ्रेडो परेटो एवं थोर्स्टीन बेब्लेन के जीवन परिचय एवं उनके कार्यों की तथ्यपरक विवेचना की गयी है। इस इकाई का शीर्षक 'समाजशास्त्र के संस्थापक-द्वितीय' है। मुख्यतः इस इकाई में जार्ज सिमेल का जीवन परिचय, जार्ज सिमेल के समकालीन सामाजिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, जार्ज सिमेल के मुख्य विचार एवं कृतियाँ, सामाजिक

प्रारूप, सिमेल के समाजशास्त्र में संघर्ष की भूमिका, समकालीन समाजशास्त्र पर सिमेल का प्रभाव के साथ ही साथ विल्फ्रेडो परेटो का जीवन परिचय, सामाजिक परिवेश, तर्कसंगत और अतर्कसंगत क्रिया, अवशिष्ट और व्युत्पाद, अभिजात वर्ग के परिभ्रमण का सिद्धान्त, समकालीन समाजशास्त्र पर प्रभाव तथा थोर्स्टीन बेब्लेन का जीवन परिचय, सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, मुख्य विचार एवं कृतियाँ, प्रौद्योगिक विज्ञान का सिद्धान्त, सम्पन्न वर्ग एवं प्रदर्शनात्मक उपभोग, विलासी वर्ग का सिद्धान्त, सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा, समकालीन समाजशास्त्र पर बेब्लेन के विचारों का प्रभाव आदि पक्षों की भी गंभीर एवं तथ्यपरक विवेचना की गयी है।

इकाई-4 : इस इकाई के अन्तर्गत भारत में समाजशास्त्र के इतिहास एवं विकास के प्रथम पड़ाव की विकास यात्रा की तथ्यपरक विवेचना की गयी है। इस इकाई में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि समाज विज्ञानों के उदभव एवं विकास में सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक कारक किस तरह से उत्तरदायी रहे है। इसके साथ-साथ यूरोपीय देशों में समाजशास्त्र के उदय के कारणों में औद्योगीकरण और पूँजीवाद की भूमिका को स्पष्ट किया गया है। आगे यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है कि समाजशास्त्र के उदभव एवं विकास में भारत के संदर्भ में देखा जाय तो यहाँ परिस्थितियाँ थोड़ी पृथक रही हैं। मुख्यतः इस इकाई में यह विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है कि आगस्ट कॉम्ट ने जिस समाजशास्त्र की नींव फ्रांस में रखी, उसको भारत में पुष्पित एवं पल्लवित करने का श्रेय पैट्रिक गिडेन्स को जाता है। पैट्रिक गिडेन्स के बाद समाजशास्त्र की विकासयात्रा को प्रो. जी.एस. धूर्ये अपने अकादमिक अवदानों से बड़े स्तर पर गति दिया। वहीं दक्षिण भारत में बी.एन. शील एवं ए.एफ. वाडिया के सार्थक एवं अकादमिक प्रयासों से समाजशास्त्र स्थापित हुआ ।

इकाई-5: इस इकाई के अन्तर्गत भारत में समाजशास्त्र के इतिहास एवं विकास के द्वितीय चरण का वर्णन किया गया है। जिसमें स्वतंत्र भारत में समाजशास्त्र के इतिहास एवं विकास को विश्लेषित किया गया है, जिसके अन्तर्गत यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि बाम्बे में इण्डियन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी की स्थापना के बाद भारत में समाजशास्त्र काफी तेजी से छात्रों, शोधार्थियों और सरकार के नीति निर्माताओं के बीच लोकप्रिय हुआ। जिसके परिणामस्वरूप भारत में समाजशास्त्र के अध्ययन अध्यापन हेतु नये नये संस्थान संस्थापित हुए, वहीं दूसरी ओर उसने रोजगार के व्यापक अवसर उपलब्ध कराये। इस इकाई में यह भी दर्शाने का प्रयास किया गया है कि कालांतर में समाजशास्त्र के अन्तर्गत ग्रामीण समाजशास्त्र, नगरीय समाजशास्त्र परिवार एवं नातेदारी का समाजशास्त्र, धर्म का समाजशास्त्र आंदोलन का समाजशास्त्र, शिक्षा का समाजशास्त्र आदि विशेषीकृत विषय के रूप में स्थापित हुए। भारत के अधिकांश केन्द्रीय एवं राज्य विशवविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में समाजशास्त्र का अध्ययन अध्यापन बड़े स्तर पर चल रहा है।

इकाई–1 : यूरोप में समाजशास्त्र का उदय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 यूरोप में समाजशास्त्र

1.2.1 प्राचीन लेखों में समाजशास्त्र

1.2.2 फ्रांसीसी क्रान्ति (1789)

1.3 समाजशास्त्र के विकास का द्वितीय चरण

1.4 समाजशास्त्र के विकास का आधुनिक युग

1.5 सारांश

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.7 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- समाजशास्त्र के उदय एवं उसके कारकों को समझ सकेंगे।
- यूरोप में समाजशास्त्र की विकास यात्रा को जान सकेंगे।
- समाजशास्त्र की प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे।
- यूरोप में समाजशास्त्र की विशेषताओं को जान सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

कोई भी समाज, चाहे वह प्राचीन हो या आधुनिक, सामाजिक समस्याओं से पूर्णतः मुक्त कभी नहीं रहा है, और न है। वास्तव में समाज परिवर्तनशील है इसके हर आयामों में समय के साथ–साथ परिवर्तन होता रहता है, जिसके कारण समाज में निरन्तर संतुलन या असंतुलन बने रहने की बात नहीं की जा सकती। देखा जाय तो मानव पृथ्वी पर सबसे बुद्धिमान एवं चालाक प्राणी है। जिसके

कारण मानव अपने समाजगत समस्याओं के निदान व हल के लिए निरन्तर प्रयास रहा है। अतः हम कह सकते हैं कि 'समाजशास्त्र' का अस्तित्व, चाहे वह लिखित हो या अलिखित, स्पष्ट हो या अस्पष्ट, वैज्ञानिक हो या अवैज्ञानिक अवश्य ही सदैव रहा होगा। समाजशास्त्र के प्राचीन स्वरूप को हम लोकोत्तियों, कहावतों, मुहावरों आदि के रूप में भी देखते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र तब भी था और आज भी है। इसी सन्दर्भ में राबर्ट वीरस्टीड ने लिखा है कि 'समाजशास्त्र का अतीत काफी प्राचीन या लम्बा रहा है'। मानव इतिहास में जब समस्याएं उसके व्यक्तिगत जीवन से लेकर सामाजिक जीवन तक में छा जाती हैं तो वह स्वतः कुछ करने के लिए क्रियाशील हो उठता है। मानव ने भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति के साथ समायोजन तथा अनुकूलन करने का प्रयास किया है। इस तरह देखा जाय तो जहाँ पर वह प्रकृति को नियन्त्रित किया, वहाँ उसने समायोजन किया और जहाँ प्रकृति के अधीन रहना पड़ा, वह उससे अनुकूलन कर लिया। पर मानव की आवश्यकताएं केवल भौतिक ही नहीं होती, वरन् मानव के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण आयामों में कई तरह की आवश्यकताएं व प्रवृत्तियाँ सदैव क्रियाशील रहती हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इन सभी आवश्यकताओं की प्रकृति सामाजिक होती है। सामाजिक इस अर्थ में होती है कि व्यक्ति अपने जरूरतों एवं इच्छाओं की पूर्ति शून्य में नहीं करता, वरन् उसका एक सामाजिक वातावरण होता है। अतः यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मानव अपने जीवन में समाज से सदैव अन्तर्सम्बन्धित होता है।

समाज से पृथक रूप में रहे कुछ ऐसे बालकों जैसे अन्ना, इजाबेला व राजू के उदाहरण, जो समाजीकरण से वंचित रह गए, यह स्पष्ट होता है कि मानव अपने समाज से निश्चित रूप से घिरा होकर समाजीकृत होता रहता है। इन्हीं सन्दर्भों में समाजशास्त्री जिंसबर्ट का मत है कि "यदि मानव स्वभाव से एक दार्शनिक है तो वह स्वभावतः एक समाजशास्त्री भी है।" समाजशास्त्र का एक विषय के रूप में आगमन यद्यपि बाद की घटना है, परन्तु इससे सम्बन्धित तथ्य समाज में प्राचीनकाल से विद्यमान रहा है। मनु की 'मनुस्मृति' से लेकर चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' तक में सामाजिक नियमों एवं मूल्यों की एक परंपरा देखने को मिलती है, परन्तु चाणक्य के ये अध्ययन वर्तमान प्रसंगों में भले ही अवैज्ञानिक प्रतीत होते हों, पर एक आधार के रूप में अवश्य ही प्रासंगिक हैं। यदि मानव इतिहास में समाजशास्त्र के विकास को देखा जाए तो इसका विषय के रूप में श्रीगणेश आगस्ट कॉम्ट के द्वारा माना जाता है, पर यूरोप में जो कि विद्वानों की परम्परा का एक प्रमुख स्थल है इससे भी पूर्व प्लेटो के समय से ही प्रारम्भ हो चुका था। इस प्रकार यूरोप ने ही समाजशास्त्र विषय के प्रति सर्वप्रथम झुकाव प्रकट किया। इन्हीं सन्दर्भों में आगे तथ्य प्रकट किए गए हैं जो आपके लिए पठनीय हैं :

1.2 यूरोप में समाजशास्त्र

मानव समाज व बुद्धि के विकास क्रम में दुनिया के जो देश ज्यादा विभेदीकृत, एक वर्ग द्वारा दूसरे का शोषण तथा दासता के जीवन से आक्रान्त रहे, उन्होंने समाज के अध्ययन हेतु अधिक उपयुक्त माहौल उत्पन्न किया। दूसरी बात यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि यूरोप महाद्वीप भौगोलिक दृष्टि से ज्यादा अनुकूल रहा है। जिसका कारण वहाँ मानव को अपने जीवन निर्वाह हेतु श्रम कम करना पड़ा। जिसके फलस्वरूप वहाँ के निवासियों ने अपने जीवन व समाज के बारें में ज्यादा गहन चिन्तन, मनन किया। यही कारण है कि यूरोप में समाज के समझ, विश्लेषण एवं चिन्तन की परम्परा सर्वप्रथम प्रारम्भ हुई। इसमें प्लेटो से लेकर रूसो व माटेस्क्यू तक के विचारकों के समृद्ध विचारों को रखा जा सकता है। सरलता व स्पष्टता की दृष्टि से इस समूचे विकास क्रम को दो भागों में बाँटा जा सकता है– 1. प्राचीन लेखों में समाजशास्त्र, 2. समाजशास्त्र के विकास का द्वितीय चरण।

1.2.1 प्राचीन लेखों में समाजशास्त्र

यूरोप में प्लेटो एक प्रमुख दार्शनिक रहे हैं। प्लेटो ने एक प्रसिद्ध रचना **'द रिपब्लिक'** की रचना की। इस पुस्तक में प्लेटो ने समाज एवं व्यक्ति सम्बन्धी जो तथ्य प्रकट किए हैं, वे बीसवीं सदी के अध्ययनों या खोज के पूर्णतया विरोधी नहीं कहे जा सकते। प्लेटो ने इस बात पर विशेष बल दिया कि व्यक्ति ठीक उसी प्रकार से व्यवहार करता है जिस प्रकार से समाज उसे व्यवहार कराना सिखाता है। अथवा जिस प्रकार उसका समाजीकरण होता है। मानव का व्यवहार उस समाज की ही देन है जिसमें व्यक्ति का जन्म होता है तथा वह पलता–बढ़ता है। समाज में दिया गया प्रशिक्षण ही व्यक्ति के व्यवहार को ढालता एवं नियन्त्रित करता है। प्लेटो ने समाज के अपने विश्लेषण में सावयवी उपमा का प्रयोग किया है और जैविक शरीर की भांति समाज के शरीर अथवा संरचना की कल्पना भी की है। आपने यह माना है कि शरीर के विभिन्न अंगों की भांति समाज के भी अंग होते हैं। इस प्रकार शरीर की भांति समाज के विभिन्न अंगों में अलग–अलग कार्य बंटे होते हैं जिससे समाज का संगठन बना रहता है। समाज से सम्बन्धित अपने सिद्धान्तों में प्लेटो ने लिंग के आधार पर असमानता के सिद्धान्त को तो स्वीकार किया है, किन्तु स्त्री एवं पुरुष के गुण एवं क्षमता में किसी विशेष अन्तर को स्वीकार नहीं किया है। इस प्रकार देखा जाय तो दार्शनिक प्लेटों ने अपनी अन्तर्समझ द्वारा सामाजिक ज्ञान को स्पष्ट करने का जो प्रयास किया, वह समाजशास्त्र के लिए बड़ा आधारभूत स्तम्भ एवं उपयोगी सिद्धान्त हुआ।

अरस्तू (384–322 ई. पू.) प्लेटो के बाद उनके शिष्य अरस्तू ने समाजगत व्यवहारों पर अपना विचार दिया। उनकी अमरकृतियाँ 'इथिक्स' तथा 'पॉलिटिक्स'

है। जो प्राचीन समाजशास्त्र के दूसरे उदाहरण हैं। अरस्तू ने अपने विचारों में मानव के सामाजिक या राजनीतिक प्रकृति को सर्वप्रथम स्पष्ट शब्दों में अर्थ प्रदान किया और एक नई दिशा दी। आपने लिखा "समाज द्वारा सुसंस्कृत मनुष्य सब प्राणियों में श्रेष्ठतम होता है, परन्तु जब वह बिना न्याय व कानून के जीवन व्यतीत करता है तो वह निष्कृष्टतम हो जाता है, अर्थात् कोई व्यक्ति जो समाज में नहीं रह सकता है या जिसे समाज की आवश्यकता नहीं है। वह निश्चय ही कोई जंगली जानवर या देवता है।" अतः मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए, एक व्यक्ति प्रारम्भ में अपने परिवार पर और बाद में समाज पर आश्रित रहता है। मानव इसी अर्थ में एक सामाजिक प्राणी है।

अरस्तू ने अपने गुरु प्लेटो (427–347 ई.पू.) के विचारों को पूर्णतः उलट दिया। प्लेटो जहाँ यह मानते थे कि मानव व्यवहार उसके समाज की उपज है। इसके विपरीत अरस्तू का कथन है कि समाज की प्रकृति व्यक्ति के स्वभाव पर निर्भर है। इस सन्दर्भ में अरस्तू का कहना है कि मनुष्य के स्वभाव को परिवर्तित नहीं किया जा सकता, इसलिए समाज को बदलना सम्भव नहीं है। अरस्तू ने परिवार रूपी संस्था को राज्य से पहले बताया है। आपका कथन है कि मानव के अस्तित्व की रक्षा के लिए पारिवारिक जीवन प्रकृति की प्रणाली है और उसका विकास मानव की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ है। इस प्रकार परिवार ही वह स्थल अथवा संसार है जो सामाजिक जीवन की आधारशिला है।

समाजशास्त्र की पृष्ठभूमि अथवा आधारशिला तैयार करने में दोनों विद्वानों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुरु व शिष्य के रूप में इन दोनों ने समाज की प्रक्रिया का नब्ज पकड़ने का सर्वप्रथम प्रयास किया, जिससे समाज व व्यक्ति के बीच सम्बन्धों तथा इन दोनों की प्रकृति के परस्पर प्रभावों को स्पष्ट कर सकना सम्भव हुआ।

1.2.2 फ्रांसीसी क्रान्ति (1789)

फ्रांस के इतिहास में सन् 1789 में हुई फ्रांसीसी क्रान्ति स्वतन्त्रता तथा समानता के लिए मानव संघर्ष के इतिहास को मोड़ देने वाली घटना सिद्ध हुई। इस क्रान्ति ने सामंतवाद के युग को समाप्त करके एक नयी समाज व्यवस्था का सूत्रपात किया। इस क्रान्ति के विचारों से समूची दुनिया के देश प्रभावित हुए। इस क्रान्ति से सम्बन्धित स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के विचार बाद में कई देशों के संविधान की प्रस्तावना बने। देखा जाय तो कोई भी क्रान्ति सर्वप्रथम एक सामाजिक प्रक्रिया होती है। अतः फ्रांसीसी क्रान्ति के समय के समाज के बुनियादी स्वरूप को समझना आवश्यक है। तत्कालीन फ्रांस में समाज तीन भागों में विभक्त था प्रथम सम्पत्ति समूह भूस्वामी, जमींदार तथा सरदार इत्यादि थे जिनका भूमि पर अधिकार था। द्वितीय सम्पत्ति समूह धार्मिक नेताओं जैसे पादरी

व बिशप का था तथा तीसरा सम्पत्ति समूह किसान, व्यापारियों तथा कारीगर लोगों का था। इन तीनों के अलावा एक समूह 'अर्द्धदास' का भी था। फ्रांस का तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य राजतन्त्र था तथा बोर्बोन वंश का शासन था। फ्रांस का बोर्बोन वंश का तत्कालीन शासक लुई 15वां इसने स्पष्ट किया कि 'मेरे बाद प्रलय' आने वाली है। अतः लुई 16वां का काल आर्थिक दृष्टि से बहुत कमजोर हो गया। फ्रांसीसी इतिहास की यह सभी घटनाएं ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकीं जिससे फ्रांस ने तर्क व बुद्धिवाद एवं विकास के युग में प्रवेश किया। इसमें यह विश्वास किया गया कि सत्य को तर्क के आधार पर प्रमाणित किया जा सकता है।

1.3 समाजशास्त्र के विकास का द्वितीय चरण

यूरोप में समाजशास्त्र के उद्‌भव एवं विकास के द्वितीय चरण की शुरूआत तब होती है जब मानव के सामाजिक विचारों में दर्शन व कल्पना का जो परम्परागत प्रभाव था, कमजोर होना प्रारम्भ हुआ। समय के विकास क्रम में मानव के अमूर्त चिन्तन की प्रणाली ने विकास की राह पकड़ी। जिसके फलस्वरूप सामाजिक घटनाओं के कार्य कारण सम्बन्धों को भगवान् की अलौकिक शक्ति या किसी अन्य महिमा में नहीं वरन् अन्य सामाजिक प्रक्रियाओं में भी तार्किक प्रक्रियाओं को ढूढ़ने का प्रयत्न किया जाने लगा गया। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम प्रयास थामस एक्यूनस (1227–1274 ई.) तथा दांते (1265–1321) ई. के द्वारा किए गए। इन विद्वानों ने विचार किया कि समाज या सामाजिक जीवन स्थिर नहीं है। इसमें भी अन्य प्रकृतिगत वस्तुओं की भांति निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। समाज के अन्योन्याश्रित विचारों में भी समय के साथ–साथ परिवर्तन होता है, यह विचार मानव के सामाजिक जीवन की समझ क्रम में अत्यन्त लाभकारी साबित हुआ। इतना ही नहीं इस चरण के विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन के बारे में कहा कि यह कुछ निश्चित नियमों के अनुसार तथा कुछ निश्चित सामाजिक तथा प्राकृतिक शक्ति के संयुग्मन द्वारा निर्धारित अथवा संचालित होता है। इस तरह से ये विचार मानव के समाज सम्बन्धी दार्शनिक तथा काल्पनिक समझ व तार्किक समझ के बीच अन्तरकारी साबित हुए।

यही वह समय था जब मानव चिन्तन में 15वीं शताब्दी में वैज्ञानिक विधियों का श्रीगणेश हुआ। इस क्रान्ति ने मानव के दर्शन पक्ष का प्राकृतिक पक्ष से अलगाव निश्चित किया। जिससे वस्तु व घटनाक्रमों का अध्ययन वैज्ञानिक विधियों से किया जाने लगा गया। इसके साथ ही साथ समाज की विभिन्न घटनाओं या सामाजिक जीवन के विभिन्न आयामों का विशिष्ट तथा पृथक–पृथक अध्ययन भी आरम्भ हुआ। समाज के बदलते परिप्रेक्ष्य में सामाजिक जीवन तथा घटनाएं अधिकाधिक जटिल तथा विस्तृत होती गई। इसके फलस्वरूप मानव द्वारा

इसके हल के प्रयास सम्पूर्णता में नहीं वरन् छोटे–छोटे हिस्सों में करना प्रारम्भ हुआ। फलस्वरूप सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे राजनीति, अर्थ तथा धर्म इत्यादि का अलग–अलग अध्ययन प्रारम्भ हुआ। जिससे इससे सम्बन्धित, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र इत्यादि विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों की उत्पत्ति हुई।

इस चरण के अन्य विद्वानों में सेण्ट अगस्टाइन (254–430 ई.पू.), थॉमस हॉब्स (1588–1679 ई.); जॉन लॉक (1632–1704 ई.), रूसों (1712–1778 ई.) तथा माण्टेस्क्यू (1689–1755 ई.) आदि के नाम उल्लेखनीय है जिनके सामाजिक विचारों के मूल तत्वों को इस प्रकार समझा जा सकता है :

थॉमस हाब्स ने मूलतः राजनीतिक दर्शन के क्षेत्र में विशेष लेखन कार्य किया है, जो सामाजिक सिद्धान्त के क्षेत्र में लाभकारी साबित हुए। हॉब्स की ख्याति उनके **'सामाजिक अनुबन्ध के सिद्धान्त'** के कारण अधिकाधिक हुई है। जिसमें उन्होंने प्रकट किया है कि 'जन साधारण की इच्छा' और 'जनसाधारण की हित साधना' ने सामाजिक विचार को जन्म दिया है। हाब्स का मानना है कि मानव प्रारम्भ में स्वार्थी तथा झगड़ालू प्रवृत्ति का था। जिसके कारण मानव में उत्पीड़न, वैमनस्यता तथा अस्थिरता की वैचारिकी उत्पन्न होती है। इस स्थिति में चूंकि मानव के पास तार्किकता व दूरदर्शिता होती है। अतः वे सोच समझकर स्वैच्छिक रूप से किसी व्यक्ति या समूह को अपनी शक्तियां देने को तैयार हो गये हैं, जिससे सामाजिक समझौते की वैचारिकी का जन्म होता है। हॉब्स के इस सिद्धान्त की यद्यपि कई आलोचनाएं हुई पर यह, यहाँ के समाजशास्त्र विषय की आधारशिला में महत्वपूर्ण धुरी के रूप में है।

सामाजिक अनुबन्धन सिद्धान्त के दूसरे विचारक आधुनिक उदारवाद के जनक जॉन लॉक माने जाते हैं। लॉक के अनुसार मानव मूलतः एक विवेकशील एवं सामाजिक प्राणी है। वे प्रकृति के नियमों के अनुसार अपने को समायोजित कर रह सकते हैं। लॉक के अनुसार राजनीतिक सत्ता का आधार जीवन की स्वतंत्रता और सम्पत्ति पर प्राकृतिक अधिकार का होना, अर्थात् मनुष्यों को सामाजिक जीवन में बांधने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि कोई शासक उन पर अपने नियम आरोपित करें अथवा थोंपे। इस प्रकार लॉक ने व्यक्तियों के स्वैच्छिक अनुबन्ध या समझौते को प्रस्तुत किया, जो समाज के ज्ञान क्रम में महत्वपूर्ण एवं तथ्यपरक साबित हुए।

ज्यां जैक रूसो सामाजिक अनुबन्ध सिद्धान्त के तीसरे दार्शनिक रहे हैं, जिन्होंने मानव के सन्दर्भ में लिखा है, "मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है, किन्तु वह सर्वत्र ज़ंजीरों से बंधा हुआ है।" रूसों के अनुसार मानव का प्रारम्भिक जीवन प्रकृति द्वारा अनुप्राणित होने के कारण पूर्णतः स्वतंत्र था, किन्तु कालान्तर में सभ्यता के विकास एवं उत्कर्ष ने उसकी नैसर्गिक स्वतंत्रता का हनन कर दिया और अनेकानेक बंधनों में उसे जकड़ दिया। रूसो के अनुसार, यहीं से सामाजिक

अनुबन्ध सम्बन्धी वैचारिकी की शुरूआत होती है। रूसो मानते हैं कि मानव में ऐसी क्षमताएं विद्यमान है कि वह अपने आपसी विवादों और हितों को सुलझा सकता है। सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में रूसो के इन विचारों का बाद में फैंकफर्ट सम्प्रदाय के विचारकों ने मार्क्सवाद से जोड़कर मार्क्सवाद के रूप में विकसित करने का सार्थक प्रयास किया है।

माण्टेस्क्यू (1689–1755)

समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए माण्टेस्क्यू का अध्ययन इसलिए आवश्यक है कि उन्होंनें संस्थाओं के तुलनात्मक समाजशास्त्रीय अध्ययन द्वारा धर्म, शिक्षा, सरकार और भूगोल के बीच अन्तर्सम्बन्धों को खोजने का सार्थक प्रयास किया है। समाजशास्त्र के क्षेत्र में जिस परम्परा की नींव माण्टेस्क्यू ने रखी, उस परम्परा को उन्नीसवीं शताब्दी में एन. फुस्टेल द कॉलेजेज. इमाईल दुर्खीम ने आगे बढ़ाया।

समाजशास्त्र के विकास के इस द्वितीय चरण में भी विद्वानों द्वारा कल्पना पर अधिक भरोसा किया गया तथा वास्तविकता से दूरी बनी रही। दूसरे इन विचारकों के विचार व सिद्धान्त क्रमबद्ध निरीक्षण व परीक्षण पर आधारित नहीं रहे और तीसरे ये सभी किसी न किसी नैतिक पक्षपात से ग्रस्त भी रहे। अतः समाज के वास्तविक व व्यवस्थित ज्ञान की शुरूआत उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक नहीं हो सकी। सामाजिक घटनाओं का समग्र रूप में अध्ययन करने की व्यवस्थित परम्परा की शुरूआत फ्रांसीसी दार्शनिक तथा समाजशास्त्र आगस्ट कॉम्ट के द्वारा की गई।

1.4 समाजशास्त्र के विकास का आधुनिक युग

यूरोप में हुई फ्रांसीसी क्रान्ति (1789) तथा ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति ने सामतवादी प्रणाली के स्थान पर पूंजीवाद प्रणाली के विकास एवं संघर्ष का मार्ग प्रशस्त किया। इस परिवर्तन के दौर में फ्रांसीसी समाज अनेक सामाजिक समस्याओं का सामना कर रहा था। ऐसे में तत्कालीन विद्वानों एवं समाज वैज्ञानिकों द्वारा सामाजिक व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा था। समाज में विज्ञान का महत्व सर्वाधिक था और सामाजिक समस्याओं का समाधान वैज्ञानिक ढंग से करने पर बल दिया जा रहा था। ऐसे प्रयासों में सेंट साइमन (1770–1825) अग्रणी थे। जिन्होंने समाज के अध्ययन के लिए एक अलग विषय 'सामाजिक जीव विज्ञान' का उल्लेख किया। ऐसी ही परिस्थितियों ने फ्रांसीसी क्रान्ति से उत्पन्न सामाजिक विनाश को समझने पर बल दिया। सेंट साइमन ही आगस्ट कॉम्ट के गुरु थे, दोनों ने सर्वप्रथम एक विषय के रूप में समाजशास्त्र की स्थापना के लिए संयुक्त प्रयास किया। पर बाद में 1838 ई. में कॉम्ट के द्वारा सामाजिक घटनाओं के इस अध्ययन को 'सामाजिक भौतिकी' का

नाम दिया। जिसे बाद में इस नाम को एडोल्फ क्वेटलेट नामक वैज्ञानिक द्वारा चुरा लिया गया। परिणामस्वरूप कॉम्ट ने इसके स्थान पर नया शब्द समाजशास्त्र दिया। यह लैटिन तथा ग्रीक के 'सोशियस' तथा लोगस' शब्द से मिलकर बना। इसके नाम पर कई विद्वानों व समाज विचारकों के द्वारा दोहरी भाषा व दूसरे शब्दों के इस्तेमाल हेतु प्रयास किये जाते रहे। पर अन्त में समाजशास्त्र (Sociology) ही सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

आगस्ट कॉम्ट इस विषय के सम्बन्ध में कहते हैं कि 'समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था एवं प्रगति का विज्ञान है।' कॉम्ट द्वारा विज्ञानों का संस्तरण भी प्रस्तुत किया गया, जिसमें इन्होंने गणितशास्त्र को प्रथम तथा समाजशास्त्र को अंतिम स्थान दिया है। कॉम्ट ने समाजशास्त्र को 'सभी विज्ञानों की महारानी' कहा है। सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में कॉम्ट ने कहा है कि 'समाज एक सामूहिक सावयव है।' यह विचार समाजशास्त्र के लिए उपयोगी साबित हुआ।

ऑगस्ट कॉम्ट के बाद ब्रिटिश दार्शनिक व समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेन्सर ने उनके कार्यों को अधिक उन्नत एवं पुष्पित तथा पल्लवित किया। स्पेन्सर ने उद्विकास का नियम दिया, इस नियम के अनुसार 'पदार्थ एक अनिश्चित, असम्बद्ध समानता से निश्चित सम्बद्ध भिन्नता में बदल जाता है।" स्पेन्सर ने इन्हीं नियमों के अनुसार समाज व सामाजिक संस्थाओं को समझने पर बल दिया है। स्पेन्सर ने भी माना कि समाज एक सावयव के रूप में हैं। समाज को सावयव के रूप में मानने के बाद भी आप वैयक्तिक स्वतंत्रता का समर्थन करते हैं और यह निष्कर्ष निकालते हैं कि व्यक्ति का कल्याण राजकीय नियन्त्रणों के अभाव में सम्भव है। इस प्रकार स्पेन्सर ने सावयवी विकास की धारणा से शुरू करके व्यक्तिवाद के औचित्य को दर्शाना चाहा और सावयवी एकता की धारणा में समाहित करके समाजवाद को उचित ठहराया।

आगस्ट कॉम्ट के बाद उनके उत्तराधिकारी के रूप में इमाइल दुर्खीम का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। दुर्खीम ऐसे पहले विचारक व सिद्धान्तकार रहे हैं जिन्होंने सामाजिक पक्षों पर तार्किक तरीके से बल दिया तथा यह स्पष्ट किया कि सामाजिक तथ्यों का मानव जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। इमाइल दुर्खीम ने यूरोप में समाजशास्त्र के विकास एवं संवर्धन में आधारभूत योगदान दिया है। उनके द्वारा समाजशास्त्र में सामाजिक तथ्य की अवधारणा दी गई। सामाजिक तथ्य के बारे में दुर्खीम ने लिखा है, "सामाजिक तथ्य व्यवहार, अनुभव या क्रिया का वह पक्ष है जिसका निरीक्षण वस्तुनिष्ठ रूप में सम्भव है और जो व्यक्ति को एक विशेष ढंग से व्यवहार करने के लिए बाध्य करता है।"

फ्रांसीसी दार्शनिक इमाइल दुर्खीम द्वारा दी गई उपर्युक्त परिभाषा ने सामाजिक व गैर सामाजिक कारकों के बीच भेद को ज्यादा स्पष्ट करने में मदद की। दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य की दो विशेषताएं, बाह्यता एवं बाध्यता गिनाए हैं।

समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रत्यक्षवादी पद्धति के अन्तर्गत दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के समान समझने की सलाह दी है। तथा सभी पूर्व धारणाओं का उन्मूलन करने की बात की है। इसके अतिरिक्त आपने स्पष्ट किया है कि तथ्यों का वैयक्तिक अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र अनुसंधान करना चाहिए। दुर्खीम की अन्य प्रमुख अवधारणाएं सामूहिक प्रतिनिधित्व की धारणा, सामाजिक एकता का सिद्धान्त, सामाजिक श्रम विभाजन, धर्म का सामाजिक सिद्धान्त, आत्महत्या का सामाजिक सिद्धान्त तथा विसंगति की अवधारणा है। इन सभी सिद्धान्तों ने सामाजिक विज्ञानों, खासकर समाजशास्त्र के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी वैचारिक बदलाव लाया। इससे समाजशास्त्र एक विषय के रूप में अधिक मजबूती व दृढ़ता के साथ प्रस्थापित हो सका।

1.5 सारांश

मानव के वैचारिक धरातल की जो पृष्ठभूमि यूरोप में उभरकर आई। दुनिया के इतिहास में उसकी कोई मिसाल नहीं है। श्रेष्ठ व प्रत्यक्ष ज्ञान की शुरूआत यूरोप महाद्वीप में ही हुई। यूरोप के भौगोलिक से लेकर सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण ने मानव के अन्तर्सम्बन्धों को समझने व समझाने में विशेष योगदान दिया। महान दार्शनिक तथा राजनीतिशास्त्री प्लेटो (427–349 ई. पू.) तथा उनके शिष्य अरस्तू (384–322 ई.पू.) ने सामाजिक जीवन से सम्बन्धित सारभूत तथ्य दिए, जिनकी बीसवीं शताब्दी के समय में भी पूर्ण उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस सन्दर्भ में प्लेटो ने कहा है कि व्यक्ति उसी तरह से समाज में व्यवहार करता है जैसा समाज उसे करना सिखाता है। वस्तुतः मानव का व्यवहार उस समाज की देन है। जहाँ व्यक्ति पैदा होता है तथा पलता बढ़ता है। प्लेटो के विपरीत उनके शिष्य अरस्तु (384–322 ई. पू.) ने इसके ठीक विपरीत मत प्रकट किया कि मानव का व्यवहार जिस तरह से होता है वैसे ही समाज का व्यवहार होता है। इसके बाद समाज के विकास क्रम में कई उतार चढ़ाव आते रहे। यूरोप के समाज में फ्रांसीसी क्रान्ति (1789) ने यहाँ के इतिहास व समाज विज्ञान के लिए एक नवीन व क्रान्तिकारी मोड़ प्रदान किया। फ्रांसीसी क्रान्ति का मूल तत्व व आधार समानता, स्वतन्त्रता तथा भ्रातृत्व की भावना थी। तत्कालीन फ्रांस के बिगड़ते आर्थिक हालात तथा शोषणकारी शक्तियों ने फ्रांस में बौद्धिक वर्ग को नए सिरे से सोचने को प्रेरित किया। तर्कणावादी हाब्स, लॉक, रूसो ने समाजगत व्यवहारों से सम्बन्धित कुछ ऐसे सिद्धान्त दिए जो मानव व्यवहारों के संगठन व उनके क्रियान्वयन से सम्बन्धित रहे। इनमें सामाजिक समझौते का सिद्धान्त प्रमुख है। ब्रिटेन में हुई औद्योगिक क्रान्ति ने भी सामंतवादी प्रणाली के स्थान पर पूंजीवादी प्रणाली की ओर उत्प्रेरित किया। इस समय की अनेक समस्याओं से त्रस्त समाज की समस्याओं पर गहन चिन्तन मनन की शुरूआत हुई। उपर्युक्त दोनों घटनाओं की परिस्थितियों ने समाजशास्त्र के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सेंट

साइमन् व आगस्ट कॉम्ट के द्वारा समाज के विज्ञान की रूपरेखा रखी गई। आगस्ट कॉम्ट के द्वारा आधारभूत प्रयास किए गए तथा 1838 में समाजशास्त्र नाम के विषय का प्रादुर्भाव हुआ। इसके बाद समाजशास्त्र के क्षेत्र में यूरोपीय जगत में विद्वानों का एक सिलसिला चला जिसमें हर्बर्ट स्पेंसर, इमाइल दुर्खीम, मैक्स वेबर व कार्ल मार्क्स के नाम उल्लेखनीय हैं।

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मुकर्जी, आर.एन. : सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली
2. रावत, हरिकृष्ण : समाजशास्त्रीय चिन्तक एवं सिद्धान्तकार, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
3. मुकर्जी, आर.एन. : उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली
4. Bogardus, Emony S. : The Development of Social Thought, 4th Edition, Allied Pacific Private Ltd., Bombay, 1960
4. पाण्डेय, रवि प्रकाश : समाजशास्त्रीय सिद्धान्त : अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009

1.7 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. दार्शनिक प्लेटो का समाज के बारे में प्रारम्भिक विचार क्या था? संक्षेप में लिखिए।
2. प्लेटो व अरस्तू के प्रारम्भिक सामाजिक विचारों में क्या अन्तर है? लिखिए।
3. फ्रांसीसी क्रान्ति की मूलभूत विशेषताएं क्या थी? स्पष्ट कीजिए।
4. रूसो के सामाजिक समझौते के सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. समाजशास्त्र के विकास के द्वितीय चरण का वर्णन कीजिए।
2. समाजशास्त्र के विकास के आधुनिक चरण का उल्लेख कीजिए।
3. समाजशास्त्र में इमाइल दुर्खीम के विचारों का उल्लेख कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'समाजशास्त्र का अतीत काफी प्राचीन या लम्बा है' किसका कथन है?

(अ) मैकाइवर व पेज (ब) आगस्ट कॉम्ट

(स) राबर्ट वीरस्टीड (द) हर्बर्ट स्पेंसर

2. 'रिपब्लिक' निम्न में से किसकी कृति है?

(अ) अरस्तू (ब) प्लेटो

(स) दुर्खीम (द) रूसो

3. फ्रांसीसी क्रान्ति कब हुई थी?

(अ) 1760 ई. (ब) 1789 ई.

(स) 1757 ई. (द) 1857 ई.

4. निम्न में किस विद्वान ने परिवार को राज्य से पहले बताया है?

(अ) प्लेटो (ब) अरस्तू

(स) माण्टेस्क्यू (द) लॉक

5. "यदि मानव स्वभाव से एक दार्शनिक है तो वह स्वभावतः एक समाजशास्त्री भी है।" निम्न में से किसका कथन है?

(अ) राबर्ट वीरस्टीड (ब) जिस्बर्ट

(स) इमाइल दुर्खीम (द) हर्बर्ट स्पेंसर

6. 'समाजशास्त्र' विषय अस्तित्व में किस वर्ष आया?

(अ) 1805 ई. (ब) 1820 ई.

(स) 1838 ई. (द) 1856 ई.

1.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (स), 2. (ब), 3. (ब), 4. (ब), 5. (ब), 6. (स)

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

Sociology	समाजशास्त्र
Philosophy	दर्शन
Contract	अनुबंध
Social Human	सामाजिक प्राणी
Political Science	राजनीति विज्ञान

Economics	अर्थशास्त्र
Social Science	सामाजिक विज्ञान
Freedom	स्वतंत्रता
Idiology	वैचारिकी
Natural	नैसर्गिक
Modern Period	आधुनिक युग
Capitalism System	पूँजीवादी प्रणाली
Social Fact	सामाजिक तथ्य
Stage	चरण
Phenomena	घटना

इकाई–2 : समाजशास्त्र के संस्थापक–I

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 प्रारंभिक उद्भव

2.3 ऑगस्ट कॉम्ट

- 2.3.1 जीवन परिचय
- 2.3.2 कॉम्ट का सामाजिक परिवेश
- 2.3.3 कॉम्ट के मुख्य विचार
  - 2.3.3.1 तीन अवस्थाओं का नियम
  - 2.3.3.2 विज्ञानों का श्रेणीक्रम
  - 2.3.3.3 समाजशास्त्र की शाखाएँ
- 2.3.4 समकालीन समाजशास्त्र पर कॉम्ट का प्रभाव

2.4 हरबर्ट स्पेन्सर

- 2.4.1 जीवन परिचय
- 2.4.2 स्पेन्सर का सामाजिक परिवेश
- 2.4.3 स्पेन्सर के मुख्य विचार
  - 2.4.3.1 सामाजिक उद्विकास का सिद्धान्त
  - 2.4.3.2 जैविक अनुरूपता
  - 2.4.3.3 समाजों का विकास
- 2.4.4 समकालीन समाजशास्त्र पर स्पेन्सर का प्रभाव

2.5 सारांश

2.6 सन्दर्भ

2.7 बोध के प्रश्न

- (क) लघु उत्तरीय प्रश्न
- (ख) दीर्घ उत्तरी प्रश्न
- (ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

2.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

2.9 पारिभाषिक शब्दावली

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य समाजशास्त्र के आरंभिक संस्थापकों से आपका परिचय कराना तथा उनके द्वारा समाजशास्त्र में किये गये कुछ प्रमुख योगदानों की चर्चा करना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपके लिए संभव होगा:

- ऑगस्ट कॉम्ट तथा हरबर्ट स्पेन्सर के जीवन से परिचित होना
- इनकी सामाजिक पृष्ठभूमि की व्याख्या
- इनके मुख्य विचारों से परिचय
- समाजशास्त्र में इन चिन्तकों के विचारों के प्रभाव को जानना

2.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में यूरोप में समाजशास्त्र के उदय के बारे में आपने विस्तारपूर्वक पढ़ा है। इससे आप समाजशास्त्र की पृष्ठभूमि से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई के अन्तर्गत हम समाजशास्त्र के दो आरंभिक चिन्तकों ऑगस्ट कॉम्ट तथा हरबर्ट स्पेन्सर के जीवन और उनके कार्यों से परिचित होंगे कि किन सामाजिक परिस्थितियों में इन्होंने अपनी समाजशास्त्रीय चिन्तन को विकसित किया और किस प्रकार इनके विचारों ने अपने समकालीनों और समकालीन समाजशास्त्र को प्रभावित किया जिससे समाजशास्त्र के विकास के आगे की पृष्ठभूमि तैयार हो सकी।

2.2 प्रारंभिक उद्भव

प्रस्तुत इकाई में समाजशास्त्र में सामाजिक विचारधारा, चिन्तन एवं सामाजिक सिद्धान्तों के बारे में जानकारी प्राप्त करने हेतु हम आरम्भिक समाजशास्त्रियों के विचारों एवं कृतियों से परिचित होंगे। इन आरम्भिक समाजशास्त्रियों की रचनाएं समाजशास्त्र का मूल आधार हैं। इन्हीं पर आगे चलकर समाजशास्त्र के अन्य विचारों को विकसित होने को आधार मिला हैं।

टी.बी. वाटोमोर ने अपनी पुस्तक 'समाजशास्त्र' में लिखा है कि समाजशास्त्र एक आधुनिक विज्ञान है जो एक शताब्दी से अधिक पुराना नहीं है। वाटोमोर का यह दावा एक हद तक सही भी प्रतीत होता है क्योंकि इस विषय का जन्म 1838 में हुआ। अगस्ट कॉम्ट ने समाज के इस नवीन विज्ञान को समाजशास्त्र नाम दिया। परन्तु हमारे समय के एक और प्रमुख समाजशास्त्री रिटजर इससे पूरी तरह से सहमत नहीं होते हैं, बल्कि वे मानते हैं कि समाज से सम्बन्धित सैद्धान्तिक विचार इतिहास में काफी पहले से विकसित होते रहे हैं।

कोष्ठक 2.1 अबल रहमान इब्न–खलदून

इब्न खलदून का जन्म उत्तरी अफ्रीका के ट्यूनिश में 27 मई 1332 को एक शिक्षित परिवार में हुआ था। इन्होंने कुरान, गणित एवं इतिहास में शिक्षा ग्रहण की। अपने जीवन काल में इन्होंने कई सुल्तानों के अन्दर काम किया। इन्हें मोरक्कों में 2 वर्ष तक जेल की यातना भी सहनी पड़ी। क्योंकि इन्होंने राजा को दैवीय नेता मानने से इन्कार कर दिया था। लगभग दो दशकों तक राजनीतिक सक्रियता के बाद ये उत्तरी अफ्रीका वापस आ गए। जहाँ इन्होंने लगभग पाँच वर्षों तक गहन अध्ययन और लेखन कार्य किया। इनके कार्यों ने इन्हें काफी प्रसिद्धि दिलायी। परिणामतः अल–अज़हर मस्जिद विश्वविद्यालय, काइरो में इन्हें अध्यापन के लिए आमन्त्रित किया गया। जहाँ इन्होंने समाज एवं समाजशास्त्र पर प्रभावी व्याख्यान दिये। इब्न–खलदून ने सामाजिक तार्किक विचारों एवं ऐतिहासिक अवलोकन के महत्व पर जोर दिया। 1406 में अपने मृत्यु से पूर्व इस क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण कार्य किये। जिसमें समकालीन समाजशास्त्र के साथ समानता के कई तत्व विद्यमान है। अपने अध्ययन में इन्होंने समाज के वैज्ञानिक अध्ययन, अनुभावात्मक शोध और सामाजिक परिघटनाओं के कार्य–कारण सम्बन्धों पर हमेशा विशेष बल दिया। यह सच है कि इब्न–खल्दून के शास्त्रीय समाजशास्त्र पर विशेष प्रभाव नहीं डाल सकें परन्तु उनके ऐतिहासिक महत्व को कम नहीं किया जा सकता। (रिट्जर, 2000:4)

समाजशास्त्र का जन्म सामाजिक जटिलताओं को प्राकृतिक विद्वानों की भांति समझने के प्रयत्न के रूप में हुआ। 1838 ई. में ऑगस्ट कॉम्ट ने इस नवीन सामाजिक विज्ञान को समाजशास्त्र की संज्ञा दी। अतएव कॉम्ट को समाजशास्त्र का संस्थापक माना जाता है। कॉम्ट के विचारों पर रोशनी डालकर हम समाजशास्त्र के आरम्भिक प्रकृति और स्वरूपों से परिचित हो पायेंगे।

2.3 ऑगस्ट कॉम्ट (1798–1857)

समाजशास्त्र को व्यवस्थित वैज्ञानिक रूप से अध्ययन की संगठित बुनियाद देने का श्रेय अगस्ट कॉम्ट को है। कॉम्ट के जन्म के समय फ्रांस में फ्रांसीसी क्रांति की दूसरी ओर सारे यूरोप में औद्योगिक क्रांति की भी नींव पड़ चुकी थी। परिणामतः ना सिर्फ फ्रांस बल्कि पूरे यूरोप में एक सामाजिक उथल–पुथल से युक्त परिवर्तन की बयार चल रही थी। कॉम्ट के विचारों को समझने के लिए हमें तात्कालिक यूरोप और फ्रांस के उस सामाजिक परिस्थितियों को भी समझना होगा जिसने कॉम्ट के विचारों के लिए बौद्धिक जमीन तैयार की।

2.3.1 जीवन परिचय

प्रसिद्ध फ्रांसीसी समाजशास्त्री ऑगस्ट कॉम्टे का जन्म 19 जनवरी, 1978 में फ्रांस के मॉण्टपेलियर नामक स्थान पर एक मध्यवर्गीय कैथोलिक परिवार में हुआ था। जहाँ उनके पिता कर विभाग में उच्च पदाधिकारी थे। विद्रोही प्रवृत्ति वाले कॉम्ट में बचपन से ही दो विलक्षण प्रतिभाएं विकसित होने लगी थी– प्रथम तो वे अत्यन्त ही प्रतिभा के धनी थे, द्वितीय समस्त स्थापित सत्ता का विरोध करने की मनोवृत्ति। अपने इस मनोवृत्ति के कारण वह अपने जीवन में कभी भी कॉलेज डिग्री प्राप्त नहीं कर सके। उन्हें और उनके पूरे कक्षा को पेरिस के प्रसिद्ध इकोल पॉलिटेक्निक कॉलेज से उनकी क्रांतिकारी राजनीतिक सक्रियता के कारण निलम्बित कर दिया गया था। इनकी राजनीतिक सक्रियता एवं फ्रांसीसी समाज के अध्ययन में दिलचस्पी को लेकर इनके सहपाठी इन्हें फिलॉस्फर के नाम से पुकारा करते थे।

ईकोल पॉलिटेक्निक कॉलेज में कॉम्ट एल.जी. बोनाल्ड तथा जोसेफ द मैस्त्रे जैसे परम्परावादी सामाजिक दार्शनिकों के प्रभाव में आये जिनसे प्रमुख रूप से उसने सामाजिक विकास को संचालित करने वाली महत्वपूर्ण धारणाओं को ग्रहण किया। वहीं एक अन्य फ्रांसीसी दार्शनिक कन्डोरसेट से उसने विकास मानव समाज में हुई प्रगति के साथ–साथ होता है सम्बन्धी विचार ग्रहण किये। अपने अध्ययन काल के दौरान कॉम्ट अपने समय के प्रसिद्ध फ्रांसीसी विचार बेंजामिन फ्रैंकलिन से अत्यन्त प्रभावित थे। अपने मित्र को लिखे एक खत में उन्होंने लिखा कि "मैं आधुनिक सुकरात का अनुकरण करना चाहता हूँ, उनके बौद्धिक गुणों का नहीं बल्कि उनके जीने के तरीके का। तुम जानते हो कि जब वे केवल पच्चीस वर्ष के ही थे तभी उन्होंने अपने को पूर्णतया बुद्धिमान व्यक्ति सोच लिया था। मैंने भी उसी विचार को ग्रहण करने का साहस किया है। यद्यपि अभी मेरी आयु बीस वर्ष की भी नहीं है।"

ऑगस्ट कॉम्ट युवावस्था में अपने समय के सर्वप्रमुख दार्शनिक सेंट साइमन के सम्पर्क में आये। सेन्ट साइमन जन्म से तो अभिप्राप्य किन्तु विचारों से यूटोपियाई समाजवादी थे। इनके साथ इनका रिश्ता 1818 से 1824 तक रहा। सेंट साइमन के जल्द ही ये घनिष्ठ मित्र तथा शिष्य बन गये। 1824 में ये इनके सचिव भी बन गये। सेंट साइमन की प्रेरणा से ही उनकी रूचि अर्थशास्त्र में हुई। अपने इस सृजनात्मक सम्बन्ध के दौरान कॉम्ट ने समाज विज्ञान की एक सामान्य अवधारणा का प्रतिपादन किया जिसे आगे चलकर उन्होंने समाजशास्त्र की संज्ञा दी। परन्तु सन् 1824 में ये दोनों अलग हो गये क्योंकि कॉम्ट का मानना था कि सेंट साइमन अपनी एक कृति जिसमें उनका भी योगदान था उससे उनका नाम निकालना चाहते थे। सम्बन्ध विच्छेद के बाद कॉम्ट ने सेंट साइमन के साथ अपने सम्बन्ध को 'विनाशकारी' (Catastrophic) तो सेंट साइमन को एक नैतिकभ्रष्ट (Depraved Juggler) तक कहा।

कॉम्ट का वैवाहिक जीवन अत्यन्त ही कष्टदायी था। सन् 1815 में इन्होंने कारोलिन मैसिन से विवाह किया परन्तु तनावपूर्ण सम्बन्धों के कारण 1842 में इनका तलाक हो गया। सन् 1844 में कॉम्ट की मुलाकात क्लोटाइल डी बॉक्स नामक महिला से हुई। जल्द ही दोनों घनिष्ठ मित्र बन गये, परन्तु 1846 में बॉक्स की असामयिक मृत्यु ने कॉम्ट के विचारों को इस हद तक प्रभावित किया कि वे रहस्यवाद तथा धर्म की ओर मुड़ गये।

कॉम्ट समाज के राजनैतिक पुनर्गठन की वकालत करते थे। एक ऐसा समाज जो समाज की आध्यात्मिक तथा नैतिक एकता पर निर्भर हो। कॉम्ट ने अपने व्याख्यानों का संग्रह 'कोर्स द फिलोसॉफी पॉजिटिव (Course de philosopie positive, Paris, 1830-42) प्रकाशित किया। अपनी इसी कृति में उन्होंने तीन स्तरों के नियम की चर्चा की एवं समाज और विज्ञान के सम्बन्ध में अपने विचारों को व्यक्त किया। इस दौरान कॉम्ट ने 'मानसिक स्वच्छता' (Cerebral Hygine) के सिद्धान्त को अपनाया अर्थात् अपने दिमाग को दूसरों के विचार से बचाने के लिए अन्य विद्वानों की कृतियों को पढ़ना बन्द कर दिया।

कॉम्ट के जीवन तथा ग्रंथों में एकरूपता का नितान्त अभाव है। 1851–1854 की अवधि में कॉम्ट ने सिस्टम ऑफ पॉजिटिव पोलिटिक्स की रचना की। कॉम्ट अपनी पहली रचना पॉजिटिव फिलॉसफी को जिस विज्ञान पर आधारित किया था। उस पर पॉजिटिव पॉलिटिक्स तक स्थिर नहीं रह सके और आंगिक रूप से प्रत्यक्षवाद से हटकर मानवता के धर्म की ओर अग्रसर हो गये थे। उनके अपने इस वैचारिक परिवर्तन के कारण उनके बहुत से शिष्य जैसे बिट्ठरे तथा जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे दोस्त उनसे विमुख हो गए। जे.एस. मिल ने इस पुस्तक की आलोचना करते हुए लिखा कि "इस पुस्तक में कॉम्ट ने अपने विचारों की निर्दयतापूर्वक हत्या की है।" यह विडंबना ही है कि कॉम्ट की रचनाओं को उनके मृत्यु 1857 तक फ्रांस में बहुत अधिक मान्यता नहीं मिली। परन्तु उनके मृत्यु के पश्चात् पहले इंग्लैण्ड फिर फ्रांस और जर्मनी में काफी सराहा गया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के फ्रांसीसी विचारकों पर कॉम्ट के प्रभाव की स्पष्ट छाप दिखती है। जिसका प्रतिनिधित्व टेने, रेनान और इंग्लैण्ड के जे.एस. मिल जैसे विचारकों ने किया।

2.3.2 कॉम्ट का सामाजिक परिवेश

पुनर्जागरण और बौद्धिक क्रान्ति के कारण पूरे यूरोप और फ्रांस में बौद्धिकता के नये वातावरण का सृजन हो रहा था। अम संदहवाद, तर्कवाद, बौद्धिक तार्किकता और विज्ञानवाद जैसे दर्शनों की ओर पूरा यूरोप आकर्षित था। प्राकृतिक विज्ञान, खगोल और गणित में अर्जित उपलब्धियों को गौरव पूर्ण तरीके से समाज देखता था। इन नये अर्जित उपलब्धियों इनके उपयोग तथा इनके अनुप्रयोग से पूरे यूरोपीय समाज में एक नये विश्वास का अभ्युदय हो रहा था।

कॉम्ट फ्रांसीसी क्रान्ति के परिणामों से दुःखी था। पूरे फ्रांस में एक अराजकता का माहौल व्याप्त था। फ्रांसीसी क्रान्ति के कारण फ्रांस की सामाजिक राजनीति, आर्थिक व्यवस्था में अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया था। जहाँ एक ओर फ्रांसीसी क्रान्ति ने सामन्ती व्यवस्था को समाप्त कर दिया वहीं दूसरी ओर राजाओं के दैवीय सत्ता का अन्त हुआ। चर्च की शक्ति व धन में कमी आयी ऐसे अराजकता भरे माहौल का फायदा उठाकर नेपोलियन तानाशाह बन बैठ था। अव्यवस्था की इस स्थिति में जनता दिग्भ्रमित थी। पुरातन एवं नवीन सामाजिक मूल्यों के बीच एक गहरी खाई पैदा हो गयी थी। लोगों के सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों के बीच न तो कोई साम्य था, न कोई विश्वास और न ही कोई निश्चित उद्देश्य नजर आ रहा था।

इस सर्वथा नवीन सामाजिक परिवेश में देवताओं, धार्मिक विश्वास, रूढ़ियं तथा अंधविश्वास से युक्त पारम्परिक रास्तों की ओर लौटना संभव नहीं था आवश्यकता इस बात की थी कि सामाजिक विचारक इन नवीन सामाजिक समस्याओं के निदान हेतु कोई काल्पनिक धार्मिक दर्शनों पर आधारित हल नहीं वरन् बौद्धिक–तार्किक और वैज्ञानिक हल प्रस्तुत करें। काम्ट ने इस संदर्भ में सवाल खड़े करते हुए पूछा कि ज्ञान के इस महल को किस तरह बनाया जाये कॉम्ट ने कहा कि लोगों को इस दिशा में खुद पहल करनी होगी और एक ऐसा विज्ञान ढूँढ़ना होगा जो उन्हें विश्व के प्रति एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रदान करते हो।

कॉम्ट ने फ्रांसीसी क्रान्ति के कारण उत्पन्न इस नवीन सामाजिक व्यवस्था को प्राकृतिक विज्ञानों के नियमों के अनुसार व्याख्यायित करने का प्रयास किया। पहले उन्होंने इस विषय का नाम सामाजिक भौतिकी रखा तथा इसके प्राकृतिक तथा परिवर्तनीय नियमों की खोज करने का प्रयास किया। किन्तु में उन्होंने सामाजिक भौतिकी का नाम बदलकर 1838 में समाजशास्त्र कर दिया ऐसा उन्होंने इसलिए किया क्योंकि इनसे पूर्व बेल्जियम के खगोलशास्त्री एडोल्फ क्वेटबोट ने सामाजिक भौतिकी शीर्षक का उपभोग सरल सांख्यिकी के अध्ययन में किया था। समाजशास्त्र शब्द लैटिन और ग्रीक शब्द से मिलकर बना है "अत्यधिक सामान्यीकृत" या अमूर्त स्तर पर समाज का अध्ययन (टिमशे) 1967–4)

2.3.3 कॉम्ट के मुख्य विचार

एक व्यवस्थित विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र को प्रारम्भ करने का श्रेय ऑगस्ट कॉम्ट को ही है। कॉम्ट पुनर्जागरण, औद्योगिक क्रान्ति और फ्रांसीसी क्रान्ति के फलस्वरूप निर्मित इस फ्रांसीसी समाज का आधुनिक विज्ञान मूल्यों के आधार पर नये तरीके से पुनर्गठन करना चाहता था। अतः इस नवीन

समाज के लिए नवीन सिद्धान्तों की भी आवश्यकता थी। जो समाज में सामंजस्य स्थापित कर सके।

कॉम्ट समाजशास्त्र में सामाजिक घटनाओं के अध्ययन हेतु वैज्ञानिक विधियों अर्थात् प्राकृतिक विद्वानों के अध्ययन के उपागम को अपनाने को लेकर प्रतिबद्ध था। अर्थात् समाजशास्त्र में भी प्राकृतिक विज्ञानों की भांति अवलोकन, परीक्षण, प्रयोग, वर्गीकरण, निष्कर्ष और भविष्यवाणियाँ भी की जा सकती हैं। तुलानत्मक अध्ययन के लिए कॉम्ट ने ऐतिहासिक पद्धति का प्रतिपादन किया। इस ऐतिहासिक पद्धति के माध्यम से विभिन्न कालों के समाज का तुलनात्मक अध्ययन करना संभव हो सका। कॉम्ट ने इन पद्धतियों के द्वारा समाज को समझने एवं इसका पुनर्गठन करने के लिए समाज की तीन अवस्थाओं के नियम की खोज की।

कॉम्ट के अनुसार कोई भी विचारधारा निरपेक्ष नहीं है वरन् प्रत्येक ज्ञान एक सापेक्षिक अर्थ में ही सत्य होता है और वह विचारधारा असीमित काल तक प्रामाणिक नहीं रहता। अतः विज्ञान स्वयं में सुधारात्मक होता है जो भी विचारधारा या वस्तु समय के अनुकूल नहीं रह पाती उसे अस्वीकृत कर दिया जाता है। इस प्रकार इस नवीन सामाजिक विज्ञान ने परम्परागत ज्ञान और सत्ता को अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार इस नये विज्ञान को सकारात्मक विज्ञान कहा गया। (कोजर 1971 : 5)

2.3.3.1 तीन अवस्थाओं का नियम

सामाजिक विचारधारा के विकास में कॉम्ट का तीन स्तरों का नियम एक महत्वपूर्ण योगदान है। सन् 1822 में 24 वर्ष की अवस्था में सेंट साइमन के सचिव के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने मानव जाति के विकास को क्रमबद्ध करने के क्रम में इस तीन अवस्थाओं के नियम की खोज की। अपने इस अध्ययन में विज्ञान के तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करते हुए मानव के आदिम अवस्था से आधुनिक सभ्य अवस्था के इस सफर को तीन अवस्थाओं के नियम के रूप में प्रतिपादित किया। मानव के बौद्धिक विकास के इस क्रम को कॉम्ट ने तीन अवस्थाओं में विभाजित किया।

1. धर्मशास्त्रीय अवस्था (Theological Stage)
2. तत्वमीमांसीय अवस्था (Metaphysical Stage)
3. प्रत्यक्ष या सकारात्मक अवस्था (Positive Stage)

1. धर्मशास्त्रीय अवस्था (Theological Stage)

यह मानव चिन्तन की प्रथम अवस्था है। इस अवस्था में मानव सभी कार्यों के आरम्भ तथा प्रयोजन को जानने का प्रयास करता है। परन्तु इस स्तर पर मानव मस्तिष्क का पूरी तरह से विकास नहीं होता है। अतः मानव समस्त भौतिक

व सामाजिक घटनाओं की व्याख्या धार्मिक आधार पर करता है। इस अवस्था में यह धारणा होती है कि सभी घटनाएं अलौकिक शक्तियों के तात्कालिक प्रभाव के कारण ही घटित होती हैं। इस अवस्था की व्याख्या करते हुए कॉम्ट लिखता है "धर्मशास्त्रीय अवस्था में मानव मस्तिष्क सभी प्रभावों का प्रारम्भ तथा अन्तिम कारणों (उद्भव एवं प्रयोजन) को तलाशने की सभी घटनाएं आलौकिक शक्तियों का तात्कालिक प्रभाव का परिणाम है।" कॉम्ट ने धर्मशास्त्रीय अवस्था को भी तीन उप अवस्थाओं में वर्गीकृत किया है।

(क) जीवित सत्तावाद (Fetichism)

यह धार्मिक अवस्था की पहली उप अवस्था है इसमें मानव मस्तिष्क जड़ और चेतन सभी को सजीव मानकर जीवित सत्ता का अनुभव किया जाता है। इस अवस्था में जादू–टोनों में मानव का अधिक विश्वास होता है।

(ख) बहुदेववाद (Polytheism)

यह धार्मिक अवस्था की दूसरी उप अवस्था है। इस अवस्था में मानव मस्तिष्क पहले की तुलना में थोड़ा परिपक्व हो जाता है। जादू–टोना से पैदा होने वाला भ्रम पैदा होने लगता है। अनेक प्रकार की चिन्ताएं एवं शंकाएं उत्पन्न होने लगती हैं। इस प्रकार इस अवस्था में विभिन्न घटनाओं के पीछे विभिन्न देवताओं पर विश्वास किया जाता है जो जीवन के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(ग) अद्वैतवाद या एकेश्वरवाद (Monotheism)

यह धार्मिक अवस्था की अन्तिम उप–अवस्था है। इस उप–अवस्था में मानव मस्तिष्क पहले की अवस्थाओं की तुलना में अधिक विवेकशील एवं चिन्तनशील हो जाता है। इसमें मानव अपनी समस्त श्रद्धा किसी एक ही ईश्वर में व्यक्त करता है। अतः वह एकेश्वरवाद में अपनी निष्ठा करता है। एकेश्वरवाद धर्मशास्त्रीय अवस्था की चरम अवस्था है।

2. तात्विक स्तर (Metaphysical Stage)

इस अवस्था में मानव ईश्वर के वैयक्तिक रूप के स्थान पर एक अमूर्त शक्ति के रूप में स्वीकारता है। विश्व में हो रही समस्त घटनाएं किसी अदृश्य, अमूर्त, निराकार शक्ति के कारण है। वह स्वयं में शाश्वत और पूर्ण है। कॉम्ट इस अवस्था का उल्लेख करते हुए लिखता है, "तत्व दार्शनिक अवस्था में जो कि प्रथम अवस्था का मात्र संशोधित रूप है, मानव मस्तिष्क यह स्वीकार कर लेता है कि अलौकिक प्राणियों के स्थान पर अमूर्त शक्तियों, यथार्थ अस्तित्व। (जीवित सत्ताधारी) ही सभी जीवों में अन्तर्निहित और सभी घटनाओं की उत्पत्ति में समर्थ है।

3. प्रत्यक्ष अवस्था (Positive Stage)

इस अवस्था में मानव धार्मिक एवं तात्विक अवस्थाओं की भांति घटनाओं के 'उद्भव' एवं अन्तिम कारणों की खोज को बन्द कर दिया जाता है। क्योंकि इसे विज्ञान के नियमों के आधार पर नहीं परखा जा सकता। व्यक्ति अब अवलोकन, परीक्षण, प्रयोग, वर्गीकरण, तुलना जैसे शुद्ध विज्ञानवादी आगमों के माध्यम से सामाजिक घटनाओं को देखने एवं समझने का प्रयास करता है। अर्थात् उनके अनुक्रम तक सादृश्य के साथ इस अपरिवर्तनीय सम्बन्ध का अध्ययन करता है। निरन्तर ऐसे नियमों की खोज में लगा रहता है जो एक तथ्य को दूसरे तथ्य से जोड़ता है।

धर्मशास्त्रीय अवस्था में राजनीतिक जीवन पर धर्म का वर्चस्व रहता है। वहीं तत्वमीमांसीय अवस्था में चर्च के पादरियों तथा वकीलों का वर्चस्व होता है जबकि प्रत्यक्ष अवस्था में औद्योगिक प्रशासकों तथा विज्ञानवाद का वर्चस्व रहेगा।

2.3.3.2 विज्ञानों का श्रेणीक्रम

विज्ञानों के श्रेणीक्रम सम्बन्धित विचार कॉम्ट ने सेंट साइमन से ग्रहण किया था। उन्होंने विज्ञानों के श्रेणीक्रम से सम्बन्धित विचार अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Positvie Philosophy' में दिया। विज्ञानों का श्रेणीक्रम की अवधारणा तीन अवस्थाओं के नियम के साथ जुड़ी हुई है। जैसे–जैसे चिन्तन की धाराओं का विकास होता है। वैसे ही विभिन्न विज्ञानों का भी विकास होता है। अर्थात् ना सिर्फ मानव के विचार तीनों अवस्थाओं से होकर गुजरते हैं। परन्तु प्रत्येक विषय भी इन तीन अवस्थाओं से गुजरता हुआ सकरात्मक अवस्था तक पहुँचता है। कॉम्ट का विज्ञान के संस्तरण का प्रमुख उद्देश्य समाजशास्त्र को विज्ञान के रूप में स्थापित करना था। जैसा कि बोगार्डस ने लिखा है कि "कॉम्ट की योजना का तीसरा चरण विज्ञानों का वर्गीकरण था, जिसके अन्तर्गत समाजशास्त्र को नवीनतम परन्तु सर्वश्रेष्ठ विज्ञान के रूप में दर्शाया गया।" विज्ञानों के इस श्रेणीक्रम की कुछ मान्यताएं कॉम्ट ने प्रस्तुत किये :

1. प्रत्येक विज्ञानों के ऐतिहासिक रूप से उद्भव एवं उनके विकास का क्रम
2. पराश्रयता की वृद्धि अर्थात् प्रत्येक अपने पूर्ववर्ती पर निर्भर होता है और अपने पीछे वाले के लिए आधार तैयार करता है।
3. प्रत्येक विषय सामान्यतया से जटिलता की ओर बढ़ती जाती हैं।
4. समय के साथ उनके तथ्यों में अधिक से अधिक संशोधन करने की क्षमता का विकास होता है।

इस प्रकार विज्ञानों, उद्भव तथा जटिलताओं के आधार पर कॉम्ट ने विज्ञानों का श्रेणीक्रम किया जो इस प्रकार है :

1. गणित
2. खगोल
3. भौतिकी
4. रसायन
5. प्राणिशास्त्र
6. समाजशास्त्र

कॉम्ट ने अपने विज्ञानों की इस श्रेणीक्रम में नैतिक मूल्य नामक विषय की भी चर्चा की। जो सबसे अन्त में आएगा। नैतिक मूल्य विषय से कॉम्ट का तात्पर्य मानव का व्यक्तियों के रूप में अध्ययन करना था। अर्थात् ऐसा अध्ययन जो मनोविज्ञान तथा नीतिशास्त्र का सम्मिलित प्रतिफल होगा तथा यह नियम समाजशास्त्र के बाद आएगा।

विज्ञानों के इस संस्तरण में कॉम्ट ने सर्वप्रमुख स्थान गणित को दिया। क्योंकि कॉम्ट का मानना था यह सबसे अधिक पुराना, आधारभूत तथा दोषरहित विज्ञान है, क्योंकि बिना गणित का प्रयोग किए प्राकृतिक नियमों का अन्वेषण असम्भव है। यह सर्वप्रथम विज्ञान होने एवं मौलिक होने के कारण अन्य विज्ञानों पर इसकी निर्भरता सर्वाधिक न्यून है। जबकि इन सब विषयों में समाजशास्त्र सबसे जटिल विज्ञान क्योंकि इसकी विषय–वस्तु अर्थात् समाज था जो स्वयं में जटिल प्रकृति का है। इसलिए समाजशास्त्र का जन्म सबसे बाद में हुआ।

2.3.3.3 समाजशास्त्र की शाखाएं

कॉम्ट ने समाजशास्त्र को दो प्रमुख भागों में वर्गीकृत किया है :

1. स्थैतिक (Static) समाजशास्त्र
2. गतिशील (Dyanmic) समाजशास्त्र

समाजशास्त्र के वर्गीकरण सम्बन्धी अवधारणा को जीवविज्ञान से लिया गया है। जैसा कि इसके पहले आपने पढ़ा कि कॉम्ट विज्ञानों के श्रेणीक्रम में विश्वास रखता था और जीवविज्ञान समाजशास्त्र से पहले स्थान पर आता है। इस कारण दोनों विज्ञानों में साम्यता के कई लक्षण मौजूद है। स्थैतिक समाजशास्त्र में समाज के उन दशाओं का अध्ययन किया जाता है जो समाज के अस्तित्व के लिए अति–आवश्यक है। दूसरे शब्दों में यह सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन करता है। कॉम्ट के अनुसार स्थैतिक समाजशास्त्र का सम्बन्ध सामाजिक सावयव के एकमतता से है। कॉम्ट का मत है कि एक स्वस्थ एवं शान्तिपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के लिए समाज के सभी अंगों में सामंजस्य का होना आवश्यक है। दरअसल स्थैतिक समाजशास्त्र का उद्देश्य एकमतता की खोज करना तथा

सामाजिक स्थिरता को स्थापित करने वाली दशाओं की खोज करना है। यह उन अवस्थाओं का भी अध्ययन करता है जो सामाजिक सन्तुलन की पुर्नस्थापना के लिए आवश्यक है।

जबकि गतिशील समाजशास्त्र के अन्तर्गत समाज के गतिशील पक्षों अर्थात् प्रगति का अध्ययन किया जाता है। कॉम्ट मानते हैं कि समाज का एक क्रमिक परिवर्तन हुआ है। समाज के इसी एक अवस्था से दूसरी अवस्था में हुए परिवर्तन का अध्ययन हम गतिशील समाजशास्त्र में करते हैं। कॉम्ट का यह विश्वास था कि समाज का एक क्रमिक परिवर्तन होता है। अतः इसके अन्तर्गत उन नियमों की खोज की जानी चाहिए जो समाज के क्रमिक परिवर्तन एवं निरन्तरता की पुष्टि करना है।

टिनशेफ कॉम्ट की चर्चा करते हुए कहते हैं कि स्थैतिक समाजशास्त्र जहाँ समाज के अस्तित्व के लिए आवश्यक दशाओं के मध्य समरसता या क्रमबद्धता है। वहीं गतिशील समाजशास्त्र सामाजिक प्रगति का सिद्धान्त है।

2.3.4 समकालीन समाजशास्त्र पर कॉम्ट का प्रभाव

अब तक अध्ययन से हम यह जान पाये हैं कि समाजशास्त्र को स्थापित करने एवं इसके विकास में कॉम्ट का योगदान अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रहा। कॉम्ट के विचारों ने तात्कालिक यूरोप के बुद्धिजीवियों पर गहरा प्रभाव डाला और आने वाले समाजशास्त्रियों के लिए एक उर्वर भूमि तैयार की। कॉम्ट के विचारों ने सोरोकिन, लेस्टर बार्ड, जे.एस. मिल, मैक्स वेबर तथा इमाईल दुर्खीम जैसे समाजशास्त्रियों पर गहरी छाप छोड़ी। जहाँ सोरोकिन ने तीन अवस्थाओं के नियम का संशोधित रूप विचारों और संस्कृति के विकास की अवस्थाओं के सन्दर्भ में अपनी कृतियों में शामिल किया वहीं दुर्खीम ने प्रत्यक्षवाद की अवधारणा को कॉम्ट ने जहाँ छोड़ा वहाँ से उन्होंने इसे आगे बढ़ाया।

2.4 हरबर्ट स्पेन्सर (1820–1903)

प्रारम्भिक समाजशास्त्रियों में जिन लोगों ने समाजशास्त्र को स्थापित करने में अपना अतुलनीय योगदान दिया। उनमें स्पेंसर सर्वप्रमुखों में से एक रहे। हरबर्ट स्पेंसर का समाजशास्त्र को किये गये बहुमूल्य योगदान के कारण रेमण्ड ने हरबर्ट स्पेंसर को समाजशास्त्र के संस्थापक पिताओं में से एक माना है। स्पेंसर काम्ट के समकालीन थे। अतः वे उनके विचारों के संसर्ग में तो आये परन्तु विचारों के स्तर पर कॉम्ट से विरोधाभास भी था। हरबर्ट स्पेंसर का समाजशास्त्र सम्बन्धी विचार जीव विज्ञान के उद्विकासीय सिद्धान्तों तथा जैव सावयव पर आधारित था। स्पेंसर के बौद्धिक कार्यों को हम आगे के उपशीर्षकों में विस्तार से चर्चा

करेंगे। परन्तु इससे पूर्व हम स्पेंसर के जीवन परिचय और उनके सामाजिक परिवेश को समझने का प्रयत्न करेंगे।

2.4.1 जीवन परिचय

हरबर्ट स्पेंसर का जन्म इंग्लैण्ड के डर्बी शहर में 27 अप्रैल 1820 को एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। स्पेंसर अपने माता–पिता के नौ संतानों में केवल वह ही व्यस्कता को प्राप्त कर सकें। स्पेंसर स्वयं भी बचपन से बहुत ज्यादा स्वस्थ नहीं थे। अतएव उनकी शिक्षा–दीक्षा घर पर ही अपने स्कूल अध्यापक पिता जार्ज स्पेंसर और अपने एक पादरी चाचा के संरक्षण में हुआ था। स्पेंसर और उनका पूरा परिवार व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का संरक्षक था। स्पेंसर की शिक्षा–दीक्षा ज्यादात्तर गणित एवं तकनीकी विषयों में हुआ था। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा कि उनकी सबसे अच्छी शिक्षा गणित में हुई थी। साहित्य, इतिहास एवं समाजशास्त्र जैसे विषयों में औपचारिक प्रशिक्षण न पाने के बाद भी जैविकी तथा मनोविज्ञान में उत्कृष्ट कार्य उन्होंने किए।

1837 में उन्होंने रेल इन्जीनियरिंग के क्षेत्र में एक सिविल इंजीनियर के पद पर अपना कार्य प्रारम्भ किया। और 1846 तक इस क्षेत्र में वे सक्रिय रहे। परन्तु इस दौरान भी उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा। तथा विज्ञान एवं राजनीतिक विषयों पर अपना लेखन कार्य भी जारी रखा। 1848 में स्पेंसर इंग्लैण्ड के सुप्रतिष्ठित प्रकाशन 'दी इकॉनौमिक्ट' के संपादक नियुक्त किए गए। इसी दौरान इनके बौद्धिक विचारों ने संगठित आकार लेना शुरू किया। 1851 में इनकी पहली पुस्तक 'सोशल स्टैटिक्स' प्रकाशित हुई। उनके इस शीर्षक पर कुछ चिन्तकों ने आपत्ति उठाते हुए कहा कि वह कॉम्ट के विचारों को फैलाने की कोशिश कर रहे हैं। परन्तु स्पेंसर ने इसे नकारते हुए कहा कि उन्होंने तो प्रथम में अपनी पुस्तक का शीर्षक 'डोमोस्टेटिक्स' रखा था।

हालांकि, स्पेंसर का स्वास्थ्य जीवन भर खराब रहा। परन्तु अपने इन बौद्धिक वर्षों के दौरान उनका स्वास्थ्य और भी खराब हो गया। इन वर्षों में वे ना सिर्फ अनिद्रा के शिकार हुए, बल्कि 35 वर्ष की अवस्था में इनका तंत्रिका अविच्छिन्न (Nervous Breakdown) हो गया जिसके कारण वे ताउम्र ज्यादा समय तक पढ़ाई नहीं कर पाने में असक्षम रहे। सीमाओं के बावजूद जैविकी, मनोविज्ञान, दर्शन एवं समाजशास्त्र जैसे विषयों पर इनका प्रभावशाली लेखन निरन्तर जारी रहा। 1853 में स्पेंसर के चाचा की मृत्यु के पश्चात् पैतृक सम्पत्ति के रूप में इन्हें काफी बड़ी सम्पत्ति हासिल हुई। उनके इस नव प्राप्त सम्पत्ति ने उन्हें नौकरी छोड़ने और एक निजी विचारक के तौर पर कार्य करने की स्वतंत्रता प्रदान की। 1863 में उनकी 'फर्स्ट प्रिंसिपल्स' (First Principles) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें उन्होंने अपने दर्शन के सिद्धान्तों का

प्रतिपादन किया। स्पेंसर को ना सिर्फ इंग्लैण्ड में बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी काफी ख्याति अर्जित हुई। हालांकि स्पेंसर कभी भी विश्वविद्यालय की डिग्री हासिल नहीं कर पायें। 8 सितंबर 1903 में 83 वर्ष की अवस्था में स्पेंसर का देहावसान हो गया।

2.4.2 स्पेंसर का सामाजिक परिवेश

स्पेंसर के जन्म के समय का इंग्लैण्ड भी उथल–पुथल की परिस्थितियों से गुजर रहा था। जैसा कॉम्ट के समय में फ्रांस में मची हुई थी। अतएव एक जैसी सामाजिक परिस्थितियों के कारण दोनों समाजों की समस्याएं भी एक जैसी ही थी। जब दोनों विचारकों के कृतियों को देखते हैं तो दोनों के विचारों में समानता के पहलू अपनी व्यापकता में मौजूद है।

स्पेंसर के समय का इंग्लैण्ड सुधारवादी आन्दोलनों के दौर से गुजर रहा था। जहाँ राज्य के सन्दर्भ में 'अहस्तक्षेप की नीति' (Lassaz Fair) के पक्ष में एक शक्तिशाली आन्दोलन चल रहा था। युवा स्पेंसर पर इस विचार का काफी प्रभाव पड़ा। इसी समय इंग्लैण्ड में 'उपयोगितावादी' दर्शन के पक्ष में जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे बौद्धिक विचारक निरन्तर इसके विमर्शों को बौद्धिक घर दे रहे थे। डार्विन के जीवविकासीय उद्विकास से सम्बन्धित सिद्धान्तों ने भी तात्कालिक इंग्लैण्ड के बौद्धिक जगत को गहरे से प्रभावित कर रही थी। इन सभी परिस्थितियों का गहरा प्रभाव स्पेंसर के विचारों पर भी पड़ा। इन विमर्शों के तर्क और केन्द्रीय बिन्दु ने स्पेंसर के विचारों के सृजन में योगदान दिया।

2.4.3 स्पेंसर के मुख्य विचार

हर्बर्ट स्पेंसर की रचनाओं पर सामाजिक उद्विकास सम्बन्धी विचारों की प्रधानता है। अपने सामाजिक उद्विकास सम्बन्धी विचारों के कारण ही इन्हें 'सामाजिक डार्विनवादी' भी कहा जाता है। अगर इनकी कृतियों सोशल स्टैटिक्स (1850), फस्ट प्रिंसिपल (1863), दी स्टडी ऑफ सोशियोलॉजी (1873), प्रिंसिपल्स ऑफ सोशियोलॉजी (1875–96) पर नजर डालें तो इनके विकास सम्बन्धी अवधारणाएं और विचारों की इसमें प्रधानता है। स्पेंसर के विचारों पर जिस एक पुस्तक का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा वह डार्विन कृत 'द ओरिजिन ऑफ़ स्पीशीज (1859) था।

2.4.3.1 सामाजिक उद्विकास का सिद्धान्त

हरबर्ट स्पेंसर के सामाजिक उद्विकास सम्बन्धी विचारों पर चार्ल्स डार्विन के 'द ओरिजिन ऑफ स्पीशीज' का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। स्पेंसर का सामाजिक उद्विकास के सम्बन्ध में भावना था कि सम्पूर्ण विश्व में मानव के स्थान को समझने के लिए हमें उद्विकास को समझना होगा। क्योंकि उद्विकास

की मूल मान्यता है कि प्राकृतिक के विभिन्न रूप जैसे पहाड़, समुद्र, पेड़, घास, मछली, रंगने वाले जीवन अथवा मानव सभी इस विकास क्रम में रूपान्तरित होते हैं। अर्थात् प्रकृति के प्रत्येक तत्वों का अपने विद्यमान रूप का रूपान्तरण होना है और यह रूपान्तरण ही उद्विकास है।

अपने इस मान्यता को स्थापित करते हुए अस्तित्व के लिए संघर्ष की प्रस्थापनाओं को प्रस्तुत किया। स्पेंसर ने कहा कि सभी समाजों का उद्भव और विनाश होता है। जो समाज व संस्कृति अपने को बदलने, पर्यावरण के अनुसार स्वयं को ढाल लेती हैं वो जीवित रह जाती हैं और जो इस संघर्ष में हार जाते हैं वो सदा के लिए नष्ट हो जाते हैं। जैसे प्राणी जगत में जीवों को अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना होता है। उसी प्रकार मानव समाज को भी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना होता है। तथा प्राकृतिक वरण (Natural Selection) की भॉति ही सामाजिक वरण भी होता है। इसमें वही जीवित रह पाता है जो योग्य अर्थात् योग्यत की उत्तरजीविता (Survival of the Fittest) होता है।

स्पेंसर अपने उद्विकास सम्बन्धी अवधारणा में यह भी प्रतिस्थापित करते हैं कि समाजों का विकास सरलता से जटिलता की ओर हुआ है। अर्थात् समाज सरलता की एक अवस्था से व्यवस्थित जटिलता की अवस्था की ओर बढ़ता है। जिससे समाज का रूपान्तरण अनिश्चितता से निश्चितता की ओर होता है। इस निश्चितता की दशा की ओर बढ़ने के क्रम में समाज के विभिन्न अंगों के प्रकार्य निरन्तर जटिल तथा विशिष्ट होते जाते हैं।

2.4.3.2 जैविक अनुरूपता

स्पेंसर ने अपने उद्विकास के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए कहा कि समाज तथा जीव सावयव की व्यवस्था में कुछ समानताएं हैं तो कुछ विभिन्नताएं भी हैं। जैव सावयव की भांति ही समाज सरल से जटिल की ओर विकास करता है। इसं जैव सावयव अनुरूपता के आधार पर स्पेंसर ने कुछ बुनियादी समानताओं की चर्चा की है :

1. दोनों का विकास धीमी गति से होता है।
2. दोनों के आकार में वृद्धि क्रमशः सरल से जटिल की ओर होता है।
3. दोनों के संरचनाओं के विकास के साथ प्रत्येक अंग एक दूसरे पृथक हो जाते हैं तथा इन सब में अपनी–अपनी प्रकार्यात्मक विशिष्टता आ जाती है।
4. अंगों की आपसी प्रकार्यात्मक विशिष्टता के साथ ही इनमें आपसी अन्तःनिर्भरता बढ़ जाती है।

5. इस बढ़ती अन्तःनिर्भरता को बनाए रखने के लिए संचार व्यवस्था का विकास होता है।

स्पेंसर इन आधारभूत समानताओं के बावजूद जीव तथा समाज में कुछ बुनियादी अन्तर महसूस करते हैं तथा मानते हैं कि समाज अपने अस्तित्व में जीव से कुछ अधिक होता है। दरअसल समाज एक अधिजैविक अस्तित्व (Super Organic Entity) है। अतः इसका दर्जा जैविक व्यवस्था से ऊपर है। स्पेंसर जैव तथा समाज के बीच जिन कुछ बुनियादी अन्तरों की चर्चा करते हैं वे निम्न हैं:

1. जहाँ जैव सावयव के विकास में प्रकृति का योगदान होता है। वहीं समाज अपने सचेतन प्रयासों के द्वारा विकसित होता है।

2. जैव सावयव का विकास कोशिकाओं से होता है। परन्तु उनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता जबकि समाज की कोशिका व्यक्ति होता है। जिसका एक अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है।

स्पेंसर अपनी इन्हीं मान्यताओं के आधार पर मानते थे कि जहाँ जैविक सावयवों में विभिन्न अंग सम्पूर्ण के लाभ के लिए अस्तित्व में रहते हैं वहीं समाज में 'सम्पूर्ण' विभिन्न हिस्सों के लिए अस्तित्व में रहता है। अर्थात् समाज का अस्तित्व व्यक्तियों के लिए है। (टिमाशेफ 1967 : 38)

2.4.3.3. समाजों का विकास

इसके पूर्व आपने जाना कि किस प्रकार समाजों का विकास जैव सावयव की तरह सरल से जटिल की ओर होता है। अपने उद्विकासीय अवधारणा के आधार पर स्पेंसर सामाजिक विकास के सम्बन्ध में दो वर्गीकरण करना चाहता था। प्रथम में समाज अपने संघटक अंगों के आधार पर पहले सरल समाजों का निर्माण होता है। फिर कई सारे साधारण समाज आपस में मिलकर एक सम्मिश्रित समाज का निर्माण करते हैं और फिर यह मिश्रित समाज आपस में मिलकर दोहरे सम्मिश्रित समाज का निर्माण करते हैं। टिमशेफ और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि साधारण समाजों में परिवार होते हैं। फिर ये परिवार आपस में मिलकर कुल (सम्मिश्रित समाज) बनाते हैं। फिर ये कुल आपस में मिलकर जनजातीय समूहों का निर्माण (दोहरे सम्मिश्रण समाज) करते हैं।

समाजों के विकास के सम्बन्ध में अपनी दूसरी अवधारणा तुलनात्मक विकास के आधार पर दिया। यहाँ पर समाजों के विकास के सम्बन्ध में एक भिन्न प्रकार का वर्गीकरण उन्होंने प्रस्तुत किया। जिससे भिन्न समाजों के बीच तुलना एवं उनका विश्लेषण हो सके। स्पेंसर ने इन दो समाजों का वर्गीकरण सैनिक समाज तथा औद्योगिक समाज के रूप में किया।

सैनिक समाज

स्पेंसर ने सैनिक समाज को एक ऐसे समाज के रूप में परिभाषित किया जो अपनी संरचनाओं में युद्ध से लेकर आक्रमण तथा सुरक्षात्मक फौजी कार्यवाहियों को करता है। हालांकि स्पेंसर युद्ध को लेकर हमेशा आलोचनात्मक रहें। वह महसूस करते थे कि समाज की प्रारम्भिक अवस्था में युद्ध विजय के द्वारा समाज का कुनबा बढ़ाने और उन्हें संगठित करने का तरीका था। सैनिक समाजों में समाज के सदस्यों के मध्य सम्बन्धों का स्वरूप अनिवार्य सहयोग पर आधारित होता है तथा समाज में मिथकों की बहुलता समाज में श्रेणीक्रम के आधार को मजबूत करता है। ऐसे समाजों में सत्ता केन्द्रीकृत तथा कठोर अनुशासन के अन्दर समाज के सदस्यों को अपना सार्वजनिक तथा निजी जीवन जीना होता है तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता राज्य के अधीन होता है।

औद्योगिक समाज

समाजों के उद्विकास के क्रम में सैनिक समाज के अन्तर्गत इकट्ठा हुए लोग औद्योगिक समाज के विकास के लिए आवश्यक होते हैं। औद्योगिक समाजों में उत्पादन एवं लोगों के कल्याण पर बल दिया जाता है। निरंकुश सत्ता का स्थान जनतंत्र ले लेता है। राज्य 'अहस्तक्षेप की नीति' (Lassaiz Faire) का पालन करना है। व्यक्तिवादिता को पर्याप्त महत्व दिया जाता है तथा समाज निजी उपलब्धियों को महत्व देता है। सत्ता का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकृत करने का प्रयास किया जाता है। औद्योगिक समाजों में अनिवार्य सहयोग के विपरीत ऐच्छिक सहयोग (Voluntary Cooperation) की प्रधानता होती है। औद्योगिक समाजों में सैनिक शक्ति का उपयोग आन्तरिक शान्ति एवं वाह्य आक्रमण से रक्षा के लिए किया जाता है।

2.4.4 समकालीन समाजशास्त्र पर स्पेंसर का प्रभाव

कॉम्ट एवं स्पेंसर दोनों आरम्भिक समाजशास्त्री थे परन्तु कॉम्ट के विपरीत स्पेंसर समाज में किसी भी वाह्य हस्तक्षेप के खिलाफ थे। वह इस सहज और स्वभाविक विकास को निर्बाध रूप से आगे बढ़ने देना चाहता थे। स्पेंसर का स्वतंत्रता में अगाध आस्था था। डार्विन के 'सर्वोत्तम की उत्तरजीविता' की धारणा में उसका अटूट विश्वास था। इसलिए वह राज्य के द्वारा समाज में अनावश्यक हस्तक्षेप के सख्त खिलाफ था तथा वह 'मुक्त बाजार की नीति' तथा राज्य 'अहस्तक्षेप की नीति' को समाज के लिए बेहतर मानता था।

स्पेंसर की बौद्धिक ख्याति का इस बात से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि उस काल में माना जाता था कि अगर किसी बुद्धिजीवी ने उसकी पुस्तक नहीं पढ़ी तो यह उसके लिए शर्म की बात थी। स्पेंसर ने अपनी ख्याति इंग्लैण्ड की सीमाओं से बाहर अमेरिका और रूस तक अर्जित किया। खासकर अमेरिकी

समाजशास्त्रीयों जैसे– वार्ड, कूले, गिडिंग्ज, स्याल एवं समनर पर स्पेंसर के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा।

2.5 सारांश

इस इकाई में आपने समाजशास्त्र के आरम्भिक संस्थापकों को पढ़ा। इसके अन्तर्गत ऑगस्ट कॉम्ट और हर्बर्ट स्पेंसर के जीवन परिचय, उनके सामाजिक परिवेश, उनके मुख्य विचार और प्रमुख मान्यताओं को हमने विस्तार से पढ़ा, जाना और समझा कि किस प्रकार इन विचारों ने समाजशास्त्र की नींव रखी और आने वाले समाजशास्त्रियों के लिए बौद्धिक आधार भूमि इन्होंने तैयार की।

इस इकाई में आप ऑगस्ट के प्रमुख विचारों जैसे– तीन अवस्थाओं का नियम, विज्ञानों का श्रेणी क्रम, समाजशास्त्र की शाखाएँ, समकालीन समाज पर कॉम्ट का प्रभाव, प्रत्यक्षवादी सिद्धान्त आदि से तथ्यपरक रूप में परिचित हुए।

साथ ही साथ इस इकाई में आप हरबर्ट स्पेन्सर के प्रमुख विचारों जैसे– सामाजिक उद्विकास का सिद्धान्त, जैविक अनुरूपता, समाजों का विकास एवं समकालीन समाजशास्त्र, समाजशास्त्र पर स्पेन्सर का प्रभाव आदि से तथ्यपरक रूप से परिचित हुए।

2.6 संदर्भ ग्रंथ

1. कोजर, लुइस ए. 1971, मास्टर्स ऑफ सोशियोलॉजीकल थॉट आइडियाज इन हिस्टॉरिकल एण्ड सोशल कॉनटैक्स्ट, हरकोर्ट ब्रेस जोपानोविक, न्यूयार्क

2. टिमाशेफ, निकोलस एस. 1967, सोशियोलॉजिकल थियरी इट्स नेचर एण्ड ग्रोथ रैंडम हाउस, न्यूयार्क

2.7 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ऑगस्ट कॉम्ट का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. तत्वमीमांसीय अवस्था से आप क्या समझते हैं? चर्चा करें।
3. स्थैतिक एवं गतिशील समाजशास्त्र की मुख्य बातों को बताएं।
4. सामाजिक उद्विकास के बारे में संक्षिप्त वर्णन करें।
5. सैनिक समाज से आपका क्या आशय है?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कॉम्ट के तीन अवस्थाओं के नियम की सविस्तार व्याख्या करें।
2. कॉम्ट के विज्ञानों की श्रेणीक्रम को समझाएं। क्या आपके विचार में यह श्रेणीक्रम उचित हैं? अपने मत के समर्थन में तर्क प्रस्तुत करें।
3. स्पेंसर के जैविक अनुरूपता से सम्बन्धित विचारों की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
4. स्पेंसर के समाजों के विकास सम्बन्धी विचारों की सविस्तार व्याख्या करें। क्या आप उसके इस विचार से पूरी तरह सहमत हैं? अपने विचारों के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करें।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. समाजशास्त्र शब्द को देने का श्रेय किस समाजशास्त्री को प्राप्त है?

   (क) ऑगस्ट कॉम्ट (ख) हर्बर्ट स्पेंसर

   (ग) इमाइल दुर्खीम (घ) मैक्स वेबर

2. ऑगस्ट कॉम्ट के विचारों पर सर्वाधिक प्रभाव किस दार्शनिक का रहा?

   (क) रूसो (ख) सेंट साइमन

   (ग) कोन्डरसेंट (घ) बेंजामिन फ्रैंकलिन

3. 'कोर्स द फिलोसॉफी पॉजिटिव' पुस्तक के लेखक कौन हैं?

   (क) हर्बर्ट स्पेंसर (ख) सेंट साइमन

   (ग) इमाइल दुर्खीम (घ) ऑगस्ट कॉम्ट

4. इनमें से कौन सा आरम्भिक समाजशास्त्री 'अहस्तक्षेप की नीति' का समर्थक था?

   (क) ऑगस्ट कॉम्ट (ख) हर्बर्ट स्पेंसर

   (ग) सेंट साइमन (घ) इमाईल दुर्खीम

5. 'द ओरिजीन ऑफ स्पीशीज' पुस्तक के लेखक कौन हैं?

   (क) हर्बर्ट स्पेंसर (ख) ऑगस्ट कॉम्ट

   (ग) चार्ल्स डार्विन (घ) सेंट साइमन

2.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

(क) 2. (ख) 3. (घ) 4. (ख) 5. (ग)

2.9 प्रमुख शब्दावली

विज्ञान

वैज्ञानिक पद्धतियों, प्रेक्षण, निरीक्षण, परीक्षण, वर्गीकरण एवं विश्लेषण से प्राप्त क्रमबद्ध ज्ञान ही विज्ञान है।

तत्वमीमांसा

यह दर्शनशास्त्र की एक शाखा है जो प्रकृति तथा चिन्तन के प्रथम सिद्धान्तों की खोज करता है। इसमें मानव विश्व का अर्थ सार तत्वों या आदर्शों के रूप में करता है।

धर्मशास्त्रीय

कॉम्ट इसे मस्तिष्क विकास की प्रथम अवस्था मानता है तथा विश्व में घटित होने वाली सभी घटनाओं का सम्बन्ध दैवीय एवं पारलौकिक शक्तियों से जोड़कर देखा जाता है।

सकारात्मक

कॉम्ट इसे मस्तिष्क के विकास की अन्तिम अवस्था मानता है। इसका सम्बन्ध घटनाओं के निरीक्षण, परीक्षण प्रयोग, वर्गीकरण और उनके विश्लेषण तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों को नियमित करने वाले नियमों की खोज करने से है।

पद्धति

किसी सामाजिक घटना पर तथ्यों को इकट्ठा करने का तरीका। जैसे– अवलोकन, साक्षात्कार आदि।

विकास

दीर्घ समय में धीमी गति से होने वाले परिवर्तन को विकास कहते हैं।

यूटोपिया

एक ऐसे आदर्श की कल्पना जिसमें समाज के सभी सदस्यों के लिए एक आदर्श सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था है। परन्तु इसे व्यावहारिक धरातल पर उतारना कठिन हो।

अनिवार्य सहयोग

समाज के द्वारा आरोपित ऐसा सहयोग जो समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए बाध्यकारी हो।

ऐच्छिक सहयोग

व्यक्ति के द्वारा स्वतंत्र रूप से स्वीकार किया गया सहयोग जो बिना किसी बाह्य बाध्यता के स्वीकार किया गया हो।

इकाई–3 : समाजशास्त्र के संस्थापक–द्वितीय

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 जार्ज सिमेल (1858–1918)

3.2.1 जीवन परिचय

3.2.2 जार्ज सिमेल का सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

3.2.3 मुख्य विचार एवं कृतियाँ

3.2.3.1 तात्विक समाजशास्त्र या स्वरुपात्मक समाजशास्त्र

3.2.3.2 सामाजिक प्रारूप

3.2.3.3 सिमेल के समाजशास्त्र में संघर्ष की भूमिका

3.2.4 समकालीन समाजशास्त्र पर सिमेल का प्रभाव

3.3 विल्फ्रेडो परेटो (1848–1923)

3.3.1 जीवन परिचय

3.3.2 परेटो का सामाजिक परिवेश

3.3.3 परेटो के मुख्य विचार एवं कृतियाँ

3.3.3.1 तर्क संगत एवं अतर्कसंगत क्रिया

3.3.3.2 अवशिष्ट और व्युत्पाद

3.3.3.3 अभिजात वर्ग के परिभ्रमण का सिद्धान्त

3.3.4 समकालीन समाजशास्त्र पर परेटो का प्रभाव

3.4 थोर्स्टीन बेब्लेन (1857–1929)

3.4.1 जीवन परिचय

3.4.2 सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

3.4.3 मुख्य विचार एवं कृतियाँ

3.4.3.1 प्रौद्योगिक विकास का सिद्धान्त

3.4.3.2 विलासी वर्ग का सिद्धान्त

3.4.3.3 सम्पन्न वर्ग और प्रदर्शनात्मक उपभोग

3.4.3.4 सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा

3.4.4 समकालीन समाजशास्त्र पर बेब्लेन के विचारों का प्रभाव

3.5 सारांश

3.6 संदर्भ

3.7 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

3.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

3.9 शब्दावली

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- जार्ज सिमेल, विल्फ्रेड परेटो और थर्सटीन बेब्लेन का जीवन परिचय प्राप्त कर पायेंगे।
- इनके सामाजिक परिवेश की जानकारी आपको मिल पायेगी।
- इनके मुख्य विचारों से आप अवगत हो पायेंगे।
- समकालीन समाजशास्त्र को किस प्रकार इनके विचारों ने प्रभावित किया।

3.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में हमने आपका परिचय आगस्त कॉम्ट, हर्बर्ट स्पेंसर जैसे समाजशास्त्रियों से कराया। वहाँ आपने जाना कि उन आरम्भिक समाजशास्त्रियों ने किस प्रकार से भौतिक एवं जैव वैज्ञानिक नियमों तथा सिद्धान्तों के आधार पर समाजशास्त्र को स्थापित करने का प्रयास किया था।

प्रस्तुत इकाई में हम आपका परिचय जॉर्ज सिमेल (1858–1918), विल्फ्रेडो परेटो (1848–1923) और थोर्स्टीन वेब्लेन (1857–1929) से करायेंगे। हालाँकि हमने आरम्भिक समाजशास्त्री की लम्बी सूची से चुनिंदा रूप से इन तीन समाजशास्त्रियों का चयन किया है क्योंकि इन तीनों समाजशास्त्रियों ने समाजशास्त्र को यथा एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया। इन तीन समाजशास्त्रियों के अतिरिक्त अन्य के बारे में अध्ययन हम आगे के अध्यायों में करेंगे। सिमेल ने संघर्ष जैसे सामाजिक प्रक्रिया के सकारात्मक विमर्श को आगे बढ़ाया तो परेटो का

अभिजनवादी दृष्टिकोण, समाजशास्त्र के सामाजिक परिवर्तन की उनकी अवधारणा समाजशास्त्र के साथ राजनीतिशास्त्र के विद्यार्थियों के विमर्श में आज भी शामिल हैं। वहीं वेब्लेन ने आधुनिक संस्कृति का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया।

इस इकाई के 3.2 में जार्ज सिमेल 3.3 में विल्फ्रेडो परेटो 3.2 में थार्स्टीन वेब्लेन के रचना संसार की हम जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.2 जॉर्ज सिमेल (1858–1918)

जर्मन समाजशास्त्रियों की लम्बी परम्परा में जॉर्ज सिमेल का अपना एक विशिष्ट स्थान है। समाजशास्त्र को समझने के लिए उन्होंने अपने पूर्ववर्ती समाजशास्त्रियों यथा कॉम्ट तथा स्पेंसर के जैविकीय सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए उसे खारिज कर दिया तथा एक नवीन समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य प्रदान किया। उन्होंने जर्मनी की उस बौद्धिक परम्परा को भी नकारा जिसमें किसी विशिष्ट घटनाओं के सम्बन्ध में ऐतिहासिक वर्णन की एक मजबूत परम्परा थी।

अब हम एक–एक कर जॉर्ज सिमेल की रचना संसार से आपका परिचय आगे के उपभागों में कराएंगे।

3.2.1 जीवन परिचय

जॉर्ज सिमेल का जन्म बर्लिन शहर के हृदयस्थल के बीच 1 मार्च 1858 को हुआ था। इनके माता–पिता यहूदी थे। अपने पिता के सात सन्तानों में यह सबसे छोटे थे। सिमेल के पिता ने प्रोटेस्टेंट धर्म में ही दीक्षा दिया गया था। अल्प आयु में ही इनके पिता की मृत्यु हो गयी। जुलियम फ्रेडलैंडर जो एक संगीत प्रकाशन गृह का मालिक था। उसने सिमेल को गोद ले लिया। सिमेल के पिता भी विरासत में काफी बड़ी सम्पत्ति जॉर्ज सिमेल के लिए छोड़ गये।

शहरी वातावरण में इनकी परवरिश होने के कारण लोक परम्परा, संस्कृति से इनका विशेष नाता नहीं था। अपने भाषणों एवं आलेखों में परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आलोचनात्मक रूख को अपनाया।

1876 में सिमेल ने बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया तथा 1881 में कान्ट के प्रकृति दर्शन के विषय पर अपने शोध के लिए इन्हें डॉक्टरेट की उपाधि मिली। बर्लिन विश्वविद्यालय के अपने अध्ययन के दौरान अपने समय के प्रमुख जर्मन विचारकों के सम्पर्क में आए।

सन् 1885 से 1900 तक सिमेल बर्लिन विश्वविद्यालय में बतौर अवैतनिक प्राध्यापक (लेक्चरर) के रूप में कार्य किया। यहाँ इन्होंने दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र और समाजशास्त्र जैसे विषयों को पढ़ाया। उनके विषयों पर पकड़ और बोलने की कला अत्यन्त ही असाधारण थी। उनके भाषणों को सुनने वालों

में उनके विद्यार्थियों के अलावा जर्मनी का अभिजात वर्ग भी था। सिमेल की यह असाधारण प्रतिभा ही थी कि यह एक ही सत्र में सहजतापूर्वक कई विषयों पर एक साथ बोल सकता था।

1890 में सिमेल ने गरत्रड किनेल के साथ विवाह कर लिया। जो स्वयं एक दार्शनिक थीं। सिमेल एक प्रवक्ता के तौर पर ख्याति पाने के बावजूद वह जर्मन बौद्धिक जगत में वह सम्मान हासिल नहीं कर पाया। जिसकी उसे कल्पना थी। उसकी मुख्य वजह उसकी यहूदी विरोधी भावना भी थी। तो दूसरी ओर इसके अधिकांश स्रोता जर्मन अभिजन थे, गंभीर समाजशास्त्री नहीं। अतः इनकी रचनाएँ अत्यन्त ही सामान्य किस्म की थी। जिसमें गंभीर समाजशास्त्रीय विमर्श का सदैव अभाव था। हालांकि सभी बुद्धिजीवी उसकी योग्यता को स्वीकार करते थे। मैक्स वेबर जैसे समाजशास्त्रियों का तो उसे समर्थन भी प्राप्त था। सिमेल ने टॉनीज और वेबर के साथ मिलकर 'जर्मनी सोसाइटी फ़ॉर सोशियोलॉजी' की स्थापना की।

सन् 1924 में सिमेल स्ट्रॉसवर्ग विश्वविद्यालय में पूर्णकालिक प्रोफेसर नियुक्त किया गया। परन्तु यह उसका दुर्भाग्य ही था कि जब यह स्ट्रॉस वर्ग विश्वविद्यालय आया तभी प्रथम विश्व युद्ध शुरू हो चुका था और व्याख्यान कक्षों के सैनिक अस्पताल और मिलिट्री कैम्पों में बदल दिया गया था। 28 सितम्बर 1928 को कैंसर से जॉर्ज सिमेल का निधन हो गया।

3.2.2 जॉर्ज सिमेल का सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सिमेल के समय का जर्मनी बहुत तेजी से बदल रहा था। बिस्मार्क के नेतृत्व में जर्मनी में राइख की स्थापना हो रही थी। जर्मनी भी अब तेजी से एक औद्योगिक समाज में बदल रहा था। इस परिवर्तन का केन्द्र बिन्दु बर्लिन था। जर्मनी एक अर्ध सामंतवाद राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत एक पूँजीवादी देश बन रहा था। परन्तु यहाँ का बौद्धिक वर्ग समाज की वैचारिक निर्माण में उस तरह सक्रिय नहीं था जिस तरह से यह सक्रियता इंग्लैण्ड और फ्रांस के बुद्धिजीवियों में थी। फिर भी लुईस कोजर लिखते हैं कि विश्वविद्यालयीय बुद्धिजीवियों के विपरीत बर्लिन में एक ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग सक्रिय था जो अपने विचारों में नवीन तथा स्थापित मान्यताओं और परम्पराओं के प्रति आलोचनात्मक था। इनके विचार विश्वविद्यालयीय बौद्धिकों की तुलना में अधिक क्रान्तिकारी था। इस नवीन बौद्धिक वर्ग में पत्रकार, नाटककार, लेखक आदि थे। जो आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते रहते थे।

जॉज सिमेल भी अपने आलोचनात्मक विचारों के कारण जर्मन के शैक्षिक बौद्धिक वर्ग के लिए बाहरी व्यक्ति बना रहा। इस कारण सिमेल ने अपनी एक वर्ग निरपेक्ष स्थिति बना ली तथा दोनों ही गुटों से एक बौद्धिक दूरी का निरन्तर

पालन किया जिससे वह समाज का अध्ययन एक निरपेक्ष भाव से करने में सफल रहा।

3.2.3 सिमेल के मुख्य विचार एवं कृतियाँ

इससे पूर्व सिमेल के जीवन परिचय एवं सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में आपने पढ़ा कि जॉर्ज सिमेल ने कॉम्ट एवं स्पेंसर द्वारा प्रतिपादित जैविकीय सिद्धान्तों के साथ जर्मनी के उस ऐतिहासिक परम्परा को भी अस्वीकार किया जो बौद्धिक विमर्शों में अब तक प्रभावी था। सिमेल की नजर में समाज अनवरत चलने वाली अन्तःक्रियाओं के परिणामस्वरूप सम्बन्धों की एक जटिल व्यवस्था है। कोजर सिमेल के बारे में लिखते हुए कहते हैं कि सिमेल की नजर में समाज व्यक्तियों का समूह है जो पारस्परिक अन्तःक्रिया के माध्यम से एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं।

सिमेल समाजशास्त्र में स्वरूपात्मक सम्प्रदाय का समर्थक था। अतः ये समाजशास्त्र में सामाजिक जीवन से सम्बन्धित सभी घटनाओं के अध्ययन के विरोधी, हैं। समाजशास्त्र को एक विशेष विज्ञान के रूप में विशेषीकरण की परम्परा को अपनाने के समर्थक हैं। इसलिए सिमेल कहते हैं कि विज्ञान को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सम्पूर्णताओं का अध्ययन नहीं करना चाहिए। वरन् उसके स्थान, घटकों और आयामों का अध्ययन करना चाहिए। आईए अब हम सिमेल के रचना संसार को थोड़ा विस्तृत में विभिन्न उपशीर्षकों के अन्तर्गत करते हैं। परन्तु उससे पूर्व उनकी कुछ प्रमुख कृतियों पर एक नजर डाल लेते हैं।

1. द मेट्रोपोलिस एण्ड मेण्टल लाईफ, 1903
2. द फिलॉसफी ऑफ मनी, 1900
3. ऑन इण्डिविजुआलिटी एण्ड सोशल फार्म्स, 1972

3.1 तात्विक समाजशास्त्र या स्वरूपात्मक समाजशास्त्र

अब तक आपने पढ़ा कि सिमेल, कॉम्ट एवं स्पेंसर के विचारों को खारिज किया, परन्तु इन सब में आपस में समानता के भी कुछ बिन्दु थे। इन सब का यह विश्वास था कि सामाजिक जीवन में कुछ अन्तर्निहित समानताएँ होती हैं जिसे खोजकर निकाला जा सकता है। यह सामाजिक समानताएँ सामाजिक अन्तःक्रिया के रूप में होते हैं। सामाजिक अन्तःक्रिया की एक लम्बी श्रृंखला है। जिसमें विनिमय, संघर्ष, वैश्यावृत्ति, समाजगति, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक जैसे अनेक गतिविधियाँ इनमें शामिल है। सामाजिक अन्तःक्रिया का रूप अपने स्वरूप में विशिष्ट भी हो सकते हैं तो कभी–कभी एक जैसी विरोधी घटनाओं में भी समरूप हो सकते हैं। जैसे चुनाव के समय अपने पार्टी के पक्ष में किसी नेता का

भाषण करना तथा किसी भी अराजक भीड़ को उसके दल के नेता द्वारा हिंसा करने के लिए उकसाना। दोनों सामाजिक घटनाएँ अपने स्वरूप में विरोधाभासी होने के बावजूद अपने अन्तःक्रियात्मक विन्यास में लगभग समान है। सिमेल ने अपने इसी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को तात्विक समाजशास्त्र कहा है।

सिमेल के अनुसार किसी घटना विशेष का महत्व नहीं होता, बल्कि उसमें शामिल सामाजिक अन्तःक्रिया का महत्व होता है। यह सामाजिक अन्तःक्रिया ही समाजशास्त्रीय अध्ययन का क्षेत्र होता है। सिमेल ने यह भी कहा कि समाज में कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ होती हैं जिसकी पुनरावृत्ति पुनः नहीं होती है, जैसे जूलियस सीजर की हत्या या वाटरलू में नेपालियन की पराजय।

सिमेल मानते हैं कि समाज में 'शुद्ध' रूप के किसी चीज का अस्तित्व नहीं होता, बल्कि 'शुद्ध' केवल एक काल्पनिक विचार होता है। फिर भी सिमेल ने सामाजिक प्रारूपों के अध्ययन के लिए 'शुद्ध' को अपनाया है। जब आगे के अध्यायों में आप वेबर के 'आदर्श प्रारूप' का अध्ययन करेंगे तो पाएंगे कि सिमेल का 'प्रारूप' वेबर के 'आदर्श प्रारूप' के ही समान है। इन दोनों के विचारों में समानता की एक वजह इन दोनों का समकालीन होना भी हो सकता है।

3.3.2 सामाजिक प्रारूप

सामाजिक स्वरूपों के साथ जॉर्ज सिमेल ने सामाजिक प्रारूपों की एक लम्बी श्रृंखला की चर्चा की जिनमें अजनबी, अध्यस्थ, गरीब व्यक्ति, विनिमय, संघर्ष आदि है। सिमेल के सामाजिक प्रारूप सामाजिक स्वरूप की संकल्पना के सम्पूरक हैं। प्रारूप किसी व्यक्ति को समाज में विशिष्ट स्थान दिलाता है। साथ ही उनमें कुछ अपेक्षाओं को भी उससे सन्निहित कर देता है।

सिमेल ने अपनी पुस्तक 'द सोशियोलॉजी ऑफ जार्ज सिमेल' (1980) में अजनबी के उदाहरण के द्वारा 'प्रारूप' सम्बन्धित अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया। सिमेल अजनबी को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में देखते हैं जो हमारे जितनी दूर होता है, ठीक उसी समय उतना ही नजदीकी। अजनबी हमारा नजदीकी होते हैं जब हम उसमें समानता के तत्वों को देखते हैं। जैसे राष्ट्रीयता, सामाजिक, व्यावसायिक और मानव व्यवहार परन्तु ठीक उसी समय ये सारे तत्व किसी अजनबी को हमसे उतना ही दूर ले जाता है। अजनबी का सामाजिक समूह में विशिष्ट स्थान होता है। इस नये सामाजिक समूह में उसके अन्तःक्रिया का निर्धारण इस बात से होता है कि वह आरम्भ से इस नवीन प्रवेश सामाजिक समूह का सदस्य है या कि नहीं।

अजनबी से उम्मीद की जाती है कि वह पक्षपातरहित हो तथा इस नवीन सामाजिक समूह को देखें तथा वह अपने साथ समाज में कुछ नवीन सामाजिक मूल्यों को लाता है। दो समाजों के मध्यस्थ की भूमिका निभाता है। इस प्रकार

अपनी पुस्तक से सामाजिक प्रारूप की अवधारणा को स्पष्ट करने के क्रम में सिमेल कई अन्य उदाहरणों से इस अवधारणा को सम्पुष्ट करते हैं। इस क्रम में गरीब, विश्वासघाती आदि की चर्चा करते हैं।

3.2.3.3 सिमेल के समाजशास्त्र में संघर्ष की भूमिका

जॉर्ज सिमेल ने अपनी रचनाओं में सामाजिक सम्बन्धों की व्याख्या में संघर्षों को महत्व दिया। क्योंकि संघर्ष सिर्फ समाज की उत्पत्ति नहीं है, बल्कि **समाज में घटित होने वाली सामाजिक** प्रक्रियाएँ भी उसे उतना ही प्रभावित करती हैं। सिमेल के संघर्षात्मक दृष्टिकोण में काफी हद तक मार्क्स की भी झलक दिखती है। सिमेल के लिए व्यक्ति एक ही समय समाज का अंग भी है और समाज से बाह्य भी अर्थात् जहाँ एक समय व्यक्ति अपने अस्तित्व को समाज के लिए महसूस करता है तो दूसरी ओर ठीक उसी समय वह स्वयं के अस्तित्व को अपने लिए महसूस करता है। ऐसे समाज व्यक्ति के अस्तित्ववान हो जाता है और अंशतः वैयक्तिक। क्योंकि समाज का निर्माण आधारभूत एकताकारी तत्वों से हुआ है फिर भी तार्किक तौर पर उनमें विरोधाभास के स्वर एक साथ मौजूद हैं।

सिमेल का द्वन्द्वात्मक सम्बन्धी दृष्टिकोण उसके समस्त अवधारणाओं, सिद्धान्तों एवं लेखों में परिलक्षित होता है चाहे वह 'फैशन', सामाजिक स्वरूप, **सामाजिक प्रारूप हो चाहे** व्यक्तिनिष्ठता एवं वस्तुनिष्ठता के सम्बन्ध में उसके विचार हो या फिर 'ज्यादा–जीवन' और 'जीवन से ज्यादा' सम्बन्धी उसके अवधारणा हो। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है सिमेल का द्वन्द्वात्मक संघर्ष में मार्क्स के छाप होने के बावजूद उसके 'वर्ग संघर्ष' तुलना में वेबर के 'लौह पिंजरे' की अवधारणा के ज्यादा नजदीक है। सिमेल के अनुसार संघर्ष समाज का जरूरी एवं अहम हिस्सा है। वह समाज में सामन्जस्य और सहमति का पूरक है। सिमेल मानता है कि सामाजिक अन्तःक्रिया की प्रक्रिया में संघर्ष और सामाजिक लगाव जैसे परस्पर विरोधी तत्व एक साथ मौजूद होते हैं। अतः संघर्ष की भावना जहाँ एक समय एक दूसरे समूह के प्रति नकारात्मकता का भाव पैदा करता है तो खुद के समूह में सामाजिक एकता को और भी सुदृढ़ करता है।

3.2.4 समकालीन समाजशास्त्र पर सिमेल का प्रभाव

हालांकि सिमेल ने समाजशास्त्र पर कोई व्यवस्थित पुस्तक की रचना नहीं की। फिर भी उन्होंने समाजशास्त्र के अपने स्वरूपात्मक अवधारणा में यह स्पष्ट करने की प्रयास किया कि समाजशास्त्र के अध्ययन के लिए एक निश्चित विषय–वस्तु का होना आवश्यक है। उन्होंने इस क्रम में जहाँ एक ओर समाजशास्त्र **की अपनी स्वतन्त्र** विषय–वस्तु को स्थापित करने का प्रयास किया। वहीं दूसरी ओर **उन्होंने समाजशास्त्र को दूसरे समाज विज्ञानों (मनोविज्ञान, दर्शन, इतिहास आदि) से अलग करने** का प्रयास किया।

सिमेल के विचारों का प्रभाव लुईस ए. कोजर, जॉर्ज लुकास, मैक्स वेबर, हैरिसन व्हाइट जैसे समाजशास्त्रियों पर पड़ा। सिमेल के सशक्त प्रभाव को वर्णित करते हुए कोजर लिखते हैं कि सिमेल को चाहे हम सीधे उनकी रचनाओं से पढ़ें या उसके विचारों को, रॉबर्ट पार्क, राबर्ट मर्टन, लुई बर्थ या थियोडोर मिल्स जैसे लेखकों के माध्यम से पढ़ें। वह हमारी समाजशास्त्रीय कल्पना को वैसे ही उत्तेजित करता है, जैसे दुर्खीम या वेबर (कोजर, 1971)।

3.3 विल्फ्रेडो परेटो (1848–1923)

समाजशास्त्र पर जिन आरम्भिक समाजशास्त्रियों की स्पष्ट छाप रहा। उनमें परेटो अग्रणी समाजशास्त्रियों में से एक थे। विल्फ्रेडो परेटो (1848–1923) ने ना सिर्फ इटली के समाजशास्त्र को बल्कि कालान्तर में टॉलकॉट पारसन्स जैसे प्रमुख समाजशास्त्री के रचनाओं को भी इसने गहरे से प्रभावित किया। परेटो ने अपने आरम्भिक जीवन की शुरूआत बतौर एक इन्जीनियर के तौर पर किया। अपने जीवन के इसी अवधि में इनकी अभिरूचि अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र जैसे विषयों में भी हो गयी। परेटों ने अपनी रचना 'द ट्रीटाइज ऑन जनरल सोशियोलॉजी' में कॉम्ट तथा स्पेंसर को लेकर आलोचनात्मक रहें। क्योंकि परेटो का मानना था कि कॉम्ट तथा स्पेंसर दोनों ने अपनी रचनाओं में आनुभाविक सामाजिक वास्तविकता को नजरअन्दाज किया और मानवता, लोकतन्त्र, समानता, लौकिक धर्म और प्रगति जैसे अवास्तविक सामाजिक विचारों को गौरवान्वित करने का प्रयास किया। अपनी इस आलोचनात्मक रूख के कारण इन्हें 'फासीवाद का भविष्यवक्ता' तथा बुर्जआ समाज का कार्ल मार्क्स तक इन्हें कहा गया। आइए अब हम आपको परेटो के जीवन से परिचय थोड़ा विस्तार से परिचित कराते हैं।

3.3.1 जीवन परिचय

विल्फ्रेडो परेटो का जन्म 15 जुलाई 1848 को पेरिस में हुआ था। इनकी माँ फ्रांसीसी तथा पिता इटालियन थे। इनके पिता मानवतावादी एवं उदार मूल्यों के समर्थक तथा मैजिनी एवं गेरीकाल्डी के समर्थक थे। इनकी शिक्षा ट्यूरिन के पॉलिटेक्नीक स्कूल में हुई। जहाँ इन्होंने सिविल इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् इन्होंने इटालियन रेलवे में इंजीनियर के रूप में कार्य करने लगे। रेलवे की नौकरी छोड़ने के बाद फ्लोरेंस के एक लौह उद्योग में इन्होंने लगभग 16 वर्ष तक मैनेजिंग डायरेक्टर के बतौर काम किया। इस समय इन्हें यूरोप के अन्य देशों में भ्रमण करने का अवसर प्राप्त हुआ। अपने समय के प्रसिद्ध विचारकों के सम्पर्क में आने और उनके विचारों को जानने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ।

विल्फ्रेडो परेटो ने अपने जीवन के आरम्भिक वर्षों में, अपने पिता का अनुसरण किया तथा तात्कालिक यूरोप के बौद्धिक दर्शन यथा- लोकतंत्र

गणतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समानता और प्रगति जैसे मूल्यों का पुरजोर समर्थन किया। परन्तु बाद के वर्षों में राजनीतिक तथा व्यक्तिगत कारणों से इन विचारों के कटु आलोचक हो गये। दरअसल 1876 में इटली में जब दक्षिण पंथी शासन का अन्त हुआ और जो नया शासन उभरकर सामने आया। उसकी शासकीय असमर्थताओं के कारण वह इन आदर्शवादी विचारों से खिन्न हो गया। इस नये शासन का वह कटु आलोचक हो गया। हालांकि, उसने स्वयं को राजनीति में अजमाने का प्रयास किया। परन्तु असफल रहा और उसकी इस असफलता ने उसे इस नयी व्यवस्था का आलोचक बना दिया। उसका मानना था कि इटली का यह नया सांभ्रान्त वर्ग, अत्यन्त ही भ्रष्ट, निन्दनीय, आत्ममुग्ध और स्वार्थी हैं। (कोजर, 1971: 403)

1882 में अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् अपना व्यवसाय छोड़कर शिक्षा के पेशे की ओर प्रवृत्त हो गये। 1889 में परेटों ने ऐलेजैंड्रीना बाकुनिन नामक युवती से विवाह कर लिया। फ्लोरंस को छोड़कर फीसोल में जा बसे जहाँ इन्होंने अर्थशास्त्र का गंभीर अध्ययन किया। परेटो प्रोफेसर वालरस के 'आर्थिक संतुलन के सिद्धान्त' तथा गणितीय अर्थशास्त्र सम्बन्धी दृष्टिकोण से अत्यन्त प्रभावित थे। 1893 तक उन्होंने स्वयं को एक अर्थशास्त्री के तौर पर स्थापित कर लिया था। प्रोफेसर वालरस के आग्रह पर स्विटजर्स्लैंड के लोसान विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर पीठ को स्वीकार किया। इटली का प्रमुख फासीवादी नेता मुसोलिनी इसी विश्वविद्यालय में परेटो का शिष्य रहा। 1898 में एक नजदीकी रिश्तेदार की मृत्यु के कारण इन्हें विरासत में अकूत धन सम्पत्ति तथा लोहे की खानें प्राप्त हुआ और अब जीवन–यापन के चिन्ताओं से मुक्त होकर अध्ययन कार्य तथा विलासितापूर्ण जीवन जीने लगा था।

परेटो सरकार के संरक्षणवादी नीतियों का मुखर आलोचक था। इस विषय पर होने वाले सार्वजनिक विमर्शों में सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारंभ कर दिया। वह अर्थशास्त्र के अवैज्ञानिक दृष्टिकोण की अत्यन्त कटु आलोचना करता था। उसने अपना ध्यान अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक और उसे विश्वसनीय बनाने पर लगाया।

सन् 1900 में परेटो अत्यन्त अस्वस्थ हो गये और उन्हें विश्वविद्यालय से छुट्टी लेनी पड़ी। इस अस्वस्थता के बाद जब वे वापस लौटे तो उन्होंने अर्थशास्त्र के साथ ही समाजशास्त्र पर भी व्याख्यान देना प्रारंभ कर दिया। 1909 में हृदय रोग से पीड़ित हो गये। अनिद्रा के कारण परेटो रात को खूब पढ़ते थे। हालांकि, मुसोलिनी के फासीवादी शासन के दौरान इन्होंने अपनी अभिरूचि एक बार फिर से राजनीति में दिखाया तथा सक्रिय तौर पर राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेना शुरू कर दिया। मुसोलिनी ने ना सिर्फ इन्हें सीनेटर नियुक्त किया, बल्कि जिनेवा निःशस्त्रीकरण सम्मेलन के लिए इटली का प्रतिनिधि भी मनोनीत

किया। मुसोलिनी ने परेटो द्वारा सुझाए गया विचारों को कुछ हद तक लागू करने का भी प्रयास किया। 19 अगस्त 1923 को विल्फ्रेडो परेटो की मृत्यु हो गयी।

3.3.2 परेटो का सामाजिक परिवेश

जैसा कि परेटो के जीवन परिचय में आपने पढ़ा कि तात्कालिक इटली का राजनीतिक घटनाक्रम बहुत तेजी से बदल रहा था। एक तरफ इटली में जहाँ दक्षिणपंथी शासन का अन्त हो चुका था। वहीं दूसरी ओर नयी शासन व्यवस्था भी अकर्मण्यता और असमर्थता का शिकार हो चुकी थी। इटली के इस सामाजिक, राजनैतिक ढाँचे में हो रहे परिवर्तन का स्पष्ट प्रभाव परेटो के विचारों पर भी पड़ा। जैसा कि इसके पूर्व आपने पढ़ा कि जीवन के आरम्भिक वर्षों में परेटो अपने पिता और मित्रों के संगत में लोकतान्त्रिक एवं उदारवादी विचारों से प्रभावित था। परन्तु समय के साथ वह इन विचारों का प्रबल निन्दक बन चुका था। वह उस समय के यूरोप और इटली में प्रचलित लोकतान्त्रिक, मानवतावादी, समानता और गणतंत्र जैसे विचारों को उसने सिरे से नकार दिया था। परेटो का कहना था कि एक सामाजिक विश्लेषणकर्ता का यह दायित्व है कि वह 'समानता', 'प्रगति' और 'स्वतंत्रता' जैसे मूल्यों और सिद्धान्तों की वास्तविक प्रकृति को सामने लाए। वो मानता था कि मनुष्य अपने कृत्यों को जायज और तर्कसंगत वैधता प्रदान करने के लिए इन आडम्बरयुक्त खोखले शब्दों का प्रयोग करता है। परेटो के विचारों पर उनके पिता, अर्थशास्त्री वालरस और जे. एस.गिल जैसे विचारकों का भी प्रभाव पड़ा।

3.3.3 परेटो के मुख्य विचार एवं कृतियाँ

परेटो ने अपने विचारों तथा सिद्धान्तों में गणनात्मक पद्धति का प्रयोग किया। अपने विचारों को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने के लिए समाजशास्त्र में गणित, तथा तर्क सम्मत परीक्षणात्मक पद्धति (Logico-Experimental Method) के प्रयोग पर बल दिया। इस तार्किक परीक्षणात्मक पद्धति के तीन प्रमुख आधार है। (अ) निरीक्षण, (ब) वैधानिक अनुभव (स) तर्कसंगत अनुमान या तर्कसंगत निष्कर्ष। अर्थात् समाजशास्त्री वास्तविक जीवन के घटनाओं का अध्ययन अनुभव के आधार पर करता है तथा इनके निरीक्षण के पश्चात् तर्कसंगतता के आधार पर व्यवस्थित ढंग से किसी निष्कर्ष को निकालने का प्रयास किया जाता है। परेटो का मानना था कि निरीक्षण अनुभव और प्रयोग के आधार सामाजिक वास्तविकताओं के मध्य समानता के तत्वों को ढूँढ़कर सामाजिक नियमों का प्रतिपादन करना समाजशास्त्री का प्रमुख कार्य है। अपने लेखन में परेटों ने स्पष्ट तौर पर कहा कि सामाजिक वास्तविकताओं के अध्ययन के सम्बन्ध में समाज वैज्ञानिकों को उन्हीं पद्धतियों का प्रयोग करना चाहिए जिसका प्रयोग प्राकृतिक विज्ञान अपने अध्ययनों में करता है। अपने अर्थशास्त्र के अध्ययन के क्रम में उसे यह अनुभव हो गया था कि मनुष्य की प्रत्येक क्रियाएँ तार्किक अथवा तर्कसंगत ही नहीं, बल्कि कुछ क्रियाएँ अतार्किक भी होती हैं।

परेटो की प्रमुख कृतियाँ अधोलिखित हैं :

1. कोर्स डी इकॉनॉमी पॉलिटीक (Cours d' Economic Politique Vol.I 1896 Vol. II 1897)
2. लेस सिस्टमस सोशियालिस्ट्स (Les Systems Socialistes, 1903)
3. मैन्यूल डी इकोनोमिया पॉलीटिका (Manuale d' Economia Politica, 1906)
4. ट्रीटाडो डी सोशियोलॉजिया जनरल (Trattato d' Sociologia Generale 1915)

   यह पुस्तक तीन खण्डों में प्रकाशित हुई जिसका अंग्रेजी रूपान्तरण 1935 में 'दी माइण्ड एंड सोसाइटी (The Mind and Society) के नाम से 4 खण्डों में प्रकाशित हुआ।
5. द रूलिंग क्लास इन इटली बिफोर

3.3.3.1 तर्कसंगत एवं अतर्कसंगत क्रिया

परेटो समाज को एक ऐसी व्यवस्था मानते हैं जिसमें संतुलन बना हुआ है। अर्थात् समाज में कुछ ऐसी ताकतें हैं जो इन संतुलनों को बनाने में मददगार हैं। इस व्यवस्था के किसी हिस्से में अगर कोई बाह्य ताकत उसमें परिवर्तन लाने का प्रयास करता है तो इसके अन्तः ताकतें इस सन्तुलन की व्यवस्था को बनाए रखने के लिए बाहर की ओर दबाव डालती है। अतः समाज जब किसी क्रान्ति या युद्ध की स्थिति से गुजरता है तो उसके बाद समाज स्वयं को फिर से व्यवस्थित कर संतुलन स्थापित कर लेता है। (टिमशेफ 1976 : 162)।

परेटो की सामाजिक क्रियाओं का सम्बन्ध समाज के इन्हीं भीतरी ताकतों के विश्लेषण से सम्बन्धित हैं। परेटो ने इन सामाजिक क्रियाओं को दो भागों में वर्गीकृत किया।

1. तर्कसंगत क्रियाएं
2. अतर्कसंगत क्रियाएं।

परेटो ने माना कि तर्कसंगत क्रियाओं का आधार वस्तुनिष्ठता होता है जबकि अतर्कसंगत क्रियाओं का आधार व्यक्तिनिष्ठता है। परेटो के अनुसार इन समस्त घटनाओं के दो पहलू होते हैं– पहला जैसा कि घटनाएँ वास्तव में है। दूसरा जैसा कि घटनाओं के सम्बन्ध व्यक्ति के मस्तिष्क में छवि का निर्माण होता है। प्रथम को परेटो ने वस्तुनिष्ठ तथा दूसरे को व्यक्तिनिष्ठ कहा है।

तर्कसंगत क्रियाएं वे क्रियाएं होती है जिसमें कर्ता (व्यक्ति) अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तर्कसंगत रूप से अपने साधनों का चुनाव करता है। इन तर्कसंगत साधनों के चुनाव का आधार अनुभव, प्रयोग एवं तर्क होता है। ये क्रियाएं तर्कसंगत रूप से वास्तविक अनुभव पर आधारित होने के कारण वस्तुनिष्ठ एवं प्रामाणिक होती हैं। वास्तविक जगत से सम्बन्धित होने के कारण ही इन पर वैज्ञानिक प्रविधियों का प्रयोग संभव है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तर्कसंगत क्रियाओं के साधन एवं साध्य एक दूसरे के सहगामी होते हैं।

जो क्रियाएँ तर्कसंगत क्रियाओं की श्रेणी में नहीं आती हैं अतर्कसंगत क्रियाएं कहलाती है। अतर्कसंगत क्रियाओं के मध्य साधन एवं साध्य के मध्य कोई सामन्जस्य नहीं होता। अतः इसकी प्रकृति व्यक्तिनिष्ठ प्रकार का होता है। ये अतर्कसंगत क्रियाएं व्यक्ति के मानसिक, अवचेतन विचारों में सृजित होती है। ये विचार अनुमान पर आधारित होने के कारण इनका निरीक्षण, परीक्षण एवं अवलोकन संभव नहीं होता है। परेटो के अनुसार समाज की अधिकांश क्रियाएँ अतर्कसंगत प्रकार के होती हैं और अपनी इन्हीं व्यक्तिनिष्ठ क्रियाओं की प्रासंगिकता और औचित्य सिद्ध करने के लिए व्यक्ति अतार्किक तर्कों का सहारा लेता है। मनोवैज्ञानिक के विपरीत सामाजिक विश्लेषणकर्ता का कार्य अतार्किक क्रियाओं के ज्यादा गहराई में उतरे बिना इनका तथ्यात्मक सामग्री के बतौर इनका प्रयोग हो। (कोजर : 1971)

3.3.3.2 अवशिष्ट और व्युत्पाद (Residues & Derivatives)

परेटो ने अपनी पुस्तक 'द ट्रीटाइज ऑन जनरल सोशियोलॉजी', 1915 में अवशिष्ट और व्युत्पादों की चर्चा की है। अपशिष्ट और व्युत्पाद दोनों मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति है जिसका सम्बन्ध अतर्कसंगत क्रियाओं से है। सामाजिक सन्तुलन को बनाए रखने में इनकी विशिष्ट स्थिति होती है। इनके प्रयोग से अवैज्ञानिक सिद्धान्तों, विचारों और व्यक्तिनिष्ठ एवं विश्वासनिष्ठ प्रणालियों के अध्ययन में किया जाता है।

अवशिष्ट का सम्बन्ध मानव व्यवहार के स्थिर पक्ष से होता है, जबकि व्युत्पाद का सम्बन्ध मानव व्यवहार के परिवर्तनशील या अस्थिर पक्ष से होता है। अतः अवशिष्ट व्युत्पाद की तुलना में आपेक्षिक रूप से अधिक स्थायी होता है। जैसे धर्म, सदियों से मानव जीवन को प्रभावित करता रहा है और अपनी तमाम आलोचनाओं के बावजूद आज भी इनका समाज में अस्तित्व बना हुआ है। अतः कह सकते हैं कि धर्म में अवशिष्ट तत्वों की मौजूदगी है। जिससे धर्म अब तक स्थिर बना हुआ है। परन्तु एक पहलू यह भी है धर्म स्थिर अवश्य बना हुआ है।

लेकिन समय के साथ धर्म के स्वरूप में कई परिवर्तन भी आए जो धर्म का व्युत्पाद है।

अवशिष्ट मूल प्रवृत्तियों और भावनाओं की अभिव्यक्ति है। जो व्युत्पाद की अपेक्षा अधिक स्थिर होता है। परेटो ने इन अवशिष्ट तत्वों को छः श्रेणियों में वर्गीकृत किया है:

1. संयोजन के अवशिष्ट या सम्मिलन के अवशिष्ट
2. समूहों के स्थायित्व के अवशिष्ट
3. वाह्य क्रियाओं द्वारा संवेगों की अभिव्यक्ति के अवशिष्ट
4. सामाजिकता के अवशिष्ट
5. व्यक्तित्व के एकता के अवशिष्ट
6. काम समबन्धी अवशिष्ट

अवशिष्टों की इन छः श्रेणियों के अतिरिक्त परेटो ने दो अन्य श्रेणियों की भी चर्चा की – 1. संयोजन की सहज वृत्ति, 2. समूह स्थायित्व। ये दोनों श्रेणियाँ परेटो के अभिजात वर्ग के सिद्धान्तों से जुड़े हुए हैं। अवशिष्ट एवं व्युत्पाद के अवधारणाओं के आधार पर ही परेटो अपने सामाजिक आन्दोलनों, परिवर्तन एवं ऐतिहासिक गतिशीलता का व्याख्या कर पाया।

3.3.3.3 अभिजात वर्ग के परिभ्रमण का सिद्धान्त

समाज में सभी लोगों की न तो शारीरिक बनावट एक सा होता है और ना ही मानसिक अथवा नैतिक अवस्था। प्रत्येक समाज में कुछ लोग अन्यों के मुकाबले ज्यादा बुद्धिमान, चालाक, चतुर, कुशल, चरित्रवान, नैतिक व समर्थ होते हैं। समाज में ऐसे लोगों को अभिजन कहा जाता है। परेटो ने अभिजन के बारे में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि ये समाज में ऐसे लोग हैं, जिन्हें अपने कार्य क्षेत्र में उच्चतम स्थान प्राप्त होता है। ये उच्च पदों पर प्रतिष्ठित होते हैं तथा समाज पर अपना नियन्त्रण बनाये रखते हैं।

परेटो ने अपने अभिजात वर्ग सम्बन्धी अवधारणा में कहा कि प्रत्येक समाज में सामाजिक असमानता एवं संस्तरण है। इस संस्तरण की व्यवस्था में दो वर्ग है– उच्च वर्ग और निम्न वर्ग। जहाँ पहले वर्ग को ही शासक वर्ग, अभिजात वर्ग, श्रेष्ठ वर्ग या विशिष्ट वर्ग भी कहते हैं। वहीं दूसरा वर्ग शासित वर्ग है। परेटो ने इस शासक वर्ग को भी दो भागों में वर्गीकृत किया।

1. शासकीय अभिजन या शासक – अभिजात
2. गैर शासकीय अभिजन या गैर शासक अभिजात

उपरोक्त दोनों वर्गों का सम्बन्ध साम्भ्रान्त वर्ग से है। परन्तु इन दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि शासक अभिजन प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सरकार पर अपना नियन्त्रण रखते हैं एवं सरकार के कार्यों में महत्वपूर्ण भागीदारी निभाते हैं, जबकि शेष साम्भ्रान्त वर्ग के लोग गैर शासकीय अभिजन कहे जाते हैं।

परेटो ने अपने अभिजन के परिभ्रमण के सिद्धान्त का प्रतिपादन मार्क्स के विपरीत (रेखीय स्वरूप) चक्रीय स्वरूप में किया। अर्थात् समाज में परिवर्तन किसी एक निश्चित बिन्दु पर पहुँच कर समाप्त नहीं हो जाता बल्कि यह परिवर्तन चक्रीय रूप में अनवरत जारी रहता है। परेटो का अभिजन समाज का सबसे बुद्धिमान, चालाक और योग्य व्यक्ति होता है। परन्तु जिन लोगों को यह प्रतिष्ठा अपने विरासत के कारण हासिल होता है (प्रदत्त प्रस्थिति) । ऐसे लोग समाज के लिए हानिकर होते हैं।

इसी अध्ययन में आपने अवशिष्टों के श्रेणियों के बारे में पढ़ा। जहाँ हमने आपका परिचय संयोजन के अवशिष्ट या सम्मिलन के अवशिष्ट तथा समूह के स्थायित्व के अवशिष्ट से कराया। सामाजिक परिवर्तन इन्हीं दो श्रेणी के क्रियाशीलता का परिणाम होता है। प्रथम श्रेणी, जिसमें सम्मिलन के अवशिष्ट की प्रधानता होती है वे अपने तात्कालिक स्वार्थों पर बल देते हैं। इनमें बड़े पैमाने पर जोड़–तोड़ और चालाकी से भरे होते हैं। परेटो इस श्रेणी के लोगों को 'लोमड़ी' कहता है, जबकि जिनमें समूह के स्थायित्व के अवशिष्ट की प्रधानता होती है। उन्हें 'शेर' कहा जाता है। अथार्त् 'शेर' आदर्शवादी, अनुदार और रूढ़िवादी विचारधारा का प्रतिनिधि होता है। परेटो ने अपने 'शेर' एवं 'लोमड़ी' की अवधारणा को मैक्यावली से ग्रहण किया। आदर्श शासक वर्ग के शासक अभिजन में दोनों गुणों का सम्मिश्रण होना चाहिए। ताकि समाज में बेहतर शासन प्राप्त हो सके।

परेटो के अनुसार कोई भी वर्ग पूर्णतः बन्द नहीं होता है। उसमें परिवर्तन निरन्तर चलता रहता है। अभिजात वर्गों में भी यह परिवर्तन निरन्तर चलता रहता है। जब उच्च वर्ग (शेर) के अभिजन अपने गुण को खोने लगते हैं तो खुद को निम्न वर्गीय चातुर्य में बदल (लोमड़ी) लेते हैं। परन्तु निम्न वर्ग में भी चतुर, बुद्धिमान और कूटनीतिक (लोमड़ी) होते हैं जो हमेशा मौके के फिराक में होते हैं। तभी राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन आता है। इस प्रकार अभिजनों के मध्य यह परिभ्रमण निरन्तर जारी रहता है। इस ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया में कई अभिजन पूरी तरह से नष्ट हो जाते हैं। इसलिए परेटो ने 'इतिहास को कुलीनतंत्रों का कब्रिस्तान' कहा है।

3.3.4 समकालीन समाजशास्त्र पर परेटो का प्रभाव

परेटो ने समाजशास्त्र के उन अनछुए पहलुओं की ओर पहली बार ध्यान आकृष्ट कराया जिस पर समाजशास्त्र का ध्यान अब तक नहीं गया था।

अतार्किक क्रियाओं के बारे में इतनी विषद व्याख्या परेटो से पूर्व अब तक किसी ने नहीं किया था। इसकी समाजशास्त्रीय व्याख्या ने समाजशास्त्र के क्षितिज को विस्तार दिया। परेटो का अभिजन के परिभ्रमण से सम्बन्धित सिद्धान्त आज भी समाजशास्त्रियों और राजनीतिशास्त्रियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है। परेटो में जहाँ हम दुर्खीम, मैक्स वेबर एवं मोस्का जैसे विचारकों का प्रभाव देखते हैं। वहीं टॉलकॉट पारसन्स, सी. राइट मिल्स, टी.बी. बोटोमोर, रेमण्ड एरो आदि जैसे समाजशास्त्रियों की रचनाओं में परेटो का प्रभाव परिलक्षित होता है।

3.4 थोर्स्टीन वेब्लेन (1857–1929)

अमेरिका के जिन आरम्भिक समाजशास्त्रियों ने समाजशास्त्र में अपना छाप छोड़ा उनमें सर्वप्रमुख रूप से थोर्स्टीन वेब्लेन का नाम आता है। नार्वेजियन दम्पत्ति के पुत्र वेब्लेन से जॉन हॉपकिन्स, गेल और कर्नेल जैसे विश्वविद्यालयों में अध्ययन किया। वेब्लेन को समाजशास्त्र में प्रौद्योगिकी से सम्बन्धी विचारों को स्थापित करने का श्रेय दिया जाता है। इससे पूर्व के इकाई में हमने हर्बर्ट स्पेंसर के अध्ययन के दौरान आपको बताया था कि हर्बर्ट स्पेंसर ने प्रारंभिक अमेरिकी समाजशास्त्र को गहरे से प्रभावित किया था। हर्बर्ट स्पेंसर के सिद्धान्तों से प्रेरणा ग्रहण करने वालों में वेब्लेन भी एक था। वेब्लेन का भी स्पेंसर की तरह पर्यावरण के चयनात्मक अनुकूलन की प्रक्रिया में विश्वास था। समाजशास्त्र से सम्बन्धित अपने महत्वपूर्ण अवधारणाओं को उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द थ्योरी ऑफ द लेजर क्लास' (1899) में व्याख्यातित किया। वेब्लेन के विचारों पर सम्पूर्णता में विचार करने के पूर्व आइए हम उसके जीवन परिचय को प्राप्त करते हैं।

3.4.1 जीवन परिचय

थोर्स्टीन वेब्लेन का जन्म 30 जुलाई 1857 को अमेरिका के विसक्रांसिन राज्य में हुआ था। उसके माता–पिता नार्वे के अप्रवासी थे। वह अपनी माता–पिता के 12 संतानों में संतान था। वेब्लेन के माता–पिता कृषक वर्ग के थे। वह जिन लोगों बीच रहता था। वहाँ पूर्णतः नार्वे के लोग रहते थे। जीवन के उसके आरंभिक सत्रह वर्ष उन ग्रामीण समुदायों नार्वे के लोगों के बीच बीता। वेब्लेन जब आठ वर्ष के थे तो उनके माता–पिता विसक्रांसिन छोड़कर मिन्नेसोटा में जाकर बस गए। यह भी पूर्णतः ग्रामीण समुदाय ही था पर फर्क सिर्फ इतना था कि उसने अपनी शिक्षा एक अंग्रेजी विद्यालय में प्राप्त किया। वेब्लेन बचपन से ही चुटीले व्यंग्य करने एवं हाजिरजवाबी में माहिर थे। उनकी यह विशेष योग्यता उनके जीवन की पूरी रचनाओं में भी दिखता है।

सन् 1874 में वेब्लेन अध्ययन के लिए कार्लटन कॉलेज गये। जहाँ ये राजनीतिक अर्थशास्त्र तथा इतिहास के प्रोफेसर जॉन वेट्स क्लार्क के सम्पर्क में

आये। यहाँ रहते हुए इन्होंने साहित्य, नैतिक दर्शन तथा धर्म के अध्ययन पर इन्होंने बल दिया। सन् 1880 में उन्होंने इस कॉलेज से स्नातक की उपाधि हासिल की। यहाँ पढ़ते हुए अपनी सहपाठी एलेन सेल्फ के साथ इनका सम्बन्ध बना। सन् 1888 में दोनों विवाह सम्बन्ध में बंध गये।

कार्लटन छोड़ने के बाद इन्होंने विसकांसिन मैडसन नगर में अध्यापक की नौकरी की। लेकिन इसमें उनका मन नहीं लगा। इसलिए इस नौकरी को छोड़कर सन् 1880 में ही वेब्लेन ने जॉन हॉपिकन्स विश्वविद्यालय में दर्शन के अध्ययन हेतु प्रवेश लिया, परन्तु छात्रवृत्ति नहीं मिलने के कारण इसे छोड़कर वह येल विश्वविद्यालय चले गये। यहाँ वह डब्ल्यु. जी. समनर जैसे बौद्धिकों के सम्पर्क में आया। यहाँ उसने दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया तथा 'ईपिकल ग्राउण्डस ऑफ डॉक्ट्राइन ऑफ रिट्रीब्यूशन (Ethical Grounds of Doctrine of Retribution) विषय पर सन् 1884 में अपना शोध प्रबन्ध पूरा किया। हालांकि, इसके बावजूद भी उसे कोई शैक्षिक पद प्राप्त न हो सका। क्योंकि कोई भी शैक्षणिक संस्थान अपने यहाँ एक नॉर्वेजियमन और एक नास्तिक को नहीं रखना चाहता था।

कार्नेल से वह शिकागो आ गया। जहाँ वह 1892 से 1906 तक रहा। 38 वर्ष की आयु में वह शिकागो विश्वविद्यालय में पहले 'इंस्ट्रक्टर' फिर इसके पाँच वर्ष बाद वह असिस्टेंट प्रोफेसर बन गया। 3 अगस्त 1929 को हृदय रोग से वेब्लेन की मृत्यु हो गयी।

8.4.2 सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वेब्लेन के जन्म के समय का अमेरिकी समाज तेजी से परिवर्तित हो रहा था। अर्धसामान्ती कृषक समाज औद्योगिक समाज की ओर परिवर्तित हो रहा था। अमेरिकी समाज का यह युग स्वर्ण युग था। परन्तु इस युग में विरोध भी इन नये स्थापित हो रहे मूल्यों के खिलाफ मुखर हो रहा था। अतः यह युग 'विरोध युग' के रूप में भी प्रसिद्ध था।

इस अमेरिकी समाज में पूँजी की ताकत पर एक किस्म के लुटेरे वर्ग का उदय हो चुका था। जिनका मुख्य पेशा मेहतनकशों को लूट कर पूँजी इकट्ठा करना था। इनके पिता भी जमीन से मुनाफा अर्जित करने वालों, धोखेबाज एवं धूर्त वकीलों से कई बार लूटे गये। इसलिए इन ठगों, लुटेरों के प्रति वेब्लेन के मूल मन से ही घृणा घर कर गयी। कोजर लिखते हैं कि ये औद्योगिक पूँजीपति लुटेरे, बदमिजाज, अड़ियल और नये रईस थे। ये लोग असभ्य, निर्दयी, लूटपाट करने वाले समर्थ और इरादे के पक्के थे।

इन औद्योगिक प्रभुत्व के खिलाफ कृषकों ने सक्रिय व संगठित संघर्ष भी किया। इन संघर्षों की झलक उसके लेखन में देखने को मिलता है। इन लुटेरे

वर्गों के कार्यों के कारण इन्होंने 'सम्पन्न वर्ग के सिद्धान्त' को दिया। अमेरिकी समाज में आ रहे इन बदलावों की एक बड़ी वजह प्रौद्योगिकी में आ रहा परिवर्तन था। इन नवीन सामाजिक प्रस्थितियों को वेब्लेन महसूस कर रहा था। उसने 'प्रौद्योगिकी विकास के सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया। वेब्लेन ने डब्ल्यू. जी. समनर, जॉन डेवी, विलियम आइ थामस जैसे विचारकों के साथ काम किया। उसके लेखन में व्यंग्य और हाजिर जवाब का पुट भरा होता था। वेब्लेन जीवन पर्यन्त तटस्थ बना रहा तथा नार्वेजियन समाज और अमेरिकी समाज दोनों के लिए एक समान रूप से अजनबी बना रहा तथा दोनों ही समाजों की उसने अपने लेखन में पर्याप्त आलोचना की।

3.4.3 मुख्य विचार एवं कृतियाँ

अब तक के अध्ययन के दौरान आपने पाया कि वेब्लेन के विचारों के सृजन में उसके सामाजिक ऐतिहासिक परिवेश ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। एक ओर जहाँ ईश्वर में उसके अविश्वास और नास्तिक व्यवहारों ने समाज को देखने एवं समझने की उसके व्यंग्यात्मक और हाजिर जवाब शैली ने उसे अपने समकालीनों से सर्वदा नया दृष्टिकोण प्रदान किया। वेब्लेन के रचना संसार के दो महत्वपूर्ण विचार हैं– प्रथम 'सम्पन्न वर्ग का सिद्धान्त', दूसरा 'प्रौद्योगिक विकास का सिद्धान्त'। उसने सामाजिक क्रियाकलापों के अप्रत्यक्ष प्रकार्य का विश्लेशण किया। साथ ही प्रौद्योगिक सम्बन्धी सिद्धान्त का भी उसने प्रतिपादन किया।

वेब्लेन की प्रमुख कृतियाँ अधोलिखित हैं :

1. द थ्योरी ऑफ लेजर क्लास (The Theory of Leisure Class, 1899)
2. द थ्योरी ऑफ बिजनेस इन्टरप्राइजेस (The Theory of Business Enterprises)
3. एन इन्क्वायरी इनटू दी नेचर ऑफ पीस एंड इट्स परपेचुएशन (An Inquiry into the Nature of Peace and its perpetuation, 1971)
4. एसेज इन ऑवर चेन्जिंग ऑर्डर Essays in our Changing Order 1934)

3.4.3.1 प्रौद्योगिक विकास का सिद्धान्त

इस इकाई से पूर्व आपने पढ़ा कि हर्बर्ट स्पेंसर ने अमेरिकी समाजशास्त्रिय को काफी प्रभावित किया था। स्पेंसर के सामाजिक विकास सम्बन्धी विचारों से वेब्लेन ने प्रेरणा ग्रहण करते हुए कहा कि मानव सभ्यता का विकास निरन्तर नवीन प्रौद्योगिक आविष्कार और उसके कुशल अनुप्रयोग के कारण ही संभव हो पाया है। किसी भी समाज में सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या इस आधार पर

किया जा सकता है कि वह समाज किस प्रकार से कार्य करता है। अर्थात् समाज की जो भौतिक परिस्थितियाँ हैं, भौतिक उपलब्धता और उन उपलब्ध भौतिक साधनों के अनुप्रयोग में परिवर्तन का विश्लेषण कर सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या संभव है। कोजर अपने पुस्तक 'मास्टर्स ऑफ सोशियोलॉजिकल थॉट' में लिखते हैं कि 'औद्योगिक कला' या सामाजिक प्रौद्योगिक ही यह निर्धारित करता है कि मनुष्य प्रकृति के साथ अपना सामंजस्य किस प्रकार से स्थापित करता है। यह औद्योगिक कला ही सामाजिक विकास को भी स्थापित करता है।

वेब्लेन के अनुसार सामाजिक विकास की यह प्रक्रिया प्रौद्योगिक परिवर्तन का उत्पाद होता है। प्रौद्योगिक में जिस गति से विकास होता है उसी गति से समाज का विकास नहीं होता है। प्रौद्योगिक विकास की तुलना में समाज के विकास की गति धीमी होता है। वेब्लेन इसे 'प्रौद्योगिक पृचता' का नाम देते हैं। जो सामाजिक ढाँचा व सामाजिक संस्थाएँ होती हैं। वो प्रौद्योगिक विकास की तुलना में अधिक जड़तावादी होती हैं। वेब्लेन के अनुसार सामाजिक विकास की प्रक्रियाएँ सामाजिक संस्थाओं में होने वाले परिवर्तन का ही प्रतिरूप हैं और इन संस्थाओं में परिवर्तन प्रौद्योगिक में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होता है।

3.4.3.2 विलासी वर्ग का सिद्धान्त

अब तक के अध्ययनों में आप यह जान चुके हैं कि वेब्लेन विकासवादी सिद्धान्त का समर्थक था। समाज के आर्थिक उद्विकास के क्रम में समाज में दो आर्थिक संस्थाओं का विकास हो चुका है। प्रथम व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था, द्वितीय उत्पादन के प्रौद्योगिक प्रणाली से सम्बन्धित संस्था। समाज में जिन वर्गों का इन दोनों ही संस्थाओं पर अधिकार होता है विलासी वर्ग कहे जाते हैं। वेब्लेन ने विलासी वर्ग से सम्बन्धित सिद्धान्त को अपने प्रसिद्ध पुस्तक 'द थ्योरी ऑफ लेजर क्लास', 1899 में दिया। वेब्लेन इस विलासी वर्ग की कुछ प्रमुख विशेषताओं की चर्चा करते हैं। जो प्रमुख रूप से अधोलिखित है

1. विलासी वर्ग का व्यवहार आर्थिक विचारों से प्रेरित होता है।
2. उनमें आपसी दिखावे की प्रवृत्ति होती है।
3. आपसी दिखावे के लिए फिजुलखर्ची इनकी सहज वृत्ति होती है।
4. इस वर्ग के लोग आलसी एवं विलासिताप्रिय होते हैं।
5. इस वर्ग का निजी सम्पत्ति तथा उत्पादन के साधनों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है।

उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि ये ऐसे वर्ग हैं जो किसी प्रकार का उत्पादन नहीं करते, परन्तु गरीब, औद्योगिक मजदूरों के

मेहनत पर 'परजीवी' की तरह जीवित हैं और आराम तथा विलासिता का जीवन जीते हैं।

इस प्रकार वेब्लेन का मानना है कि प्रौद्योगिक परिवर्तन के कारण उत्पन्न होने वाला आर्थिक उत्पादन वर्गों के सांस्कृतिक पहचान को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण है। कौन इस अतिरिक्त उत्पादन के लाभ से विलासिता का जीवन जिएगा और कौन इससे वंचित होकर निरन्तर इन मषीनी प्रौद्योगिक के द्वारा अनुशासित होता रहेगा? चूँकि विलासी वर्ग ही इस अतिरिक्त उत्पादन का स्वयंभू होता है। इस कारण वह इसके उपभोग का अधिकारी एवं सामाजिक संरचना के शीर्ष पर स्थापित होता है।

3.4.3.3 सम्पन्न वर्ग और प्रदर्शनात्मक उपभोग

आपने अपने आस–पड़ोस में देखा होगा कि व्यक्ति सिर्फ अपने आवश्यकताओं के अनुरूप ही उपभोग नहीं करता, बल्कि कई सारे वस्तुओं का उपभोग वो दूसरों पर अपना प्रदर्शन करने के लिए करता है। अपव्यय की यह प्रवृत्ति समाज के अमीर वर्गों में ज्यादा होता है।

वेब्लेन ने इस प्रकार के उपभोग को प्रदर्शनात्मक उपभोग कहा। समाज में लोगों का सम्मान इस बात पर निर्भर करता है कि लोगों की निगाह में उसकी किस प्रकार की सामाजिक प्रतिष्ठा उसे हासिल है। अमेरिका जैसे प्रतियोगी, भौतिकवादी संस्कृति में व्यक्ति की प्रतिष्ठा को सापेक्षिक रूप से आंका जाता है। ऐसे प्रतिस्पर्धात्मक दुश्चक्र में व्यक्ति निरन्तर अपनी स्थिति को बनाये रखने के लिए प्रयास करता है। ज्यादातर मामलों में यह प्रयास अपव्यय और फिजूलखर्ची के द्वारा अपनी सामाजिक स्थिति को निरन्तर बढ़ा–चढ़ा कर दावा प्रस्तुत किया जाता है।

वेब्लेन ने अपनी पुस्तक 'द थ्योरी ऑफ द लेजर क्लास' 1899 में लिखा है कि कोई जब नई सम्पत्ति अर्जित करता है तो उसे अपने पहले के स्तर से संतोष नहीं होता। अब वह अपने नये दावे को स्थापित करने के लिए फिजूलखर्ची के द्वारा बढ़ा–चढ़ा कर प्रतीत करता है। इस प्रदर्शनकारी उपभोग का उद्देश्य अपनी आवश्यकताओं का उपभोग न करके दूसरों को दिखाने के लिए किया जाता है। आपने अपने आस–पास देखा होगा कि समाज के अमीर तबके के लोगों में महंगी गाड़ियाँ, महंगे–महंगे घर, महंगे कपड़े, महंगे जूते, महंगे घड़ियाँ आदि का उपभोग करते हैं एवं अपने आस–पास के लोगों, पड़ोसियों और रिश्तेदारों पर इसका प्रदर्शन भी करते हैं। और ज्यादातार मामलों में इस उपभोग का प्रदर्शन समाज में अपनी ऊँची हैसियत को दिखाने के लिए करते हैं।

वेब्लेन कहते हैं कि कुलीनतंत्र समाज में बहुत छोटे से भाग हैं, परन्तु पूँजीवादी देशों में प्रतिस्पर्धा के रूप में प्रदर्शनात्मक उपभोग की यह प्रवृत्ति पूरे

समाज में फैल गयी है। प्रत्येक वर्ग अपने से उच्च वर्ग की नकल करता है। समाज के इस प्रवृत्ति के कारण गरीब लोग स्वयं को वंचित महसूस करते हैं।

सोचिए और करिए

आप अपने घर में और स्वयं के जीवन में ऐसे वस्तुओं की एक सूची बनाएँ जिसका उपभोग आप अपनी आवश्यकता के लिए नहीं बल्कि प्रदर्शन के लिए करते हैं। इसकी प्रासंगिकता पर अपने सहपाठियों के मध्य परिचर्चा करें।

3.4.3.4 सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा

वेब्लेन के अनुसार सामाजिक परिवर्तन के मूल में भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन है। अर्थात् जब समाज में विद्यमान प्रौद्योगिक में परिवर्तन होता है तो सामाजिक संस्थाओं के साथ समाज में परिवर्तन होता है।

समाज में भौतिक परिस्थितियों के द्वारा निर्मित मानवीय व्यवहार समय के साथ सामाजिक अन्तःक्रिया के द्वारा संस्थाकरण की प्रक्रिया से गुजर कर संस्था के रूप में विकसित होकर स्थिर हो जाता है। समाज में विद्यमान और निर्मित ये संस्थाएं समाज के पिछले प्रौद्योगिक के अनुसार होता है। इससे पूर्व आपने पढ़ा कि समाज का विलासी वर्ग को इस व्यवस्था से लाभ होता है। अतः वह उन पुराने प्रौद्योगिक पर आधारित संस्थानिक व्यवस्था को निरन्तर बनाए रखने का प्रयास करता है। परन्तु मजदूर वर्ग इस प्रौद्योगिक में परिवर्तन कर नवीन सामाजिक संस्थाओं को स्थापित करने का प्रयास करता है जिससे सामाजिक परिवर्तन संभव हो पाता है। समाज का विलासी वर्ग का विश्वास इन मान्यताओं में होता है कि 'जो कुछ है, वह ठीक है' जबकि औद्योगिक मजदूर प्राकृतिक चयन के नियम में विश्वास करते हैं कि 'जो कुछ है, वह गलत है'। (कोजर : 1971, 272)

अतः वेब्लेन का सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्धी अवधारणा समाज के दो वर्गों के संघर्ष पर आधारित है जिसमें एक यथास्थितिवादी है तो दूसरा नए प्रौद्योगिक के द्वारा इस यथास्थिति का विरोधी। वेब्लेन, मार्क्स के विचार कि सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास है के विपरीत प्रौद्योगिक परिवर्तन के द्वारा सामाजिक परिवर्तन का समर्थक है।

3.4.4 समकालीन समाजशास्त्र पर वेब्लेन के विचारों का प्रभाव

वेब्लेन ने अपने व्यंग्यपूर्ण एवं हाजिर जवाब से अमेरिकी समाज का जो चित्रण प्रस्तुत किया। उसने अपने समकालीन समाजशास्त्रियों को अत्यन्त ही प्रभावित किया। मर्टन ने अपने 'सापेक्षिक वंचना' एवं अप्रकट प्रकार्य जैसी अवधारणाओं की प्रेरणा में वेब्लेन की रचनाओं का खासा योगदान रहा। अमेरिकी विलासिता संस्कृति पर उठाए गये ये सवाल आज भारत के संदर्भ में देखें तो

1990 के आर्थिक उदारवाद के बाद इस प्रदर्शनात्मक उपभोग का भारतीय समाज में भी महसूस कर सकते हैं। प्रत्येक वर्ग अपने से उच्च वर्ग के जीवन शैली का अनुसरण कर अपने स्वयं के वर्ग के लोगों के बीच दिखावटी पूर्ण प्रदर्शन के द्वारा दूसरों पर अपने आर्थिक हैसियत को स्थापित करने में लगा हुआ है।

3.5 सारांश

इस इकाई में हमने आपका परिचय आरंभिक तीन समाजशास्त्रियों से कराया– जार्ज सिमेल (1858–1918), विल्फ्रेडो परेटो (1848–1923) और थोर्स्टीन वेब्लेन (1857–1929)। सबसे पहले इस क्रम में आपका परिचय ज़ार्ज सिमेल से कराया। जहाँ सिमेल का जीवन परिचय, सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, मुख्य विचार, तात्विक समाजशास्त्र, सामाजिक प्रारूप, समाजशास्त्र मं संघर्ष की भूमिका एवं सिमेल के आधुनिक संस्कृति के सम्बन्ध में उसके विचारों से हुआ।

दूसरे भाग में आपका परिचय परेटो से हुआ, जहाँ परेटो के जीवन परिचय, सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, मुख्य विचार, तर्कसंगत और अतर्कसंगत क्रिया, अवशिष्ट और व्युत्पाद, अभिजन परिभ्रमण के सिद्धान्त के बारे में आपने जानकारी हासिल की, जबकि अन्तिम भाग में आपने थोर्स्टीन वेब्लेन और उनके कार्यों को जाना, जिसके अन्तर्गत जीवन परिचय, सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, मुख्य विचार, प्रौद्योगिक विकास का सिद्धान्त, सम्पन्न वर्ग और प्रदर्शनात्मक उपभोग, सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा एवं समकालीन समाजशास्त्र पर वेब्लेन के प्रभाव से आपका परिचय हुआ है।

3.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. कोजर, एल.ए. : 1971 मास्टर्स ऑफ सोशियोलॉजिकल थॉट, हरकोर्ट ब्रेस, जैवोनाविक, न्यूयार्क

2. टिमाशेफ, निकोलस एस. 1967, सोशियोलॉजिकल थ्योरी इट्स नेचर एंड ग्रोथ, रैंडम हाउस, न्यूयार्क

3.7 बोध के प्रश्न–1

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वेब्लेन के सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों का संक्षिप्त विवरण दें?
2. प्रौद्योगिक विकास से आपका क्या अभिप्राय है?
3. विलासी वर्ग के किन्ही तीन विशेषताओं को बताएँ?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. वेब्लेन के सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा की सविस्तार व्याख्या करें?
2. वेब्लेन के सम्पन्न वर्ग और प्रदर्शनात्मक उपभोग के सिद्धान्त को विस्तार से चर्चा करते हुए अपने उत्तर की पुष्टि करें?
3. वेब्लेन के विभिन्न अवधारणाओं पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखें?

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'द थ्योरी ऑफ द लेजर क्लास' पुस्तक के लेखक कौन है?

   (क) परेटो (ख) सिमेल

   (ग) वेब्लेन (घ) स्पेंसर

2. वेब्लेन किस विश्वविद्यालय में स्थायी तौर पर असिस्टेन्ट प्रोफेसर बने?

   (क) कार्लटन (ख) शिकागो

   (ग) येल (घ) जॉन हॉकिन्स

3. वेब्लेन ने सामाजिक परिवर्तन हेतु किस कारक को जिम्मेदार माना।

   (क) वर्ग संघर्ष (ख) आर्थिक

   (ग) धर्म (घ) प्रौद्योगिक

4. जब प्रौद्योगिक के सापेक्ष समाज पिछड़ जाता है तो इस प्रक्रिया को क्या कहते हैं?

   (क) प्रौद्योगिक उत्थान (ख) प्रौद्योगिक पश्चता

   (ग) प्रौद्योगिक स्थानान्तरण (घ) प्रौद्योगिक ह्रास

5. विलासी वर्ग का सिद्धान्त किसी समाजशास्त्री ने प्रतिपादित किया।

   (क) वेब्लेन (ख) कॉम्ट

   (ग) मार्क्स (घ) वेबर

3.7 बोध के प्रश्न –2

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सिमेल के सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की संक्षिप्त में व्याख्या करें।
2. सिमेल के मुख्य विचारों पर प्रकाश डालें।

3. तात्विक समाजशास्त्र से आप क्या समझते हैं?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. तात्विक समाजशास्त्र पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखें।
2. सामाजिक अन्तःक्रिया में द्वन्द्वात्मकता किस प्रकार सम्मिलित होती है? सविस्तार समझाएँ।
3. परिवार नामक संस्था में संघर्ष एवं सामंजस्य किस प्रकार एक साथ विद्यमान होता है? उदाहरणपूर्वक समझाएँ।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सिमेल ने किस बौद्धिक दार्शनिक पर अपना शोध कार्य किया?

   (क) कॉन्ट (ख) ह्यूम

   (ग) अरस्तु (घ) वाल्टेयर

2. 'जर्मन सोसाइटी फॉर सोशियोलॉजी' की स्थापना किसने की?

   (क) टॉनिज (ख) जॉर्ज सिमेल

   (ग) मैक्स वेबर (घ) उपरोक्त तीनों

3. 'द फिलॉसफी ऑफ मनी' पुस्तक के लेखक कौन है?

   (क) कार्ल मार्क्स (ख) ऑगस्ट कॉम्ट

   (ग) जॉर्ज सिमेल (घ) मैक्स वेबर

4. अपने किस अवधारणा में सिमेल ने 'अजनबी' का उदाहरण पेश किया।

   (क) सामाजिक स्वरूप (ख) सामाजिक प्रारूप

   (ग) सामाजिक संघर्ष (घ) फैशन

5. सिमेल के 'प्रारूप' की अवधारणा वेबर के किसी अवधारणा के नजदीक है?

   (क) आदर्श प्रारूप (ख) नौकरशाही

   (ग) धर्म और आर्थिकी (घ) सत्ता

3.7 बोध के प्रश्न–3

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अवशिष्ट से आप क्या समझते हैं?
2. अभिजन की अवधारणा को संक्षिप्त में समझाएँ?
3. अतर्कसंगत क्रिया को संक्षिप्त में समझाएँ?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. परेटो के सामाजिक क्रिया सिद्धान्त पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखें?
2. अवशिष्ट एवं व्युत्पाद सम्बन्धी अवधारणा को सविस्तार समझाएँ?
3. परेटो के सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए?

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'द ट्रीटाइज ऑन जनरल सोशियोलॉजी' पुस्तक के लेखक कौन हैं?

   (क) कॉम्ट (ख) स्पेंसर (ग) परेटो (घ) सिमेल

2. परेटो प्रोफेसर वालरस के किस सिद्धान्त से अत्यन्त प्रभावित था।

   (क) आर्थिक संतुलन का सिद्धान्त (ख) उद्विकास का सिद्धान्त

   (ग) अभिजन के परिभ्रमण का सिद्धान्त (घ) तीन अवस्थाओं का सिद्धान्त

3. परेटो ने इतिहास को किसका कब्रिस्तान बताया?

   (क) धर्म (ख) जाति (ग) कुलीनतंत्र (घ) प्रजाति

4. किस सामाजिक क्रिया में साधन एवं साध्य के मध्य संगतता होती है।

   (क) अतार्किक क्रिया (ख) तार्किक क्रिया

   (ग) धार्मिक क्रिया (घ) तात्विक क्रिया

5. परेटो के सामाजिक परिवर्तन का सिद्धान्त किस प्रकार का परिवर्तन हैं?

   (क) रेखीय परिवर्तन (ख) उर्ध्वाधर परिवर्तन

   (ग) क्षैतिज परिवर्तन (घ) चक्रीय परिवर्तन

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1 (1)

1. (क), 2. (घ), 3. (ग), 4. (ख) 5. (क)

बोध प्रश्न–2 (1) वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (क), 2. (ख), 3. (ग), 4. (ख) 5. (क)

बोध प्रश्न–3 (1) वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ग), 2. (क), 3. (ग), 4. (ख) 5. (घ)

3.8 प्रमुख शब्दावली

अवकाश (Leisure) : ऐसा समय जिसमें व्यक्ति को अपने रोजमर्रा के कार्यों से आजादी प्राप्त होता है कि वह उस समय का इस्तेमाल किस प्रकार करना चाहता है। जैसे– मनोरंजन के द्वारा, फिल्में देखकर, पुस्तकें पढ़कर, घूम कर, संगीत बजाकर इत्यादि।

अवशिष्ट (Residues) : अवशिष्ट मानव के मूल प्रवृत्तियों और सामाजिक व्यवस्था के स्थिर पक्ष की अभिव्यक्ति है।

तर्कसंगत क्रिया (Rational Action) : वैसी सामाजिक क्रिया जिसमें साधन एवं साध्य के बीच संगतता होती है।

अतर्कसंगत क्रिया (Non-Rational Action) : वे सभी क्रियाएं जो तर्कसंगत नहीं है तथा जिसमें साधन एवं साध्य के मध्य असंगतता होती है।

लुटेरा वर्ग (Predatory class) : समाजशास्त्रीय अर्थ में लुटेरा वर्ग वह वर्ग है जो उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण करके मजदूरों के मेहनत पर अधिकार कर शोषण करता है।

प्रदर्शनकारी उपभोग (Conspicuous consumption) : जिन वस्तुओं से सेवाओं का उपभोग मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं, बल्कि दूसरों पर अपनी उच्च हैसियत के प्रदर्शन के लिए करता है।

व्युत्पाद (Derivatives) : यह सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तनशील पक्षों की व्याख्या है।

इकाई–4 : भारत में समाजशास्त्र का इतिहास और विकास–I

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 भारत में समाजशास्त्रीय चिन्तन की पृष्ठभूमि

4.3 भारत में समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र का विकास

4.4 समाजशास्त्र की विकास यात्रा का स्वतंत्रता पूर्व काल

4.5 सारांश

4.6 सन्दर्भ

4.7 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

4.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

4.9 पारिभाषिक शब्दावली

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भारत में समाजशास्त्र के उद्भव के इतिहास और इसकी विकास यात्रा से आपका परिचय कराना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपके लिए संभव होगा :

- भारत में समाजशास्त्रीय चिन्तन की पृष्ठभूमि किस प्रकार की रही है। जिसे आप जान सकेंगे।
- भारत में सामाजिक मानवशास्त्र ने किस प्रकार समाजशास्त्र के विकास की आधारपीठिका तैयार की। इस पक्ष की तथ्यपरक जानकारी आप प्राप्त कर सकेंगे।
- स्वतंत्रता पूर्व भारत में समाजशास्त्र की विकास यात्रा किस प्रकार की रही। इसके बारे में आप गहराई से जान सकेंगे।

- भारत में समाजशास्त्र के इतिहास और विकास की प्रथम अवस्था की विवेचना तथ्यपरक ढंग से कर पायेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व आपने यूरोप में समाजशास्त्र के उद्‌भव एवं विकास यात्रा से आपका परिचय हो चुका होगा। परन्तु इस इकाई में हम भारत में समाजशास्त्र के इतिहास एवं इसके विकास यात्रा से परिचित होंगे। इस विकास यात्रा को हम दो चरणों में बाँटकर अध्ययन करेंगे। अतः समाजशास्त्र के इस विकास यात्रा को स्वतंत्रता पूर्व भारत एवं स्वतंत्रतोत्तर भारत के सामाजिक ऐतिहासिक संदर्भों में देखने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार स्वतंत्रता पूर्व भारत में विदेशियों को अपने शासन व्यवस्था के लिए भारतीय समाज की सामाजिक मानवशास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता पड़ी और भारतीय सामाजिक मानवशास्त्र की समृद्ध होती परंपराओं ने भारत में भी समाजशास्त्र के अध्ययन की जमीन तैयार कर दी।

4.2 भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन की पृष्ठभूमि

समाज विज्ञानों के उद्‌भव एवं विकास यात्रा में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कारकों की सहनीय भूमिका दृष्टिगोचर होती है। समाजशास्त्र का उदय यूरोपीय देशों में हुआ। समाजशास्त्र के उदय के कारणों में औद्योगीकरण और पूँजीवाद की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लेकिन भारत के संदर्भ में देखा जाय तो यहाँ परिस्थितियाँ थोड़ी पृथक रही हैं। उपनिवेश काल में यूरोपीय, विशेषकर ग्रेट ब्रिटेन के विभिन्न प्रांतों से भारत आये। यहाँ आने के पीछे देखा जाय तो उनकी रूचि यहाँ के समाज एवं संस्कृति के अध्ययन में विशेष रूप से थी। देखा जाय तो इंग्लैण्ड के औपनिवेशिक शासन की रूचि भी भारत को जानने में थी। इसके प्रभाव के परिणामस्वरूप कुछ समाज वैज्ञानिकों की भी रूचि अपने देश के अध्ययन करने में बढ़ी।

देखा जाय तो भारतीय समाज पर ऐतिहासिक कालों से कालान्तर तक विभिन्न विद्वानों ने गंभीर एवं तथ्यपरक चर्चा की है। इस संदर्भ में कौटिल्य का अर्थशास्त्र एवं मनु की मनुस्मृति ऐसे प्रमुख उदाहरण हैं, जिनके अध्ययन में समाज के विभिन्न पक्षों की विस्तृत एवं तथ्यपरक विवेचना देखने को मिलती है। इस तरह एक विषय के रूप समाजशास्त्र से भारत एवं अन्य एशियाई देश यूरोप

से काफी बाद में परिचित हुए। भारत में समाजशास्त्र विषय के उद्भव एवं विकास यात्रा को प्रमुखतः दो चरणों में विभक्त करके स्पष्ट किया गया है :

1. स्वतंत्रता पूर्व भारत में समाजशास्त्र
2. स्वतंत्रता पश्चात् भारत में समाजशास्त्र

भारत में समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र की विकास यात्रा की शुरूआत को ब्रिटिश शासन के दौरान से ही देखा जा सकता है। ब्रिटिश शासन के दौरान उनके अधिकारियों एवं प्रशासकों की रूचि भारतीय समाज एवं उनकी समाज एवं संस्कृति को समझने में विशेष थी। इस प्रकार इन लोगों के द्वारा ही इस दिशा में अकादमिक अवदान के प्रयास शुरू किये गये। देखा जाय तो बीसवीं सदी के अंत में विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालय, समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र से परिचित हुए। तत्पश्चात् बड़े स्तर पर इन विषयों में अध्ययन–अध्यापन प्रारम्भ हुआ। भारत में समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास यात्रा के कारणों को समझना थोड़ा कठिन है जिसका मूल कारण यह था कि यहाँ न तो उद्योग था ना ही पूँजीवादी व्यवस्था स्थापित थी। यदि केवल था तो वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद था। हाँ यह अवश्य है कि बंबई और कलकत्ता में आरंभिक उद्योगों ने इतनी हलचल पैदा कर दी थी कि मध्यम वर्ग उद्योग की समस्याओं की चर्चा करने को अग्रसर हुआ। इसी क्रम में देखा जाय तो प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्याम जी कृष्ण वर्मा ने सोशलिस्ट एवं सोशियोलॉजिस्ट को एक समझा और समाजवाद के प्रसार के लिये 'दि सोशियोलॉजिस्ट' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

4.3 भारत में समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र की विकास यात्रा

भारत में समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र के बीच काफी गहरा सम्बन्ध रहा है। भारत में आजादी से पहले सभी अधिकांश विश्वविद्यालयों में मानवशास्त्र विभाग खोले गये। जिसका मूल कारण था, मानवशास्त्र, अंग्रेजों की पहली पसंद थी। भारत में समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र की विकास यात्रा के क्रम में देखा जाय तो 1950 के दशक से भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र विभागों की स्थापना एवं अध्ययन–अध्यापन में तेजी आई। परिणामस्वरूप अनेक मानवशास्त्री भी समाजशास्त्र के अध्ययन–अध्यापन की ओर बड़े स्तर पर उन्मुख हुए। मानवशास्त्रियों की समाजशास्त्र की ओर बढ़ी यह उन्मुखता की वजह कहीं न कहीं अमेरिका के बढ़ते प्रभाव के रूप में देखा जा सकता था। भारतीय समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों ने समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र दोनों

ही विषयों को शोध के साथ–साथ अध्ययन–अध्यापन एवं अन्य सम्भावनाओं में समन्वित करने का प्रयास किया। इस प्रकार समाजशास्त्र के रूप में अध्ययन की एक नयी विद्या का विकास किया गया। जो विभिन्न एशियाई एवं अफ्रीकी विद्वानों के लिए बेहतरीन उदाहरण बना। दूसरे महत्वपूर्ण योगदान के रूप में पाठ्य एवं सन्दर्श के समन्वय को देखा जा सकता है। पाठ्य एवं सन्दर्श के बेहतर समन्वय ने भारतीय समाज के समकालीन परिवर्तन एवं निरन्तर द्वन्द्व के सन्दर्भ में एक मूल्यात्मक दृष्टि को प्रस्तुत किया। (मोमिन, 1997)

औपनिवेशिक संदर्भ के जाने बिना भारत में समाजशास्त्र के उद्भव एवं उसकी विकास यात्रा को समझना थोड़ा कठिन है। 19वीं सदी के द्वितीय चरण में, भारत के औपनिवेशिक राज्यों में महत्वपूर्ण रूपान्तरण देखने को मिलते हैं। भारत में विभिन्न वैधानिक एवं प्रशासनिक सुधारों के माध्यम से राज्य की सत्ता को व्यवस्थित किया गया, जिसका मूल उद्देश्य एक क्रमबद्ध व्यवस्था देश में सुचारू रूप से कार्य कर सकें। वैश्विक पटल पर 1857 के विद्रोह को एक महत्वपूर्ण घटना के रूप में देखा जाता है। उसके पश्चात् यह स्पष्ट हुआ कि ब्रिटिश लोग यहाँ की जनजातियों एवं प्रथाओं से सर्वथा अनभिज्ञ थे। साथ ही यह भी माना गया कि यदि उन्हें भारतीय समाज का ज्ञान होता, तो सम्भवतः 1857 की क्रांति को टाला जा सकता था। इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय समाज को व्यावहारिक रूप में समझने के लिये एक नये विज्ञान की आवश्यकता है। इस क्रांति के ही परिणामस्वरूव भारत में जनजातीय समाजों के अध्ययनों की व्यवस्थित शुरूआत हुई। इस तरह कहा जा सकता है कि मानव जातियों के अध्ययन के साथ–साथ नृजातिशास्त्र एवं समाजशास्त्र का भी प्रादुर्भाव हुआ।

भारत में हर्बर्ट रिजले को मानवशास्त्रीय अध्ययनों का पथ–प्रदर्शक एवं प्रमुख मानवशास्त्रीय माना जाता है। वैसे तो रिजले भारतीय प्रशासनिक सेवा के माध्यम से सन् 1857 में कलकत्ता में नियुक्त हुए। उन्होंने अपनी पुस्तक 'कास्ट एण्ड ट्राइब ऑफ बंगाल' (1891) के माध्यम से ब्राह्मणिक समाजशास्त्र के परिप्रेक्ष्य से जाति की नृजातीयता एवं अन्य संदर्भों पर आधारित अध्ययन किया। निकोलस डर्क्स (इन पोस्ट कोलोनियल पैसेज, सौरभ दूबे, ऑक्सफोर्ड, 2004) अवलोकन करते हैं कि :

"Risley's final ethnographic contribution to colonial knowledge thus ritualed the divines of caste as well as its fundamental compatibility

with politics only in the two registers of ancient Indian monarchy or modern Britain's 'benevolent despotism'.

इस तरह देखा जाय तो मानवशास्त्रीय अध्ययन का प्रारम्भ रिजले के प्रभाव से हुआ। उन्नीसवीं सदी में जाति, धर्म, अनुष्ठानों, प्रथाओं जैसे विभिन्न मानवशास्त्रीय पक्षों के अध्ययन को सर्वप्रथम प्रोत्साहन मिला। अस्तु, इसी संदर्भों में भारत में समाजशास्त्र की विकास यात्रा को विश्लेषित किया गया है।

भारत में समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र की विकास यात्रा को औपनिवेशिक रूचि और पाश्चात्य विद्वानों की जिज्ञासा तो दूसरी तरफ भारतीय विद्वानों की प्रतिक्रिया के परिणाम के रूप में देखा जा सकता है। ब्रिटिश प्रशासन अपने वैयक्तिक हितों की पूर्ति के लिये भारतीय समाज की प्रथाओं, परम्पराओं, रीति–रिवाजों एवं संस्थाओं को जानना चाहता था। वहीं इसी तरफ ईसाई मिशनरियाँ अपने उद्देश्य के लिये स्थानीय भाषा, जनरीतियों एवं संस्कृति के अध्ययन में विशेष रूचि रखती थीं। इन सभी रूचियों के परिणामस्वरूप ही आदिवासी जाति, ग्राम एवं धार्मिक समुदायों तथा नृजातीय एवं भाषाई सर्वेक्षणों की एक श्रृंखलाएं प्रकाशित हुई। भारतीय अध्ययनों से सम्बन्धित अन्य रूचि बौद्धिक वर्गों में भी दिखाई देती हैं। जिसमें एक तरफ कुछ समाज वैज्ञानिक संस्कृत भाषा, वेद एवं आर्य सभ्यता पर चर्चा करने को उत्सुक थे तो वहीं कुछ विद्वान प्राचीन राजनीतिक अर्थशास्त्र, कानून एवं धर्म पर तथ्यपरक रूप में चर्चा करने हेतु उत्साही थे। इस प्रकार देखा जाय तो विलियम जोन्स से लेकर मैक्समूलर एवं अन्य तक की वैचारिकी में भारतीय विद्याशास्त्र का विकास दिखाई देता है। समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र की विकास यात्रा की इसी कड़ी में देखा जाय तो हेनरीमैन जहाँ एक तरफ भारतीय ग्रामीण समुदाय का चित्रण अथवा संदर्भ प्रस्तुत करते हैं, तो वहीं मैक्स वेबर अपनी पूँजीवाद की वैचारिकी की स्थापना हेतु हिन्दू धर्म की व्याख्या करते हैं।

श्रीनिवास एवं पणिनी (1973:181) समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र की विकास यात्रा के संदर्भ में कहते हैं कि इनका विकास दो स्तरों से होकर गुजरा है। प्रथम स्तर 1773–1900 ई. के बीच, जबकि उसकी स्थापना हो रही थी एवं दूसरी 1901–1950 ई. के दौरान। इस तरह देखा जाय तो आजादी के पश्चात् के वर्षो में सरकारी सहयोग, भारतीय शोधार्थियों एवं विदेशी सहकार्यकर्ताओं के योगदान से शोध क्षेत्र में महत्वपूर्ण एवं तथ्यपरक रूप में विकास हुआ। भारत में समाजशास्त्र की विकास यात्रा को और अधिक स्पष्ट रूप से जानने के लिए इसे तीन प्रमुख चरणों में विभक्त करके स्पष्ट किया जा सकता है। इस संदर्भ में रेज

ने अपने शोध–पत्र 'सोशियोलॉजी इन पोस्ट इंडिपेन्डेन्ट इण्डिया' में दृष्टिगत किया था। वहीं लक्ष्मन्ना (1974:1) ने भी भारत में समाजशास्त्र की विकास यात्रा को तीन महत्वपूर्ण चरणों में स्पष्ट किया है। जिसके प्रथम चरण 1917–1946, द्वितीय चरण 1947–1966 एवं 1967 के पश्चात् सुमेलित किया गया है।

4.4 समाजशास्त्र की विकास यात्रा का स्वतंत्रता पूर्व काल

देखा जाय तो समाजशास्त्र की औपचारिक शुरूआत सन् 1917 में बी.एन. सील के प्रयासों से कलकत्ता विश्वविद्यालय में शुरू हुई। बाद में राधाकमल मुखर्जी एवं बी.एन. सरकार ने समाजशास्त्र को स्थापित करने में एवं उसकी विकास यात्रा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि यहाँ विडंबना की ही बात रही कि कलकत्ता में समाजशास्त्र के प्रारम्भ होने के बावजूद भी मानवशास्त्र का विकास बड़े स्तर पर हुआ। परिणामस्वरूप वहाँ मानवशास्त्र विभाग ही न केवल स्थापित हुआ बल्कि बाद में भारतीय मानवशास्त्रीय सर्वेक्षण (ए.एस.आई.) की भी स्थापना हुई। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पूर्वी भारत में समाजशास्त्र का विकास बड़े स्तर पर नहीं हो पाया, जबकि समाजशास्त्र के विकास के संदर्भ में बाम्बे की कहानी अलग रही है। बाम्बे विश्वविद्यालय ने भारत सरकार की सहायता से सन् 1914 में समाजशास्त्र के अध्ययन–अध्यापन को प्रारम्भ किया। समाजशास्त्र के अध्ययन–अध्यापन का श्रेय पेट्रिक गीड्स को दिया जाता है। पैट्रिक गीड्स की अध्यक्षता में समाजशास्त्र का पी.जी. स्तर पर अध्ययन– अध्यापन 1919 में प्रारम्भ हुआ। अर्थात् भारत में समाजशास्त्र के जनक का श्रेय पेट्रिक गीड्स को जाता है। गीड्स के अवकाश प्राप्त होने के बाद बाम्बे विश्वविद्यालय में प्रो. जी.एस. धुर्ये ने समाजशास्त्र का पद दायित्व संभाला। इन्हें प्रथम भारतीय समाजशास्त्री भी कहा जाता है। भारत में समाजशास्त्र की विकास यात्रा का यह प्रथम पड़ाव माना जाता है। समाजशास्त्र की विकास यात्रा का दूसरा प्रमुख अकादमिक अवदान लखनऊ विश्वविद्यालय का रहा है। लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रमुख समाजशास्त्री राधाकमल मुखर्जी की अध्यक्षता में अर्थशास्त्र विभाग के साथ समाजशास्त्र को 1921 में प्रारम्भ किया गया। राधाकमल मुखर्जी के पश्चात् लखनऊ विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग से डी.पी. मुखर्जी एवं डी.एन. मजूमदार जैसे समाज वैज्ञानिकों का नाम जुड़ा। इन लोगों ने समाजशास्त्र की विकास यात्रा में महनीय भूमिका अदा की।

दक्षिण भारत में बी.एन. सील एवं ए.एफ. बाड़िया के सार्थक एवं अकादमिक प्रयासों से सन् 1928 में मैसूर विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का अध्ययन–

अध्यापन प्रारम्भ हुआ। इसी क्रम में जफर हसन ने उस्मानिया विश्वविद्यालय में स्नातक स्तर पर समाजशास्त्र के अध्ययन को प्रारम्भ किया। वहीं 1930 में इरावती कर्वे के नेतृत्व में पूना विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र विषय में अध्ययन–अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया गया। इस तरह देखा जाय तो सन् 1916 से लेकर 1946 के बीच तक समाजशास्त्र के क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। देखा जाय तो इस अवधि में केवल बाम्बे विश्वविद्यालय ही समाजशास्त्रीय क्रियाकलाप का एकमात्र प्रमुख केन्द्र बना रहा। बाम्बे विश्वविद्यालय भारत विद्याशास्त्र एवं नृजातिशास्त्र के बीच समन्वय का कार्य किया। इसी बीच बाम्बे ने अनेक अध्येताओं को उत्पादित किया, जिन्होंने आगे चलकर समाजशास्त्र के शोध में व्यापक योगदान दिया। के.एम. कपाड़िया, इरावती कर्वे,, एस.वी. करान्दिकर, एम.एन. श्रीनिवास, ए.आर. देसाई, आई.पी. देसाई, एम.एस. गोर एवं वाई.बी. दामेल जैसे कुछ प्रमुख नाम है जो यहाँ से जुड़े रहे। इस विश्वविद्यालय से निकले हुए अध्येताओं ने धीरे–धीरे भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र को स्थापित करने एवं विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उपर्युक्त तथ्यों के विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता पूर्व काल में समाजशास्त्र की विकास यात्रा के सम्बन्ध में कुछ निश्चित प्रतिमान चिन्हित किए जा सकते हैं। समाजशास्त्र अपने प्रारम्भिक काल में एक पृथक विषय के रूप में नहीं जाना जाता था। वस्तुतः बाम्बे एवं लखनऊ विश्वविद्यालयों में यह अर्थशास्त्र के साथ पढ़ाया जाता था। इसी प्रकार कलकत्ता में यह मानवशास्त्र एवं मैसूर में सामाजिक दर्शनशास्त्र के रूप में पढ़ाया जाता था। तत्कालीन समय में अध्यापक अपनी रूचि के अनुसार पाठ्यक्रम बनाने को स्वतंत्र थे। समाजशास्त्र की विकास यात्रा के संदर्भ में कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र का अन्य विषयों जैसे अर्थशास्त्र, सामाजिक मनोविज्ञान, सामाजिक दर्शनशास्त्र एवं मानवशास्त्र से कोई पृथक पहचान स्थापित नहीं हो सकी। वहीं स्वतंत्रतापूर्व काल में समाजशास्त्र के क्षेत्र में विज्ञान आधारित आनुभाविक परम्परा की वैचारिकी का पूरी तरह अभाव रहा है।

4.5 सारांश

इस इकाई में अब तक आपने पढ़ा कि किस प्रकार भारत में ब्रिटिश आगमन के पश्चात् सर्वप्रथम सामाजिक मानवशास्त्र के अध्ययन की नींव पड़ी। साथ ही आपने यह भी जाना कि भारत में सामाजिक मानवशास्त्र और समाजशास्त्र की विकास यात्रा कोई बहुत पृथक नहीं रही, बल्कि दोनों एक दूसरे के सम्पूरक

के तौर पर विकसित हुए। इस क्रम में हमने आपका परिचय हरबर्ट रिजले से कराया। मानवशास्त्रीय अध्ययनों में आपने पढ़ा कि किस प्रकार भारतीय विश्वविद्यालयों में यह विषय स्थापित हो सका तथा राधाकमल मुखर्जी, पैट्रिक गिड्स, जी.एस. घुर्ये जैसे भारतीय अध्येताओं के द्वारा भारत में समाजशास्त्र को स्थापित करने में उनकी महती भूमिकाओं से आपका परिचय हमने कराया।

इस इकाई के अन्तर्गत बाम्बे विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के अध्ययन–अध्यापन के शुरूआत एवं विकास यात्रा में पैट्रिक गिडिंग्स एवं जी.एस. घुर्ये के प्रयासों से आप परिचित हुए। साथ ही साथ आपने यह भी जाना कि दक्षिण भारत में बी.एन. शील एवं ए.एफ. वाडिया के प्रयासों से किस तरह समाजशास्त्र का अध्ययन–अध्यापन प्रारम्भ हुआ। इसके अतिरिक्त पूना विश्वविद्यालय, उस्मानिया विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र की स्थापना एवं विकास यात्रा से आप परिचित हुए।

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रावत, हरिकृष्ण : समाजशास्त्रीय चिन्तक एवं सिद्धान्तकार, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
3. मुकर्जी, आर.एन. : उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली
4. सिंह, जे.पी. : समाजशास्त्रीय अवधारणाएं एवं सिद्धान्त, रावत पब्लिकेशन जयपुर
5. Bogardus, Emony S. : The Development of Social Thought, 4th Edition, Allied Pacific Private Ltd., Bombay, 1960
6. Momin, A.R. : "Sociology in Post-Independent in India: A Self Assessment", paper presented in All India Sociological Confererence, held on 22-24 December at Usmania University, Hyderabad, 1997.
7. Srinivas, M.N. & M.N. Panini : "The Development of Sociology and Social Anthropology in India", Sociological Bulletin, 22(2): 179-215, 1973.
8. Laksmanna, C. : "Teaching and Research in Sociology in India", Sociological Bulletin, 23(1), 1-13, 1974.

9. Rao, M.S.A. (ed.) : "Urban Sociology in India", Orient Longmann, New Delhi, 1974.

4.7 बोध के प्रश्न

(अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में समाजशास्त्रीय चिन्तन की पृष्ठभूमि की चर्चा करें।
2. किस प्रकार भारत में मानवशास्त्र ने समाजशास्त्र की आधारपीठिका तैयार की? संक्षिप्त व्याख्या करें।

(ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में समाजशास्त्र के विकास की सविस्तार व्याख्या करें।
2. भारत में स्वतंत्रतापूर्व समाजशास्त्र के विकास पर निबन्ध लिखें।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'दि सोशियोलॉजिस्ट' नामक पत्रिका का प्रकाशन किसने किया था?

   (क) श्याम जी कृष्ण वर्मा (ख) श्रीनिवास

   (ग) धुर्ये (घ) राधाकमल मुखर्जी

2. 'कास्ट एण्ड ट्राइब ऑफ बंगाल' पुस्तक के लेखक कौन हैं?

   (क) श्रीनिवास (ख) हरबर्ट रिजले

   (ग) निकोलस डर्क्स (घ) बी.एन. सरकार

3. 'सोशियोलॉजी इन पोस्ट इंडिपेन्डेन्ट इण्डिया प्रपत्र किसने लिखा?

   (क) निकोलनस डर्क्स (ख) हरबर्ट रिजले

   (ग) धुर्ये (घ) रेज़

4. बाम्बे विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र शुरू करने का श्रेय किसे है?

   (क) मुखर्जी (ख) बी.एन. सरकार

   (ग) राधाकमल मुखर्जी (घ) जी.एस. धुर्ये

5. कलकत्ता विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र की औपचारिक शुरूआत कब हुई?

   (क) 1914 (ख) 1920

   (ग) 1917 (घ) 1921

4.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (क), 2. (ख), 3. (घ), 4. (क), 5. (ग)

4.9 पारिभाषिक शब्दावली

Anthropology	मानवशास्त्र
Social Anthropology	सामाजिक मानवशास्त्र
Colonial Rule	औपनिवेशिक शासन
Empirical Fact	आनुभाविक तथ्य
Ethnic	नृजातिय

इकाई–5: भारत में समाजशास्त्र का इतिहास और विकास–II

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 स्वतंत्रोत्तर भारत में समाजशास्त्र का इतिहास और विकास

5.3 सारांश

5.4 सन्दर्भ ग्रंथ

5.5 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

5.6 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

5.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको स्वतंत्रोत्तर भारत में समाजशास्त्र के विकास से आपका परिचय कराना है।
- इससे पूर्व के अध्याय में स्वतंत्रता पूर्व के भारत में समाजशास्त्र के इतिहास एवं विकास से आपको परिचय हुआ।
- इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप भारत में समाजशास्त्र के सम्पूर्ण इतिहास और विकास यात्रा से आप परिचित हो पाएंगे।

5.1 प्रस्तावना

भारत में समाजशास्त्र के अध्ययन एवं इसके विकास यात्रा में स्वतंत्रोत्तर भारत के सामाजिक, आर्थिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों की भी महती भूमिका रही है। नये भारत का सामाजिक परिवेश और सामाजिक समस्या भी आने स्वरूप में सर्वथा नवीन थे। इन नवीन सामाजिक परिस्थितियों ने भारत में इनके अध्ययन के लिए ना सिर्फ नवीन अकादमिक संस्थाओं की स्थापना की, वरन् इसके नवीन विषय क्षेत्रों ने बौद्धिकों के साथ छात्रों, शोधकर्ताओं और सरकारों को भी इसने अपनी ओर आकर्षित किया।

5.2 स्वतंत्रोत्तर भारत में समाजशास्त्र का इतिहास और विकास

भारत में समाजशास्त्र के विकास का द्वितीय चरण अत्यधिक प्रभावी रहा है। इस चरण में समाजशास्त्र के विकास की प्रक्रिया क्षेत्रीय भाषाओं और कार्यशैलियों के माध्यम से अधिक लोकप्रिय व सामान्य जन मानस के माध्यम प्रचारित हुई। इसकी लोकप्रियता को देखते हुए सरकार ने विभिन्न संस्थानों के माध्यम से सामाजिक विज्ञान में शोध व इसकी भाषाई लोकप्रियता को प्रचारित व प्रसारित किया। जिस क्रम में पेशेवर संस्थानों तथा संगठनों तथा संगठनों का उदय एवं विकास हुआ। जिसके माध्यम से समाजशास्त्र के क्रमिक विकास को तीव्रता प्राप्त हुई। बाम्बे में इण्डियन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी की स्थापना तथा सोशियोलॉजिकल सोसाईटी का प्रकाशन महत्वपूर्ण रहा है। जिसने समाजशास्त्र की अनुसंधानात्मक विधा को अग्रेतर समाजशास्त्रियों के मध्य ज्ञान के विस्तार हेतु प्रभावी किया साथ ही समाजशास्त्रीय साहित्य के प्रकाशन को पुनर्जागृत किया। लखनऊ स्कूल ऑफ सोशियोलॉजी ने अखिल भारतीय वार्षिक समाजशास्त्रीय कान्फ्रेन्स का आरम्भ किया। जहाँ देश के विभिन्न समाजशास्त्री अपने ज्ञान का विस्तार नव समाज वैज्ञानिकों के सम्मुख परीक्षण हेतु प्रस्तावित किये और विषय विशेष का समागम हुआ। इस सन्दर्भ में विश्वविद्यालय स्तर पर शोध प्रगतियों का भी विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। इन प्रगतियों को तीन आधारों पर विभक्त किया गया जो निम्नवत् है:

- विश्वविद्यालय में बड़े पैमाने पर शोध कार्य आरम्भ किये गये साथ ही इनसे सम्बन्धित शोध उपाधियों को भी प्रदान किया गया।

- शोध परियोजना को आकर्षक बनाने के लिए नीति–निर्माताओं एवं प्रशासकों को सम्मिश्रित किया गया जिससे शोध की सामाजिक आवश्यकताओं को प्रबुद्धजनों द्वारा प्रचारित किया जा सके तथा इसके उचित परिणाम के चिन्तन का लाभ अन्य लोगों को प्राप्त हो सके।

- सामाजिक विज्ञान में किये जाने वाले शोधों के परिणाम के व्यावहारिक पक्ष से प्रभावित होकर शोध संस्थान स्थापित किये जा सकें। जिससे व्यापक स्तर पर समाजोपयोगी रोजगार के व्यापक आवसर सृजित किये जा सकें।

समाजशास्त्र में व्यापक स्तर विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालय में अध्ययन की प्रक्रिया के अन्तर्गत पाठ्यक्रम निर्धारित किये गये। यह क्रम 50 के दशक तक तीव्रता से होता रहा। इस दशक में समाजशास्त्र के प्रसार हेतु तीन महत्वपूर्ण परिवर्तन को स्वीकार किया गया जो निम्नवत् है :

- समाजशास्त्र के शैक्षणिक विकास हेतु सामाजिक समस्याओं और परिवर्तन के महत्व को निर्धारित करके शैक्षिक योग्यतानुरूप विकसित करना।

- समाजशास्त्र के विकास हेतु विभिन्न विज्ञानों जैसे मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, सामाजिक दर्शन तथा सामाजिक कार्य जैसे विषयों से पृथकता प्रदान की गयी।

- समाजशास्त्र के विभिन्न आयामों का विकास अंगों के रूप में स्वीकार किया गया जैसे– ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र, नातेदारी का समाजशास्त्र, धर्म का समाजशास्त्र, शिक्षा का समाजशास्त्र, चिकित्सा का समाजशास्त्र, सामाजिक जननांकिकी आदि।

उपर्युक्त विषयों के सन्दर्भ में अध्ययन विषय की संवेदनशीलता और परिवर्तनवादी दृष्टिकोण को स्वीकारते हुए इसे व्यवस्था परिवर्तन का अभिन्न पक्ष माना गया। जिसके लाभांश हेतु आनुभाविक शोध क्षेत्रों में वृद्धि और विभिन्न स्तरों पर समाजशास्त्र का शैक्षणिक विकास हुआ।

समाजशास्त्र के क्रमिक विकास का यह बौद्धिक परिवर्तन था जो परम्परागत पाश्चात्य समाजशास्त्र और मानवशास्त्र की श्रृंखला से उपजा हुआ था किन्तु इसके सोच और क्रियान्वयन की विधि पृथक थी क्योंकि इसका अध्ययन सैद्धान्तिक आधार के स्थान पर व्यवहारिक अधिक माना गया। जिसे विषयी प्रस्तावना तथा प्रकार्यवाद के रूप में चिन्हित किया गया। निर्धारित किये गये पाठ्यक्रम में नृजातिशास्त्र की परम्परा, उद्विकासवाद एवं भारत विद्याशास्त्र को सम्मिलित किया गया। अमेरिका के समाजशास्त्रियों की परम्परागत शैली का अनुसरण करते हुए संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक सिद्धान्त एवं शोध की विभिन्न प्रविधियों का परीक्षण समकालीन सन्दर्भ में किया गया। अमेरिका के साथ ही साथ विश्व के अन्य समाजशास्त्रीयों द्वारा अपनायी गयी समाजशास्त्रीय विद्या को बौद्धिकता के आधार पर देशज स्वरूप में विकसित किया गया जिससे भारतीय समाजशास्त्रीयों के अध्ययन के विकास एवं सुदृढ़ीकरण को व्यापक रूप दिया गया और भारतीय समाज तथा संस्कृति के अध्ययन में विविध समाजशास्त्रीय उपागमों का विकास हुआ।

5.3 सारांश

इस इकाई में आपने स्वतंत्रोत्तर भारत में समाजशास्त्र के विकास के बारे में पढ़ा। आपने पढ़ा कि बाम्बे में इण्डियन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी की स्थापना के बाद समाजशास्त्र भारत में काफी तेजी से छात्रों, शोधार्थियों और सरकार के नीति–निर्माताओं के बीच लोकप्रिय हुआ। जहाँ एक ओर नये शोध संस्थान स्थापित हुए तो दूसरी ओर उसने रोजगार के व्यापक अवसर भी उपलब्ध कराए।

आपने इस इकाई के अन्तर्गत यह भी पढ़ा कि किस प्रकार यूरोपिय समाजशास्त्र से भिन्न सर्वदा भारतीय सामाजिक परिस्थितियों और समस्याओं के अनुरूप ही ग्रामीण समाजशास्त्र, नगरीय समाजशास्त्र, परिवार एवं नातेदारी का समाजशास्त्र, धर्म का समाजशास्त्र आदि जैसे विशेषीकृत विषय समाजशास्त्र के अंग के रूप में स्थापित हुए। इससे पूर्व की इकाई–4 एवं प्रस्तुत इकाई–5 के माध्यम से आपका भारत में समाजशास्त्र के इतिहास एवं इसके विकास से आपका सम्पूर्ण परिचय कराया।

5.4 संदर्भ ग्रन्थ

1. Momin, A.R. (1997): "Sociology in Post-Independent India: A Self Assessment". Paper presented in All India Sociological Conference held on 22-24 December at Osmania University, Hyderabad
2. Srinivas, M.N. and M.N. Panini (1973) : 'The Development of Sociology and Social Anthropology in India', Socilogical Bulletin, 22(2): 179-215
3. Lakshmanna, C. (1974) : "Teaching and Research in Sociology in India", Sociological Bulleting, 23 (1) : 1-13
4. Rao, M.S.A. (ed.) (1974) : "Urban Sociology in India", New Delhi, Orient Longman

5.5 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरी प्रश्न

1. स्वतंत्रोत्तर भारत में समाजशास्त्र के विकास की एक संक्षिप्त रूपरेखा खींचे।
2. भारत में समाजशास्त्र ने प्रमुखतया किन विषय क्षेत्रों को अपनी ओर आकर्षित किया?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. स्वतंत्रोत्तर भारत में समाजशास्त्र के विकास यात्रा का सविस्तार वर्णन करें।
2. समाजशास्त्र के अध्ययन ने भारतीय समाज को समझने में किस प्रकार एक सर्वदा नया दृष्टिकोण प्रदान किया? सोदाहरण व्याख्या करें।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'इण्डियन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी' की स्थापना कहाँ हुई थी?

   (क) दिल्ली (ख) कोलकाता

   (ग) चेन्नई (घ) बाम्बे

2. 'इण्डियन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी' की स्थापना कब हुई?

   (क) 1952 (ख) 1955

   (ग) 1965 (घ) 1972

3. 'इण्डियन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी' के पहले अध्यक्ष कौन थे?

   (क) एम.एन. श्रीनिवास (ख) जी.एस. घूर्ये

   (ग) राधाकमल मुखर्जी (घ) आन्द्रे बेते

4. 'इण्डियन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी' के द्वारा आयोजित किये जाने वाले वार्षिक अधिवेशन का क्या नाम है?

   (क) सोशियोलॉजिकल कान्फ्रेन्स

   (ख) सोशियोलॉजिकल सोसाइटी कांफ्रेंस

   (ग) ऑल इंडिया सोशियोलॉजिकल कान्फ्रेन्स

   (घ) ऑल इण्डिया सोसाइटल कान्फ्रेन्स

5. 'इण्डियन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी द्वारा प्रकाशित बुलेटिन का क्या नाम है?

(क) इण्डियन सोशियोलॉजिकल बुलेटिन

(ख) सोशियोलॉजिकल बुलेटिन

(ग) बुलेटिन ऑफ इण्डियन सोसाइटी

(घ) बुलेटिन आन इण्डियन सोशियोलॉजी

5.6 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (घ), 2. (क), 3. (ख), 4. (ग) 5. (ख)

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

Past Indepent	स्वतंत्रोत्तर
Social Philosophy	सामाजिक दर्शन

Kinship	नातेदारी
Stratification	स्तरीकरण
Social Demography	सामाजिक जनांकिकी
Functionalism	प्रकार्यवाद
Evolution	उद्विकास
Structural Functionalism	संरचनात्मक प्रकार्यवाद
Culture	संस्कृति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड

2

कार्ल मार्क्स

इकाई-6 5
ऐतिहासिक भौतिकवाद

इकाई-7 14
मार्क्स की उत्पादन प्रणाली एवं उत्पादन की शक्तियाँ

इकाई-8 24
वर्ग एवं वर्ग संघर्ष

इकाई-9 38
द्वन्दात्मकता एवं सामाजिक परिवर्तन

परामर्श-समिति

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	**कुलपति - अध्यक्ष** वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
प्रो0(डा0) जी0एस0शुक्ला	कुलसचिव

विशेषज्ञ समिति

डा0 के0के0 मिश्र	प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

डॉ0एम0एन0सिंह	पूर्व निदेशक, समाजविज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ0 इति तिवारी	एसो0 प्रोफेसर, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद
श्री रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद

पाठ्यक्रम लेखन समिति

1- डॉ0 इति तिवारी	**एसो0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट. मु. वि.वि., इलाहाबाद।**
2. डॉ रमेश चन्द्र यादव	**शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट.मु.वि.वि. इलाहाबाद।**
3. अशीष अंशु,	**असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय डिग्री कालेज, गनाई गंगोली,पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड ।**
4. डॉ0 अरूणा कुमारी	**असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी।**
5. स्वाती एस0 मिश्रा	**असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आर्य महिला कन्या पी.जी.कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**
6. डॉ0 अशोक कुमार श्रीवास्तव	**असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र,श्रीराम सुरेश सिंह महाविद्यालय, मीरजापुर।**
7. डॉ0 वन्दना राव	**असि. प्रो. समाजशास्त्र, राम सुभग सिंह महाविद्यालय,कुर्मी पट्टी पथरदेवा, देवरिया।**
8. डॉ0 जय प्रकाश सिंह	असि. प्रो. समाजशास्त्र, ठाकुर जगन्नाथ सिंह महाविद्यालय, जौनपुर।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड परिचय : कार्ल मार्क्स

यह इस पाठ्यक्रम का दूसरा खण्ड हैं । इस खण्ड से पूर्व प्रथम खण्ड में समाजशास्त्र के उदभव एवं विकास यात्रा की विस्तृत तथा तथ्यपरक विवेचना की गई है। खण्ड दो के अन्तर्गत कार्ल मार्क्स का जीवन परिचय देते हुए उनके ऐतिहासिक भौतिकवाद, उत्पादन की शक्तियाँ, सम्बन्ध एवं प्रणाली, वर्ग एवं वर्ग संघर्ष, द्वन्द्वात्मकता एवं सामाजिक परिवर्तन की चर्चा की गयी है। इन शीर्षकों के अन्तर्गत जिन पक्षों क चर्चा की गयी है, उसका संक्षिप्त परिचय इकाईवार निम्नलिखित है।

इकाई-6 : इस इकाई के अन्तर्गत कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक भौतिकवाद की तत्यपरक विवेचना की गयी है। कार्ल मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त मुख्यतः कार्ल मार्क्स का जीवन परिचय, ऐतिहासिक भौतिक की अवधारणा, ऐतिहासिक भौतिकवाद के चरणों के अन्तर्गत - आदिम साम्यवादी युग, दासत्व युग, सामन्ती युग, पूँजीवादी युग एवं आधुनिक साम्यवादी युग आदि पक्षों को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही इस इकाई के माध्यम से यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद, समाज और इतिहास का सिद्धान्त है।

इकाई-7: इस इकाई के अन्तर्गत कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित उत्पादन प्रणाली एवं उत्पादन शक्तियों की तथ्यपरक विवेचना की गयी है। जिसके अन्तर्गत मुख्यतः उत्पादन की शक्ति, उत्पादन के स्रोतों उत्पादन के साधनों से स्वामित्व का संबंध, उत्पादन के साधनों से अधीनता का संबंध और बुर्जुवा वर्ग, सर्वहारा वर्ग, पेट्टी बुर्जुवा आदि के साथ साथ कार्ल मार्क्स के द्वारा प्रतिपादित उत्पादन प्रणाली एवं उत्पादन शक्तियों से संबंधित विचारों को दिखलाने का प्रयास किया गया है।

इकाई-8: इस इकाई के अन्तर्गत कार्ल मार्क्स के वर्ग एवं वर्ग संबंधी सिद्धान्त के अन्तर्गत मुख्यतः यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि मानव समाज का अस्तित्व संघर्षो से ही रहा है। साथ ही साथ दुनिया में कोई भी समाज ऐसा नहीं रहा है जिसमें वर्ग न विद्यमान रहे हों। इस इकाई में वर्ग का अर्थ एवं परिभाषा, वर्ग निर्माण के आधार, वर्ग की विशेषताएँ, मानव समाज की विकास यात्रा का वर्गीकरण एवं वर्गों का उदय, जाति एवं वर्ग के साथ साथ संघर्ष का अर्थ एवं परिभाषा संघर्ष के कारण, संघर्ष की विशेषताएँ, वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त, अलगाव की अवधारणा, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त आदि पक्षों की तथ्यपरक एवं विस्तृत विवेचना की गई है।

इकाई-9: इस इकाई के अन्तर्गत द्वन्द्वात्मकता एवं सामाजिक परिवर्तन का वर्णन किया गया है। समाजशास्त्रीय विवेचन के रूप में कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित द्वन्द्वामकता का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में भौतिक संसाधनों के उपयोग तथा उपभोग के परिणामस्वरूप उत्पन्न संघर्ष द्वन्द्वामकता के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन को उजागर करता है। इसका क्रमबद्ध विवेचन अत्यन्त प्रभावशाली तथा रोचक रूप में निर्माणित किया है।इस इकाई के अन्तर्गत जिन प्रमुख बिन्दुओं का विवेचना किया है, वे - द्वन्द्वामकता एवं सामाजिक परिवर्तन,हीगल का द्वन्द्ववाद, कार्ल मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, मार्क्सवादी सामाजिक परिवर्तन की धारणा, सामाजिक परिवर्तन

इकाई–6 : ऐतिहासिक भौतिकवाद

इकाई की रूपरेखा

6.0 कार्ल मार्क्स : जीवन परिचय

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा

6.4 ऐतिहासिक भौतिकवाद : विकास यात्रा

6.4.1 आदिमसाम्यवादी युग

6.4.2 दासत्व युग

6.4.3 सामन्ती युग

6.4.4 पूँजीवादी युग

6.4.5 आधुनिक साम्यवादी युग

6.5 सारांश

6.6 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

6.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.9 पारिभाषिक शब्दावली

6.0 कार्ल मार्क्स : जीवन परिचय

कार्ल मार्क्स को आधुनिक समाजवादी विचारधारा का जनक माना जाता है। मार्क्स की आधुनिक साम्यवादी विचारधारा ने सम्पूर्ण विश्व के इतिहास की दिशा ही बदल दी। कार्ल मार्क्स का जन्म प्रसिया के राइन प्रान्त में ट्रीयर नगर में 5 मई सन् 1818 को हुआ। कार्ल मार्क्स यहूदी परिवार से थे। कार्ल मार्क्स के पिता एक अच्छे वकील थे। कालान्तर में कार्ल मार्क्स का परिवार इसाई धर्म को ग्रहण कर लिया था। कार्ल मार्क्स के जीवन के शुरूआती दौर की शिक्षा–दीक्षा ट्रीयर के ही एक स्कूल "ट्रीयर जिमनेजियम" में हुई। जीवन की शुरूआती शिक्षा उत्तीर्ण करने के बाद कार्ल मार्क्स ने सर्वप्रथम बोन एवं बाद में बर्लिन विश्वविद्यालय

में कानून की शिक्षा के लिए दाखिला लिया। चूंकि आपने कानून विषय को चुना, लेकिन दर्शनशास्त्र और इतिहास में आपकी मजबूत पकड़ रही।

कार्ल मार्क्स पर ही हीगल की कृतियों का गहरा प्रभाव पड़ा था क्योंकि विद्यार्थी जीवन से ही मार्क्स ने हीगल की कृतियों को भली–भाँति एवं गहराई से पढ़ लिया था। कालान्तर में हीगलवादियों की विचारधारा को ग्रहण करने के लिए मार्क्स ने वामपंथियों हीगलवादियों से काफी सम्पर्क बढ़ाया था। कार्ल मार्क्स ने अपना एक निबन्धात्मक व्याख्यान 'जेना विश्वविद्यालय' में पढ़ा था। कालान्तर में मार्क्स ने उसी व्याख्या के शीर्षक पर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की।

कार्ल मार्क्स की बहुत इच्छा थी कि वह बोन विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करे, लेकिन काल एवं परिस्थितियों के सापेक्ष न होने के कारण उन्हें अपने जीवन की शुरूआत 'राइन की गजट' नामक पत्रिका में कार्य करने से हुई। कालान्तर में वे इस पत्रिका के सम्पादक भी बन गये। कार्ल मार्क्स उस पत्रिका में छपे अपने लेखों अथवा अपनी वैचारिकी के माध्यम से एशिया एवं सम्पूर्ण जर्मनी में जनता पर हो रहे राजनीतिक एवं धार्मिक उत्पीड़न तथा उनके हितों की रक्षा के लिए सर्वप्रथम आवाज उठाई। उग्र विचार होने के कारण कार्ल मार्क्स की पत्रिका के अन्य सदस्यों से वैचारिकी मतभेद के कारण सम्पादक पद से 17 मार्च 1843 को त्याग–पत्र देना पड़ा। इसी बीच आपका विवाह बचपन के मित्र जेनी फॉन वेस्टकॉलेन नामक लड़की से हो गया। सम्पादक पद छोड़ने के बाद आप पेरिस चले गये। वहीं पर 1844 को मार्क्स एवं एंजिल का ऐतिहासिक मिलन हुआ। वहीं से मार्क्स और एंजिल्स की रचनात्मक विचारधारा लेखनी के रूप में परिणित होकर इतिहास के पन्नों में दर्ज हुई। और एक ऐसी विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ जो शोषितों एवं पीड़ितों के लिए सहायक साबित हुई। इसी बीच मार्क्स एवं एंजिल की संयुक्त रचना 'होली फैमिली' प्रकाशित हुई। होली फैमिली की वैचारिकी ने शोषितों एवं पीड़ितों के लिए एक सम्बल के रूप में साबित हुई। इस पुस्तक की विचारधारा ने सर्वहारा के लिए क्रान्ति का शंखनाद किया।

मार्क्स एवं एंजेल्स ने इतिहास के भौतिकवादी सिद्धान्तों की व्याख्या को प्रस्तुत करने के लिए 'जर्मन आईडोलॉजी' नामक पुस्तक की रचना की। इस पुस्तक में लेखक द्वय ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद की वृहद विवेचना की। इसी क्रम में अपनी वैचारिकी को आगे बढ़ाने के लिए मार्क्स एवं एंजेल्स ने अपनी महत्वपूर्ण कृति 'कम्यूनिस्ट मेनीफेस्टो' की रचना की। इस पुस्तक में कार्ल मार्क्स ने सर्वहारा वर्ग एवं उनसे जुड़े लोगों की वैचारिकी की तथ्यपरक एवं सरल रूपों में विवेचना की।

कार्ल मार्क्स एवं एंजेल्स की विचारधारा रचनाओं के रूप में परिणित होती गयी। 1897 में मार्क्स की विश्वविख्यात रचना 'दास कैपिटल' के प्रथम खण्ड का प्रकाशन हुआ। यह ग्रन्थ अन्य समाज वैज्ञानिकों के लिए मील के पत्थर के समान था। इस पुस्तक का दूसरा एवं तीसरा खण्ड मार्क्स के जीवनकाल में प्रकाशित नहीं हो पाया। मार्क्स के मृत्युपरान्त एंजेल्स द्वारा इस पुस्तक के दूसरे

एवं तीसरे खण्ड का प्रकाशन करवा गया। इस पुस्तक के संदर्भ में लेनिन कहता है कि समाजवाद की तथ्यपरक व्याख्या इस रचना में की गयी है।

मार्क्स जीवन पर्यन्त लिखते रहे। अत्यधिक परिश्रम एवं निर्धनता ने मार्क्स को पूर्णतः कमजोर कर दिया। 2 दिसम्बर 1881 में मार्क्स की पत्नी जेनी फॉन वेस्टकॉलेन की मृत्यु हो गयी। पत्नी की मृत्यु से उन्हें भारी आघात लगा, जिसके कारण मार्क्स मानसिक रूप से टूट गये। उनका स्वास्थ्य प्रभावित रहने लगा। धीरे–धीरे करके शरीर कमजोर होता गया। इसी बीच बड़ी पुत्री की भी मृत्यु हो गयी। जिसके कारण उनका स्वास्थ्य निरन्तर गिरता चला गया। 14 मार्च 1883 में कार्ल मार्क्स ने इस दुनिया से विदा ले लिया। आज मार्क्स तो नहीं है, लेकिन उनकी वैचारिकी सर्वहारा वर्गों के लिए संबल का कार्य कर रही है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- मार्क्स के जीवन के बारे में तथ्यपरक जान सकेंगे।
- मार्क्स की रचनाओं के बारे में जान सकेंगे।
- ऐतिहासिक भौतिकवाद के बारे में जान सकेंगे।
- ऐतिहासिक भौतिकवाद की व्याख्या कर सकेंगे।
- ऐतिहासिक भौतिकवाद के कालक्रम को जान सकेंगे।

6.2 प्रस्तावना

मार्क्स ऐसे पहले समाज वैज्ञानिक हैं, जिन्होंने 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' की अवधारणा को समाज विज्ञान में स्थापित किया। यह सिद्धान्त मुख्यतः संस्कृति, इतिहास और सामाजिक परिवर्तन की समस्त आदर्शवादी व्याख्याओं को अस्वीकार करता है। मुख्यतः यह सिद्धान्त मानवशास्त्री दर्शन पर आधारित है। यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि सभी आधारभूत ऐतिहासिक प्रक्रियायें कहीं न कहीं संघर्षरत आर्थिक प्रणाली से जुड़ी हुई हैं, जो समस्त सामाजिक घटनाओं जैसे– धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीति को प्रभावित करती हैं। मार्क्स अपने सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में जिन ऐतिहासिक युगों की बात करता है, उनकी व्याख्या उत्पादन प्रणाली के आधार पर की है। इस नाते मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद को समाज और इतिहास का सिद्धान्त कहा जाता है। अस्तु प्रस्तुत इकाई में इन्हीं पक्षों से जुड़ी हुई विभिन्न पक्षों की तथ्यपरक विवेचना की है।

6.3 ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा

मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद की प्रमुख बातों की विवचेना अपनी

प्रसिद्ध पुस्तक 'जर्मन आईडोलॉजी' में की है। ऐतिहासिक भौतिकवाद के सन्दर्भ में कहते हैं इसका आधार काल्पनिक एवं दार्शनिक नहीं है, बल्कि उन नियमों की विवेचना है जो मानव इतिहास की गतिविधियों को निर्धारित करता है। मार्क्स की ऐतिहासिक भौतिकवादी वैचारिकी ने विश्व के इतिहास में एक नया दृष्टिकोण दिया।

मार्क्स और एंगेल्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद के सन्दर्भ में कहते हैं कि "मानव के अस्तित्व का प्रथम आधार इस बात पर आधारित है कि वह जीवित रहे और इतिहास की रचना कर सके। लेकिन जीवित रहने के लिए किसी भी व्यक्ति उसे भोजन, पानी, कपड़ा तथा अन्य मूलभूत जरूरतों की महती आवश्यकता पड़ती है। अतः सर्वप्रथम मानव आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन साधनों का उत्पादन करने की जरूरत पड़ती है। देखा जाय तो यही ऐतिहासिक कार्य है और सभी इतिहास की यह बुनियादी शर्त है। जो कि हजारों वर्ष पहले की भांति आज भी मानव जीवन को बनाये रखने के लिए आवश्यक एवं अपरिहार्य है।" इस प्रकार देखा जाय तो जब किसी भी समाज का विश्लेषण उत्पादन के तरीकों, सम्बन्धों एवं उत्पादन की शक्तियों के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है तो इसे ऐतिहासिक भौतिकवाद कहते हैं।

6.4 ऐतिहासिक भौतिकवाद : विकास यात्रा

मानव सभ्यता की शुरूआती अवस्था जैसे–जैसे विशेषीकृत होती गयी, वैसे–वैसे उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन होता गया। साथ ही साथ आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन होता गया। उत्पादन प्रणाली की परम्परागत शुरूआत आज उत्तर आधुनिकता के मुहान पर खड़ी हो चुकी है। लेकिन इस मुहान तक पहुँचने में मानव कई स्तरों से गुजरा है। वहीं इस पड़ाव में पहुँचने में परिवर्तन भी बड़े स्तर पर हुआ है। इस विकास यात्रा को ऐतिहासिक भौतिकवाद का नाम देता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद की विकास यात्रा को मार्क्स ने पाँच चरणों में विभक्त किया है। जिसकी विवेचना क्रमवार इस प्रकार है :

6.4.1 आदिमसाम्यवादी युग

मानव सभ्यता की इतिहास का प्रारम्भिक युग आदिमसाम्यवादी युग रहा है। इस युग में मानव–मानव के बीच ना ही कोई भेद और ना ही कोई संस्तरण था। इस युग में उत्पादन के साधन एवं उत्पादन की कमान किसी व्यक्ति विशेष के हाथ में नहीं होती थी, बल्कि इस पर समस्त जन–समुदाय का स्वामित्व होता था। मानव समाज के बीच उत्पादन एवं वितरण की व्यवस्था साम्यवादी आधार पर होती थी। इस युग में देखा जाय तो शुरूआती दौर में मानव पत्थर के औजार बनाकर पशु–पक्षियों एवं जंगली जानवरों का शिकार करता था। पत्थरों के औजार के बाद मानव ने तीर–धनुष बनाकर शिकार करना प्रारम्भ किया। जंगलों से फल–फूल इकट्ठा कर जीविकोपार्जन किया करते थे। सब लोग एक साथ

मिलकर रहते थे। संयुक्त श्रम करने के कारण समस्त संसाधनों पर संयुक्त एकाधिकार था। जिसके कारण मानव सभ्यता की इस अवस्था में वर्ग, जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय जैसी वैचारिकी का अभाव था। इस अवस्था के उत्तरार्ध में मानव मस्तिष्क जैसे–जैसे विकसित होता गया। वैसे–वैसे मानव दासत्व अवस्था तरफ अग्रसर होता गया। इस प्रकार देखा जाय तो भौतिकतावादी वैचारिकी का प्रभाव इस युग के अंत में दृष्टिगोचर होने लगे।

6.4.2 दासत्व युग

दासत्व युग को कार्ल मार्क्स सामाजिक परिवर्तन का दूसरा युग मानता है। इसी युग से मानव सभ्यता के दूसरे युग का प्रारम्भ होता है। इस युग के प्रारम्भ में शारीरिक और मानसिक रूप जो व्यक्ति समृद्ध एवं मजबूत थे। वे उत्पादन के समस्त साधनों पर अपना स्वामित्व कायम कर लिया एवं जनता के एक बड़े भाग को अपना दास बनाना प्रारम्भ किया। देखा जाय तो यहीं से शोषण एवं अत्याचार की वैचारिकी प्रारम्भ होती है। मालिकों का दासों पर पूर्ण अधिकार होता था। मालिक दासों को पशुओं की भाँति खरीद एवं बेच सकते थे। और यही से व्यक्ति सामाजिक प्रस्थिति के रूप में अपने को देखना प्रारम्भ किया। जिसके पास जितने दास होते थे। वह उतना ही शक्तिशाली एवं सामाजिक रूप से उच्च माना जाता था। अर्थात् दासों की संख्या मालिकों की सामाजिक–आर्थिक प्रस्थिति का पैरामीटर था। इसी काल से खेती और पशु–पालन का आविष्कार हुआ। कृषि कार्य में धातुओं के बने औजारों का बड़े स्तर पर प्रयोग प्रारम्भ हुआ। और यहीं से निजी अथवा वैयक्तिक सम्पत्ति की विचारधार विकसित हुई। जहाँ सभी संसाधनों पर समस्त जनसमुदाय था, वहीं यह अधिकार कुछ ही लोगों के हाथ में सिमटकर रह गया। इस प्रकार जनसंख्या का बड़ा भाग दास के रूप में अपनी पहचान को स्वीकार किया। इस प्रकार यह समाज दो वर्गों में विभक्त हो गया– दास और मालिक। मालिकों द्वारा दासों पर बड़े स्तर पर अत्याचार एवं शोषण के कारण इन दोनों वर्गों के बीच संघर्ष की विचारधारा विकसित हुई। और इसी युग के उत्तरार्ध से अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु बड़े स्तर पर संघर्ष उत्पन्न हुआ।

6.4.3 सामन्तवादी युग

कार्ल मार्क्स सामाजिक परिवर्तन अथवा ऐतिहासिक भौतिकवाद के रूप में सामन्तवादी युग को मानव सभ्यता के विकास के क्रम में तीसरे युग की संज्ञा देता है। इस युग के पूर्वार्द्ध से ही दासों का शोषण और बड़े स्तर पर प्रारम्भ हुआ। इस युग में उत्पादन के सभी संसाधनों पर सामन्तों का एकाधिकार होता गया। कृषि योग्य भूमि पर इन सामन्तों का एकाधिकार था। चूंकि तत्कालीन समय में उत्पादन के साधन बड़े स्तर पर नहीं थे। कृषि एवं पशुपालन आधारित जीवन ही था। हाँ, थोड़े बहुत स्तर पर यंत्र संचालित उत्पादन भी होते थे। यही से दासों को गरीब अथवा किसान का नाम मिला। ये किसान पूर्णतः सामन्तों के अधीन होते थे। तात्कालिक समय में चूंकि दासों की कोई पहचान नहीं थी। भूमि पर कोई अधिकार नहीं था। इस नाते ये किसान भूमिहीन थे। इसी किसानों से सामन्त

कृषि कार्य करवाते थे और श्रमकार्य की निर्धारित भूमि को सामन्त प्रदान नहीं करते थे। साथ ही साथ युद्ध के समय सेना में सैनिकों के रूप में कार्य करना पड़ता था। इसके बदले में सामन्तों द्वारा उन्हें कुछ भूमि मिलती थी। जिस पर वे किसान कृषि कर अपना जीवनयापन करते थे। इस तरह देखा जाय तो इस युग में वैयक्तिक सम्पत्ति की विचारधारा बड़े स्तर पर प्रबल होती गयी। वैयक्तिक सम्पत्ति की धारणा ने किसानों का बड़े स्तर पर शोषण प्रारम्भ हुआ। यहीं से दोनों वर्गों के बीच संघर्ष भी बड़े स्तर पर बढ़ा। इस प्रकार देखा जाय तो भौतिकवादी वैचारिकी जैसे–जैसे विकसित होती गयी। वैसे–वैसे शोषण, अत्याचार की वैचारिकी भी बड़े स्तर पर विकसित होती गयी। यहीं से स्वार्थ और लालच की बुनियाद भी बड़े स्तर पर पड़ी वैयक्तिक सम्पत्ति की अवधारणा ने इस बुनियाद को और मजबूत किया।

6.4.4 पूँजीवादी युग

उपर्युक्त तीनों युग बीत चुके हैं। वर्तमान समय में पूंजीवादी युग चल रहा है। इस युग का प्रादुर्भाव बड़े–बड़े मशीनों एवं यन्त्रों के आविष्कार तथा बड़े उद्योग धन्धों की स्थापना के फलस्वरूप पूँजीपतियों का एकाधिकार होता है। सामन्ती अथवा दासत्व युग में जहाँ उत्पादन के समस्य संसाधनों पर सामन्तों एवं मालिकों का एकाधिकार था, वहीं इस युग में समस्त उद्योग धन्धों पर पूँजीपतियों का अधिकार है। इस युग में दासत्व की तरह लोग खरीदे अथवा बेचे तो नहीं जाते हैं। परन्तु उत्पादन के साधनों एवं उत्पादनों पर इनका अधिकार नहीं होता है जिसके कारण वे अपने परिवार के सदस्यों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने हस्तश्रम शक्ति के हाथों में बेचना पड़ता है। उस श्रम के बदले में उन्हें बहुत ही कम वेतन पूँजीपतियों द्वारा दिया जाता है। इस तरह देखा जाय तो पूँजीपतियों के शोषण से मजदूरों, श्रमिकों की स्थिति दयनीय होती जा रही है। पूँजीपति अतिरिक्त पूँजी को भी अपने जेब में रख लेता है। उसका कुछ भी भाग श्रमिकों को नहीं देता है। जिसके कारण श्रमिक वर्ग में असंतोष बढ़ता जा रहा है और इस असंतोष ने बड़े स्तर पर संघर्ष को जन्म दिया है। यहाँ इन दोनों वर्गों को कार्ल मार्क्स सर्वहारा एवं बुर्जवा वर्ग का नाम देता है। श्रमिकों के उत्थान एवं उन्हें निर्धारित श्रम का मूल्य दिलाने हेतु कार्ल मार्क्स कहता है कि "हे सर्वहारा वर्ग के लोगों तुम्हारे पास खोने के लिए कुछ भी नहीं है। और पाने के लिए सबकुछ पड़ा है। इसलिए तुम बुर्जुवा वर्ग से संघर्ष करो और पूँजीपतियों को उखाड़ फेंको। इसके लिए तुम क्रान्ति का आह्वान करो। तभी साम्यवादी विचारधारा की शुरूआत होगी। सबको समानता का अधिकार मिलेगा। साथ ही साथ वर्गविहीन समाज का मार्ग प्रशस्त होगा।

6.4.5 आधुनिक साम्यवादी युग

इस युग को कार्ल मार्क्स सामाजिक परिवर्तन अथवा विकास की विकास यात्रा में पाँचवें चरण के रूप में देखता है। कार्ल मार्क्स कल्पना करता है कि एक युग ऐसा आयेगा जहाँ ना ही कोई वर्ग होगा ना ही जाति होगी और ना ही धर्म

सम्प्रदाय एवं शोषण जैसी वैचारिकी होगी। सभी लोग समान होंगे। श्रमिक वर्गों के संघर्ष से यदि हाथ में शक्ति आ जाती है तो वे पूँजीपतियों को उखाड़ फेंकेगे। और पूँजीवादी अवस्था का पूर्णतः नाश हो जाएगा। उत्पादन के समस्त संसाधनों एवं उत्पादनों पर सभी लोगों का समान अधिकार होगा। लेकिन आज हम उत्तर आधुनिकता के युग पर दृष्टि डाले तो हमें ऐसा लगता है कि आधुनिक साम्यवादी विचारधारा की स्थापना संबंधी कार्ल मार्क्स की कल्पना पूर्णतः कोरी साबित हो रही है। आज पूँजीवादी व्यवस्था ने अमीरी और गरीबी की खांई को कम करने के बजाय बढ़ती जा रही है। जहाँ अमीर तबका और अमीर होता जा रहा है। वहीं गरीबों की गरीबी रूपी चादर ओर बढ़ती जा रही है। इस प्रकार देखा जाय तो कार्ल मार्क्स के पाँचवें युग की यह कल्पना पूर्णतः असत्य साबित होती है।

कार्ल मार्क्स के आधुनिक भौतिकवाद की आलोचनात्मक व्याख्या

कार्ल मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद के संदर्भ में देखा जाय तो वह सामाजिक परिवर्तन हेतु मात्र भौतिक संसाधनों को ही उत्तरदायी मानता है और परिवर्तन हेतु उत्तरदायी कारकों को दरकिनार करता है। जबकि वैज्ञानिक धरातल पर देखा जाय तो इतिहास के विकास में अन्य और ऐसे कारक रहे जो विकास के लिए उत्तरदायी रहे है।

6.5 सारांश

कार्ल मार्क्स ने इतिहास के विकास अथवा परिवर्तन के सन्दर्भ में जिन पाँच चरणों की बात करता है। इन्हीं चरणों से गुजरते हुए आज मानव सभ्यता पूँजीवादी युग अथवा अवस्था में खड़ी है। जहाँ एक तरफ दासत्व एवं सामंती युग ने शोषण अत्याचार की वैचारिकी को जन्म दिया, वहीं आधुनिक पूँजीवादी युग ने शोषण अत्याचार की वैचारिकी की उद्भव में परिणामस्वरूप जहाँ कहता है कि संघर्ष से ही समाज में समानता आएगी एवं उत्पादनों के साधनों द्वारा समानता को गति मिलेगी। सिर्फ उत्पादनों साधनों द्वारा ही परिवर्तन नहीं लाया जा सकता है। उसके लिए अन्य कारक उत्तरदायी है, वहीं कार्ल मार्क्स पाँचवें युग अर्थात् आधुनिक साम्यवादी युग की कल्पना करता है और कहता है कि आधुनिक साम्यवादी युग की जब स्थापना होगी वहाँ सभी सब समान होंगे। वर्ग एवं वर्ग संघर्ष जाति, सम्प्रदाय एवं धर्म एवं पूंजीवादी जैसी वैचारिकी कर अभाव होगा। लेकिन देखा जाय तो कार्ल मार्क्स की यह कल्पना कोरी ही साबित हुई। आज उत्तर आधुनिकता के समक्ष खड़े समाज में पूँजीवादी व्यवस्था ने अमीरी और गरीबी की खाई को इतना बढ़ा दिया गया है कि शायद उसे पाटना मुश्किल ही नहीं, बल्कि असंभव होगा।

6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मार्क्स, कार्ल : दास कैपिटल
2. मार्क्स, कार्ल : कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो
3. मर्टन, राबर्ट के. : सोशल थियरी एण्ड सोशल स्ट्रक्चर
4. मुकर्जी, आर.एन. : सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली
2. रावत, हरिकृष्ण : समाजशास्त्रीय चिन्तक एवं सिद्धान्तकार, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
3. मुकर्जी, आर.एन. : उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली
4. Bogardus, Emony S. : The Development of Social Thought, 4th Edition, Allied Pacific Private Ltd., Bombay, 1960
5. पाण्डेय, रवि प्रकाश : समाजशास्त्रीय सिद्धान्त : अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009

6.7 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आदिम साम्यवादी युग से आप क्या समझते हैं?
2. दासत्व युग से आप क्या समझते हैं?
3. सामंती युग से आप क्या समझते हैं?
4. पूँजीवाद पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. आधुनिक साम्यवादी युग की विवेचना कीजिए।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ऐतिहासिक भौतिकवाद पर एक निबन्ध लिखिए।
2. कार्ल मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
3. ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा की विवेचना कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन अथवा इतिहास के विकास को कार्ल मार्क्स ने कितने भागों में बाँटा है?

(क) 2 (ख) 3

(ग) 5 (घ) 8

2. सर्वहारा एवं बुर्जुवा वर्ग का नाम सर्वप्रथम किसने दिया?

(क) कार्ल मार्क्स (ख) मैक्स वेबर

(ग) दुर्खीम (घ) पारसंस

3. बुर्जुवा वर्ग का आधिपत्य किस पर होता है?

(क) पूँजी पर (ख) श्रम पर

(ग) पुस्तक पर (घ) व्यक्ति पर

4. सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य किस पर होता है?

(क) हस्त श्रम शक्ति पर (ख) पूँजी पर

(ग) उत्पादनों के साधन पर (घ) उत्पादन पर

5. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त किसने दिया।

(क) कार्ल मार्क्स (ख) दुर्खीम

(ग) मर्टन (घ) परेटो

6. मानव सभ्यता के प्रथम युग का क्या नाम है?

(क) आदिम युग (ख) दासत्व युग

(ग) पूँजीवादी युग (घ)

6.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ग), 2. (क) 3. (क), 4. (क), 5. (क), 6. (क)

6.9 पारिभाषिक शब्दावली

Class	वर्ग
Class Struggle	वर्ग संघर्ष
Premitive Society	आदिम समाज
Slave Society	दासत्व समाज
Feudal Society	सामन्ती समाज
Capitalistic Society	पूँजीवादी समाज

इकाई–7 : मार्क्स की उत्पादन प्रणाली एवं उत्पादन की शक्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 मार्क्स के सिद्धान्त की विशेषताएँ

7.3 मार्क्स की सैद्धान्तिक अवधारणा

7.4 मार्क्स के अनुसार उत्पादन के शक्ति व स्रोत

7.5 मार्क्स के अनुसार इतिहास की आर्थिक व्याख्या

7.6 सारांश

7.7 संदर्भ ग्रन्थ

7.8 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय

(ख) दीर्घ उत्तरीय

(ग) वस्तुनिष्ठ

7.9 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

7.10 पारिभाषिक शब्दावली

7.0 उद्देश्य

उपरोक्त इकाई के अन्तर्गत विद्यार्थी निम्न बिन्दुओं को समझ सकेगें।

1. मार्क्स के सामाजिक परिवर्तन की वैचारिकी को समझ सकेगें।
2. मार्क्स द्वारा वर्जित उत्पादन की पद्धति का विश्लेषण समझ सकेगें।
3. संघर्ष सिद्धान्त की अवधारणा को समझ सकेगें।
4. मार्क्स के वर्ग सम्बन्धी अवधारणा को समझ सकेगें।
5. मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य की अवधारणा को समझ सकेगें।

7.1 प्रस्तावना

समाजषास्त्रीय सिद्धान्तकारों में जितने भी अग्रणी विचारक हैं, उनमें मार्क्स

का केन्द्रीय स्थान है, क्योंकि मार्क्स ने अपने सिद्धान्त विश्लेषण में एक ऐसे परिप्रेक्ष्य को चुना जो अन्य विश्लेषकों से इतर था मार्क्स ने संघर्ष को सामाजिक परिवर्तन हेतु उत्तरदायी माना तथा संघर्ष की संरचना को दो वर्गों के मध्य रूपान्तरित किया जिसमें एक वर्ग जिसका उत्पादन के समस्त साधनों पर पूर्ण नियन्त्रण हो, उसे (पूँजीपति वर्ग) तथा जो वर्ग साधन विहीन था, उसे (सर्वहारा वर्ग) के रूप में परिभाषित किया तथा इन दोनों के मध्य संघर्ष से निर्मित समाज को "साम्यवादी समाज" की संज्ञा दी किन्तु यहाँ महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मार्क्स के सिद्धान्त की समस्त व्याख्या उत्पादन के साधन एवं सम्बन्ध से प्रेरित अतिरेक उत्पादन एवं लाभ के अभिप्रेरण से सम्बद्ध थी, जिसका विष्लेशण हम अगले अध्याय में करेंगे।

7:2 मार्क्स के सिद्धान्त की विशेषताएं

मार्क्स के सिद्धान्त की निम्नलिखित विषेशताएं है :

1. मार्क्स का सिद्धान्त सामाजिक परिवर्तन में संघर्श पर बल देता है।
2. मार्क्स के अनुसार संघर्श की प्रघटना दो वर्गो के मध्य घटित होती हैं।
3. संघर्श की प्रक्रिया द्वारा ही सत्ता का हस्तानान्तरण सम्भव हो सकेगा।
4. संघर्श रूपी परिवर्तन की यह प्रक्रिया आर्थिक स्रोतों पर निर्मित होगी।
5. मार्क्स का सैद्धान्तिक आधार षोशक व षोशित की अवधारणा पर केन्द्रित है।

7.3 मार्क्स की सैद्धान्तिक अवधारणा

मार्क्स के विचार मुख्यतः हीगल तथा फ्रेंचवर्क के बुद्धिवाद तथा प्रत्ययवाद पर आधारित थे। कुछ विचारकों का मानना है कि इनके विचारों पर कॉन्ट के उद्विकासीय विचारों का भी कुछ हद तक अभाव था। मार्क्स ने हीगल के आदर्शवाद (द्वंद्वात्मक) से सम्बद्ध विचारों के आधार पर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा प्रस्तुत की जिसमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अन्तर्गत उन्होंने पदार्थ तथा भौतिक जगत के उद्विकास का विश्लेषण किया, जबकि ऐतिहासिक भौतिकवाद में उन्होंने समाज के विकास का ऐतिहासिक दृष्टि से विश्लेषण किया।

द्वान्द्वात्मक भौतिकवाद के अन्तर्गत इन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया, किन्तु द्वन्द्व विचार के स्तर पर नहीं होते बल्कि पदार्थ का विकास भी उसके आन्तरिक द्वन्द्व पर आधारित होता हैं इसे स्पष्ट करने के लिए उन्होंने कहा कि यदि देखा जाय तो विचार तथा पदार्थ एक दूसरे से स्पष्टतः भिन्न अवस्थाएं हैं जिनमें प्राथमिकता की दृष्टि से पदार्थ प्राथमिक है, क्योंकि वह अपने अस्तित्व के लिए विचार पर आधारित नहीं होता जबकि अपने विकास हेतु पदार्थ पर निर्भर

करता है। इस प्रकार इन्होंने हीगल के विपरीत पदार्थ को वास्तविक अथवा वस्तुसत्र के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने अपने इस विचार को स्पष्ट करते हुए कहा कि अस्तित्व की दृष्टि से पदार्थ प्राथमिक है, क्योंकि विचार में होने अथवा न होने पर उसके अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु इस जगत में जिस भी पदार्थ का अस्तित्व है, अनुभूति के माध्यम से मस्तिष्क में उसके अनुरूप प्रत्यय अवश्य विकसित होता है। जैसे– किसी आदिवासी व्यक्ति के मन में यह विचार हो सकता है कि कहीं शिकारी से भरा एक हरा–भरा जीव है। किन्तु इस विचार से उस जीव की सत्ता प्रमाणित नहीं होती, जबकि ऐसी अनेक वस्तुऐं है। जैसे–हवाई जहाज, कम्प्यूटर आदि जिसका प्रत्यक्ष उसके मस्तिष्क में नहीं है, फिर भी उनका अस्तित्व इस जगत में रहता है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के माध्यम से पदार्थ के विकास को स्पष्ट करते हुए उन्होंने 4 सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया जिसमें प्रथम है–(1) परस्पर विरोधों में एकता का सिद्धान्त–इस सिद्धान्त में उन्होंने प्रत्यक पदार्थ की संरचना को सावयवी स्वीकार किया तथा कहा कि ये पदार्थ मात्र सावयवी ही नहीं होते बल्कि परस्पर विरोधी तत्वों से मिलकर भी बने होते है, ये विरोधी तत्व परस्पर संघर्ष के माध्यम से श्रेष्ठ होता है। उसे बनाये रखते है, तथा उच्चतर अवस्थाओं में ले जाते हैं, जो अन्ततः पदार्थ के विकास में सहायक होता है।

अपने दूसरे सिद्धान्त में इनका मानना है कि छोटा से छोटा मात्रात्मक परिवर्तन भी बड़े से बड़े गुणात्मक परिवर्तन को प्रेरित करता है। इस सन्दर्भ में उनका कहना है कि ये गुणात्मक परिवर्तन धीरे–धीरे नहीं होते, बल्कि अचानक होते है, किन्तु अचानक होने का तात्पर्य यह नहीं है कि ये संयोग के आधार पर घटित होते है, बल्कि ये छोटी–छोटी मात्रात्मक परिवर्तनों के संकलन के परिणामस्वरूप होते है। जैसे–किसी गर्भस्थ शिशु में प्रतिदिन कुछ मात्रात्मक परिवर्तन उत्पन्न होता है तथा इन मात्रात्मक परिवर्तनों के संचयन से शिशु के रूप में उसका जन्म अचानक होता है।

अपने तीसरे सिद्धान्त में मार्क्स ने विकास की प्रक्रिया का उल्लेख किया है, जिसे इन्होंने गतिशीलता का नियम कहा है। इनका कहना है कि विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती है तथा इसमें जड़ता अथवा स्थिरता की कोई सम्भावना नहीं होती इसलिए इन्होंने विकास के प्रक्रिया की तुलना बहते हुए जल से की है जिसमें ठहराव नहीं होता।

अपने चौथे सिद्धान्त में विकास की प्रकृति का उल्लेख किया है। जिसमें इनका मानना है कि विकास निरन्तर एक रेखीय दिशा में निम्नता से उच्चतर की दिशा में होता हैं अथवा पदार्थ के सरल अवस्था से जटिल अवस्था की तरफ बढ़ता है। किन्तु विकास की यह प्रक्रिया अपनी प्रकृति में सीधी रेखा की भॉति न होकर सर्पिल रूप में होती है, क्योंकि यह तत्वों के संघर्श पर आधारित होती है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए मार्क्स ने कहा कि पदार्थ की भॉति ही मानव समाज का विकास भी द्वंद अथवा संघर्षो पर आधारित होती है। इसीलिए उनका कहना है कि "मानव इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास हैं।" अपने इस सिद्धान्त में मार्क्स ने समाज का ऐतिहासिक दृष्टि से विश्लेषण किया। इस विश्लेषण में उन्होंने समाज की आरम्भिक अवस्था को समता मूलक स्वीकार किया किन्तु उनका मानना है कि सम्पत्ति की अवधारणा के विकास के साथ ही उससे सम्बन्धों के आधार पर दो परस्पर विरोधी वर्गो का विकास हुआ। इन विरोधी वर्गो के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर ही समाज एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तित होता है। समाज के इस विकास क्रम की उच्चतम अवस्था के रूप में उन्होंने पूर्ण साम्यवादी समाज की कल्पना की जिसमें उत्पादन के साधनों पर समाज के सभी सदस्यों के समान सम्बन्ध होंगे जिससे यह समाज किसी भी द्वन्द्व अथवा संघर्ष से मुक्त होगा, किन्तु इन्होनें ऐसे समता मूलक समाज की स्थापना हेतु सर्वहारा क्रॉति को अवश्य स्वीकार किया है।

7.4 मार्क्स के अनुसार उत्पादन के शक्ति एवं स्रोत

मार्क्स ने समाजिक संरचना के विश्लेषण के क्रम में आर्थिक निर्धारणवाद की अवधारणा प्रस्तुत की। इसमें उनका मानना था कि उत्पादन के साधनों से सम्बन्धों के आधार पर किसी समाज की आर्थिक संरचना को समझा जा सकता है, उनका मानना था कि उत्पादन के साधनों से सम्बन्धों का निर्धारण उत्पादन की शक्तियों द्वारा होता है। उन्होंने उत्पादन के साधनों से दो प्रकार के सम्बन्धों को स्वीकार किया।

1. उत्पादन के साधनों से स्वामित्व का सम्बन्ध
2. उत्पादन के साधनों से अधीनता का सम्बन्ध

मार्क्स का कहना था कि उत्पादन के साधनों से इन दो प्रकार के सम्बन्धों से ही किसी समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण होता है। इस आर्थिक संरचना को उन्होंने किसी समाज के संरचना के बुनियाद अथवा आधार स्वीकार किया तथा इसे (Sub Structure) कहा। उनका मानना है कि इस उप–संरचना पर ही समाज की अन्य सभी संरचनायें जैसे–धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक संरचनायें आदि विकसित होती है। उपसंरचना के आधार पर विकसित होने वाली ऐसी संरचनाओं को मार्क्स ने अधिसंरचना कहा (Super Struchure) कहा। अपने सिद्धान्त में उन्होंने इस तथ्य पर बल दिया कि किसी भी समाज में मिलने वाली अधिसंरचनाओं के स्वरूप तथा प्रकृति का निर्धारण उसकी आर्थिक संरचना या उपसंरचना के द्वारा होता है। अतः उप संरचना में होने वाली कोई भी परिवर्तन अधिसंरचना में भी परिवर्तन को प्रेरित करता है।

मार्क्स ने उप संरचना या आर्थिक संरचना में होने वाले परिवर्तनों को विश्लेषित करते हुए कहा कि इसके बदलाव के क्रम में सर्वप्रथम उत्पादन्न की शक्तियों में (Forces of Production) प्रौद्योगिकी परिवर्तन आता है, जो उत्पादन के साधनों में परिवर्तन को प्रेरित करता है–उपकरण–यंत्र आदि साधनों में होने वाला यह परिवर्तन उत्पादन के सम्बन्धों (स्वामित्व का स्वरूप) को विकसित करता है, जिससे अंततः सम्पूर्ण आर्थिक संरचना परिवर्तित होता है।

7.5 मार्क्स के अनुसार इतिहास की आर्थिक व्याख्या

मार्क्स ने अपनी पुस्तक "दास कैपिटल" में पूँजीवादी की आरम्भिक अवस्था में तीन वर्गो के अस्तित्व को स्वीकार किया।

1. **बुर्जुआ वर्ग–** यह उत्पादन साधनों के स्वामी है, जो सर्वहारा वर्ग द्वारा सृजित अतिरिक्त मूल्य के शोषण द्वारा मुनाफा कमाते है।

2. **सर्वहारा वर्ग**–वह उत्पादन के साधनों के अधीन अपने श्रम को बेचकर जीवन–यापन करते हैं, तथा अपने श्रम के द्वारा अतिरिक्त मूल्य का सृजन करते है।

3. **पेट्टी बुर्जुआ–** मार्क्स ने इस वर्ग को एक संक्रमणकालीन वर्ग के रूप में विश्लेषित किया तथा उसे सामन्तवाद का अवशेष माना है। ये बड़े भू–स्वामी है, जो जमीन से प्राप्त लगान के आधार पर जीवन यापन करते हैं। इस प्रकार इन्होंने इसे एक किराया जीवी वर्ग माना है। मार्क्स का कहना है कि पूँजीवादी धारणा के विकास के साथ ही आर्थिक शक्तियों के दबाव के कारण यह वर्ग दो भागों में बट जायेगा। जिसका एक छोटा हिस्सा बुर्जुगा वर्ग में तथा शेष सर्वहारा वर्ग में विलीन हो जायेगा। ऐसे पेट्टी बुर्जुआ जो सर्वहारा वर्ग में विलीन होते हैं, को मार्क्स ने "लैम्पेन" कहा है।

इस प्रकार मार्क्स का मानना है कि पूँजीवाद के विकास के क्रम में मात्र दो वर्गों का अस्तित्व ही रह जायेगा।

मार्क्स ने सर्वहारा वर्ग में वर्ग चेतना के विकास को साम्यवादी समाज की स्थापना हेतु आवश्यक माना। मार्क्स ने वर्ग चेतना को उसके विकास स्तर तथा प्रकृति के आधार पर दो भागों में बॉटा (1) **अपने–आप में वर्ग** (Class-a-Such) मार्क्स ने इसे झूठी चेतना माना है, क्योंकि इस स्थिति में सर्वहारा वर्ग अपने ज़ीवन के विषम परिस्थितियों के वास्तविक कारणों को समझने में असर्मथ रहता है,जिससे सर्वहारा वर्ग के सदस्य बेहतर प्रतिफल की इच्छा में परस्पर प्रतिस्पर्धारत रहते हैं। अतः वे एक समूह के रूप में संगठित होने में असर्मथ रहते हैं।

(2) अपने लिए वर्ग (Class-for-itself) मार्क्स ने इस अवस्था को ही वास्तविक चेतना स्वीकार किया क्योंकि इस स्थिति में पहुँचकर वे अपने जीवन

की परिस्थितियों के वास्तविक कारणों को समझने में सर्मथ हो जाते है, तथा बुर्जुआ वर्ग द्वारा स्थापित शोषण की प्रक्रिया को इसका मूल कारण मानते है, जिसके परिणामस्वरूप सर्वहारा वर्ग के सदस्यों में भी हितों का एकीकरण हो जाता है, जिससे वे साम्यवादी समाज की स्थापना हेतु आवश्यक सर्वहारा क्रांति के लिए शक्ति का संकलन कर पाते है।

मार्क्स ने साम्यवादी समाज की परिकल्पना प्रस्तुत की उनका कहना है कि यदि समाज पूर्ण समानता पर आधारित होगा। जहाँ हर व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार कार्य तथा इच्छा के अनुसार प्रतिफल प्राप्त करने हेतु स्वतन्त्र होगा उनका मानना है कि इस समाज की स्थापना वास्तविक चेतना के विकास के बाद सर्वहारा वर्ग की क्रांति के माध्यम से होगा। यह क्रांति आवश्यक रूप से रक्तपूर्ण होगी। जिसमें क्रांति के पश्चात कुछ समय के लिए सर्वहारा वर्ग की अधिनायकशाही स्थापित की जायेगी, जिससे की पूर्ण साम्यवादी समाज की स्थापना हेतु बुर्जुआवादी मूल्यों को संरक्षण देने वाली संस्थाओं तथा संरचनाओं को जड़ से समाप्त किया जा सके। ऐसी स्थिति में समय के साथ राज्य का अस्तित्व भी समाप्त हो जायेगा।

ऐंजल्स ने अपने विचार में मार्क्स से आगे बढ़ते हुऐ साम्यवादी समाज में परिवार रूपी संस्था के समाप्ति की भी घोषणा की क्योंकि वे परिवार को एक पूँजीवादी संस्था स्वीकार करते थे, जो पुरुष अधिपत्य में स्त्रियों के शोषण पर आधारित है। मार्क्स तथा ऐंजल्स ने साम्यवादी समाज में स्तरीकरण के किसी भी स्वरूप के समाप्ति की घोषणा की क्योंकि यहाँ सभी कार्यो का समान महत्व होगा।

मार्क्स के साम्यवादी समाज की आलोचना मुख्यतः मैक्स बेबर द्वारा की गई है। वे साम्यवादी समाज की संकल्पना को दो दृष्टि से नकारते हैं।

प्रथम तो यह कि वे मार्क्स के पूँजीवादी समाज के द्विध्रुवीय वर्ग की अवधारणा को अस्वीकार करते है, जिसे मार्क्स ने साम्यवादी क्रांति हेतु आवश्यक माना।

दूसरा यह कि मार्क्स ने जिस समतावादी समाज की कल्पना की है, बेबर के अनुसार उसकी स्थापना आधुनिक सन्दर्भों में सम्भव नहीं दिखती क्योंकि बढ़ती हुई जनसंख्या के आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सामाजिक संरचना के संगठन तथा बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों के संचालन हेतु नौकरशाही की स्थापना करना आवश्यक होगा तथा इसकी स्थापना समाज में पुनः स्तरीकृत व्यवस्था को विकसित करेगा। मार्क्स ने इस प्रकार के स्तरीकरण के समाधान हेतु कोई परिकल्पना वस्तुतः नहीं की है।

मार्क्स ने पूँजीवादी के विकास की अतिरिक्त मूल्य की अवधारणा पर आधारित किया उनके अनुसार श्रमिक वर्ग के सदस्य अपने श्रम के माध्यम से विनिर्मित वस्तुओं में कच्चे माल की तुलना में जिस मूल्य वृद्धि को सृजित करते हैं, वही अतिरिक्त मूल्य है। अर्थात् सामग्री का वास्तविक बाजार मूल्य तथा विनिर्मित वस्तु

के वास्तविक बाजार मूल्य के अन्तर को अतिरिक्त मूल्य कहते है। मार्क्स का कहना है कि इस अतिरिक्त मूल्य का सृजन श्रमिक अपने श्रम के माध्यम से करता है। अतः वही उसका वास्तविक हकदार होता है। किन्तु पूँजवादी संरचना में बुर्जुआ वर्ग द्वारा इसका शोषण कर लिया जाता है, जिससे श्रमिक वर्ग अपने वास्तविक हक का छोटा हिस्सा ही प्राप्त कर पाता है, और इसके परिणामस्वरूप वह समय के साधन बुर्जुआ वर्ग की तुलना में और अधिक गरीब होता जाता है। मार्क्स ने पूँजीवादी समाज में मिलने वाले श्रम विभाजन के आधार पर अलगाव की अवधारणा को स्पष्ट किया उनका मानना है कि सामाजिक विकास की आरम्भिक अवस्था से ही श्रम–विकास कभी–भी अपनी सन्तुलित अवस्था में नहीं रहा है। इस असन्तुलन का कारण समाज का सम्पति के प्रति विकृत दृष्टिकोण है, जिसमें सम्पत्ति को उपभोग की वस्तु से संचय की वस्तु में परिवर्तित कर दिया जाता है। मार्क्स का मानना है कि श्रम–विभाजन के सन्दर्भ में यह असन्तुलन पूँजीवादी समाजों में अपने चरम रूप में दिखाई देता है, जिसके परिणाम स्वरूप सर्वहारा वर्ग के सदस्यों में अलगाव की प्रवृति का विकास होता है। मार्क्स का मानना है कि पूँजीवादी संरचना की उत्पादन पद्धति श्रमिक को उसकी कल्पनाशीलता सृजनात्मकता तथा श्रम के द्वारा उत्पादित वस्तु से अलग कर देती है, जिससे श्रमिक का व्यक्तित्व विघटित होने लगता है, जिसके परिणामस्वरूप **वह अपने परिवेश समाज तथा उसके मूल्यों और यहाँ तक की स्वयं के अस्तित्व के प्रति भी उपेक्षा का भाव विकसित कर लेता है। श्रमिक की ऐसी मानसिक अवस्था को ही मार्क्स ने अलगाव कहा है,** क्योंकि इस अवस्था में उसक्रा अस्तित्व एक मानव के भॉति नहीं बल्कि यंत्रों से अंर्तक्रिया करने वाले यंत्र की तरह सीमित हो गया है।

7.6 सारांश

मार्क्स के सन्दर्भ में पर्णित उक्त अध्याय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनों तदोपरान्त नवीन व्यवस्था के सृजन पर केन्द्रित है। उक्त अध्याय के विभिन्न बिन्दुओं में मार्क्स की आर्थिक क्रिया सम्बन्धित वैचारकी, अतिरिक्त मूल्य सम्बन्धित सिद्धान्त, वर्ग सघर्ष सिद्धान्त इत्यादि की व्याख्या विस्तृत रूप से की गयी है, जिसमें मुख्य रूप से मार्क्स की उत्पादन प्रणाली एवं उत्पादन की शक्तियॉ विषयक प्रारूप पर विशेष रूप से 7.5 एवं 7.6 इकाई के अन्तर्गत प्रकाश डाला गया है। चूँकि मार्क्स की सैद्धान्तिक व्याख्या शोषक एवं शोषित के विश्लेषण पर केन्द्रित है अतः 7.3 इकाई के अन्तर्गत मार्क्स की सैद्धान्तिक अवधारणा का विश्लेशण भी किया गया है। उपरोक्त अध्याय के द्वारा विद्यार्थियों के लिये मार्क्स की सैद्धान्तिक अवधारणा की समझ एवं मार्क्स की उत्पादन प्रणाली का विश्लेषण सुगम हो सकेगा।

7.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. रावत, हरिकृष्ण : समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2005

2. पाण्डेय, रवि प्रकाश : समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004

3- N.C.E.R.T. समाजशास्त्र के अग्रणी विचारक, VOl. II, 2009

4- Internation Encylopedia of Social Science Volumes 9 ad 10.

5- Article on Karlmarks by Maxmillien Reubel in the International Encylopadia of Social Sciences, Volumes 9 ad 10, Page 35.

6- Germon Ideology, Marx-Enkls, Scc I, Vol. 5 Page 59-60 Outoed by bottomore and Rubel in their Book on Karl Marx, Page-80

7- Carton Schrock, Making Peace with Confilict, Herald Press, 1999

8. रावत, हरिकृष्ण, भारतीय सामाजिक विचारक, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2007

7.8 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वर्ग संघर्ष से क्या आशय है?
2. पूँजीवाद की अवधारणात्मक व्याख्या कीजिए।
3. उत्पादन की प्रौद्योगिकी (मार्क्स) से क्या आशय है?
4. साम्यवाद को परिभाषित कीजिए?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मार्क्स के साम्यवादी सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए?
2. क्या उत्पादन तथा लाभ अभिप्रेरणा की व्यवस्था ही संघर्ष का मूल क्षेत्र है? क्या आप इस कथन से सहमत है?
3. अधिसंरचना व अधोसंरचना सम्बन्धी मार्क्स की अवधारणा को समझाईये।
4. मार्क्स के आर्थिक निर्धारणवाद की व्याख्या कीजिए।

(ग) वस्तुनिश्ठ प्रष्न

(1) मार्क्स के अनुसार पूँजीपति निम्न में से कौन है?

(क) जिसका पद सामाजिक संरचना में उच्च हो।

(ख) जो कल्याण व विकास से सम्बन्धित हो।

(ग) जिसका उत्पादन के समस्त साधनों पर पूर्व स्वामित्व हो

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं,

(2) कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो के लेखक कौन हैं?

(क) कार्ल मार्क्स (ख) इमाईल दुर्खीम (ग) मैक्स वेबर (घ) आगस्ट कॉम्ट

(3) अधो–संरचना की बात कौन करता है?

(क) आगस्ट कॉम्ट (ख) इमाईल दुर्खीम (ग) मैक्स वेबर (घ) कार्ल मार्क्स

(4) ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा किसने दिया?

(क) पारसन्स (ख) मर्टन (ग) कार्ल मार्क्स (घ) दुर्खीम

(5) सर्वहारा एवं बुजुर्वा वर्ग की बात कौन करता है?

(क) हर्बर्ट स्पेन्सर (ख) कार्ल मार्क्स (ग) मैक्स वेबर (घ) मैलिनोवस्की

7.9 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ग) 2. (क) 3. (घ) 4. (ग) 5. (ख)

7.10 पारिभाषिक शब्दावली

Class	:	वर्ग
Confilict	:	संघर्ष
Alienation	:	अलगाव
Production	:	उत्पादन
Consiousness	:	चेतना
Production	:	उत्पादन
Relation	:	सम्बन्ध
Matter	:	पदार्थ
Human History	:	मानव इतिहास

Infrastructure	:	बुनियादी संरचना
Superstructure	:	अधिसंरचना
Techonology	:	प्रौद्योगिकी
Change	:	परिवर्तन
Captilist	:	पूँजीवादी
Labour	:	श्रम
Dialetic	:	द्वन्द
Prespective	:	परिप्रेक्ष्य
Comunilism	:	साम्यवाद
Exploitation	:	शोषण
Captilist Society	:	पूँजीवादी, समाज

इकाई–8 : वर्ग एवं वर्ग संघर्ष

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 वर्ग : अर्थ एवं परिभाषा

8.2.1. वर्ग निर्माण के आधार

8.2.2 वर्ग की विशेषताएं

8.2.3 मानव समाज की विकास यात्रा का वर्गीकरण एवं वर्गों का उदय

8.2.4 जाति एवं वर्ग में अन्तर

8.3 संघर्ष : अर्थ एवं परिभाषा

8.4 संघर्ष के कारण

8.5 संघर्ष की विशेषताएं

8.6 वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त

8.7 अलगाव की अवधारणा

8.8 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

8.9 सारांश

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.11 बोध के प्रश्न

(क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

8.12 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

8.13 पारिभाषिक शब्दावली

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- वर्ग के अर्थ एवं परिभाषा का उल्लेख कर सकेंगे।
- वर्ग के निर्माण के प्रमुख आधारों को समझ पायेंगे।
- मानव समाज में वर्गों की विकास यात्रा को जान सकेंगे।
- जाति एवं वर्ग में अन्तर का विवेचन कर पायेंगे।
- संघर्ष की अवधारणा को समझ पायेंगे।

- संघर्ष की विशेषताओं को जान पायेंगे।
- वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त का उल्लेख कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

कार्ल मार्क्स का नाम समाजशास्त्र के संस्थापक विचारकों के रूप में सम्मिलित किया जाता है। कार्ल मार्क्स का समाजशास्त्र वास्तव में वर्ग संघर्ष का ही समाजशास्त्र है। मार्क्स ने वर्ग संघर्ष की अवधारणा आगस्टिन थोरे से ग्रहण की थी। लेकिन देखा जाय तो वर्ग संघर्ष की तथ्यपरक विवेचना मार्क्स ने ही की है। मार्क्स का यह मानना है कि इतिहास के प्रत्येक युग तथा प्रत्येक समाज में सदैव दो विरोधी वर्ग रहे हैं – शोषक तथा शोषित वर्ग। ये दोनों वर्ग परस्पर संघर्षशील रहे हैं।

वास्तव में इसी वर्ग संघर्ष के कारण समाज एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तित होता रहता है तथा इसी संघर्ष के परिणामस्वरूप समाज के विकास की प्रक्रिया भी आगे बढ़ती रहती है। मार्क्स ने इस वर्ग संघर्ष का अन्तिम पड़ाव वर्ग एवं राज्य विहीन समाज के निर्माण की कल्पना की है।

8.2 वर्ग : अर्थ एवं परिभाषा

आनुवांशिक विशेषताओं को छोड़कर अन्य किसी भी आधार पर एक दूसरे से भिन्न समूह को वर्ग कहते हैं। वर्ग एक सार्वभौमिक प्रघटना है। विश्व का ऐसा कोई समाज नहीं रहा है जिसमें वर्ग किसी न किसी रूप में न पाये जाते हों। अन्तर सिर्फ इतना है कि वर्ग निर्माण का आधार अलग–अलग समाजों में अलग–अलग होता है। आयु, लिंग, शिक्षा व्यवसाय एवं धर्म आदि के आधार पर वर्ग का निर्माण विश्व के प्रत्येक समाज में होता रहा है। जहाँ आदिम समाज में वर्ग निर्धारण का प्रमुख आधार लिंग एवं आयु रहा था, वहीं आधुनिक समाज में शिक्षा, आय तथा व्यवसाय प्रमुख रूप से वर्ग निर्माण के आधार हैं। वर्ग ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिनकी समान सामाजिक प्रस्थिति होती है। वर्ग एक खुली सामाजिक व्यवस्था होती है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में कभी भी अपने सद्परिश्रम एवं पुरूषार्थ से वर्ग परिवर्तन करने की छूट होती है।

टी.बी. बोटोमोर ने वर्ग को परिभाषित करते हुए लिखते हैं, "वर्ग तथ्यतः समूह होते हैं। वे अपेक्षाकृत उन्मुक्त होते हैं, बन्द नहीं। उनका आधार निर्विवाद रूप से आर्थिक है, लेकिन वे आर्थिक समूहों से अधिक है। वे औद्योगिक समाजों के लाक्षणिक समूह है।"

आगबर्न एवं निमकाफ के अनुसार "एक सामाजिक वर्ग ऐसे व्यक्तियों का योग है, जिनकी एक दिये हुए समाज में अनिवार्य रूप से समान सामाजिक स्थिति होती है"।

ओल्सन के अनुसार "सामाजिक वर्गों का निर्माण उन व्यक्तियों के द्वारा होता है, जिन्हें लगभग समान मात्रा में शक्ति, सुविधायें और सम्मान मिला होता है।"

मार्क्स ने वर्ग के सम्बन्ध में अपनी अवधारणा को इस प्रकार व्यक्त किया है कि "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, परन्तु अधिक स्पष्टतया आधारभूत रूप में वह एक 'वर्ग प्राणी' है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि वर्ग प्रायः ऐसे मानव समूह को कहा जाता है जिनकी सामाजिक प्रस्थिति लगभग समान हो तथा उन्हें समान मात्रा में शक्ति, सुविधायें और सम्मान मिला होता है।

8.2.1 वर्ग निर्माण के आधार

वर्ग निर्माण के कई आधार हो सकते हैं जैसा कि वर्ग की परिभाषा में ही बताया गया है। प्रमुख रूप से वर्ग निर्धारण के मुख्य आधारों में सम्पत्ति, धन, आय, परिवार एवं नातेदारी, निवास की स्थिति, निवास स्थान की अवधि, व्यवसाय की प्रकृति, शिक्षा, धर्म और जाति आदि को शामिल किया जा सकता है।

सम्पत्ति, धन तथा आय के द्वारा वर्ग का निर्धारण उच्च, मध्यम एवं निम्न वर्ग के रूप में किया जा सकता है। उच्च आय वाले व्यक्तियों को अधिक सम्पत्ति व धन का संकलन हो जाता है तथा इस धन का उपयोग भौतिक सुख–सुविधाओं की वस्तु खरीदने में किया जाता है, उच्च शिक्षा प्राप्त की जा सकती है तथा जीवन का स्तर ऊँचा उठाया जा सकता है। इसके विपरीत मध्यम व निम्न आय वाले समूहों को मध्यम व निम्न वर्ग में रखा जाता है। परिवार एवं नातेदारी का भी वर्ग निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि व्यक्ति किसी प्रतिष्ठित वर्ग के परिवारों में है तो भी उसकी स्थिति बड़ी अथवा उच्च समझी जाती है। उदाहरण के रूप में भारत में टाटा, बिड़ला, अम्बानी, नेहरू आदि परिवार में जन्म लेने वाले व्यक्ति की प्रस्थिति अपने आप उच्च हो जाती है। यद्यपि ऐसे उच्च प्रतिष्ठित परिवारों में नातेदारी सम्बन्ध बन जाने के कारण भी वर्ग स्थिति उच्च हो जाती है।

निवास की स्थिति एवं निवास अवधि भी वर्ग के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। व्यक्ति का निवास स्थान कहाँ है, किस शहर में है अथवा किस कालोनी में है, या गाँव में है तथा व्यक्ति कितने समय से उपरोक्त निवास स्थान पर रह रहा है, आदि दशायें भी वर्ग के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

व्यवसाय की प्रकृति का भी वर्ग निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान दृष्टिगोचर होते हैं। प्राध्यापक, चिकित्सक, इन्जीनियर प्रशासक, राजनीतिज्ञ आदि को समाज में प्रायः उच्च स्थान प्रदान किया जाता है चाहे उनकी आर्थिक स्थिति कैसी भी हो। इसी प्रकार वेश्याओं, तस्करों, चोरों आदि के पास कितना भी अधिक धन क्यों न हो उनको समाज में उच्च प्रस्थिति प्राप्त नहीं होती है और न ही उन्हें उच्च वर्ग में शामिल किया जाता है।

शिक्षा, धर्म, जाति आदि अन्य विशेषताएं भी वर्ग निर्माण में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा लगभग सभी समाजों में वर्ग के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण तथा विज्ञान के प्रसार के कारण आज इन क्षेत्रों के विषय–विशेषज्ञों का स्थान समाज में उच्च वर्ग में रखा जाता है। धर्म एवं जाति द्वारा भी वर्ग के निर्माण में सहायता मिलती है। भारत जैसे परम्परागत समाज में धार्मिक कार्यों को सम्पादित करने वाले पुरोहितों, ऋषियों, मुनियों तथा योगियों को उच्च वर्ग में शामिल किया जाता था। इस प्रकार देखा जाय तो जाति भी कहीं न कहीं वर्ग निर्माण में सहायक है।

8.2.1 वर्ग की विशेषताएं

वर्ग की विशेषताओं को अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया जा सकता हैं :

- एक वर्ग के लोगों की सामाजिक प्रस्थिति समान होती है। प्रस्थिति निर्धारण के कई आधार है।
- एक वर्ग के लोगों में हम की भावना पायी जाती है तथा वर्ग के सदस्यों में अन्य वर्गों के प्रति उच्चता या निम्नता का भाव भी पाया जाता है।
- वर्ग की सबसे महत्पूर्ण विशेषताओं में एक 'वर्ग चेतना' पायी जाती है। एक वर्ग के लोगों की जीवन शैली, रहन–सहन खानापान, सुख–सुविधायें समान होने के कारण उस वर्ग के लोगों में अपने वर्ग के प्रति चेतना पायी जाती है तथा यही वर्ग चेतना उनके व्यवहारों एवं वर्ग के पारस्परिक सम्बन्धों का भी निर्धारण करती है। वर्ग चेतना के कारण ही एक वर्ग के लोगां में अपने अधिकारों के प्रति जागरुकता उत्पन्न होती है जो अपने हितों के लिए अन्य वर्गों से प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देती है।
- एक वर्ग के लोगों में प्रायः सीमित सामाजिक सम्बन्ध पाये जाते हैं तथा वे अन्य वर्गों से एक निश्चित सामाजिक दूरी बनाये रखते हैं।
- वर्ग व्यवस्था एक मुक्त व्यवस्था है। इसका तात्पर्य यह है कि एक व्यक्ति एक वर्ग से दूसरे वर्ग में आ–जा सकता है। कोई भी व्यक्ति अपने परिश्रम अथवा पुरुषार्थ के द्वारा उच्च वर्ग में शामिल हो सकता है। इसके विपरीत जाति व्यवस्था एक बन्द व्यवस्था है। एक व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है, जीवन पर्यन्त उसी का सदस्य बना रहता है।
- वर्ग की सदस्यता का निर्धारण करने में जन्म लेने को महत्व नहीं प्रदान किया जाता है बल्कि वर्ग की सदस्यता का निर्धारण व्यक्ति की शिक्षा, योग्यता, सम्पत्ति तथा कुशलता आदि के द्वारा लिया जाता है।
- वर्ग व्यवस्था एक परिवर्तनशील व्यवस्था हैं, क्योंकि वर्ग निर्धारण के आधार शिक्षा, व्यवसाय, धन, सम्पत्ति, शक्ति आदि परिवर्तनशील है लेकिन वर्ग परिवर्तन में भी एक लम्बा समय लगता है, कुछ ही घण्टों अथवा चन्द समयों में वर्ग परिवर्तन नहीं होता है।

- प्रत्येक वर्ग में भी एक उपवर्ग पाया जाता है अर्थात् एक वर्ग के सभी सदस्य बिल्कुल एक समान प्रस्थिति वाले नहीं होते। उदाहरण के लिए धनी वर्ग के सभी लोगों की सम्पत्ति व धन एक समान नहीं होता। इसीलिए इन वर्गों में भी एक उपवर्ग होता है जैसे– उच्च, उच्च वर्ग मध्यम उच्च वर्ग तथा निम्न उच्च वर्ग (अथवा उच्च मध्यम वर्ग, मध्य मध्यम वर्ग तथा निम्न मध्यम वर्ग)

- मैक्स वेबर के अनुसार एक वर्ग के लोगों को कुछ विशिष्ट अवसर एवं सुविधाएं समान रूप से प्राप्त होती है। अतः समान जीवन अवसर (Life Chances) भी वर्ग की एक महत्वपूर्ण विषेशता है।

- वर्ग एक पूर्णतः अर्जित प्रस्थिति है। एक व्यक्ति अपने गुण, शिक्षा, व्यवसाय एवं धन आदि में वृद्धि करके उच्च वर्ग में प्रवेश कर सकता है। वर्ग की सदस्यता जाति की तरह जन्म पर नहीं आधारित होती है।

8.2.3 ऐतिहासिक रूप से मानव समाज का वर्गीकरण एवं वर्गों का उदय

कार्ल मार्क्स का कहना है कि आज तक के सभी समाजों में वर्ग का अस्तित्व किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है। उन्होंने अब तक ज्ञात मानव समाज के इतिहास को मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित किया। जिनकी विवेचना इस प्रकार है :

8.2.3.1.आदिम साम्यवादी समाज एवं वर्ग (Primitive Communal Society)

मार्क्स के अनुसार आदिम साम्यवादी समाज, समाज के इतिहास का प्रथम युग रहा है। इस युग में लोग गोत्र पर आधारित कबीलों और समुदायों के रूप में रहते थे। एक गोत्र और कबीले का एक निश्चित भू–क्षेत्र तथा समान भाषा होती थी। उत्पादन के साधनों पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार न होकर सम्पूर्ण कबीले तथा गोत्र का अधिकार होता था। उत्पादन एवं वितरण का साम्यवादी तरीका प्रचलित था। सामूहिक श्रम के कारण उत्पादन के साधनों तथा उत्पादन पर संयुक्त स्वामित्व था। वर्ग का कोई अस्तित्व नहीं था, जिसके कारण कोई व्यक्ति किसी भी अन्य व्यक्ति का शोषण नहीं करता था। यद्यपि श्रम विभाजन का आधार लिंग तथा आयु थे। पुरुषों व स्त्रियों तथा बच्चों, वयस्कों तथा वृद्धों के कार्य उनकी क्षमता के अनुरुप निर्धारित होते थे। आदिम साम्यवादी युग में उत्पादन के साधनों पर संयुक्त स्वामित्व होने के कारण वर्ग व्यवस्था का उदय नहीं हुआ था।

8.2.3.2. दासत्व युग में वर्ग (Class in Slave Society)

आदिम साम्यवादी युग के विपरीत इस सुग में उत्पादन के साधनों पर सम्पूर्ण स्वामित्व के स्थान पर निजी सम्पत्ति की अवधारणा का प्रादुर्भाव हुआ। काल एवं समय में परिवर्तन के कारण कृषि, पशुपालन तथा दस्तकारी जैसे कार्य मानव द्वारा किया जाने लगा। समाज में निजी सम्पत्ति तथा श्रम विभाजन की

वैचारिकी जन्म लेने के कारण उत्पादन के साधनों पर कुछ लोगों का स्वामित्व स्थापित हो गया। उत्पादन के साधनों जैसे भूमि, पशु, औजार, श्रम, बीजों आदि पर समुदाय के कुछ लोगों का स्वामित्व स्थापित हो गया। इन लागों को मार्क्स ने दास–स्वामी नाम दिया। इसके विपरीत ऐसे लोगों का समूह भी दिखायी देने लगा जिनके पास न तो उत्पादन के साधन थे और न ही शक्ति। अतः दास–स्वामी वर्ग ने इनको अपना दास बना लिया। इस प्रकार इस युग में मालिक और दास दो स्पष्ट वर्ग बन गये जिनमें मालिक वर्ग, दास वर्ग के व्यक्तियों का शोषण करते थे। दासों से अत्यधिक श्रम लिया जाता था, यहाँ तक कि इन्हें खरीदा व बेचा भी जाता था। ठीक वैसे ही जैसे वस्तुओं और जानवरों को। मार्क्स के अनुसार मानव समाज में इतिहास का यह प्रथम युग था जिसमें स्पष्ट रूप से पहली बार वर्गों का उदय हुआ।

8.2.3.3. सामन्ती समाज में वर्ग (Class in Feudal Society)

मानव समाज के इतिहास का यह तृतीय युग था। इस युग में समाज में दो स्पष्ट वर्ग दिखायी दिये। एक वे जिनके पास उत्पादन के साधनों जैसे भूमि, औजार, पशु बीज आदि का स्वामित्व था। सामन्त कहलाते थे तथा दूसरे वे जिनके पास अपने श्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं था, तथा ये सामन्तों की भूमि पर खेती का कार्य करके, पशुओं की सेवा करके तथा उनकी सेनाओं के रूप में कार्य करके अपना जीवन व्यतीत करते थे। इन्हें अर्द्धदास, किसान कहा जाता था। इस प्रकार सामन्त और अर्द्धदास के रूप में समाज में दो स्पष्ट वर्ग थे तथा सामन्त इन अर्द्धदासों का शोषण करते थे जिसके कारण वर्ग संघर्ष पहले की समाजों की तुलना में अधिक स्पष्ट था।

8.2.3.4. पूँजीवादी समाज में वर्ग (Class in Capitalistic Society)

मानव समाज के इतिहास के चतुर्थ युग को पूँजीवादी समाज के नाम से जाना जाता है। इस समाज का उद्‌भव औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप हुआ क्योंकि मशीनों के आविष्कार तथा बड़े–बड़े उद्योग धन्धों की स्थापना के कारण भारी मात्रा में उत्पादन होने लगा। उत्पादन के साधनों पर जिनका अधिकार था, उसे पूँजीपति तथा इन उत्पादनों अपना श्रम देने वाले वर्गों को श्रमिक वर्ग कहा गया। इस प्रकार पूँजीवादी समाज में पूँजीपति तथा श्रमिक वर्ग नामक दो स्पष्ट वर्गों का उदय हुआ।

सर्वहारा एवं बुर्जुवा वर्ग

पूँजीवादी समाज की अपनी व्याख्या में मार्क्स ने पूँजीपति वर्ग के लिए 'बुर्जुवा वर्ग' तथा श्रमिक वर्ग के लिए 'सर्वहारा वर्ग' शब्दों का प्रयोग किया। मार्क्स के अनुसार बुर्जुवा वर्ग उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के साथ–साथ राज्य की सत्ता पर भी अप्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव रखता है तथा अपने हित वाले नियम व कानून का निर्माण भी करवाता है। इन्हीं नियमों एवं कानूनों की सहायता से यह सर्वहारा वर्ग का शोषण करता है तथा सर्वहारा वर्ग अपने हितों

की रक्षा के लिए वर्ग चेतना के आधार पर एकत्रित होकर अपने हितों के लिए बुर्जुवा वर्ग से संघर्ष करता रहता है, जिसे मार्क्स ने वर्ग संघर्ष का नाम दिया है।

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि आर्थिक उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर समाज में दो वर्ग विद्यमान रहे हैं। दासत्व युग में मालिक और दास, सामन्ती युग में सामन्त और अर्द्धदास तथा पूँजीवादी समाज में बुर्जुवा तथा सर्वहारा वर्ग की उपस्थिति यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त दिखायी दे रही है। एक शोषक वर्ग तथा दूसरा शोषित वर्ग है। इन वर्गों के अपने हितों की टकराहट के कारण वर्ग संघर्ष अवश्यम्भावी है।

8.2.4 जाति एवं वर्ग में अन्तर

जाति एवं वर्ग में अन्तर को अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया गया है:

- जाति एक बन्द वर्ग है जबकि वर्ग में खुलापन पाया जाता है। जाति का आधार जन्म है। अतः एक बार व्यक्ति जिस जाति में जन्म ले लेता है। जीवन पर्यन्त उसी का सदस्य रहता है। इसके विपरीत वर्ग का आधार शिक्षा, व्यवसाय, धन सम्पत्ति आदि होने कारण इसे अपने परिश्रम एवं पुरुषार्थ से परिवर्तित किया जा सकता है।

- जाति की सदस्यता प्रदत्त है जबकि वर्ग की सदस्यता अर्जित प्रस्थिति का उदाहरण है। प्रस्थिति के आधार पर जाति एवं वर्ग में यह महत्वपूर्ण अन्तर है। व्यक्ति जाति की सदस्यता प्रयत्न करके भी परिवर्तित नहीं कर सकता है। अतः यह अपेक्षाकृत स्थिर प्रस्थिति है। जबकि वर्ग की प्रस्थिति अस्थिर है। क्योंकि व्यक्ति अपने प्रयत्नों द्वारा एक वर्ग से अपने को दूसरे वर्ग में परिवर्तित कर सकता है।

- जाति अन्तर्विवाही है, वर्ग नहीं अर्थात एक जाति के सदस्य सामान्य रूप से अपनी जाति में ही विवाह करते हैं। इसीलिए जातियों को अन्तर्विवाही कहा जाता है। इसके विपरीत वर्ग अनिवार्य रूप से अपने वर्ग में ही विवाह नहीं करते हैं। इधर कुछ समय से देखा जाय तो जातियाँ भी वहिर्विवाह की तरफ अग्रसर हुई है।

- जाति, जन्म से निर्धारित होने के कारण वर्ग की तुलान में अपेक्षाकृत अधिक स्थिर है जबकि वर्ग व्यवस्था समाज की सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है।

- जाति व्यवस्था में एक जाति से दूसरी जाति के बीच की सामाजिक दूरी अधिक स्पष्ट होती है तथा कौन सी जाति किस जाति से ऊँची व नीची है यह निश्चित होता है। लेकिन वर्ग व्यवस्था में ऐसा कोई निश्चित व स्पष्ट संस्तरण नहीं पाया जाता है।

8.7 संघर्ष : अर्थ एवं परिभाषा

जब किसी निश्चित साधन या सीमित साधनों को प्राप्त करने के लिए दो या दो से अधि व्यक्तियों अथवा समूहों द्वारा अपना अधिकार जमाने के लिए बल

प्रयोग तथा हिंसा का सहारा लिया जाता है तो इस प्रक्रिया को संघर्श कहा जाता है। संघर्ष में उत्तेजना प्रतिस्पर्धा के विषयों अथवा वस्तुओं से हटकर स्वयं प्रतिद्वन्द्वियों के मध्य केन्द्रित हो जाती है। संघर्ष मुख्य रूप से दो या दो से अधिक व्यक्तियों या समूहों के मध्य विपरीत हितों की टकराहट के कारण होता है।

संघर्ष का विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित किया है। जिनकी क्रमवार विवेचना इस प्रकार है। गिलिन और गिलिन के अनुसार, "संघर्ष वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति या समूह अपने विरोधी के प्रति प्रत्यक्षतः हिंसात्मक तरीके अपनाकर या उसे हिंसात्मक तरीका अपनाने की धमकी देकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहता है।"

मैक्स वेबर के अनुसार, "एक ऐसे सामाजिक सम्बन्ध को संघर्ष की संज्ञा दी जा सकती है जिसमें कर्ता के स्वयं की इच्छा की पूर्ति के लिए कोई क्रिया दूसरे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का विरोध करते हुए की जाती है।"

ग्रीन के अनुसार, "संघर्ष जानबूझकर किया गया वह प्रयत्न है जो किसी भी इच्छा का विरोध करने, उसके आड़े आने या उसे दबाने के लिए किया जाता है।"

8.4 संघर्ष के कारण

संघर्ष के कई कारण हो सकते हैं। उनमें से कुछ मुख्य कारणों को यहाँ दिया जा रहा है :

- समाज असमान वर्गो में विभाजित होता है। इन असमान वर्गो की मूलभूत आवश्यकता जैसे रोटी, कपड़ा और मकान; एक समान होता है। अतः अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को प्राप्त करने के लिए विभिन्न वर्गों में संघर्ष होता है।
- समाज के विभिन्न वर्गों में एक प्रकार का संस्तरण पाया जाता है, इस संस्तरण में कुछ वर्ग, कमजोर वर्गो पर प्रभावी होना चाहते हैं जिसका कमजोर वर्ग द्वारा अपनी यथाशक्ति के अनुसार विरोध किया जाता है। फलस्वरूप संघर्ष का जन्म होता है।
- समाज के प्रभु वर्ग द्वारा अधीन वर्ग का शोषण किया जाता है। इस शोषण का जब अधीन वर्ग द्वारा विरोध किया जाता है तो इसकी परिणति प्रभु वर्ग तथा अधीन वर्ग के मध्य संघर्ष के रूप में होती है।
- संसाधनों की असमान वितरण के कारण शक्ति का विवरण असमान होता है। जो संघर्ष का एक प्रमख कारण है।
- शोषण और प्रभुत समाज के शोषित व अधीन वर्ग के मन में असन्तोष की भावना पैदा करती है तथा इस असन्तोष के कारण संघर्ष का जन्म होता है।

8.5 संघर्ष की विशेषताएं

संघर्ष की विशेषताएं अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया गया है :

- समाज वर्गों में बंटा होता है जबकि उनके हित समान होते हैं। इन्हीं समान हितों के कारण संघर्ष का जन्म होता है।
- समाज का असमान वर्गों में विभाजित होना संघर्ष के लिए उत्तरदायी है।
- शोषण, संघर्ष को जन्म देता है। जब समाज का शक्तिशाली वर्ग, कमजोर वर्गों का शारीरिक, मानसिक, आर्थिक आदि रूप से शोषण करता है तो कमजोर वर्ग के लोग इसका विरोध आरम्भ कर देते हैं।
- संघर्ष हिंसात्मक तथा अहिंसात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है। जब किसी निश्चित साधन अथवा सीमित साधनों पर दो या दो से अधिक समूह अपना अधिकार जमाने के लिए बल प्रयोग तथा हिंसा का सहारा लेते हैं तो उसे हिंसात्मक संघर्ष तथा यदि शान्तिपूर्ण तरीका अपनाते हैं तो उसे अहिंसात्मक संघर्ष कहते हैं।
- संघर्ष में उत्तेजना प्रतिस्पर्धा के विषय अथवा वस्तुओं से हटकर स्वयं प्रतिद्वन्द्वियों के मध्य केन्द्रित हो जाती है।
- संघर्ष, संगठित, असंगठित, स्थायी अथवा अस्थायी, भौतिक, बौद्धिक अथवा आध्यात्मिक किसी भी प्रकार का हो सकता है।

8.6 वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त

मानव सभ्यता के शुरूआती दौर में समाज में कोई वर्ग भेद नहीं था। सबको समान अधिकार प्राप्त थे तथा सम्पत्तियों पर सामूहिक स्वामित्व था। अर्थात् उस समय समाज में सामुदायिक भावना चरम पर थी। मार्क्स ने इस प्रारम्भिक अवस्था को आदिम साम्यवदी युग की संज्ञा दी है। केवल आयु व लिंग के आधार पर श्रम विभाजन की व्यवस्था। धीरे–धीरे समय बीतता गया तथा आदिम समाज में भी स्तरीकरण प्रारम्भ हुआ। कुछ लोग सम्पत्ति, भूमि तथा पशुधन के स्वामी बन बैठे जबकि अन्य लोगों के पास उपरोक्त निजी सम्पत्तियों का अभाव होता गया। इस प्रकार समाज में स्वामी और दास के रूप में दो वर्ग बन गये। मार्क्स ने इन समाजों के काल को दासत्व युग के नाम से सम्बोधित किया। वास्तव में मानव इतिहास का यह प्रथम काल था जिनमें वर्ग संघर्ष का आरम्भ हुआ। दासत्व युग के बाद समाज में शोषक वर्ग ने निजी भूमि व सम्पत्ति के अतिरिक्त अपनी उत्पादन प्रणाली को और विकसित कर लिया तथा मानव श्रम के अतिरिक्त उर्जा के नये स्रोत प्रयोग में लाने शुरू कर दिये। नये उत्पादन शक्तियों के विकास ने उत्पादन के सामन्ती सम्बन्धों की स्थापना की। ये सामन्ती सम्बन्ध भूमि के मालिकों तथा भूमिहीन किसानों के मध्य स्थापित हुए। इस अवस्था को मार्क्स ने 'सामन्ती युग' का नाम दिया तथा समाज में सामन्त तथा अर्द्धदास किसान नाम से दो स्पष्ट वर्ग बन गया। तथा इन वर्गों में अपने हितों के लिए वर्ग संघर्ष आरम्भ हो गया।

सामन्ती युग के बाद औद्योगिक क्रान्ति के कारण वर्तमान समाज को मार्क्स ने पूंजीवादी समाज के नाम से पुकारा। इस समाज में नये–नये आविष्कारों

तथा भारी–भारी मशीनों के विकास के कारण समाज पूँजीपति एवं श्रमिक दो स्पष्ट वर्गों में बंट गया। मार्क्स ने पूँजीपति वर्ग के लिए 'बुर्जुवा' तथा श्रमिकों के लिए 'सर्वहारा' शब्दों का प्रयोग किया। अपने–अपने हितों के लिए बुर्जुवा तथा सर्वहारा वर्गों के मध्यम वर्ग संघर्ष होता है।

मार्क्स के अनुसार, "वर्ग संघर्ष एक ऐसी प्रक्रिया है जो आदिम सामाजिक व्यवस्था के विघटन, उत्पादन के औजारों में सुधार एवं फलतः अतिरिक्त उत्पादन पर एक समूह विशेष अधिकार से सृजित होती है तथा कालान्तर में विभिन्न स्वरूपों में परिलक्षित होती है।"

8.6.1 वर्ग संघर्ष के प्रमुख स्वरूप

मार्क्स एवं ऐंगल्स ने वर्ग संघर्ष के तीन प्रमुख स्वरूपों का वर्णन किया है जिनकी विवेचना इस प्रकार है :

8.6.1 आर्थिक संघर्ष

मार्क्स ने मानव को सामाजिक के साथ–साथ आर्थिक प्राणी भी माना है। वर्ग संघर्ष का आर्थिक स्वरूप पूँजीपति एवं श्रमिकों के परस्पर विपरीत हितों से विकसित होता है। पूँजीपतियों का मुख्य हित अपने लाभ की रक्षा करना तथा उस लाभ को निरन्तर बढ़ाते रहने का होता है, जबकि श्रमिकों का हित उचित पारिश्रमिक प्राप्त करना तथा विकलांगता भत्ता आदि प्राप्त करना होता है। पूँजीपति तथा श्रमिक दोनों वर्गों द्वारा यह रस्साकसी हमेशा चलती रहती है। पूँजीपति श्रमिकों को कम से कम श्रम राशि देना चाहता है जबकि श्रमिक पूँजीपतियों से अधिक से अधिक श्रम राषि प्राप्त करना चाहते हैं। परस्पर समान हितों के आधार पर दोनों वर्गों में यह संघर्ष लगातार जारी रहता है।

8.6.2 राजनीतिक संघर्ष

आर्थिक संघर्ष धीरे–धीरे राजनीतिक संघर्ष का रूप ले लेता है। क्योंकि पूँजीपति और राज्य संगठित होकर श्रमिकों के दमन के लिए नये–नये नियम व कानून बनाते हैं। इस प्रकार ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जाती है कि श्रमिक बाध्य होकर राजनीति संघर्ष की दिशा की ओर बढ़ते हैं। मार्क्स के अनुसार क्रान्तिकारी संघर्ष ही राजनीतिक सत्ता में वास्तविक संरचनात्मक बदलाव ला सकता है। इस क्रान्तिकारी संघर्ष के बाद नाजनीतिक सत्ता श्रमिक वर्ग को प्राप्त हो सकती है।

8.6.3 वैचारिक संघर्ष

वर्ग संघर्ष का राजनीतिक स्वरूप वैचारिकी से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होता है। वर्ग अपनी वैचारिकी के माध्यम से ही राजनीतिक लक्ष्यों तथा कार्यभारों को आसानी से प्राप्त कर सकता है। अर्थात् वर्ग संघर्ष में वैचारिक संघर्ष सिद्धान्त निर्माता के रूप में कार्य करता है। वर्ग संघर्ष का दिशा निर्देशन करता है।

8.6.4 वर्ग संघर्ष एवं क्रान्ति

मानव सभ्यता का विकास व प्रगति वर्ग संघर्श के माध्यम से सम्पादित की

जाती है। मार्क्स का मानना है कि वर्ग संघर्ष से ही क्रान्ति लायी जा सकती है। इस क्रान्ति के बाद पूँजीपति वर्ग समाप्त हो जायेगा। एक वर्गविहीन समाज अर्थात् समाजवादी समाज की स्थापना होगी। मार्क्स ने वर्ग संघर्ष की प्रक्रिया में सर्वहारा वर्ग को एक उभरते हुए वर्ग के रूप में देखा।

मार्क्स के अनुसार एक वर्ग का दूसरे वर्ग पर विजित होना समाजिक प्रगति का आधार है। मार्क्स के जीवन का उद्देश्य ही सर्वहारा वर्ग को प्रभावशाली बनाना या तथा पूँजीपति वर्ग को समाप्त करके नये समाजवादी समाज की स्थापना करना था।

मार्क्स ने अपने प्रस्तावित क्रान्ति का स्वरूप निम्न रूप में बताया :

1. क्रान्ति के बाद बुर्जुवा वर्ग समाप्त हो जायेगा।
2. उत्पादन की नयी व्यवस्था का निर्माण होगा।
3. क्रान्ति से वर्गविहीन एवं राज्य विहीन समाज का निर्माण होगा।
4. मार्क्स के अनुसार क्रान्ति के बाद निर्मित होने वाला वर्ग एवं राज्य विहीन समाज शोषण मुक्त समाज होगा।
5. क्रान्ति के बाद सर्वहारा वर्ग सर्वशक्तिमान होगा।

इस प्रकार मार्क्स ने वर्ग संघर्ष का अन्तिम रूप क्रान्ति को माना। इस क्रान्ति के बाद राज्य विहीन, वर्ग विहीन ऐसे समाजवादी समाज की स्थापना की जायेगी जिसमें कोई किसी का शोषण नहीं करेगा तथा प्रत्येक व्यक्ति को उसके श्रम के अनुसार उत्पादन का भाग मिलेगा। वास्तव में क्रान्ति के बाद के समाज को मार्क्स को काल्पनिक समाज कहा जा सकता है।

8.7 अलगाव की अवधारणा

अलगाव की अवधारणा को मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध कर्षति **'दास कैपिटल'** में प्रतिपादित किया। मार्क्स ने यह अवधारणा हीगल से ग्रहण की थी। यद्यपि मार्क्स के विचार हीगल के विचारों के बिल्कुल विपरीत थे। जहाँ हीगल के अलगाव का सिद्धान्त दार्शनिक और आदर्शवादी है, वहीं मार्क्स का अलगाववाद व्यावहारिक एवं भौतिक जगत् से सम्बन्धित।

मार्क्स ने अलगाव शब्द का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत किया। उनके अनुसार, "अलगाव व्यक्ति की वह दशा है जिसमें उसके अपने कार्य एक पराई शक्ति बन जाते हैं जो कि उसके द्वारा शासिन होकर उससे ऊँची शक्ति द्वारा जो उसी के विरुद्ध है, शासित होते हैं।"

मार्क्स ने आगे लिखा है कि अलगाव कोई आत्मिक अथवा निरी प्राकृतिक प्रक्रिया नहीं है, वरन् एक निश्चित ऐतिहासिक अवस्था में मानवीय शोषण के कारण उत्पन्न दुःख, गरीबी, अन्याय और अज्ञान का प्रतिफल है। अलगाव वर्तमान पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था की देन है।

श्रमिकों द्वारा उत्पादन के साधनों, उत्पादकों, उत्पादक पदार्थों मशीनों आदि के प्रति आत्मिक लगाव न होने के कारण अलगाव उत्पन्न होता है। वास्तव में अलगाव एक प्रकार की मानसिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति का किसी भी व्यक्ति, वस्तु आदि से कोई लगाव ही नहीं रहता है या बहुत कम लगाव रहता है।

8.8 अतिरिक्त मूल्य

मार्क्स के अनुसार अतिरिक्त मूल्य पूँजीवादी व्यवस्था में शोषण का एक निश्चित तरीका है। अतिरिक्त मूल्य लागत व विक्रय मूल्य का अंतर है। अर्थात् लागत से जितने अधिक मूल्य पर कोई वस्तु बेची जाती है। वही अतिरिक्त मूल्य है। उदाहरण के लिए यदि किसी वस्तु के उत्पादन में पूँजीपति की कुल लागत श्रम, मशीन, कच्चा माल, मशीन घिसावट आदि सहित 500 रुपये है तथा उसका विक्रय 800 रूपये है तो 800+500 = रू. 300 ही वह अतिरिक्त मूल्य है।

मार्क्स के अनुसार अतिरिक्त मूल्य हमेशा पूँजीपति द्वारा हड़प लिया जाता है। श्रमिक को इस अतिरिक्त मूल्य को कोई भी हिस्सा नहीं दिया जाता है जो एक प्रकार से श्रमिक वर्ग का शोषण है।

8.9 सारांश

वर्ग एवं वर्ग संघर्ष की अवधारणा कार्ल मार्क्स के सामाजिक चिन्तन का मूल है। यद्यपि मार्क्स वर्ग को सामाजिक व्यवस्था का एक प्राकृतिक सत्य ही मानता है। लेकिन वह इसे अनिवार्य सत्य नहीं मानता है। उसके अनुसार समाज में वर्ग, इतिहास के प्रारम्भिक चरण से ही उपस्थिति रहे हैं। इनमें एक विशेष क्रम से परिवर्तन हो रहा है तथा इस परिवर्तन का अन्त वर्ग विहीन समाज के निर्माण से होगा। मानव सभ्यता के इतिहास में आदिम साम्यवादी युग, दासत्व युग, सामन्ती युग, पूँजीवादी युग क्रम से आते रहते हैं। इसका अगला युग वर्ग विहीन युग का होगा। वर्ग निर्माण के कई आधार है तथा यह जाति के विपरीत आनुवांशिकता पर नहीं आधारित होती है। संघर्ष विभिन्न वर्गों की अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि प्रगति के लिए यह एक आवश्यक कदम है। अलगाव तथा अतिरिक्त मूल्य जैसी अवधारणायें पूँजीवादी समाज की देन है। मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था में ही अपने को नाश करने के बीज भी विद्यमान हैं। मानव सभ्यता वर्ग संघर्ष के अन्तिम पड़ाव पर राज्य विहीन, वर्ग विहीन तथा सर्वहारा युग के अधिनायकत्व के रूप में प्रकट होगी।

8.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. मुखर्जी, रविन्द्र नाथ : सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली
2. हरालम्बोस : सोशियोलॉजी
3. चौहान, ब्रजराज : समाज विज्ञान के प्रेरक स्रोत
4. टर्नर, जोनाथन एच : द स्ट्रक्चर ऑफ सोशल थ्योरी
5. पाण्डेय, रविप्रकाश : समाजशास्त्रीय सिद्धान्त : अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद

8.11 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक वर्ग की विभिन्न विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. संघर्ष को परिभाषित कीजिए।
3. संघर्ष के प्रमुख कारण क्या हैं? विवेचना कीजिए।
4. अलगाव की अवधारणा से आप क्या समझते हो?
5. अतिरिक्त मूल्य कैसे वर्ग संघर्ष की पृष्ठभूमि बनते हैं?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. वर्ग को परिभाषित करते हुए वर्ग निर्माण के विभिन्न आधारों का वर्णन कीजए।
2. कार्ल मार्क्स द्वारा प्रस्तुत समाज के ऐतिहासिक विभाजन पर प्रकाश डालिए।
3. कार्ल मार्क्स के वर्ग संघर्ष सिद्धान्त की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. कार्ल मार्क्स की निम्न में से कौन सी कृति नहीं है?

   (अ) दास कैपिटल (ब) कम्यूनिस्ट मैनीफेस्टो

   (स) होली फेमिली (द) सोशल कान्ट्रैक्ट

2. मार्क्स के अनुसार समाज मानव में वर्ग विकास की प्रथम अवस्था क्या थी?

   (अ) आदिम साम्यवादी (ब) दासत्व युग

   (स) सामन्ती युग (द) पूँजीवादी युग

3. अतिरिक्त मुल्य है।

   (अ) लागत से कम मूल्य पर वस्तु का विक्रय

(ब) लागत और विक्रय मूल्य का योग

(स) लागत और विक्रय मूल्य का अंतर

(द) उपरोक्त सभी

4. मार्क्स ने वर्ग संघर्ष की अवधारणा ग्रहण की है

(अ) हीगल से (ब) आगस्टिन थोरे से

(स) एन्जिल्स से (द) सेन्ट साइमन से

5. धर्म जनता के लिए अफीम है। किसने कहा?

(अ) मैक्स वेबर (ब) कार्ल मार्क्स

(स) दुर्खीम (द) पारसन्स

8.12 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (द) 2. (अ), 3. (स), 4. (ब) 5. (ब)

8.13 पारिभाषिक शब्दावली

Class	वर्ग
Class awareness	वर्ग जागरूकता
Class consciousness	वर्ग चेतना
Class imagery	वर्ग विम्ब
Class intrest	वर्ग हित
Class positions	वर्ग पद
Middle class	मध्यम वर्ग
Social class	सामाजिक वर्ग
Primitive Community Society	आदिम साम्यवादी युग
Life chances	जीवन अवसर
Class identification	वर्ग पहिचान
Closed class	बन्द वर्ग
Class Conflict	वर्ग संघर्ष
Surplus value	अतिरिक्त मूल्य
caste	जाति
Slave society	दासत्व समाज
Feudal society	सामन्ती समाज
Capitalistic society	पूँजीवादी समाज

इकाई–9 : द्वन्दात्मकता एवं सामाजिक परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 द्वन्दात्मकता एवं सामाजिक परिवर्तन

9.3 हीगल का द्वन्द्ववाद

9.4 कार्ल मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

9.5 मार्क्सवादी सामाजिक परिवर्तन की धारणा

9.6 सामाजिक परिवर्तन का आधार

9.7 अधो संरचना एवं अधि संरचना तथा सामाजिक परिवर्तन

9.8 मार्क्स के सिद्धान्त की आलोचनात्मक विवेचना

9.9 सारांश

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.11 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

9.12 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

9.13 पारिभाषिक शब्दावली

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- द्वन्दवाद की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- हीगल के द्वन्दवाद व मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- मार्क्सवादी सामाजिक परिवर्तन की धारणा को समझ सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन के मार्क्सवादी आधारों को समझ सकेंगे।
- मार्क्स के अधोसंरचना व अधिसंरचना के सम्बन्धों को जान सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

कार्ल मार्क्स एक ऐसे विचारक रहे हैं जिनके सामाजिक विचारों पर उनकी सामाजिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव रहा है। मार्क्स की विचारधाराओं पर उस समय की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का स्पष्ट प्रभाव था। पूंजीवादी विकास ने यूरोप के सामाजिक जीवन को तहस–नहस करके रख दिया था। उस समय जर्मनी की जनता एक चक्की के दो पाटों के बीच पिस रही थी। एक ओर से सामन्तवाद का अवशेष और दूसरी ओर से अपरिपक्व पूंजीवाद उसे पीड़ित कर रहा था। इन अवस्थाओं का प्रभाव मार्क्स की विचारधाराओं पर गहरा पड़ा। मार्क्स ने अपने विद्यार्थी जीवन से ही दार्शनिक हीगल की कृतियों से परिचय कर लिया था। पर मार्क्स ने जो कुछ लिखा है वह हीगल के दर्शन के ठीक विपरीत है। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कैपिटल' में मार्क्स ने स्वयं लिखा है, "मैंने हीगल के द्वन्द्ववाद को सिर के बल खड़ा पाया। मैंने उसे पैरों के बल खड़ा कर दिया।" अर्थात् मार्क्स ने सामाजिक जीवन को भौतिकता के आधार पर समझाने का यत्न किया। इस प्रकार मार्क्स ने हीगल के द्वन्द्वात्मक विकासवाद को तो मान्यता दी। परन्तु उसके आधार या कारण को, अर्थात् आत्मा, निरपेक्ष विचार आदि के सिद्धान्त को, पूर्णतया अस्वीकार किया। अस्वीकार करने का प्रमुख कारण है कि मार्क्स का विश्वास है कि हीगल ने अपने द्वन्द्ववाद में वास्तविक तथा प्रयोगसिद्ध तथ्यों पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया।

मार्क्स अपने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अन्तर्गत प्रकृति को एक सुसम्बद्ध तथा पूर्ण समग्रता के रूप में मानता है। अतः इसके किसी भी भाग के विषय में जानने के लिए अन्यों से सम्बन्ध की जानकारी आवश्यक है। दूसरे प्रकृति निरन्तर गतिशील है। यह इसकी दूसरी मान्यता है। विकास एवं परिवर्तन के सन्दर्भ में इसका मानना है कि ये एकाएक होते हैं। इसके अतिरिक्त इसकी एक प्रमुख व अन्तिम विशेषता समस्त वस्तुओं तथा प्रकृति की घटनाओं के बीच पाए जाने वाले आन्तरिक विरोध की स्वाभाविकता है। जैसा कि लेनिन ने कहा है द्वन्द्ववाद, वस्तुओं में निहित विरोध का अध्ययन है।

उपर्युक्त मान्यताओं के सन्दर्भ में मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाने का यत्न किया है। इन्हीं पक्षों का विश्लेषण एवं निरूपण इस इकाई के अन्तर्गत आगे किया गया है।

9.2 द्वन्दात्मकता एवं सामाजिक परिवर्तन (Dialecticalism and Social Change)

मार्क्स ने द्वन्द्वात्मकता की समाजशास्त्रीय अवधारणा महान समाज दार्शनिक हीगल के विचारों से प्राप्त की। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह हीलग के द्वन्द्वात्मकता को पूर्णतः स्वीकार करता है। हीगल ने द्वन्द्ववाद के अन्तर्गत

विचार को प्रमुख माना, जबकि मार्क्स द्वन्द्ववाद के अन्तर्गत वस्तुओं को प्रभावी रूप से प्रमुख माना है। इन दोनों विद्वानों में समानता यह है कि यह दोनों लोग स्वीकार करते हैं कि संसार में सभी वस्तुओं का अस्तित्व नवीन और पुरातन के मध्य चलने वाले संघर्ष अथवा द्वन्द्व के कारण ही है।

9.3 हीगल का द्वन्द्ववाद (Hegal's Dialectics)

हीगल ने अपने दर्शन के अन्तर्गत यह स्वीकार किया कि समूल रूप में मानसिक और सामाजिक विकास विरोधी शक्तियों के मध्य संघर्षों के परिणामस्वरूप द्वन्द्ववाद की उत्पत्ति होती है। अर्थात् सबसे पहले व्यक्ति के मन–मस्तिष्क में विचार उत्पन्न होते हैं। किन्तु कुछ समय पष्चात् ही इस विचार के विरोध में एक नया विचार उत्पन्न होता है। फिर इन दोनों विचारों के मध्य द्वन्द्व अथवा संघर्ष होता है। जिसके परिणामस्वरूप तीसरी नवीन विचार अथवा धारणा उत्पन्न होती है। जो पहले के दोनों विचारों अथवा धारणाओं के मध्य सामंजस्य स्थापित करती है।

इस प्रकार विचार की प्रक्रिया सतत् रूप से निरन्तर बनी रहती है। दर्शन के संदर्भ में प्रथम विचार को 'वाद' विरोधी विचार को प्रतिवाद और सामन्जस्यपूर्ण विचार को संवाद कहता हैं। वह इन विचारों को संकल्प तथा समन्वय के नाम से भी स्पष्ट करता है। हीगल मानता है कि विचारों के माध्यम से ही नवीन वस्तुओं का सृजन होता है। जिससे वाह्य जगत प्रभावित होता है। हीगल का मानना है कि इस क्रम में विचार प्रथम है और वाह्य जगत या वस्तु उत्पाद गौण है। संघर्ष के प्रतिफल ही संपूर्ण विश्व का अस्तित्व बना है।

9.4 कार्ल मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Karl Marx's Dialectical Materialism)

कार्ल मार्क्स भी यह स्वीकार करता है कि विश्व का अस्तित्व द्वन्द्ववाद के कारण ही बना हुआ है। किन्तु ऐसी प्रक्रिया में विचार के अस्तित्व प्रथम न मानकर वस्तु के अस्तित्व को प्रथम और प्रभावी मानना चाहिए। मार्क्स द्वन्द्वात्मक सामाजिक विकास के क्रम में वस्तुओं के प्रधानता को स्वीकारता है। इस क्रम में मार्क्स हीगल के आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थवादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में मार्क्स कहता है कि मैंने हीगल के द्वन्द्ववाद को सिर (विचार, मस्तिष्क या आत्मा) के बल खड़ा पाया और मैंने उसे पैरों के बल (पृथ्वी के भौतिकता के आधार पर अथवा पदार्थ जगत् के आधार पर) खड़ा कर दिया।

मार्क्स भौतिक जगत को ही वास्तविक और सत्य मानता है। मार्क्स यह स्वीकार किया है कि इस प्राकृतिक जगत में विरोधी प्रकृतियों के कारण सदैव परिवर्तन होता रहता है। इस ब्रह्माण्ड पर प्राकृतिक जगत या भौतिक जगत की प्रत्येक वस्तु सदैव द्वन्द्वरत रहती हैं। द्वन्द्व के परिणामस्वरूप ही पुरानी वस्तुएं समाप्त होती रहती है और उनके स्थान पर नई वस्तुए आस्तित्व में आती हैं। जिससे समाज का स्वरूप बदलता रहता है। साथ ही साथ उत्पादन की नवीन शक्तियाँ पैदा होती रहती है। इस तरह सम्पूर्ण प्रकृति में परिवर्तन की एक अनवरत प्रक्रिया चलती रहती है। मार्क्स अपने अध्ययन के आधार पर निष्कर्षतः कहता है कि प्रकृति में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। इस ब्रह्माण्ड पर समस्त वस्तुएँ चलायमान एवं परिवर्तनशील प्रकृति की हैं।

मार्क्स परिवतन के संदर्भ में स्पष्ट स्वीकार करता है कि परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है एवं परिवर्तन की शाश्वत प्रकृति के कारण ही समाज में परिवर्तन अथवा विकास सम्भव हो पाता है। इस सदर्भ में मार्क्स ने यह भी स्वीकार किया है कि भौतिक पदार्थ ही विश्व का मूल आधार है। अस्तु पदार्थ का विकास पहले हुआ, चेतना या विचार तथ्य का विकास उसके बाद हुआ। मार्क्स ने स्पष्ट कहा है कि "पदार्थ चेतना की उत्पत्ति नहीं है बल्कि चेतना (विचार या आत्मा), पदार्थ की सबसे बड़ी उत्पत्ति है। मार्क्स की इस विचारधारा के आधार पर देखा जाय तो पदार्थ प्रमुख है और विचार गौण। मार्क्स का मानना है कि बाहरी जगत अर्थात् पदार्थ ही जगत प्रमुख है साथ ही वही वास्तविकता भी है। मार्क्स के द्वन्द्वात्मकवाद की प्रमुख विशेषताओं को अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया गया है

1. हीगल के विपरीत मार्क्स वस्तु जगत की वास्तविकताओं को विशेष महत्व देता है। साथ ही साथ उसको प्राथमिक होने का दावा भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है। इस प्रकार देखा जाय तो कार्ल मार्क्स की वैचारिकी विश्व के प्रति भौतिकतवादी रही है।

2. कार्ल मार्क्स मानता है कि विश्व की प्रत्येक वस्तुएँ एक दूसरे पर आश्रित हैं। इस तथ्य को यदि उदाहरण के रूप में देखा जाये तो पानी एक निश्चित तापमान के निश्चित बिन्दु पर भाँप के रूप में बदल जाता है। इसके विपरीत यदि तापमान को कम कर दिया जाय तो पानी पुनः बर्फ के रूप में वर्णित हो जाता है।

3. कार्ल मार्क्स कहता है कि ब्रह्माण्ड में द्वन्द्व के कारण प्रत्येक वस्तुएं स्थिर नहीं रहती हैं। इस तरह देखा जाये तो संसार की छोटी–बड़ी वस्तुओं में परिवर्तन निरन्तर होता रहता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बिम्ब की समस्त वस्तुएँ स्थिर न होकर सदैव गतिशील एवं परिवर्तनशीलता को धारण किये होते हैं।

कार्ल मार्क्स द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के विशेषता को स्पष्ट करते हुए कहता है कि विश्व में पदार्थ एवं प्रकृति में होने वाला परिवर्तन धीमी गति से न होकर विस्फोटक की भाँति एकाएक होता है। इस तथ्य को उदाहरण के रूप में देखा जाए तो पानी को लगातार गरम करते रहने पर गर्मी धीरे–धीरे एकत्रित होती रहती है। और फिर एक ऐसी अवस्था आ जाती है कि जिसमें पानी तेजी से उबलने लगता है। इसी तरह मानव समाज में भी परिवर्तन धीरे–धीरे होते रहते हैं जिसके कारण एक ऐसी स्थिति आ जाती है कि क्रम टूट जाता है जिसके कारण पुरानी व्यवस्था एकाएक समाप्त हो जाती है एवं उसके स्थान पर एक नहीं व्यवस्था स्थापित हो जाती है।

5. मार्क्स अपने द्वन्द्ववादी विशेषता के संदर्भ में कहता है कि ब्रह्माण्ड में सभी परिवर्तन वस्तुओं में निहित विरोधी गुणों के द्वारा होता है। अर्थात् समस्त वस्तुओं में कुछ–न–कुछ विरोधी गुण विद्यामन रहते हैं जिसके कारण विरोध के परिणामस्वरूप दूसरा गुण विकसित होता रहता है जिसके कारण परस्पर विरोधी गुणों में संघर्ष या द्वन्द्व होते रहते हैं। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप सामाजिक परिवर्तन को गति मिलती रहती हैं।

6. मार्क्स द्वन्द्ववादी विचारधारा की विशेषता के रूप में कहा जा सकता हैं कि द्वन्द्व वस्तुओं में द्वन्द्व से परिवर्तन सम्भव है बिना द्वन्द्व के किसी भी परिवर्तन की कल्पना नहीं की जा सकती है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण ही मार्क्स द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया में वाह्य जगत को प्रधानता के रूप में स्वीकार किया है। वहीं विचारों को वह गौण मानता है। इस प्रकार मार्क्स ने अपने द्वन्द्वात्मक दर्शन को भौतिक तथा वैज्ञानिक आधार पर स्थापित किया। इसीलिए मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त को सामाजिक विकास के क्षेत्र में अग्रणी माना जाता है। मार्क्स के द्वन्द्वात्मक वैचारिकी के आधार पर स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है कि समाज में द्वन्द्व के कारण दास प्रथा का एवं पूँजीवादी व्यवस्था का भी अन्त होगा। आज देखा जाए तो पूँजीवाद यदि 'वाद' है तो श्रम उसका 'प्रतिवाद' है। इस प्रकार वाद एवं प्रतिवाद के संघर्ष से एक नयी व्यवस्था स्थापित होगी जिसे मार्क्स आधुनिक साम्यवादी व्यवस्था के उदय के रूप में देखता है।

मार्क्स के द्वन्द्ववादी विचारधाराकी आलोचना भी बड़े स्तर पर हुई है। मार्क्स अपने द्वन्द्ववादी विचारधारा के सिद्धान्त के अन्तर्गत कहीं भी यह नहीं बताया है कि वस्तुओं में परिवर्तन किस प्रकार होता है। वही विरोधी तत्वों से ही प्रगति अथवा विकास का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। इतिहास गवाह है कि व्यवस्थाओं के स्थापत्य में सहयोग एवं योगदान की महनीय भूमिका रही है।

सहयोग एवं योगदान के अभाव में किसी भी व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकता है।

9.5 सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में मार्क्सवादी विचारधारा

मार्क्स के इतिहास के भौतिकवादी व्याख्या से सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा स्पष्ट दिखाई देती है। मार्क्स का मानना है कि इतिहास इस ब्रह्माण्ड के इतिहास में समस्त परिवर्तन उत्पादन प्रणाली में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप होते हैं। इसके अतिरिक्त भौगोलिक परिस्थितियाँ, जनसंख्या की वृद्धि एवं उनकी वैचारिकी पर विभिन्न कारकों के कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ते हैं। मार्क्स मानता है कि जीवन के लिए आवश्यक भौतिक संसाधनों जैसे– भोजन, वस्त्र, मकान एवं उत्पादन के उपकरण आदि से जुड़ी उत्पादन प्रणाली ही सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मानव को जीवित रहने के लिए भौतिक वस्तुओं की महत्वपूर्ण आवश्यकता होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति उत्पादन के ही द्वारा होती है। इस तरह उत्पादन के लिए उत्पादन की शक्तियाँ आवश्यक होती हैं। इसलिए वह अन्य व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है। कालान्तर में उत्पादन के प्रणाली एवं उत्पादन के कुछ निश्चित संबंधों जैसे– स्वामी, दास, जमींदार, किसान, पूँजीपति एवं कामगार के बीच पाये जाने संबंधों को उत्पन्न करती है। मार्क्स आगे यह भी कहता है कि उत्पादन के ये संबंध व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर नहीं होते हैं, बल्कि उत्पादन की शक्तियों के अनुसार तय होते हैं। उत्पादन के ये संबंध विभिन्न कालक्रमों में सांस्कृतिक व्यवस्था, नैतिकता, धार्मिक तथा सामाजिक एवं राजनैतिक विचारों एवं संस्थाओं को मुख्यतः निर्धारित करते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जब समाज की उत्पादन शक्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता है तो उसी के साथ–साथ उत्पादन के संबंधों में भी बदलाव आ जाते हैं। यही सामाजिक संबंधों में बदलाव, सामाजिक परिवर्तन को दृष्टिगोचर करता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज में जो भी बदलाव अथवा परिवर्तन हुए वह बुर्जुवा तथा सर्वहारा के संघर्शों द्वारा ही हुए। इसी संघर्षों के परिणामस्वरूप मार्क्स सामाजिक परिवर्तन को देखता है।

9.6 सामाजिक परिवर्तन के आधार (Basis of Social Change)

मार्क्स की वैचारिकी के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि आर्थिक निर्धारणवाद का आधार उत्पादन की प्रणाली ही है। उत्पादन प्रणाली को पक्षों के रूप में देखा जा सकता है :

1. उत्पादन की शक्तियाँ

2. उत्पादन के संबंध

इस संदर्भ में हम देखें तो मानव विकास का इतिहास इस बात का गवाह अथवा साक्षी है कि उत्पादन प्रणाली से ही परिवर्तन को सदैव गति मिलती रही है। आगे कार्ल मार्क्स यह भी कहता है कि उत्पादन की प्रणाली एवं उत्पादन के संबंधों से समस्त वैधानिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं का पुनर्निमाण होता रहा है। उत्पादन पद्धति में सबसे पहले उत्पादन की शक्तियों जैसे– मशीन, औजार एवं विभिन्न उपकरणों में परिवर्तन होता है। उसके बाद उत्पादन के संबंधों अर्थात् मालिकों तथा कर्मचारियों के संबंधों में भी परिवर्तन होता है। इस तरह देखा जाये तो उत्पादन कें संबंध ही मानव की आर्थिक संरचना का निर्माण करते हैं। इस आर्थिक संरचना के आधार पर ही समाज में परिवर्तन एवं विकास होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण सामाजिक संरचना को मार्क्स दो भागों में विभाजित करता है

1. अधो–संरचना
2. अधि–संरचना

अस्तु यहाँ अधो–संरचना एवं अधि–संरचना की तथ्यपरक विवेचना की जा रही है :

9.7 अधो–संरचना एवं अधि–संरचना तथा सामाजिक परिवर्तन (Super Structure and Sub-Structure and Social Change)

मार्क्स ने आर्थिक निर्धारण के आधार पर समाज को मुख्यतः दो भागों में बाँटा है– अधो–संरचना एवं अधि संरचना। अधोसंरचना के संबंध में मार्क्स कहता है कि यह सामाजिक व्यवस्था का बुनियादी भाग है। अर्थात् यह समाज का वास्तविक आधार है। जिस पर समाज की अधिंसरचना अर्थात् समाज का ऊपरी भाग जैसे– नीति, धर्म, कानून का अस्तित्व बना रहता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधारभूत की आवश्यकताओं की वृद्धि के अभाव में मनुष्य अथवा समाज के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। अर्थात् आधारभूत आवश्यकताओं की वृद्धि की बुनियाद पर ही मनुष्य अथवा समाज का अस्तित्व टिका हुआ है। इस प्रकार आधारभूत आवश्यकताओं के उत्पादन के लिए आवश्यक है उत्पादनों के साधनों का आविष्कार किया जाय। अर्थात जिस प्रकार उत्पादन के आविष्कार होंगे, उसी के अनुसार, मानव समाज के सदस्यों के बीच आर्थिक संबंधों का निर्माण होगा। और इससे आर्थिक संरचना का निर्माण होगा। इसी को कार्ल मार्क्स अधो–संरचना कहता है।

मार्क्स का मानना है कि अधो–संरचना का स्वरूप जिस प्रकार का होगा। उसी के अनुरूप सामाजिक जीवन का शेष भाग अर्थात् अधि–संरचना का भी

विकास होगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि समाज की अधो–संरचना, अधि–संरचना को बड़े स्तर पर प्रभावित करती हैं। इस प्रकार अधो–संरचना में परिवर्तन के साथ–साथ उसी के अनुरूप अधि–संरचना में भी परिवर्तन होता रहता है। अर्थात् अधो–संरचना एवं अधि–संरचना के परस्पर आश्रयता पर ही परिवर्तन को गति मिलती है।

9.8 मार्क्स के सिद्धान्त की आलोचनात्मक विवेचना

मार्क्स के आर्थिक निर्णायकवाद के आधार पर प्रतिपादित सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त को विभिन्न समाज वैज्ञानिकों ने आलोचनात्मक दृष्टि से देखा है जिसकी विवेचना अधो–लिखित बिन्दुओं पर की गयी है :

1. मार्क्स के ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद के विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि मार्क्स का द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त अवैज्ञानिकता के धरातल पर खड़ा है। वहीं द्वन्द्ववाद के आधार पर समाज में परिवर्तन तो होता है लेकिन परिवर्तन पूर्व निर्धारित नहीं होता है कि मार्क्स जितना उसे समझता है। मार्क्स के ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद की आलोचना करते हुए सोरोकिन लिखता है कि "मार्क्स का द्वन्द्ववादी सिद्धान्त एक पवित्र ज्योति की काल्पनिक व्याख्या के समान है।

2. मार्क्स के विचारों में अनेकों विरोधाभास देखने को मिलता है। इस संदर्भ में हम देखें तो मार्क्स कहता है कि जब अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होगा, तो समाज व्यवस्था अपने आप परिवर्तित हो जायेगी और नये युग को प्रादुर्भाव होगा।

3. मार्क्स पूँजीवादी व्यवस्था के समाप्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति की बात करता है। लेकिन कहीं न कहीं उसकी यह क्रान्ति भ्रामक प्रतीत होती है। आगे कहता है कि पूँजीवादी व्यवस्था अपने चरमोत्कर्ष पर होगी, तो विकास क्रान्ति को जन्म देगा। लेकिन कहीं न कहीं उपर्युक्त मार्क्स की वैचारिकी व्यवहारिक दृष्टि से अनुचित प्रतीत होती है।

4. मार्क्स इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या को अतिशयोक्ति के चरमबिन्दु पर पहुँचा दिया। मार्क्स इतिहास के परिवर्तन के कारणों में अन्य कारणों को पूर्णतः नकारता है। मात्र आर्थिक कारणों को ही महत्वपूर्ण मानता है। लेकिन मार्क्स यह भूल जाता है कि परिवर्तन के लिए अनेक कारण भी उत्तरदायी हैं।

5 मार्क्स कहता है कि अर्थव्यवस्था स्वतः ही परिवर्तित होती रहती है। लेकिन देखा जाय तो अर्थव्यस्था स्वतः में परिवर्तित न होकर मानवीय प्रयासों एवं पुरूषार्थों से परिवर्तित होती है।

6. मार्क्स सामाजिक परिवर्तन के कारकों में आर्थिक कारकों को ही महत्वपूर्ण मानता है, जबकि किसी भी व्यवस्था परिवर्तन हेतु सामाजिक कारण महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

7. मार्क्स ने आर्थिक कारणों को विश्लेषित किया है। लेकिन कहीं न कहीं आर्थिक कारणों के अर्थ को पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं कर पाया है।

8. मार्क्स ने पूँजीवाद के संदर्भ में जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है वह वैज्ञानिक और सत्य दृष्टिगोचर नहीं होता है।

9. मार्क्स अपने सिद्धान्तों में कहता है कि पूँजीवाद के परिणामस्वरूप वर्ग की वैचारिकी समाप्त हो जायेगी। लेकिन वास्तविकता के धरातल पर मात्र एक उपकल्पना ही प्रतीत होता है।

10. मार्क्स कहता है कि समाज में सिर्फ विरोधी वर्ग ही पाये जाते हैं। और उन्हीं वर्गों के संघर्ष के परिणामस्वरूप समाज में परिवर्तन होता है। सामाजिक परिवर्तन के लिए वह सहयोग एवं योगदान को उत्तरदायी नहीं मानता है। जबकि इतिहास गवाह है कि सहयोग एवं योगदान के अभाव कोई भी व्यवस्थाएँ स्थापित नहीं हो पायी हैं।

9.9 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषणों से स्पश्ट है कि कार्ल मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या मुख्यतः 'आर्थिक' आधार पर की है। मार्क्स का सामाजिक परिवर्तन का सिद्धान्त मूलतः ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा पर आधारित है। मार्क्स ने माना है कि "मनुष्य सामाजिक उत्पादन का जो कार्य करते हैं उसके दौरान वह आपस में एक निश्चित प्रकार के सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। ये सम्बन्ध अपरिहार्य होते हैं और मनुष्यों की इच्छाओं से स्वतंत्र होते हैं। उत्पादन के ये सम्बन्ध उत्पादनों के भौतिक तत्वों के विकास की विशिष्ट अवस्था के अनुरूप होते हैं। इन उत्पादन के सम्बन्धों के सम्पूर्ण योग से ही समाज का आर्थिक ढाँचा बनता है और वहीं ढांचा समाज की वास्तविक नींव होता है। सामाजिक परिवर्तन और विकास का मुख्य व अन्तिम कारण उत्पादन की भौतिक परिस्थितियाँ होती हैं। मार्क्स के अनुसार सभी परिवर्तन उत्पाद प्रणाली में होने वाले परिवर्तन उत्पादन प्रणाली में होने वाले परिवर्तन के हिसाब से होते हैं।

कार्ल मार्क्स ने अपने सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त में समाज को दो मूल भागों में बाँटा है, जिसे उन्होंने अधि–संरचना एवं अधो–संरचना कहा है। अधो–संरचना समाज का केन्द्रीय भाग होता है जिसमें श्रमिक, उत्पादन के साधन व श्रम कौशल तथा उत्पादन के सम्बन्धों को शामिल किया जाता है और

अधि–संरचना समाज का बाहरी पक्ष होती है जो अपने अधो–संरचना की प्रकृति के अनुसार बदल जाता है।

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मार्क्स, कार्ल : दास कैपिटल
2. मार्क्स, कार्ल : कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो
3. रावत हरिकृष्ण : समाजशास्त्र विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2007
4. मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ : सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2003
5. रावत, हरिकृष्ण. समाजशास्त्रीय चिन्तक एवं सिद्धान्तकार, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2003

9.10 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. हीगल के द्वन्द्ववाद को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।
2. मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
3. मार्क्सवादी सामाजिक परिवर्तन की धारणा के मुख्य पक्षों को स्पष्ट कीजिए।
4. अधो–संरचना व अधि–संरचना के बीच सम्बन्ध को विवेचित कीजिए।

(ब) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कार्ल मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
2. मार्क्सवाद में सामाजिक परिवर्तन के आधार कारकों का विश्लेषण कीजिए।
3. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद व सामाजिक परिवर्तन के बीच सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मार्क्स ने द्वन्द्ववाद का विचार किससे लिया?

   (अ) कॉम्ट (ब) दुर्खीम

   (स) हीगल (द) कान्ट

2. 'पदार्थ ही यथार्थ है।' किसके अनुसार है?

(अ) दुर्खीम (ब) मैक्स वेबर

(स) मार्क्स (द) हीगल

3. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार परिवर्तन होते हैं।

(अ) धीरे–धीरे (ब) अचानक

(स) कभी–कभी (द) रूक–रूक कर

4. मार्क्सवाद के अनुसार पदार्थ में परिवर्तन होता है।

(अ) वस्तुओं में निहित विरोधी विचारों के कारण

(ब) वस्तुओं से बाहर के पदार्थों से

(स) परिवर्तन नहीं होता है।

(द) परिवर्तन सामान्यजन प्रकृति के तत्वों से होता है।

5. कार्ल मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन में निर्धारक कारक माना है

(अ) अधो–संरचना (ब) अधि–संरचना

(स) बाह्य सरचना (द) आन्तरिक संरचना

6. मैंने हीगल के द्वन्द्ववाद को सिर के बल खड़ा पाया मैंने उसे पैरों के बल खड़ा कर दिया" किसका कथन है?

(अ) दुर्खीम (ब) मार्क्स

(स) कान्ट (द) कॉम्ट

9.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (स), 2. (स), 3. (ब) 4. (अ), 5. (अ), 6. (ब)

9.12 पारिभाषिक शब्दावली

Class	वर्ग
Dialiectly	द्वन्द्वात्मकता
Dialection Materialism	द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
Super-Structure	अधो–संरचना
Sub-Structure	अधि–संरचना
Class Conflict	वर्ग संघर्ष

खण्ड

3

इमाईल दुर्खीम

इकाई-10 5
समाजशास्त्र विज्ञान के रूप में

इकाई-11 20
तुलनात्मक अध्ययन

इकाई-12 28
इमाईल दुर्खीम का सामूहिक प्रतिनिधान

इकाई-13 34
इमाईल दुर्खीम का एकात्मकता के प्रकार

परामर्श-समिति

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति - अध्यक्ष वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
प्रो0(डा0) जी0एस0शुक्ला	कुलसचिव

विशेषज्ञ समिति

डा0 के0के0 मिश्र	प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

डॉ0एम0एन0सिंह	पूर्व निदेशक, समाजविज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ0 इति तिवारी	एसो0 प्रोफेसर, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद
श्री रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद

पाठ्यक्रम लेखन समिति

1- डॉ0 इति तिवारी	एसो0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट. मु. वि.वि., इलाहाबाद।
2. डॉ रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट.मु.वि.वि. इलाहाबाद।
3. अशीष अंशु,	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय डिग्री कालेज, गनाई गंगोली,पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड।
4. डॉ0 अरूणा कुमारी	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी।
5. स्वाती एस0 मिश्रा	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आर्य महिला कन्या पी.जी.कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
6. डॉ0 अशोक कुमार श्रीवास्तव	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र,श्रीराम सुरेश सिंह महाविद्यालय, मीरजापुर।
7. डॉ0 वन्दना राव	असि. प्रो. समाजशास्त्र, राम सुभग सिंह महाविद्यालय,कुर्मी पट्टी पंथरदेवा, देवरिया।
8. डॉ0 जय प्रकाश सिंह	असि. प्रो. समाजशास्त्र, ठाकुर जगन्नाथ सिंह महाविद्यालय, जौनपुर।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड परिचय : इमाईल दुर्खीम

यह इस पाठ्यक्रम का तीसरा खण्ड हैं । इस खण्ड से पूर्व में खण्ड -दो का निर्माण किया गया हैं । जो कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों पर आधारित है। खण्ड-तीन के अन्तर्गत इमाईल दुर्खीम के अवदानों के रूप में समाजशास्त्र विज्ञान के रूप में, तुलनात्मक अध्ययन, सामूहिक प्रतिनिधान, एकात्मकता के प्रकार्य आदि का इकाईवार गम्भीर विवेचन किया गया है। जिसका संक्षिप्त परिचय सारणीवार इस प्रकार है।

इकाई-10 : इस इकाई के अन्तर्गत समाजशास्त्र के विज्ञान के रूप में दिखाने का प्रयास किया गया है। आगस्ट कॉम्ट ने जिस समाजशास्त्र की नीव रखी, उसे वैज्ञानिक धरातल इमाईल दुर्खीम ने प्रदान किया। आगस्ट काम्ट का मानना था कि अन्य विज्ञानों की ही तरह समाजशास्त्र भी समाज का अध्ययन करेगा। इन्हीं बिन्दुओं को दृष्टिगत करते हुए प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत इमाईल दुर्खीम का जीवन परिचय समाज के विज्ञान की स्थापना के सामान्य प्रतिबन्ध, समाजशास्त्र सामाजिक तथ्यों के अध्ययन के रूप में, सामाजिक तथ्य सामाजिक तथ्यों के प्रकार, सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषताएँ, वाह्यता और बाध्यता, समाजशास्त्रीय पद्धति, सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम, सामान्य एवं व्याधिकीय में विभेद के नियम, सामाजिक प्रारूप के वर्गीकरण के नियम, सामाजिक तथ्यों का व्याख्या के नियम आदि पक्षों की तथ्यपरक विवेचना की गयी है।

इकाई-11: इस इकाई के अन्तर्गत इमाईल दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित तुलनात्मक अध्ययन का विवेचन किया गया है। इस अध्ययन में दुर्खीम के तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति एवं इसके अनुप्रयोग का विवरण दिया गया है। इस इकाई में दुर्खीम द्वारा वर्णित तुलनात्मक अध्ययन के साथ ही साथ इसकी सीमाओं का भी अध्ययन किया गया है। सोरोकिन एवं बोगार्डस जैसे समाजशास्त्रियों ने तुलनात्मक अध्ययन की आलोचना की है। जिसका तथ्यपरक विश्लेषण किया गया है। अवधारणाओं को स्पष्ट करने के लिए इस इकाई में दुर्खीम और काम्ट के योगदानों के मध्य एक तुलनात्मक विश्लेषण का भी विवेचन किया गया है।

इकाई-12: इस इकाई के अन्तर्गत दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित 'सामूहिक प्रतिनिधान की अवधारणा को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। इस इकाई में दुर्खीम के सामूहिक प्रतिनिधान की अवधारणा के अन्तर्गत यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि प्रत्येक समाज में कुछ ऐसी विचारधाराएँ, धारणायें और भावनाएँ होती हैं जिन्हें समाज के अधिकांश लोग सामान्य रूप से अपनाते और स्वीकार करते हैं क्योंकि यह विचारधाराएँ, धारणाएँ सबके द्वारा समान रूप से मानी जाती हैं। जिसके कारण यह सामूहिक रूप से स्वीकार की जाती हैं इस कारण यह समस्त समूह का प्रतिनिधित्व सामूहिक रूप से करती हैं । इस इकाई के अन्तर्गत मुख्यतः सामूहिक प्रतिनिधान की अवधारणा , सामूहिक प्रतिनिधान की विशेषताओं एवं सामूहिक प्रतिनिधान की आलोचनाओं का विस्तृत एवं तथ्यपरक वर्णन किया गया हैं।

इकाई-13 : इस इकाई के अन्तर्गत इमाईल दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित 'एकात्मकता के प्रकार' की अवधारणा का तथ्यपरक विवेचन किया गया है।जिसमें मुख्यतः एकात्मकता के

प्रकारों में यान्त्रिक एकात्मकता, यान्त्रिक एकात्मकता की विशेषता, सावयवी एकता, सावयवी एकात्मकता की विशेषता एवं यान्त्रिक एवं सावयवी समाज की तुलना को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

इकाई–10 : समाजशास्त्र विज्ञान के रूप में

इकाई की रूपरेखा

10 इमाईल दुर्खीमः जीवन परिचय

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 समाज के विज्ञान की स्थापना के सामान्य प्रतिबन्ध

10.3 समाजशास्त्र 'सामाजिक तथ्यों' के अध्ययन के रूप में

10.3.1 सामाजिक तथ्य

10.3.2 सामाजिक तथ्यों के प्रकार

10.3.3 सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषताएँ

10.3.4 वाह्यता और बाध्यता

10.4 समाजशास्त्रीय पद्धति

10.4.1 सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम

10.4.2 सामान्य एवं व्याधिकीय में विभेद के नियम

10.4.3 सामाजिक प्रारूप के वर्गीकरण के नियम

10.4.4 सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियम

10.5 सारांश

10.6 संदर्भ ग्रन्थ

10.7 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

10.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

10.9 पारिभाषिक शब्दावली

10. इमाइल दुर्खीम : जीवन परिचय

डेविड इमाइल दुर्खीम का जन्म 15 अप्रैल सन् 1858 ई. में फ्रान्स के पहाड़ी प्रदेश में स्थित 'एपीनल' कस्बे में हुआ था। 'एपीनल' फ्रान्स के बोसजेस पहाड़ी की तलहटी पर है जो 'लोरेन' के मैदानी भाग का एक अंग है। फ्रान्स का यह मैदानी भाग राजनीतिक दृष्टि से बराबर विवादित रहा है किन्तु फ्रान्स के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विकास में इस पहाड़ी क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण योगदान

माना जाता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि दुर्खीम में जो समाजवादी विचारधारा थी उसका परिणाम भी यह पहाड़ी क्षेत्र ही था। इस क्षेत्र में अनेक महापुरूषों का जन्म हुआ था। दुर्खीम यहूदी धर्म के समर्थक थे।

फ्रान्स के इतिहास में दुर्खीम पहले समाजशास्त्री थे। उन्होंने स्वयं का राजनैतिक तथा बौद्धिक गतिविधियों से संलग्न कर रखा था। उस समय के अनेक विचारक दुर्खीम की विचारधारा से असहमत थे किन्तु यह भी प्रमुख है कि दुर्खीम ने ही समाजशास्त्र को नये समाज विज्ञान के रूप में वैधता प्रदान की।

दुर्खीम ने अपनी स्नातक स्तर की परीक्षा एपीनल महाविद्यालय से उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् वह आगे की पढ़ाई के लिए पेरिस विश्वविद्यालय के इकोलीनार्मेल अकादमी चले गये। विश्वविद्यालय स्तर पर वह कुशाग्र बुद्धि के विद्यार्थी माने जाते थे। इस विश्वविद्यालय के अन्य युवाओं के सम्पर्क का लाभ उन्हें प्रसिद्धि के रूप में प्राप्त हुआ। बौद्धिक विद्यार्थी मित्रों की श्रृंखला में प्रमुख रूप से हेनरी बर्गसन जैसे ख्याति प्राप्त दार्शनिक थे। उस समय पेरिस विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करना ही एक बड़ी उपलब्धि हुआ करती थी, किन्तु दुर्खीम को यह विश्वविद्यालय पूर्णतया रास नहीं आया इसका कारण था कि विश्वविद्यालय में कला और साहित्य पर विशेष दबाव था। दुर्खीम विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों और दर्शन के आधुनिक सिद्धान्तों के प्रति अधिक सक्रिय थे। वह नवीन अनुसंधानों के प्रति सक्रिय विद्यार्थियों की प्रतिभा का समर्थन करते थे। इस विश्वविद्यालय में दुर्खीम कुल लगभग तीन वर्ष तक ही थे।

स्नातक उत्तीर्ण होने के पश्चात् दुर्खीम ने जीवन में रूढ़िगत दार्शनिकता के पक्ष को अस्वीकार करते हुए, दर्शन के अध्ययन की नवीन विधियों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखने और दिखाने के तर्क को स्वीकारने लगे। उनका विचार था कि एक ऐसा विज्ञान विकसित किया जाय जो फ्रान्स के तीसरे गणतन्त्र को नैतिक और राजनैतिक सुदृढ़ता को दिशा दे सके। इस प्रकार के समाज विज्ञान का निर्माण जिसमें नैतिक और राजनीति हो वह ऐसा व्यक्ति कर सकता है जो पूर्ण प्रशिक्षित हो। दुर्खीम इस प्रकार की वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय व्यवस्था स्थापित करके समाज को एक निश्चित दिशा और निर्देशन प्रदान किया। शैक्षणिक गतिविधियों के समय ही दुर्खीम ने जर्मन की यात्रा की। वहाँ पर उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण पाठ्यक्रम में भाग लिया। इस पाठ्यक्रम में उन्होंने मुख्य रूप से यह समझने का प्रयत्न किया कि नैतिक दर्शन और सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन में कौन सी विधियाँ प्रभावी होती हैं। जर्मन में इस अध्ययन काल के समय ही दुर्खीम ने अपना अधिकांश समय लेपझींग में व्यतीत किया। लेपझीग में से विल्हेल्म वून्ड्रज की मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला से बहुत अधिक प्रभावी थे। उन्होंने यह स्वीकार किया कि वून्ड्रज की प्रयोगशाला वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता के अनुसंधान में एक अनोखी प्रयोगशाला है। उनका कहना था कि फ्रान्स को जर्मनी के इस प्रयोगशाला का अनुकरण करके दर्शनशास्त्र शिक्षा को ऐसा स्वरूप देना चाहिए कि वह राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो सके। बौद्धिक जीवन में दुर्खीम ने कई विषयों पर व्याख्यान दिया। जिसमें आचार, शिक्षा, धर्म, समाजवाद और दर्शनशास्त्र

जैसे विषय महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावशाली थे। बौद्धिक जीवन के साथ ही साथ दुर्खीम ने सामाजिक जीवन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वहन किया। दुर्खीम के पूर्व उपयोगितावादियों ने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि मनुष्य का व्यवहार निजी आर्थिक हितों द्वारा निर्धारित किया जाता है अर्थात् मनुष्य का व्यवहार आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए होता है जबकि हाब्स का कथन था कि राजनैतिक प्रभुसत्ता ही नागरिकों को अपने अधिनस्थ रखती है। आपका विचार था कि राजनैतिक प्रभुसत्ता ही मानव के सम्पूर्ण व्यवहार को निर्धारित करती है। दुर्खीम उपयोगितावादियों के साथ ही साथ हाब्स के व्यवहार को भी अस्विकार करता है। उनका स्पष्ट कथन है कि व्यक्ति के व्यवहार का यदि कोई स्वामी है तो वह समाज है। व्यक्ति की नियति तो समाज की नियति से बँधी है।

दुर्खीम की विचारधारा पर मोन्टेस्क्यू का प्रभाव अधिक था। मोन्टेस्क्यू ने बताया कि समाज के विभिन्न अंग एक दूसरे से पृथक नहीं किये जा सकते हैं। यह ऐसे संलग्न है कि किसी भी एक भाग को सम्पूर्ण समाज से पृथक करके नहीं समझा जा सकता है। जैसे दुर्खीम कानून को नैतिकता से पृथक करके नहीं देखते हैं इसी प्रकार वह व्यापार, धन्धों और धर्म को भी कानून से पृथक रखकर नहीं देखते हैं। वह आग्रहपूर्वक इसी तर्क और आनुभविकता पर दृढ़ रहते हैं कि समाज के सभी अंग अपनी पृथक पहचान रखते हुए भी आपस में जुड़े होते हैं।

बौद्धिकता के क्षेत्र में दुर्खीम ने अगस्त कॉम्टे से भी बहुत कुछ सीखा है। काम्टे ने सर्वप्रथम यह प्राक्कल्पना रखी थी कि सामाजिक सुदृढ़ता का स्रोत श्रम विभाजन है। कॉम्टे कहते हैं कि समाज में जितना अधिक श्रम विभाजन होगा सामाजिक सुदृढ़ता उतनी ही अधिक आयेगी। दुर्खीम ने कॉम्टे की इस प्राक्कल्पना को अपनाया और अधिक दृढ़ता के साथ तर्क संगत रूप में रखा।

प्रथम विश्व युद्ध जब फ्रान्स की दहलीज पर पहुँचा तब दुर्खीम ने नैतिकता के मनोबल के लिए भरपूर प्रयास किया। इस युद्ध में दुर्खीम को गहरा आघात उनके पुत्र आन्द्रे के कारण लगा। आन्द्रे पेरिस विश्वविद्यालय से शिक्षा–दीक्षा समाप्त करके फ्रान्स की तरफ से युद्ध में लड़ता रहा था। किन्तु 25 दिसम्बर 1915 से पूर्व की उसकी मृत्यु की सूचना दुर्खीम को प्राप्त हुई। आन्द्रे की मष्त्यु के पश्चात् दुर्खीम की लेखनी लड़खड़ा गयी। दुर्खीम को पूर्ण विश्वास था कि उनकी मृत्यु के पश्चात् आन्द्रे समाजशास्त्र में उनके स्तर का ही समाजशास्त्री बन जायेगा। आन्द्रे भाषाई समाजशास्त्र में निष्णात था। दुर्खीम को उससे बहुत अपेक्षाएँ थीं। इस घटना से आहत दुर्खीम ने 15 नवम्बर सन् 1917 ई. अन्तिम सांस ली।

दुर्खीम का जीवन काल कोई 59 वर्षों का था। इस अवधि में उन्होंने समाजशास्त्र को सम्पन्न बनाने का भरपूर प्रयास किया। वे दार्शनिक होने के साथ ही साथ समाजशास्त्री भी थे। विज्ञानवादी दृष्टिकोण से उन्हें प्रत्यक्षवादी कह सकते हैं। वह आनुभविक वैज्ञानिक थे क्योंकि उन्होंने किसी प्रकार के सामाजिक सर्वेक्षण का कार्य नहीं किया। पारसन्स का कथन है कि दुर्खीम द्वारा प्रदत्त

सावयवी समाज में संविदा की जो प्रकृति है, आत्महत्या की दर है और आदिम समाज में धार्मिक व्यवस्था है इसमें दुर्खीम जैसा कोई नहीं। वह समाजशास्त्र के प्रभावशाली उद्यमकर्ता थे। दुर्खीम ने जिन समस्याओं को उठाया उसमें सबसे बड़ी सामाजिक समस्या सामाजिक व्यवस्था की है।

10.0 उद्देश्य

प्रत्येक मानव समाज का एक अंग है। आदिकाल से ही मानव समाज में रहता है, परन्तु मानव ने समाज के और स्वयं के अध्ययन में देर से रुचि दिखाना शुरु किया। सबसे पहले मानव ने अपने चारों ओर पर्यावरण को समझने का प्रयत्न किया और अन्त में अपने समाज के विषय में विचार करना प्रारम्भ किया। इसलिए पहले प्राकृतिक विज्ञान और बाद में सामाजिक विज्ञान का विकास हुआ। तत्पश्चात् हमने समाज का स्वरूप, उसके कार्यों और स्वरूप में होने वाले परिवर्तनों के बारे में विचार किया। समाज के बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण लाने में दुर्खीम का बहुत बड़ा योगदान है। अतः हम यहाँ दुर्खीम द्वारा किए गए निम्न प्रयासों को स्पष्ट करेंगे :

- विज्ञान की विशेषताओं की जानकारी
- सामाजिक तथ्यों का विश्लेषण
- समाजशास्त्र की अन्य विषयों से भिन्नता का वर्णन
- समाज के विभिन्न प्रकार
- सामाजिक तथ्यों का वर्गीकरण
- सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियमों की व्याख्या
- तथ्यों की व्याख्या के नियमों का सुनिश्चितीकरण

10.1 प्रस्तावना

एमिल दुर्खीम (1858–1917) समाजशास्त्र को शैक्षणिक विषय के रूप में मान्यता प्राप्त कराने के, अपने प्रयासो के लिए सर्वाधिक परिचित है। दुर्खीम ने समाज विज्ञान के स्वरूप को इस प्रकार स्पष्ट किया जिससे आधुनिक समाज के बौद्धिक व नैतिक समस्याओं के अध्ययन में सहायता मिले। यहाँ दुर्खीम द्वारा बताए गए समाजशास्त्र के रूपों को स्पष्ट किया गया है। कहा जाता है जिस समाजशास्त्र की नींव आगस्ट कॉम्ट ने रखी उस पर विशाल भवन दुर्खीम ने खड़ा किया। तथा समाजशास्त्र को विज्ञान के रूप में स्थापित किया।

10.2 समाज के विज्ञान की स्थापना के सामान्य प्रतिबन्ध

दुर्खीम ने समाजशास्त्र को एक अलग विषय के रूप में प्रस्तुत किया। 'समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम' दुर्खीम की एक महत्वपूर्ण पुस्तक है, जो सन् 1895 में आयी। जब इस पुस्तक की रचना हुई तब समाजशास्त्र एव नवीन विषय

के रूप में स्थापित हो रहा था। जब दुर्खीम, इकोल नारमेल के शिक्षार्थी थे, तब फ्रांस के विश्वविद्यालयों में सामाजिक विज्ञान की एक भी प्रोफेसरशिप नहीं थी। 1987 में ऐसा सम्भव हुआ जब बॉर्दो विश्वविद्यालय (University of Bordeaus) में फ्रांस सरकार ने दुर्खीम के लिए प्रोफेसर का पद सृजित किया। इसके कई वर्ष बाद इन्हें पेरिस सारवॉन विश्वविद्यालय (Paris-Sorbanne University) में समाजशास्त्र के प्रोफेसर उपाधि से अलंकृत किया गया।

दुर्खीम समाज विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान को पृथक मानते हैं क्योंकि सामाजिक विज्ञान, मानवीय सम्बन्धों से सम्बद्ध है। उन्होंने समाज विज्ञान को मनोविज्ञान और दर्शनशास्त्र से पृथक करके उसे सामाजिक विज्ञान के रूप में स्थापित किया। दुर्खीम ने दर्शनशास्त्र से पृथक करके उसे सामाजिक विज्ञान के रूप में स्थापित किया। दुर्खीम ने अपने 1892 में प्रकाशित पुस्तक 'मान्टेस्क्यू एण्ड रूसो' (Montesquieu and Rousseau) में सामाजिक विज्ञान की स्थापना के सामान्य प्रतिबन्धों को स्थापित किया जो इस प्रकार है–

1. उन्होंने बताया कि विचारों के साथ–साथ विज्ञान के मानवीय ज्ञान का विस्तार नहीं हो सकता। मस्तिक में आने वाले सभी प्रश्नों को विज्ञान द्वारा हल नहीं किया जा सकता है। अतः विज्ञान का एक विशेष क्षेत्र एवं विषय वस्तु होती है। सम्पूर्ण ज्ञान से इसका सम्बन्ध नहीं होता।

2. दूसरा, वैज्ञानिक खोज के लिए एक निश्चित क्षेत्र होना चाहिए। विज्ञान का मुख्य सम्बन्ध तत्वों तथा वस्तुपरक वास्तविकताओं से है। सामाजिक विज्ञान के लिए उसकी एक निश्चित विषय–वस्तु का होना आवश्यक है। दुर्खीम ने यह बताया है कि 'यद्यपि दार्शनिक नियम, परम्परा, धर्म, आदि वास्तविकताओं के बारे में जानते हैं, लेकिन जब ये इनको मानव इच्छा की अभिव्यक्तियों के रूप में देखते हैं तो इनकी यथार्थता समाप्त हो जाती है।' इस प्रकार तथ्यों के बाहरी जगत का परीक्षण की अपेक्षा, उनके अध्ययन आन्तरिक इच्छाओं तक ही रह जाते हैं।

3. विज्ञान व्यक्तियों का नहीं, अपितु विषय–वस्तु के प्रकारों या वर्गों का वर्णन करता है। यदि मानव समाजों को वर्गीकृत किया जाए तो यह व्यवहार के सामान्य नियमों को खोजने में हमारी सहायता कर सकते हैं।

4. मानव समाजों का वर्गीकरण सामाजिक विज्ञान ही करता है। सामाजिक विज्ञान समाज की सामाजिक स्थिति का वर्णन करता है।

5. सामान्य सिद्धान्तों या नियमों को प्राप्त करना ही विज्ञान का प्रयास है। समाज में नियमितता के आधार पर ही सामाजिक विज्ञान सम्भव है। दुर्खीम ने इस ओर संकेत किया है कि यदि सृष्टि की सभी घटनाएँ परस्पर गहन रूप से सम्बद्ध है तथा प्रकृति के दूसरे क्षेत्रों के लिए सत्य प्रमाणित हो चुके हैं तो यह मानव समाज के लिए भी सत्य है, जो प्रकृति का ही एक भाग है।

6. प्राकृतिक और सामाजिक जगत में एक निरन्तर भाव है, परन्तु सामाजिक जगत का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। दुर्खीम ने कुछ विद्वानों के इस मत का विरोध किया कि समाज की प्रत्येक घटना को मानवीय इच्छा की अभिव्यक्तियों तक सीमित कर देना चाहिए। दुर्खीम ने यह स्पष्ट किया कि मानव इच्छा व उनकी अभिव्यक्तियों की श्रेणियाँ सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में आकर, मनोविज्ञान के क्षेत्र में आती है। यदि सामाजिक विज्ञान को अपना एक निश्चित स्थान बनाए रखना है तो हमें यह मानना होगा कि समाज का एक स्वरूप होता है जो उनके निर्माण तत्वों की प्रकृति व व्यवस्था का परिणाम है।

7. समाज की एकरूपताओं, प्रकारों तथा नियमों की विवेचना के लिए हमें इस पद्धति की आवश्यकता है। विज्ञान की जो पद्धति प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में लागू होती है, वह सामाजिक क्षेत्र के लिए भी वैध है।

10.3 समाजशास्त्र 'सामाजिक तथ्यों' के अध्ययन के रूप में

दुर्खीम के अनुसार, सामाजिक तथ्य समाज वैज्ञानिकी के अध्ययन की सामग्री है। उनके अनुसार, "सामाजिक तथ्य, व्यवहार (विचार, अनुभव या क्रिया) का वह पक्ष है जिसका निरीक्षण वैषयिक स्तर पर सम्भव है और जो एक विशेष ढंग से व्यवहार करने को बाध्य करता है।"

दुर्खीम के अनुसार "सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के समान समझना चाहिए।" परन्तु उनका यह कथन उनके लेखों से स्पष्ट नहीं होता। दुर्खीम ने विभिन्न स्थानों पर इन्हें चार अलग–अलग अर्थों में प्रयुक्त किया है। ये चार अर्थ इस प्रकार है– (1) सामाजिक तथ्य वह वस्तु है जिसके विशेष गुणों को बाहरी तौर पर देखा जा सकता है। (2) वह वस्तु है जिसे केवल अनुभव के आधार पर ही जाना जा सकता है। (3) वह वस्तु है जो मनुष्य से परे अपना अस्तित्व रखती है। (4) वह वस्तु है, जो केवल बाहरी तौर पर देखकर ही जानी जा सकती है।

10.3.1 सामाजिक तथ्य

दुर्खीम के अनुसार, "सामाजिक तथ्य वे तथ्य हैं जो सामूहिक चेतना से सम्बन्धित हों और जो व्यक्तिगत चेतना से स्वतंत्र हों।" सामाजिक तथ्यों के दबाव से ही व्यक्ति और समूह व्यवहार करते हैं। सामाजिक तथ्य कार्य करने, सोचने व अनुभव करने का वह मार्ग है जो किसी भी समाज में लगभग सामान्य रूप में पाया जाता है। दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं की भाँति प्रयोग किया है। वे वास्तविक है और मानव इच्छा से मुक्त है। ये व्यक्तियों से बाहर हैं और उन पर दबाव डालने में सक्षम हैं। अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि उनकी प्रकृति दबावकारी या नियन्त्रतणकारी है।

10.3.2 सामाजिक तथ्यों के प्रकार

दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों को दो भागों में विभाजित किया है– सामान्य तथ्य तथा व्याधिकीय तथ्य।

(1) सामान्य सामाजिक तथ्य

समाज के स्वीकृत प्रतिमानों के अनुरूप पाए जाने वाले तथ्य सामान्य सामाजिक तथ्य कहलाते हैं तथा सामाजिक जीवन के स्वास्थ्य में वृद्धि करते हैं। इसे शरीर के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। जब शरीर की अवस्था सामान्य होती हैं तो वह अपने आप को मौसम के अनुरूप ढाल लेता है और स्वस्थ बना रहता है। स्वस्थ अवस्था में रुग्णता कम होती है। समाज में भी जो व्यवस्था बनी हुई है वह चलती रहती है। इसको बनाए रखने वाले सामाजिक तथ्य सामान्य है। इस प्रकार सामान्य सामाजिक तथ्य वे हैं, जो समाज की स्थिति को यथावत् बनाए रखते हैं। इसमें व्याधिकीय तत्व इतने नहीं होते कि सामाजिक व्यवस्था और कानून अस्त–व्यस्त हो जाए।

(2) व्याधिकीय सामाजिक तथ्य

ये तथ्य समाज के स्वीकृत प्रतिमानों के विपरीत होते हैं। ये समाज में रुग्णता पैदा करती हैं। समाज के लिए यह तथ्य अत्यन्त हानिकारक हैं। अपराध, बाल अपराध, डकैती, वेश्यावृत्ति, आत्महत्या, आदि व्याधिकीय सामाजिक तथ्य है। जब समाज में व्याधिकीय तथ्यों में वृद्धि होती है तो समाज का सामान्य जीवन रुक जाता है। दुर्खीम कहते हैं कि समाजशास्त्र की विषय–वस्तु की परिभाषा करने के लिए इन दोनों ही प्रकार के तथ्यों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

10.3.3 सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषता

दुर्खीम के अनुसार समाजशास्त्र का विषय सामाजिक तथ्य है एवं उन्होंने यह भी कहा है कि सामाजिक तथ्यों को वस्तु के समान ही समझना चाहिए। सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषताएँ हैं– वाह्यता एवं बाध्यता। सामाजिक तथ्यों को स्पष्ट रूप से समझने के लिए इन दोनों विशेषताओं तथा अन्य विशेषताओं को समझना आवश्यक है।

सामाजिक तथ्य, समाज या समूह में काम करने, सोचने और अनुभव करने के तरीके हैं। उदाहरण स्वरूप, एक व्यक्ति अपने विवाह के बारे में सोच रहा है। उस समय वह यह सोच रहा होता है कि जीवन साथी का चुनाव, उसका परिवार, वर्ग, जाति, शिक्षा, व्यवसाय, आर्थिक स्थिति आदि उसके अनुरूप हो। उसके इस सोच पर भी सामाजिक दबाव है। अतः यह सोच सामाजिक तथ्य है। समाज के नियम, प्रथाएँ, परम्पराएँ आदि सभी हमारे आचरण को नियमित एवं नियन्त्रित करते हैं। इसलिए ये सामाजिक तथ्य कहलाते हैं।

सामाजिक तथ्य सार्वभौमिक होते हैं। इसी कारण इसका प्रचलन सम्पूर्ण समूह और समाज में पाया जाता है। सभी उन्हें समान समझते हैं और उसका पालन करते हैं। सामाजिक तथ्य व्यक्ति की सामूहिक चेतना का परिणाम है। इनकी उत्पत्ति समाज से जुड़ी होती है। जैसा समाज होगा, उसी के अनुरूप

सामाजिक तथ्य होंगे। भारतीय समाज में स्त्री घूँघट करती है जबकि यूरोपियन समाज में ऐसा रिवाज नहीं है। सामने वाले का अभिवादन करने के लिए हम हाथ मिलाते हैं, गले लगते हैं, पाँव छूते हैं, नमस्कार आदि करते हैं, ये सभी सामाजिक तथ्य हैं। इनकी उत्तपत्ति किसी व्यक्ति विशेष की देन नहीं है, अपितु समाज की देन है।

सामाजिक तथ्यों का प्रदर्शन व्यक्ति की क्रियाओं द्वारा होता है परन्तु यह व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र होता है। सामाजिक तथ्य समाज की उपज है। अतः यह सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखे जाते हैं।

10.3.4 वाह्यता एवं बाध्यता

वाह्यता एवं बाध्यता, सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषताएँ हैं जिनके विषय में आगे चर्चा की जा रही है–

वाह्यता

यह सामाजिक तथ्य की एक विशेषता है। व्यक्ति के विचार, व्यक्तिगत चेतना एवं समाज, वैज्ञानिक के अधिकार क्षेत्र से बाहर होते हैं। इन पर व्यक्ति के विचारों और क्रियाओं का प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि इसका अस्तित्व व्यक्ति से बाहर होता हैं। उदाहरण के लिए पानी हाइड्रोडन और ऑक्सीजन से मिलकर बनता है, फिर भी पानी न तो हाइड्रोजन है और न ही ऑक्सीजन। पानी इन दोनों से अपना पृथक अस्तित्व बनाता है। सामाजिक तथ्यों का निर्माण भी सदस्यों के सामूहिक एवं पारस्परिक अन्तःक्रिया के परिणामस्वरूप होता है, परन्तु उनका अस्तित्व व्यक्तिगत तथ्यों से भिन्न है। जैसे, मनुष्य के मन में विचारों का जन्म होता है, उसी प्रकार विभिन्न व्यक्तियों के अन्तःक्रिया के कारण सामूहिक विचारों का जन्म होता है, फिर भी उनका अस्तित्व व्यक्ति विशेष की चेतना से बाहर और स्वतंत्र होता है। यह किसी व्यक्ति की अपनी सम्पत्ति नहीं होती। सामाजिक तथ्य समाज में पहले से ही विद्यमान है। अतः यह व्यक्ति की शक्ति और अधिकार से वाह्य है और स्वतंत्र है।

बाध्यता

सामाजिक तथ्यों की एक विशेषता यह भी है कि इसका पालन व्यक्ति दबाव में आकर करता है क्योंकि इनकी उत्पत्ति व्यक्तिगत चेतना से नहीं बल्कि सामूहिक चेतना के परिणामस्वरूप होती है। सामाजिक तथ्य व्यक्ति के बाहर की वस्तु होने के कारण ही यह व्यक्ति पर एक विशेष प्रकार व्यवहार करने का दबाव डालती है। सामाजिक तथ्य में समाज और समूह की शक्ति होती है। इस शक्ति के प्रभाव के कारण, व्यक्ति वैसा ही आचरण करता है जैसा कि समाज द्वारा निर्देशित किया जाता है। सामान्य स्थिति में हमें समाज की स्थिति का आभास ही नहीं होता, उसका ज्ञान हमें तब होता है जब हम उस शक्ति का विरोध करते हैं

या उसको नकारते हैं तभी समाज अपना रोष प्रकट करता है और दण्ड की व्यवस्था करता है

दुर्खीम (1950 : 4) के अनुसार 'सामाजिक तथ्य' को बाध्यता और नियंत्रण के अर्थ में परिभाषित करना "निरंकुश व्यक्तिवाद के उत्साही अंध समर्थकों के अनुचित जोखिम लेने की भाँति है, यद्यपि आजकल यह सामान्य रूप से माना जाता है कि हमारे अधिकतर विचार प्रवृत्तियाँ स्वयं हमारे द्वारा विकसित नहीं होती, बल्कि बाहर से हम तब आती हैं, अतः वे हमारा भाग कैसे बन सकती है सिवाय इसके कि वे स्वयं को हम अधिरोपित करें।" दुर्खीम के अनुसार, व्यक्ति के हित व समाज के हितों में परस्पर मेल नहीं है। सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि समाज अपने अपने सदस्यों पर कुछ नियंत्रण या दबाव बनाए रखें।

दुर्खीम (1950:7) ने कहा कि सामाजिक तथ्यों को उनकी सार्वभौमिकता मात्र द्वारा परिभाषित नहीं किया जा सकता। कोई विचार या क्रिया मात्र इस कारण सामाजिक तथ्य नहीं है, क्योंकि वह सभी व्यक्तियों द्वारा दोहरायी गयी है। इस सम्बन्ध में समूह के विश्वासों, प्रवृत्तियों तथा व्यवहारों का संस्थागत या सामूहिक पक्ष अधिक महत्वपूर्ण हैं, जो सामाजिक घटना के लक्षणों को सही प्रकार से वर्णित करता है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इन घटनाओं का हस्तान्तरण सामाजीकरण के सामूहिक साधनों के माध्यम से किया जाता है। अतः यहाँ सामाजिक तथ्यों की विशेषताएँ पूर्णतया स्पष्ट हैं।

10.4 समाजशास्त्रीय पद्धति

यहाँ सामाजिक तथ्यों की विस्तृत व्याख्या की गयी है। यह सामाजिक तथ्य ही समाजशास्त्र की विषय–वस्तु है। यदि हमें समाजशास्त्र को मनोविज्ञान एवं जीवविज्ञान से पृथक करना है तो हमें समाजशास्त्र के अध्ययन तथ्यों के अध्ययन तक ही सीमित करना होगा। दुर्खीम ने समाजशास्त्र के अध्ययन की पद्धति का वर्णन किया है, उनकी समाजशास्त्रीय पद्धति पूर्णतः जीवविज्ञान के अनुभवों पर आधारित है।

10.4.1 सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक 'समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम' के द्वितीय अध्याय में उन नियमों का उल्लेख किया है जिनके द्वारा सामाजिक तथ्यों का अवलोकन किया जा सके। दुर्खीम (1950:14) ने इस सम्बन्ध में पहला नियम यह बताया है कि सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के समान समझा जाए। सामाजिक तथ्य, अन्य वस्तुओं के समान ठोस नहीं है। इनका अध्ययन सीधे करने के स्थान पर अन्य विद्वानों ने इन्हें कल्पना या भावों की अभिव्यक्ति के रूप में देखा है। दुर्खीम वस्तु और विचार में कुछ भेद करते हैं। उनके अनुसार विचार अमूर्त और

परोक्ष तत्व है, जबकि वस्तु एक प्रत्यक्ष तत्व है। प्रत्यक्ष तत्व में अध्ययनकर्त्ता अपनी इच्छा से कोई परिवर्तन नहीं कर सकता है, जबकि परोक्ष तत्व तो भाव प्रधान है। अतः इसमें परिवर्तन किया जा सकता है। जब तक हम सामाजिक तथ्यों को एक वाह्य वस्तु समझकर उसका प्रत्यक्ष अवलोकन नहीं करेंगे तब तक उनका वास्तविक स्वरूप प्रकट नहीं होगा क्योंकि हमारे पूर्व निर्णय और हमारी पूर्व धारणायें, हमारे वैज्ञानिक अध्ययन में बाधक होते हैं। इन बाधाओं को दूर करने के लिए सामाजिक तथ्यों को भी भौतिक तथ्यों की भाँति एक बाहरी घटना समझना होगा।

वस्तु को परिभाषित करते हुए दुर्खीम लिखते हैं, "वह सब जो स्वतः स्पष्ट है, वह सब जो देखा जा सकता है, वह वस्तु की विशेषता रखता है।" वस्तु एक वैषयिक तथ्य है और सामाजिक घटनाएँ वस्तुएँ हैं। दुर्खीम यह मानते हैं कि सामाजिक तथ्य, व्यक्तिगत चेतना से परे और स्वतंत्र होने एवं व्यक्ति पर नियंत्रण रखने के कारण वस्तुओं के रूप में समझे जा सकते हैं।

सामाजिक तथ्यों का वस्तुओं के रूप में अध्ययन करते समय उसे वस्तुपरक बनाए रखने के लिए तीन नियमों का पालन करना चाहिए–

1. सर्वप्रथम पूर्व धारणाओं से मुक्त होना चाहिए। समाजशास्त्री को मनुष्य के मस्तिष्क पर प्रभाव डालने वाले सामान्य विचारों से स्वयं को दूर रखना चाहिए तथा उसे अध्ययन के विषय के प्रति भावनात्मक रुख नहीं अपनाना चाहिए।

2. शोध के आरम्भ में समाजशास्त्री को बतायी जा रही घटना के विषय में बहुत कम ज्ञान होता है तथा उसे विषय–वस्तु को वाह्य दिखाने वाले गुणों के रूप में सूत्रबद्ध करते हुए अग्रसर होना चाहिए।

3. प्रत्येक समाजशास्त्री को सामाजिक तथ्यों की जाँच के समय अपनी अभिव्यक्ति से अलग करके देखने का प्रयास करना चाहिए।

'धारणों के प्रवाहों' में भी सामाजिक तथ्यों को देखा जा सकता है। ये धारणायें स्थान व काल के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। उदाहरण स्वरूप ये धारणायें कुछ निश्चित समूहों को या तो अधिक विवाह करते हुए या अधिक आत्महत्या के लिए अथवा अधिक या कम जन्मदर के लिए प्रोत्साहित करतीं है। ये प्रवाह स्पष्टतः सामाजिक तथ्य हैं। प्रथमतः ये प्रवाह उन स्वरूपों से अभिन्न प्रदर्शित होती है, जिनमें ये व्यक्तिगत व्यवहार के रूप में मिलते हैं परन्तु सांख्यिकी के माध्यम से हमें इन्हें अलग करने के साधन प्राप्त होते हैं। वास्तव में जन्म, मृत्यु, विवाह तथा आत्महत्या आदि की दरों में यथार्थता के साथ सामूहिक प्रतिनिधित्व होता है। (दुर्खीम 1950:7)

10.4.2 सामान्य एवं व्याधिकीय विभेद के नियम

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के तृतीय अध्याय में सामाजिक तथ्यों को दो भागों में विभक्त किया है, सामान्य तथ्य एवं व्याधिकीय तथ्य।

समाज में जो स्वीकृत प्रतिमानों के रूप में उपस्थित होते हैं। वे सामान्य सामाजिक तथ्य कहलाते हैं। ये सामाजिक जीवन के स्वास्थ्य में वृद्धि करते हैं। ऐसे सामाजिक तथ्य जो समाज में स्वीकृत प्रतिमानों से भिन्न या विपरीत हो, वे व्याधिकीय तथ्य कहलाते हैं। दुर्खीम ने इन दोनों के अन्तर को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है। इसका प्रमुख कारण यह है कि मानव का वैज्ञानिक अध्ययन काफी पीछे रह गया क्योंकि अधिकांश मनीषियों ने समाज से पृथक् व्यवहार को व्याधिकीय स्वरूप में देखा। परन्तु, दुर्खीम के अनुसार, एक सामाजिक तथ्य, किसी एक सामाजिक स्थिति के विषय में इसके विकास की एक अवस्था में सामान्य है, जब यह उस जाति के समूह में उसके विकास की निश्चित अवस्था में पाया जाता है। उन्होंने बताया कि किसी समाज के लिए सामाजिक तथ्य केवल उसी स्थिति में सामान्य होता है जब तक कि वह उस समाज के लिए उपयोगी हो।

इस विषय को स्पष्ट करने के लिए दुर्खीम ने अपराधों का भी उल्लेख किया। आगे हमने यहाँ स्पष्ट किया है कि अपराध एक व्याधिकीय तथ्य है। दुर्खीम के शब्दों में, "हम उन सामाजिक दशाओं को सामान्य कहेंगे जो सर्वाधिक व्यापक है और दूसरे को अस्वस्थ या व्याधिपूर्ण कहेंगे।" अपराध एक व्याधिकीय तथ्य है, फिर भी वह समाज के लिए लाभप्रद है क्योंकि वह समाज में एकता को जन्म देता है। दुर्खीम का मानना है कि किसी भी तथ्य का सामान्य या व्याधिकीय होना, उस समाज पर निर्भर करता है जैसे एक जंगली मनुष्य के लिए जो सामान्य आचरण कहा जा सकता है, वही आचरण एक सभ्य मनुष्य के लिए सामान्य नहीं कहा जा सकता।

इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए दुर्खीम ने सुकरात का उदाहरण दिया, जो अपने स्वतंत्र विचारधाराओं के कारण, जो कि एथेनियन कानून की दृष्टि में अपराध था। परन्तु इस अपराध द्वारा उन्होंने अपने समाज की सेवा की। इससे एक नए विश्वास का संचार हुआ जिसकी उस समय एथेन्स वासियों को जरूरत थी। अतः यहाँ पर इसे असामान्य कहना उचित नहीं होगा।

10.4.3 सामाजिक प्रारूप के वर्गीकरण के नियम

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के चतुर्थ अध्याय में सामाजिक प्रारूप के वर्गीकरण के नियमों का वर्णन किया है। यहाँ दुर्खीम ने समाज के विकास की स्थिति को देखते हुए वर्गीकरण की प्रक्रिया को अपनाया है, समाज का विकास सरल रूप से जटिल रूप की ओर अग्रसर हुआ। समाज का वर्गीकरण करने के लिए दुर्खीम ने सरलता को आधार माना है।

सामाजिक प्रारूपों के वर्गीकरण की व्याख्या करना एक महत्वपूर्ण कार्य है क्योंकि प्रत्येक सामाजिक प्रारूप की व्याख्यायें व समस्यायें भिन्न–भिन्न होती हैं। यहाँ सर्वप्रथम यह निर्णय लेना होता है कि यह सामाजिक तथ्य सामान्य है या असामान्य। दुर्खीम ने सामाजिक प्रारूप के विभाजन के लिए "सामाजिक आकारिकी" शब्द को सम्बोधित किया है। पहले हम यह जानेंगे कि सामाजिक प्रारूप कैसे

बनते हैं। यहाँ प्रारूप शब्द से तात्पर्य एक समाज में विभिन्न इकाईयों की सामान्य विशेषताओं से है। उदाहरण के लिए कुँवारे तथा विवाहित व्यक्ति दो अलग–अलग होते हैं। दुर्खीम ने यह प्रदर्शित किया कि कुँआरों में आत्महत्या की दर अधिक थी।

सर्वप्रथम हमें विशिष्ट समाज का अध्ययन करना चाहिए, उसके पश्चात् ही हम उनकी समानताओं और विभिन्नताओं की तुलना कर पायेंगे। दुर्खीम (1950: 80) के अनुसार अनेक परिस्थितियों में एक उचित रूप से किया गया अवलोकन ही पर्याप्त होगा जैसे कि उचित कानून को अपनाने के लिए सही प्रकार से किया गया अध्ययन पर्याप्त होता है। दुर्खीम 'एक खण्डीय समाज' या 'पूर्णतः सरल समाज' जैसे– होर्ड (Horde) को लेकर समाजों का वर्गीकरण उनके संगठित स्तर के अनुरूप करना चाहते थे। होर्ड्स के संयोग से तैयार होने वाले समाज को 'सरल बहुखण्डीय' कहते हैं। इनके संयोग से 'सरलीकृत संयुक्तांगी बहुखण्डीय समाज' अभिभूत होते हैं। ऐसे समाजों के संयोग से जटिल समाजों की उत्पत्ति होती है, जिन्हें 'युग्मित संयुक्तांगी बहुखण्डीय समाज' कहते हैं। इसी प्रकार आगे अन्य अनेक समाजों का निर्माण हो सकता है।

10.4.4 सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियम

दुर्खीम ने अपने पुस्तक के पाँचवें अध्याय में सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियम का वर्णन किया है। दुर्खीम के अनुसार किसी सामाजिक तथ्य की व्याख्या करने का अर्थ है, उसकी उत्पत्ति के कारकों तथा उसके द्वारा पूर्ण किए जाने वाले प्रकार्यों की खोज करना। अधिकांशतः सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के लिए निम्न प्रकारों का प्रयोग किया जा सकता है। पहला कारणात्मक एवं दूसरा प्रकार्यात्मक कारणात्मक से तात्पर्य है कि ऐसी घटना क्यों हुई? प्रकार्यात्मक से तात्पर्य यह है कि सामाजिक प्राणी की सामान्य आवश्यकताओं के लिए क्या आवश्यक है? सर्वप्रथम, कोई भी सामाजिक तथ्य कैसे प्रारम्भ होता है। इसकी पहचान की जानी चाहिए, चाहे उसका सामाजिक प्रकार्य कुछ भी हो। सामान्य रूप से प्रकार्यों को निर्धारित करने से पहले कारणों को जानना अत्यन्त आवश्यक है। कारण और प्रकार्य दो अलग–अलग पहलू हैं, परन्तु इन दोनों के मध्य निश्चित रूप से एक सम्बन्ध है जिसे हम देख सकते हैं। वास्तव में दुर्खीम ने व्यक्ति और समाज के बीच एक अन्तर स्पष्ट किया है और साथ ही उन्होंने समाजशास्त्र और मनोवैज्ञानिकों के बीच भी अन्तर स्पष्ट किया है। सामाजिक तथ्यों का वर्णन साधारणातः व्यक्तिगत विशेषताओं के रूप में या मनोविज्ञान के शब्दों में किया गया प्रयास व्याख्या को गलत कर देगा। इसलिए सामाजिक तथ्यों की व्याख्या हेतु कारणों की खोज इससे पहले घटित हुए सामाजिक तथ्यों से करनी चाहिए न कि व्यक्तिगत चेतना के रूप में। दुर्खीम (1950:110) के अनुसार प्रकार्यात्मक व्याख्या के प्रकरण में "सामाजिक तथ्य का प्रकार्य सदैव किसी सामाजिक उद्देश्य के सम्बन्ध में खोजा जाना चाहिए।"

व्याख्या सम्बन्धित तर्क के समाप्ति में दुर्खीम ने सामाजिक विज्ञान की तुलनात्मक प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला। दुर्खीम के अनुसार यह बताने के लिए एक सामाजिक तथ्य दूसरे सामाजिक तथ्य का कारण है, "हमें उन प्रकरणों में अन्तर करना होगा जिनमें वे समान रूप में विद्यमान हैं या नहीं हैं। ऐसा यह जानने के लिए करना होगा कि परिस्थितियों के विभिन्न संयोजनों में उनके द्वारा दिखायी गई भिन्नता यह दर्शाती है कि एक तथ्य दूसरे तथ्य पर निर्भर करता है।"

समाजशास्त्री सामान्यतः अध्ययन क्षेत्र में जाकर इन सामाजिक तथ्यों का अवलोकन करते हैं, जो समाज में उपस्थित है। दुर्खीम ने फ्रेंच भाषा में आगस्ट कॉम्ट (Auguste Comte) तथा अंग्रेजी भाषा में जॉन स्टुअर्ट मिल्स (John Stuart Milis) की पुस्तक "A System of Logic" का अनुसरण करते हुए तुलनात्मक पद्धति की कार्यप्रणाली के रूप में "सहगामी विभिन्नताओं की पद्धति" का उदाहरण देते हुए इसे 'समाजशास्त्रीय शोध का श्रेष्ठ उपकरण' बताया है। सहगामी विभिन्नताएँ कारणात्मक सम्बन्धों को अचानक सम्बन्धी को अचानक ही नहीं, अपितु सर्वदा स्वाभाविक रूप से प्रदर्शित करती है।

सहगामी विभिन्नताओं को अनेक स्थानों में देखा जा सकता है, जैसे– समाज में समान प्रजाति या समान रूप वाले समाजों में या कई अलग–अलग तरह की सामाजिक प्रजातियों के समाजों में। दुर्खीम (1950:139) के अनुसार, "किसी भी जटिल सामाजिक तथ्य की व्याख्या उस समय तक नहीं की जा सकती जब तक कि सभी प्रजातियों में हो चुके इसके सम्पूर्ण विकास को न देखा जाए।"

इस प्रकार के विस्तृत अध्ययन से हम यह जान सकेंगे कि किसी भी व्यवस्था की मूल वस्तु या तत्व क्या है तथा वे कैसे उत्पन्न हुए हैं साथ ही साथ हमें यह भी ज्ञात होता है कि यह सभी व्यवस्थायें किन परिस्थितियों पर निर्भर है।

दुर्खीम (1950:139) के अनुसार "तुलनात्मक समाजशास्त्र को समाजशास्त्र की एक शाखा के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए। यह स्वयं समाजशास्त्र है, जब कि वह स्वयं को विशुद्ध रूप से वर्णनकारी होने से बचाए रखता है तथा तथ्यों का विवरण देने का आकांक्षी है।"

10.5 सारांश

दुर्खीम ने समाजषास्त्र को एक वैज्ञानिक विशय के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार सामाजिक विज्ञान प्राकृतिक विज्ञान से पथ्थक है। इस इकाई में उन्होंने मुख्य रूप से सामाजिक तथ्यों की चर्चा की है। यहाँ उन्होंने सामाजिक तथ्यों के अध्ययन के लिए उसके प्रकार, प्रमुख विषेशताओं का वर्णन किया है।

समाजशास्त्रीय पद्धति के अनुसार तथ्यों के अवलोकन का नियम, विभेद के नियम, प्रारूपों के वर्गीकरण के नियम तथा सामाजिक तथ्यों के व्याख्या के

नियम की संक्षिप्त चर्चा करते हुए समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में स्पष्ट किया हैं।

संदर्भ

1. The Division of Labour in Society, 1893
2. The Rules of Sociological Method, 1895
3. The Suicide : A Study of Sociology
4. The Elementary Forms of Religious Life, 1912
5. Education and Sociology, 1922
6. रावत, हरिकृष्ण : समाजशास्त्रीय चिन्तक एवं सिद्धान्तकार, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
7. मुकर्जी, आर.एन. : उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली

10.7. बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक तथ्य क्या है?
2. सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
3. सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम की व्याख्या कीजिए।
4. सामाजिक तथ्यों के व्याख्या के दो पक्षों का वर्णन कीजिए।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक तथ्यों की विस्तृत विवेचना कीजिए।
2. क्या समाजशास्त्र एक विज्ञान है? विस्तृत विवेचना कीजिए।
3. वाह्यता एवं बाध्यता से आप क्या समझते हैं? विवेचना कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रूल्स आफ सोशियोलॉजिकल मेथड के नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं?

   (अ) इमाईल दुर्खीम (ब) आगस्ट कॉम्ट

   (स) राबर्ट वीरस्टीड (द) हर्बर्ट स्पेंसर

2. दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों को कितने भागों में विभाजित किया है?

   (अ) दो ब) चार

   (स) पाँच (द) आठ

3. 'द सुसाईड' पुस्तक की रचना किसने की?

(अ) वेबर (ब) इमाईल दुर्खीम

(स) मार्क्स (द) पारसन्स

4. सामूहिक प्रतिनिधान की अवधारणा किसने दिया?

(अ) मैलिनोवस्की (ब) अरस्तू

(स) माण्टेस्क्यू (द) इमाईल दुर्खीम

10.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (अ), 2. (ब), 3. (ब), 4. (द)

10.9 पारिभाषिक शब्दावली

Social Fact	सामाजिक तथ्य
Sociological Method	समाजशास्त्रीय पद्धति
Social Type	सामाजिक प्रारूप
Classification	वर्गीकरण
General Social Fact	सामान्य सामाजिक तथ्य

इकाई–11 : तुलनात्मक अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 दुर्खीम के तुलनात्मक अध्ययन की अवधारणात्मक विवेचना

11.3 कॉन्ट एवं दुर्खीम के योगदान की तुलनात्मक विवेचना

11.4 वेबर एवं दुर्खीम के योगदानों की तुलनात्मक विवेचना

11.5 दुर्खीम की आलोचनात्मक विवेचना

11.6 सारांश

11.7 सन्दर्भ ग्रथ

11.8 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

11.9 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

11.10 पारिभाषिक शब्दावली

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन का उद्देष्य आपको दुर्खीम के तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति से परिचय कराना है। इस इकाई के अध्ययन के पष्चात् आप परिचित होंगे :

- दुर्खीम के तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति से
- दुर्खीम के संकल्पनाओं की विभिन्न विद्वानों के द्वारा की गयी आलोचना से
- दुर्खीम एवं कॉम्ट के योगदानों के तुलनात्मक अध्ययन से
- वेबर एवं दुर्खीम के योगदानों की तुलना की विवेचना से

11.1 प्रस्तावना

समाज में पद्धतिय उपागम के रूप में तुलनात्मक पद्धति को स्थापित करने का श्रेय इमाइल दुर्खीम को जाता है। प्रस्तुत इकाई में हम दुर्खीम के

तुलनात्मक अध्ययन से परिचित होंगे। हम यह भी जानेंगे कि दुर्खीम के तुलनात्मक अध्ययन पद्धति की समाजशास्त्र में क्या संभावनाएँ हैं एवं इसकी अपनी क्या सीमाएँ हैं। दुर्खीम के तुलनात्मक अध्ययन की विस्तृत विवेचना के द्वारा हम इस पूरी संकल्पना को समझने का प्रयास करेंगे साथ ही उनके पूर्व के समाजशास्त्री कॉम्ट एवं वेबर के साथ उनके संकल्पनाओं के मूलभूत अन्तर को भी जानने का प्रयास करेंगे।

11.2 दुर्खीम के तुलनात्मक अध्ययन की अवधारणात्मक विवेचना

दुर्खीम एक फ्रांसीसी दार्शनिक समूहवादी समाजशास्त्री थे। समाजशास्त्र में आगस्ट कॉम्ट के बाद दुर्खीम का नाम बड़े ही आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। कॉम्ट ने जिस नवीन विज्ञान समाजशास्त्र की नींव रखी तो दुर्खीम ने इस नवीन विज्ञान 'समाजशास्त्र' को एक स्वतंत्र एवं पृथक विज्ञान के रूप में सफलतापूर्वक प्रतिष्ठित करने का कार्य किया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि दुर्खीम ने समाजशास्त्र को एक सुदृढ़ आधार प्रदान करके उसे वैज्ञानिक जगत में उचित स्थान प्रदान किया। दुर्खीम, समाजशास्त्र को प्राकृतिक विज्ञानों की तरह एक सुदृढ़ विज्ञान बनाना चाहते थे। इसीलिए दुर्खीम सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के रूप में अवलोकन पर विशेष बल दिया। दुर्खीम के तुलनात्मक योगदानों को अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया गया है :

1. दुर्खीम अपने समाजशास्त्रीय अध्ययनों में प्रद्धतिशास्त्रीय पूर्व धारणाओं को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। वहीं समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में स्थापित किया तथा समाजशास्त्र को दर्शनशास्त्र एवं मनोविज्ञान से अलग बतलाया। उक्त विज्ञानों से समाजशास्त्र को पृथक करने के पीछे दुर्खीम का यह तर्क था कि समाजशास्त्र प्रत्यक्षवाद या विज्ञानवाद पर आधारित एक सामाजिक विज्ञान है।

2. सामाजिक तथ्यों का व्यक्तियों पर किस तरह प्रभाव पड़ता है। इसका दुर्खीम ने विस्तृत एवं तथ्यपरक विवेचना किया है। विवेचना के आधार पर दुर्खीम यह निष्कर्ष देता है कि सामाजिक तथ्यों का अस्तित्व व्यक्तियों से स्वतन्त्र होता है। इसी संदर्भ में दुर्खीम पुनः कहता है कि सामाजिक तथ्य के वाह्य प्रभाव हैं जो व्यक्ति के जीवन पर प्रभाव डालते हैं। दुर्खीम द्वारा सामाजिक तथ्यों की इस प्रकार की विवेचना समाजशास्त्र के लिए मौलिक एवं अद्वितीय देन है।

3. दुर्खीम सर्वप्रथम इस बात पर विशेष बल दिया कि समाजशास्त्रीय अध्ययन सदैव व्यक्तिगत समीकरण से मुक्त रहना चाहिए।

4. दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित पद्धतिशास्त्र का समाजशास्त्र के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इसके पीछे मूल कारण है कि समाजशास्त्र के क्षेत्र में ऐतिहासिक नहीं वरन् वैज्ञानिक दृष्टिकोण से योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है।

5. दुर्खीम की यह मान्यता कुछ हद तक सत्य दृष्टिगोचर होती है कि कि समाज पर समूह में व्यक्ति का व्यवहार, कारण की अपेक्षा भावनाओं एवं संवेगों से अधिक प्रभावित होता है।

6. समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों एवं नियमों के संदर्भ में दुर्खीम कहता है कि इनका निर्माण यांत्रिक तरीके से होना चाहिए। साथ ही इन नियमों में जिस सामाजिक सत्यता की विवेचना की गई है। उसका उल्लेख कार्य–कारण के सम्बन्ध के रूप में स्पष्ट रूप से होना चाहिए।

7. दुर्खीम श्रम विभाजन के कारणों और प्रभावों की विस्तृत विवेचना की है। साथ ही सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारकों में श्रम विभाजन को महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकार किया है। श्रम विभाजन के आधार पर आर्थिक एवं आधुनिक समाजों के अन्तर की व्याख्या दुर्खीम की अद्वितीय देन है। देखा जाय तो दुर्खीम के श्रम विभाजन सम्बन्धी विचार केवल समाजशास्त्र के विद्वानों एवं विचारकों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि अर्थशास्त्रियों सहित अन्य सामाजिक विचारकों के लिए भी उपादेयपूर्ण है।

8. आत्महत्या के सम्बन्ध में दुर्खीम के विचार अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं। समाज में लोग आत्महत्या को सामान्यतः एक व्यक्तिगत क्रिया मानते हैं। जबकि दुर्खीम ने इस बात का खण्डन करते हुए कहते हैं कि आत्महत्या व्यक्तिगत क्रिया नहीं है, वरन् यह तो व्यक्ति से परे का तथ्य है। इस संदर्भ में दुर्खीम पुनः कहते हैं कि समूह अथवा समाज ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है जिसके प्रभाव से विवश होकर व्यक्ति आत्महत्या करता है।

9. दुर्खीम धर्म के अर्थ और प्रकृति पर तथ्यपरक एवं विस्तृत रूप से विचार व्यक्त किया है। धर्म के संदर्भ में दुर्खीम कहते हैं कि धर्म कोई अलौकिक शक्ति पर विश्वास करना नहीं है, बल्कि धर्म एक सामूहिक घटना है जो पवित्र समझी जाने वाली वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों की एक व्यवस्था है। जो आचरणों से निर्मित होती है।

दुर्खीम ने तीन प्रकार के तुलनाओं की चर्चा की है जिसकी विवेचना क्रमवार इस प्रकार है :

(क) एक ही समाज में विभिन्न भागों के तथ्य में पाए जाने वाले अन्तरों की तुलना

(ख) एक समय पर विभिन्न समाजों के एक तथ्य में पाए जाने वाले अन्तरों की तुलना

(ग) अपने विकास के स्तर के अनुसार विभिन्न समयों पर विभिन्न समाजों में एक तथ्य में पाए जाने वाले अन्तरों की तुलना

11.3 कॉम्ट एवं दुर्खीम के योगदान की तुलनात्मक विवेचना

कॉम्ट एवं दुर्खीम के योगदान की तुलनात्मक विवेचना को अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया है:

1. सामाजशास्त्र एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में

कॉम्ट ने समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विज्ञान माना है। कॉम्ट समाजशास्त्र के संदर्भ में कहते हैं कि समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था एवं प्रगति का विज्ञान है। कॉम्ट समाजशास्त्र के संदर्भ में यह भी कहते हैं कि समाजशास्त्र को दर्शन के काल्पनिक पक्ष से पृथक/अलग किया जाना चाहिए।

कॉम्ट की तरह ही दुर्खीम ने भी समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विज्ञान माना है। इसी पक्ष के प्रभावीकरण के संदर्भ में दुर्खीम कहते हैं कि समाजशास्त्र सामूहिक प्रतिविधानों का विज्ञान है जो कि दर्शनशास्त्र के कल्पनालोक से पृथक एवं भिन्न है।

2. सामाजिक समूह का महत्व

कॉम्ट की वैचारिकी से स्पष्ट होता है कि कॉम्ट प्रत्यक्षवाद एवं समूहवाद का समन्वयात्मक पक्ष प्रस्तुत किया है। कॉम्ट की तरह दुर्खीम ने भी समूह के महत्व को अत्यधिक स्वीकारा है। दुर्खीम कहता है कि समूह के आगे व्यक्ति का अस्तित्व गौण है। अर्थात् समूह की शक्ति सर्वोपरि है। दुर्खीम का मानना है कि प्रत्येक सामाजिक घटना सामूहिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप ही होती हैं।

3. प्रत्यक्षवादी विश्वास

ऑगस्ट कॉम्ट को समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है। कॉम्ट सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक प्रत्यक्षवादी पद्धति के अनुसरण पर विशेष बल दिया है। आगे काम्ट पुनः कहता है कि सामाजिक घटनाओं का यथार्थ अध्ययन प्रत्यक्षवाद द्वारा ही सम्भव है, जबकि दुर्खीम ने भी सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग एवं वर्गीकरण पर विशेष बल दिया। इस

प्रकार देखा जाय तो दुर्खीम ने कॉम्ट के प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण को ही आगे बढ़ाने का काम किया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिस समाजशास्त्र की नींव आगस्ट कॉम्ट ने रखा उस नींव को सुदृढ़ करने का काम दुर्खीम ने किया है। अर्थात् जिस समाजशास्त्र रूपी महल की नींव ऑगस्ट कॉम्ट ने रखी। उस नींव पर एक विशाल भवन दुर्खीम ने खड़ा किया।

11.4 वेबर एवं दुर्खीम के योगदानों की तुलनात्मक विवेचना

- **सामाजिक क्रिया सम्बन्धी विचार**

दुर्खीम सामाजिक क्रिया के सम्बन्ध में कहते हैं कि सामाजिक क्रियाए वस्तुतः सामाजिक तथ्यों का अंग तथा पक्ष होती हैं। अतः दुर्खीम के सामाजिक क्रिया सिद्धान्त को समझने के लिए सर्वप्रथम दुर्खीम के सामाजिक तथ्य सम्बन्धी वैचारिकी को जानना होगा। सामाजिक तथ्य के संदर्भ में दुर्खीम कहते हैं कि समाजशास्त्र सभी मानवीय क्रियाओं का अध्ययन नहीं करता है, वरन् 'सामाजिक तथ्य' ही समाजशास्त्र के अध्ययन की विषयवस्तु है। सामाजिक क्रिया के संदर्भ में वेबर कहते हैं कि किसी भी क्रिया को हम तभी सामाजिक क्रिया कहते हैं, जब उस क्रिया को करने वाले व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के द्वारा लगाये गये व्यक्तिनिष्ठ अर्थ के अनुसार उस क्रिया में दूसरे व्यक्तियों के मनोभाव तथा क्रियाओं का समावेश हो एवं उन्हीं के अनुसार उनकी गतिविधि भी निर्धारित हो। मैक्स वेबर यह भी कहता है कि दूसरों की क्रियाओं का नकल या उसका अनुसरण करना सामाजिक क्रिया नहीं है।

- **धर्म सम्बन्धी विचार**

दुर्खीम ने अपनी प्रसिद्ध कृति "द एलिमेन्ट्री फार्म ऑफ रिलिजियस लाईफ" में धर्म की तथ्यपरक विवेचना किया है। दुर्खीम अपने धर्म सम्बन्धी सिद्धान्त में यह प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं कि धर्म, सामाजिक तथ्य या सामाजिक घटना के रूप में है। साथ ही साथ नैतिक रूप से सामूहिक चेतना का प्रतीक धर्म है। दुर्खीम धर्म की उत्पत्ति के संदर्भ में सामाजिक कारणों को महत्व देता है। इसी नाते कहता है कि समाज ही वास्तविक देवता है। दुर्खीम आस्ट्रेलिया की 'अरूण्टा' जनजातियों का अध्ययन करने के बाद पवित्रता और अपवित्रता की धारणा के आधार पर धर्म को विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

"धर्म का समाजशास्त्र" स्थापित करने का श्रेय वेबर को ही जाता है। वेबर ने विश्व के प्रमुख छः धर्मों का अध्ययन किया। इस अध्ययन के आधार पर वह धर्म का समाजशास्त्रीय विवेचना प्रस्तुत किया है। मैक्स वेबर धर्म के समाजशास्त्र

की विशेषताओं के संदर्भ में कहता है कि धार्मिक कार्यों से ही कर्म की वैचारिकी पोषित होती है। जिससे आर्थिक व सामाजिक संगठन निश्चित होते हैं। धर्म के समाजशास्त्र का यही सार है।

11.5 दुर्खीम की आलोचनात्मक विवेचना

सामाजिक विचारों के क्षेत्र में दुर्खीम की देन अतुलनीय है। दुर्खीम समाजशास्त्र को वैज्ञानिक धरातल पर खड़ा किया। इसके बावजूद भी कुछ विद्वानों ने उनकी आलोचना की है, जिसकी विवेचना इस प्रकार है

1. सोरोकिन कहते हैं कि दुर्खीम ने धर्म की उत्पत्ति में टोटम को महत्वपूर्ण बतलाया है। टोटम का सम्बन्ध किसी पशु, पक्षी, जानवर या वृक्ष से होता है। सोरोकिन दुर्खीम द्वारा इन आधारों पर धर्म की व्याख्या करना अनुचित मानते हैं।

2. सोरोकिन का मानना है कि अनुसार दुर्खीम ने सामाजिक घटनाओं की एकांगी व्याख्या की है।

3. सोरोकिन दंर्खीम पर यह भी आरोप लगाते हैं कि दुर्खीम ने सामाजिक कारकों को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया है।

4. सोरोकिन ने दुर्खीम के समाजशास्त्र की आलोचना करते हुए लिखा है कि सामाजिक घटना की व्याख्या करने में दुर्खीम ने कई पक्ष अछूते छोड़े हैं।

5. रोजर लेकाम्बे ने दुर्खीम के निष्कर्षों की आलोचना करते हुए कहा है कि उनके निष्कर्ष अप्रमाणिक हैं। क्योंकि वे तथ्यपूर्ण साक्ष्यों पर आधारित नहीं हैं।

6. बोगार्डस ने दुर्खीम ने आत्महत्या के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहते हैं कि दुर्खीम ने आत्महत्याओं के संदर्भ में अद्यतन व्याख्याओं को कम महत्व दिया है। देखा जाय तो दुर्खीम सामाजिक कारक के अतिरिक्त आत्महत्या से जुड़े अन्य कारक को कोई भी महत्व नहीं दिया है।

11.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् अब आप दुर्खीम के तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति एवं उनके द्वारा इसके अनुप्रयोग से आप परिचित हो गये होंगे। किस प्रकार दुर्खीम ने अपने संकल्पनाओं के विश्लेषण में इसका व्यापक प्रयोग किया। खासकर दुर्खीम की प्रमुख कृति 'सुसाइड' तो इसका सबसे प्रमुख उदाहरण है। दुर्खीम के द्वारा व्याख्यायित तुलनात्मक अध्ययन के साथ आप इसकी सीमाओं से भी परिचित हो पाए हैं। सोरोकिन एवं बोगार्डस जैसे समाजशास्त्रीयों ने इस संकल्पना की आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया।

आपकी अवधारणाओं को और स्पष्ट करने के लिए हमने दुर्खीम एवं कॉम्ट के योगदानों के मध्य एक तुलनात्मक विश्लेषण भी इकाई के अन्त में किया है।

11.7 सन्दर्भ ग्रंथ

1. रावत, हरिकृष्ण, समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2005
2. पाण्डेय, रवि प्रकाश, समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004
3. N.C.E.R.T. समाजशास्त्र के अग्रणी विचारक, वाल्यूम–द्वितीय, 2009
4. रावत, हरिकृष्ण, भारतीय सामाजिक विचारक, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2007
5. मुखर्जी, रवीन्द्र नाथ : सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, दिल्ली

11.8 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. तुलनात्मक अध्ययन का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करें।
2. दुर्खीम के अनुसार तुलनात्मक अध्ययन के प्रकारों का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करें।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. दुर्खीम के तुलनात्मक अध्ययन का एक आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करें।
2. दुर्खीम एवं कॉम्ट के तुलनात्मक अध्ययन पर सविस्तार प्रकाश डालें।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'सुसाइड' नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं?

   (क) कार्ल मार्क्स (ख) मैक्स वेबर

   (ग) इमाइल दुर्खीम (घ) टॉलकॉट पारसन्स

2. समाजशास्त्र में 'श्रम विभाजन' की संकल्पना को सर्वप्रथम किसने प्रतिपादित किया?

   (क) मैक्स वेबर (ख) इमाइल दुर्खीम

   (ग) ऑगस्ट कॉम्ट (घ) हरबर्ट स्पेंसर

3. 'श्रम विभाजन' का मूल कारण क्या है?

(क) समाज के धार्मिक प्रवृत्ति में वृद्धि

(ख) समाज के अर्थव्यवस्था में बढ़ोत्तरी

(ग) समाज के शुचिता में वृद्धि

(घ) जनसंख्या के नैतिक घनत्व में वृद्धि

4. 'सामाजिक तथ्य' की अवधारणा किसने प्रतिपादित की?

(क) मार्क्स (ख) दुर्खीम

(ग) वेबर (घ) पारसन्स

11.9 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ग), 2. (ख), 3. (घ), 4. (ख)

11.10 पारिभाषिक शब्दावली

Positivism	प्रत्यक्षवाद
Observation	अवलोकन
Testing	परीक्षण
Classification	वर्गीकरण
Methodology	पद्धतिशास्त्र
Method	पद्धति
Social Fact	सामाजिक तथ्य
Synthetic School	समन्वयात्मक सम्प्रदाय
Formal School	स्वरूपात्मक सम्प्रदाय
Mechanical Solidarity	यान्त्रिक एकता
Organic Solidarity	सावयवी एकता

इकाई–12 : इमाईल दुर्खीम का सामूहिक प्रतिनिधान

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 सामूहिक प्रतिनिधान की अवधारणा

12.3 सामूहिक प्रतिनिधान की विशेषताएँ

12.4 सामूहिक प्रतिनिधान की आलोचनाएँ

12.5 सारांश

12.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.7 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

12.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

12.9 परिभाषिक शब्दावली

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- सामूहिक प्रतिनिधान की अवधारणा का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- सामूहिक प्रतिनिधान की विशेषताओं को जानेगें।
- सामूहिक प्रतिनिधान की आलोचनाएँ जान सकेगें।

12.1 प्रस्तावना

दुर्खीम के सामाजिक चिन्तन की परम्परा में समाज से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों क़ा वैज्ञानिक अध्ययन किया गया जिसे धारणा के रूप में स्वीकृतियाँ भी प्राप्त हुई। चिन्तन के इसी क्रम में सामूहिक प्रतिनिधित्व की अवधारणा भी रही है। अन्य तथ्यों एवं सिद्धान्तों की तुलना में सामूहिक प्रतिनिधित्व की अवधारणा सर्वप्रमुख मानी गयी। जिसका कारण है कि इमाईल दुर्खीम ने इसका विश्लेषण सामूहिक तथ्यों के आधार पर किया।

12.2 सामूहिक प्रतिनिधान की अवधारणा

दुर्खीम कहते हैं कि प्रत्येक समाज में कुछ ऐसी विचारधाराएँ, धारणाएँ और भावनाएँ होती है जिन्हें समाज के अधिकांश लोग सामान्य रूप से अपनाते और

स्वीकार करते हैं क्योंकि यह विचारधाराएँ, धारणाएँ और भावनाएँ सबके द्वारा समान रूप से मानी जाती है। जिसके कारण यह सामूहिक रूप से स्वीकार की जाती है इस कारण यह समस्त समूह का प्रतिनिधित्व सामूहिक रूप में करती है। इन विचारों, धारणाओं और भावनाओं का निर्माण समाज के अन्दर सामाजिक चेतना से होता है और सामाजिक चेतना का निर्माण व्यक्तिगत चेतनाओं के मध्य अन्तःक्रिया और उनके पारस्परिक स्वभाव के फलस्वरूप होता है इससे जो सामूहिक विचार, धारणाएँ और भावनाएँ उत्पन्न होती है उनका प्रभाव सम्पर्क के रूप में किसी व्यक्ति विशेष के विचारों, धारणाओं और भावनाओं से नहीं होता है। यही कारण है कि इस व्यवस्थात्मक पुंज को सामूहिक प्रतिनिधित्व के नाम से जाना जाता है। सामूहिक प्रतिनिधित्व को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित पक्षों का विश्लेषण किया गया है।

- प्रत्येक समाज में समानता और विभिन्नता दोनों ही सम्मिलित रहती है। यह भी उचित है कि कुछ व्यक्तिगत भिन्नताएँ भी होती है किन्तु इन विभिन्नताओं के होते हुए भी सामाजिक प्राणियों में विचारधाराएँ, धारणाएँ तथा भावनाएँ निहित होती है।

- इन समानताओं के आधार पर समाज के विभिन्न पक्षों में कुछ विचारधाराएँ, धारणाएँ और भावनाएँ उत्पन्न हो जाती है जिन्हें समाज के अधिकांश व्यक्ति स्वीकार करने लगते हैं और उनके प्रति सामान्य जनमानस में आदर उत्पन्न हो जाता है।

- समाज में सामाजिक अन्तःक्रिया के सम्बन्ध में अथवा व्यक्तिगत चेतना के पारस्परिक प्रभावों के परिणामस्वरूप उपर्युक्त सामान्य विचारधाराएँ, धारणाएँ और भावनाएँ उत्तरोत्तर स्पष्टतया सामाजिक जीवन में आधार के रूप में अपनी उपस्थिति को आवश्यक बना लेती है और अन्त में यह सामाजिक प्रतीकों के रूप में विकसित हो जाती है। जिसका प्रभाव वृहद रूप से समाज के सभी सदस्यों पर पड़ने लगता है।

- यह प्रतीक (विचारधाराएँ, धारणाएँ और भावनाएँ आदि) अधिकत्तर व्यक्तियों के द्वारा मान्य होती है जिसके कारण यह सामूहिक रूप से सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करती है जैसे – राष्ट्रीय झंडा हमारे राजनैतिक जीवन का प्रतीक है जबकि धार्मिक पुस्तके हमारे धार्मिक जीवन के और नेतागण सामूहिक रूप से जनता के भावनाओं के प्रतीक होते हैं। इन्हें ही दुर्खीम ने सामूहिक प्रतिनिधान के नाम से सम्बोधित किया है।

सामूहिक प्रतीक अथवा विचारधाराएँ, धारणाएँ या भावनाएँ समूह के अधिकांश लोगों द्वारा अपनायी जाती है और उनके प्रति उस समाज के अधिकांश सदस्यों के मन में एक आदर की भावना सन्निहित होती है। जिसके कारण यह अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं और समाज में व्यक्तियों के व्यवहारों को उनके व्यक्तिगत इच्छा अथवा भावनाओं के द्वारा प्रभावित किये बिना ही सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करते हैं। इसका मूल कारण है कि इस दृष्टिकोण में सामूहिक

अभिमति शामिल होती है। जिसके कारण यह समाज में शक्तिशाली रूप में अपनी उपस्थिति को दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए भीड़ में व्यक्ति का व्यवहार मानसिक एकता से सम्बद्ध होता है। जिसके कारण उस भीड़ में शामिल सभी सदस्यों के विचारों में एक सामान्य प्रकार का संवेग होता है और उस भीड़ से सभी प्रभावित होते हैं जबकि भीड़ के अनुसार ही जोश, हिंसा, अनैतिक कार्य सभी कुछ संचालित होते हैं। यहाँ पर व्यक्ति की इच्छा अथवा भावना दब जाती है। और उसके स्थान पर सामूहिक इच्छा या भावना कार्यशील हो जाती है। ऐसा केवल भीड़ के सन्दर्भ में ही नहीं स्पष्ट होता है बल्कि समस्त समाज में भी प्रायः दिखाई देती है। सामूहिक प्रतिनिधित्व के रूप में भी प्रतीक व्यक्तियों पर अपना पूर्ण प्रभाव डालते है और व्यक्तियों के सम्मुख ऐसा कोई दूसरा विकल्प नहीं होता है कि इसके बिना वह अन्य किसी प्रकार के व्यवहारों को सृजित तथा आयोजित करे। व्यक्ति की इच्छा इस सन्दर्भ में पूर्णतः दब जाती है क्योंकि सामूहिक प्रतिनिधित्व का उदय सामूहिक चेतना से ही होता है। यही कारण है कि सामूहिक चेतना को चेतनाओं का चेतना कहा जाता है। जिसके फलस्वरूप व्यक्तिगत चेतना दब जाती है अर्थात समाज व्यक्तिगत चेतनाओं द्वारा प्रभावित नहीं होता है। इस क्रम में केवल असाधारण व्यक्ति अथवा व्यवहार ही इसका विरोध कर सकते हैं। यहाँ यह कहा जा सकता है कि सामूहिक प्रतिनिधित्व, सामूहिक चेतना या जनमत नहीं है बल्कि इस सन्दर्भ में वह उसके प्रतीक होते हैं।

अतः स्पष्ट है कि सामूहिक प्रतिनिधान समग्र रूप से सामाजिक विचारों की संगठित व्यवस्था को दर्शाते हैं। जिससे सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक रूप से समाज प्रभावित होता है।

12.3 सामूहिक प्रतिनिधान की विशेषताएँ

सामूहिक प्रतिनिधान के दो प्रमुख विशेषताएँ है। जिसके अन्तर्गत प्रथम वेशेषता यह है कि इसका प्रसार सम्पूर्ण समाज में होता है जबकि इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इसका व्यक्ति के ऊपर नियंत्रणात्मक प्रभाव होता है। सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष में इस प्रकार के क्रियान्वित सामूहिक प्रतिनिधान अनेक प्रकार के महत्त्वपूर्ण कार्यों को करते हैं। जिसके अन्तर्गत सामाजिक संरक्षण के साथ ही साथ सामाजिक संघर्ष से समाज को सुरक्षित और संरक्षित किया जा सकता है। समाज की एकता उसके सगठनात्मक गठन, संगठन तथा समाजीकरण की प्रक्रिया में सामूहिक प्रतिनिधान विशेष रूप से सहयोगी होते हैं। सामूहिक प्रतिनिधित्व के कारण ही समाजीकरण की प्रक्रिया प्रत्यक्ष रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है। सामूहिक प्रतिनिधान सामूहिक दबाव को भी बनाते हैं जिससे व्यक्ति के कार्य समाजोपयोगी और नियंत्रित रहते हैं।

इमाईल दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित सामूहिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त समाज के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगितावादी पक्ष को दर्शाता है। यही कारण है कि इसके बिना सामाजिक और व्यक्तिगत व्यवहारों के संगठन पर

नियंत्रण सम्भव नहीं हो पायेगा जबकि इनकी उपस्थिति में व्यक्ति द्वारा समाज के सन्दर्भ में किया जाने वाला कार्य तथ्यपूर्ण, तर्कपूर्ण तथा उपयोगी होता है। इस दशा में व्यक्ति सरलतापूर्वक अपनी सामाजिक प्रस्थितियों से अनुकूलन स्थापित कर लेता है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया सामूहिक प्रतिनिधित्व के कारण होती है जिसे सामुदायिक प्रतिनिधित्व के रूप में समाज की स्वीकृति प्राप्त होती है।

12.4 सामूहिक प्रतिनिधान की आलोचनाएँ

इमाईल दुर्खीम ने सामाजिक प्रतिनि्धित्व के आधार पर समाज को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है तथा सामाजिक कारण के आधार पर उन्होंने अपने विभिन्न सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया। टार्ड ने सामुदायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्तों को आलोचित किया इनकी आलोचना के दो महत्त्वपूर्ण बिन्दु थे जो निम्न प्रकार से हैं :

- दुर्खीम का कथन हैं कि सामूहिक प्रतिनिधित्व व्यक्ति से ऊपर और व्यक्ति से बाहर होते हैं। वैज्ञानिक आधार पर यह तर्क अनुचित है। इस सन्दर्भ में टार्ड कहते हैं कि "मैं यह मानता हूँ कि यह समझना कठिन है कि व्यक्तियों को निकाल कर व्यक्ति विहिन समाज उपयोगी होगा और इस सन्दर्भ में हम किसी समाज को पा सकते हैं।"

- दुर्खीम ने सामूहिक प्रतिनिधान को सबसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक तथ्य के कारण माना है। जिसकी प्रमुख विशेषता यह है कि व्यक्ति पर इसका एक बाध्यतामूलक प्रभाव पड़ता है। टार्ड का कथन है कि "दुर्खीम ने इस प्रकार के दृष्टिकोण के माध्यम से सामाजिक तथ्य के क्षेत्र को अत्यन्त सीमित तथा संकुचित कर दिया है।"

दुर्खीम के सामूहिक प्रतिनिधान से सम्बन्धित धारणाएँ मानव के व्यवहार और क्रियाओं पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण हेतु सामाजिक कारको को महत्त्वपूर्ण मानते हैं इस कारण सामाजिक कारक के रूप में इमाईल दुर्खीम के विचार समाजशास्त्रीय धारणा के रूप में अत्यन्त प्रभावशाली तथा उपयोगी रहें हैं।

12.5 सारांश

इमाईल दुर्खीम की सामूहिक प्रतिनिधित्व की अवधारणा समाजशास्त्र के महान कृतियों में अप्रतिम योगदान का आभास कराता है। मानव के व्यवहार और क्रियाओं पर समाज के अमिट छाप का स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत करता है। सामूहिक प्रतिनिधान के अन्तर्गत इमाईल दुर्खीम ने इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर यह वैज्ञानिक पक्ष प्रस्तुत किया है। समाज को सबकुछ मान लेना ही शायद दुर्खीम के लिए और सामाजिक वैज्ञानिकों के लिए उचित न हो किन्तु इस अवधारणा के माध्यम से दुर्खीम ने सामाजिक कारकों के प्रति समाजवैज्ञानिकों का प्रबल ध्यान आकृष्ट किया जिससे समाजशास्त्र के विकास को महत्त्वपूर्ण दिशा प्राप्त हुई।

12.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र : आधुनिक समाजवैज्ञानिक सिद्धान्त परिचय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1991.
2. रविन्द्र नाथ मुखर्जी : सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन जवाहर नगर दिल्ली, 2003.
3. यादव, गोपाल : सामाजिक संदर्श : सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी वर्ष 1997.
4. सिंह, श्यामधर एवम् सिंह, अशोक कुमार : आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी वर्ष 2014.
5. दोषी, एस, एल. जैन, पी. सी. इमाईल दुर्खीम रावत पब्लिकेशन जवाहर नगर जयपुर, वर्ष 1996.
6- De La Division du travail Social, Paris- 1893.
7- Lee regles de la mehtode socialogique Paris-1895.
8- Le Suicide Paris-1897.
9- Les forms Elementarie de la vie religieuse Paris-1912.
10- Education et Sociology Paris-1922.
11- Sociologie et Philosophy Paris-1924.
12- L' Education morale Paris-1925.

12.7 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सामूहिक प्रतिनिधान से आप क्या समझते हैं ?
2. सामूहिक प्रतिनिधान के कितने प्रभावी पक्ष होते हैं ?
3. सामूहिक प्रतिनिधान की प्रमुख विशेषताएँ कौन–कौन सी हैं ?
4. सामूहिक प्रतिनिधान की आलोचना के कितने स्वरूप को टाडे ने प्रस्तुत किया है?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सामूहिक प्रतिनिधान को स्पष्ट करते हुए उसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए?
2. सामूहिक प्रतिनिधान को बताते हुए उसकी आलोचना कीजिए ?

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. इमाईल दुर्खीम ने सामूहिक प्रतिनिधान में किसे महत्त्वपूर्ण माना है ?

(क) सामूहिक विचार को (ख) सामूहिक तथ्य को

(ग) सामूहिक सिद्धान्त को (घ) केवल भावनाओं को

2. इमाईल दुर्खीम ने सामूहिक प्रतिनिधान के कितने विभेद को बताया है?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पाँच

3. इमाईल दुर्खीम ने सामूहिक प्रतिनिधान की विशेषताओं का उल्लेख किया है?

(क) चार (ख) दो

(ग) तीन (घ) पाँच

4. इमाईल दुर्खीम ने सामूहिक प्रतिनिधान की आलोचना किसने की है?

(क) टार्ड (ख) मर्टन

(ग) हेनरी बर्गसन (घ) अगस्त काम्टे

12.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (क) 2. (क) 3. (ख) 4. (क)

12.9 पारिभाषिक शब्दावली

Collective Representation	सामूहिक प्रतिनिधित्व
Concept	अवधारणा
Logo	प्रतीक
Characteristics	विशेषता
Social Fact	सामाजिक तथ्य

इकाई–13 : इमाईल दुर्खीम का एकात्मकता के प्रकार

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 एकात्मकता के प्रकार

13.3 यांत्रिक एकात्मकता

13.4 यांत्रिक एकात्मकता की विशेषताएँ

13.5 सावयवी एकात्मकता

13.6 सावयवी एकात्मकता की विशेषताएँ

13.7 यांत्रिक तथा सावयवी समाज की तुलना

13.8 सारांश

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.10 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

13.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

13.12 परिभाषिक शब्दावली

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- एकात्मकता के अर्थ एवं अवधारणा को आप समझ सकेंगें।
- एकात्मकता के उद्देश्यों को जान सकेंगें।
- एकात्मकता की विशेषताओं को जान सकेगें।
- एकात्मकता के माध्यमों को जान सकेगें।
- यांत्रिक एवं सावयवी समाज की तुलना कर सकेगें।

13.1 प्रस्तावना

श्रम विभाजन की विवेचना करते हुए इमाईल दुर्खीम ने समाज के निर्धारित स्वरूप में विभिन्नता को सामाजिक निर्माण के लिए आवश्यक माना है। दुर्खीम यह जानना चाहते हैं कि समाज का निर्माण किस प्रकार से होता है और उसमें निहित विभिन्न स्वार्थों की पूर्ति किस प्रकार से होती है। सामाजिक श्रम और सामाजिक समस्या के सार्थक प्रयास समाज के लिए सुदृढ़ता को दर्शाते हैं। श्रम विभाजन के परिप्रेक्ष्य में दुर्खीम व्यक्ति और समाज के मध्य सम्बन्धों की चर्चा नैतिक जीवन की व्यख्या को प्रत्यक्षवादी विज्ञानों के आधार पर स्पष्ट करते हैं। दुर्खीम ने व्यवस्था को तथ्यात्मक सामग्री के आधार पर स्थापित किया है। आदिम समाज में प्रचलित कानून की व्याख्या करते हुए वह यह स्वीकार करते हैं कि उस समय के प्रचलित कानून प्रायः अलिखित और परम्परागत होते थे। जबकि आधुनिक समाज में ऐसे कानून प्रजातांत्रिक और सहयोगी होते हैं। समाज की सफल व्यवस्था कानून एवं नैतिकता के प्रभावशाली स्वरूप के आधार पर सामाजिक जीवन की पद्धति को निर्धारित करते हैं। श्रम विभाजन के सन्दर्भ में उनका स्पष्ट दृष्टिकोण है कि जब–जब श्रम विभाजन विकसित होगा तब–तब समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। उपयोगितावाद की आवश्यकता जितनी अधिक होगी समाज में व्यक्ति उतना ही अधिक समृद्धि को प्राप्त करेगा।

13.2 एकात्मकता के प्रकार

इमाईल दुर्खीम ने एकात्मकता के आधार पर समाज को दो भागों में विभाजित किया है जिसमें प्रथम को यांत्रिक एकात्मकता और दूसरे को सावयवी एकात्मकता के रूप में स्वीकार करते हैं।

13.3 यांत्रिक समाज और उसकी सुदृढ़ता

दुर्खीम अपने समाजशास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत श्रम विभाजन नामक घुस्तक में व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों की व्याख्या महत्त्वपूर्ण ढंग से करते हैं। वह ऐसे सम्बन्धों को केन्द्रीय इकाई मानते हैं। इस अध्ययन में वह समाज के विभिन्न स्वरूपों तथा प्रजातियों एवं विष्वासों के साथ ही साथ भिन्न–भिन्न आर्थिक स्तर के व्यक्तियों से समाज के सम्बद्धता के आधार का अध्ययन विश्लेशण करते हैं। समाज की यांत्रिक व्यवस्था में वह यह पहचानने का प्रयास करते हैं कि किस प्रकार व्यक्ति अपना परिचय समाज से करता है। दुर्खीम ऐसी व्यवस्था को समाजशास्त्रीय रूप से द्विपक्षीय मानते हैं। वह कहते हैं कि दोनों ही प्रकार के समाजों में सुदृढ़ता पायी जाती है। इस सुदृढ़ता को व्यक्त करने के पूर्व दुर्खीम ने श्रम विभाजन के माध्यम से समाज की दशा की निर्भरता को प्रकट किया है। श्रम विभाजन का प्रत्यक्ष सम्बन्ध विशेषीकरण की दशा पर निर्भर करता है।

इस प्रकार जब श्रम विभाजन बढ़ता है तो वह अर्थ व्यवस्था के स्वरूप में परिवर्तन लाता है किन्तु इस प्रकार का परिवर्तन केवल यहीं तक सीमित नहीं रहता है। इसका प्रभाव समाज के सभी अंगों पर पड़ता है। यह प्रभाव राजनीतिक प्रशासनिक और न्याय सम्बन्धित कार्यों पर समान रूप से दिखलाई पड़ता है।

दुर्खीम यांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत सामूहिक चेतना को यांत्रिक चेतना का मूल आधार मानते हैं। वह यह बताते हैं कि आदिम समाज में सामाजिक सम्बद्धता, एकता और सुदृढ़ता को बनाये रखने के लिए कुछ निश्चित कारक होते हैं। इन कारकों में सबसे अधिक शक्तिशाली सामूहिक चेतना होती है। यांत्रिक समाज का विवेचन करते हुए यह कहते हैं कि समाज एक निश्चित आचार संहिता के आधार पर अपने आप को बनाये रखता है। इस आचार संहिता का आधार समाज में व्यक्तियों का विश्वास व संवेग होता है। यहाँ विश्वास के परिप्रेक्ष्य में वह यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि इसका खण्डन तार्किक आधार पर नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। विश्वास की ही भांति संवेग भी महत्त्वपूर्ण होता है। समाज में संवेग, भावनाओं, विचारों और मुहावरों से परिपूर्ण होते हैं। यह संवेग व्यक्ति और वस्तु दोनों के प्रति होते हैं। इन्हें देखा नहीं जा सकता है किन्तु इनके प्रतीकों के माध्यम से जाना जा सकता है।

दुर्खीम सामूहिक चेतना के वास्तविकता को अमूर्त रूप में व्यक्त करते हैं जो विश्वास, मूल्य और संवेगों के माध्यम से समाज के विभिन्न संस्थाओं को प्राप्त होता है। जिससे यह संस्थाएँ शून्य में न रहकर वास्तविक रूप में दिखलाई देती है। दुर्खीम यह मानते हैं कि सामूहिक चेतना पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है। जबकि परिवर्तन के आधार पर सामूहिक चेतना के मूल में कोई परिवर्तन नहीं होता है परिवर्तन केवल बाहरी आवरण में होता है। यह परिवर्तन भी सतही होता है। जबकि वास्तविक स्वरूप लगभग शाश्वत होता है। दुर्खीम यह कहते हैं कि इस प्रकार की निरन्तरता की प्रकृति सम्पूर्ण सभ्यता को एक सूत्र में बाँधती है

सामूहिक चेतना के प्रभावी पक्ष को प्रकट करते हुए दुर्खीम कहते हैं कि किसी व्यक्ति की चेतनाएँ दो प्रकार की होती है जिसमें एक चेतना उसकी स्वयं की होती है इसके अन्तर्गत उस व्यक्ति की इच्छाएँ (पसन्द–नापसन्द) सम्मिलित होती है। यह उसकी अभिरूचियों और समाज को देखने के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। जबकि दूसरी चेतना सामूहिक होती है। जो सामान्य होती है अर्थात् जैसा अन्य व्यक्ति या समाज सोचता है वैसा ही व्यक्ति भी सोचता है। दुर्खीम कहते हैं कि व्यक्ति की चेतना की तुलना में सामूहिक चेतना अर्थात जन चेतना अधिक शक्तिशाली होता है। यांत्रिक समाजों में जनशक्ति को हमेशा सर्वोपरि

समझा जाता है।

सामूहिक चेतना का दबाव प्रायः सभी समाज में समान रूप से होता है। यांत्रिक समाज सामूहिक चेतना को अधिक महत्त्व प्रदान करता है इसका तात्पर्य यह है कि सामूहिक चेतना अधिक शक्तिशाली होता है। व्यक्ति सामूहिक चेतना का अवलोकन यांत्रिक समाज में नहीं कर पाता है किन्तु सावयवी समाज में वैयक्तिक चेतना कभी–कभी प्रभावी हो जाती है।

13.4 यांत्रिक समाज की विशेषताएँ

दुर्खीम व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों के उद्विकासीय स्थिति का मूल्यांकन करता है। वह यह मानते हैं कि व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध परस्पर दो भागों में विभाजित है। जिससे समाज में सुदृढ़ता का अनिवार्य तत्व उत्पन्न होता है। इन तत्वों में अविभेदीकृत समाज की व्याख्या महत्त्वपूर्ण है। समाज की इस स्थिति को वह आदिम तथा ग्रामीण समाज में पाते हैं। उनका विचार है कि इस प्रकार के समाज में भी भेद–भाव तथा स्तरीकरण पाया जाता है किन्तु यह सभी व्यवस्था आनुवंशिकता पर आधारित होती है जबकि स्तरीकरण की व्यवस्था नाम मात्र का होता है। यांत्रिक समाज में व्यक्ति का स्थान द्वैतीयक होता है। दुर्खीम व्यक्तिवाद के विरोधी थे। उनका कथन है कि वैयक्तिक चेतना सामूहिक चेतना के सम्पर्क में आते ही गौण हो जाती है। सामूहिक चेतना का तात्पर्य समुदाय के विश्वास से और समाज के सदस्यों के सांवेगिक विभेद से लगाया जाता है। सामूहिक चेतना के अन्तर्गत व्यक्ति और समय दोनों को महत्त्वपूर्ण माना जाता है किन्तु सामूहिक चेतना इन दोनों से ऊपर होती है। दुर्खीम यह बताते हैं कि जब कभी व्यक्ति समाज के विश्वास और संवेगों को अघात पहुँचाता है तो ऐसे अपराध के फलस्वरूप उसे दण्ड देने का कार्य समाज करता है। यहाँ दमनकारी कानून का उद्देश्य समाज की सुदृढ़ता को बनाये रखना होता है। आचार संहिता के सन्दर्भ में दुर्खीम इस बात पर बल देते हैं कि समाज की सुदृढ़ता विभिन्न आचारों पर निर्भर करती है क्योंकि समाज नैतिकता के धरातल पर खड़ा होता है। यांत्रिक समाज नैतिकता के द्वारा ही अपनी सुदृढ़ता को बनाये रखते हैं।

13.5 सावयवी समाज

इमाइल दुर्खीम सावयवी समाज में संविदा के महत्त्व को सर्वोपरि मानते हैं। वह संविदा की विशेषता के आधार पर समाज के विशेषता को श्रम विभाजन के स्वरूप को दर्शाते हुए कहते हैं कि समाज के सदस्य समाज में अपनी भूमिका को कुछ निश्चित शर्तों के आधार पर सम्पादित करते हैं। इस प्रकार का समाज व्यक्ति की संविदागत स्थिति को स्वीकार करते हुए निश्चित व्यवस्था का निष्पादन

करता है। दुर्खीम सावयवी समाज के संविदा को विश्लेषणात्मक आधार पर स्पष्ट नहीं करते हैं। दुर्खीम का कथन है कि व्यक्तियों के मध्य जो संविदाएँ होती है। वह व्यक्तियों के सामाजिक संदर्भ द्वारा निश्चित की जाती है। इसका तात्पर्य है कि व्यक्ति के ऊपर सामाजिक संरचना का प्रभाव अधिक होता है। यहाँ आधुनिक समाज में संविदा बनाने का प्रधान कार्य समाजशास्त्रियों के स्थान पर अर्थशास्त्रियों की सक्रियता अधिक होती है। आधुनिक समाज में समाज विभेदीकृत होता है। इस आधार पर अनुबन्ध अथवा संविदा विभेदीकरण अभिव्यक्ति मात्र को प्रकट करता है। दुर्खीम सावयवी समाज को सापेक्षिक रूप से दर्शाने का प्रयास करता है। सावयवी समाज कोई सांगोपांग व्याख्या को प्रकट नहीं करता है। समाज में विभेदीकरण, विशेषीकरण और गैर–बराबरी अधिक मात्रा में बनी रहती है। यह विभेदीकरण ही अनुबन्ध सम्बन्धों को जन्म देता है। समाज में जितना अधिक विभेदीकरण होगा उतने ही लोगों के मध्य सौदेबाजी के सम्बन्ध संविदागत होते जायेगे। सावयवी समाज में सामूहिक चेतना प्रायः अनुपस्थित होता है और इसके स्थान पर संविदागत सम्बन्ध अधिक होते हैं। सावयवी समाज में दमनकारी कानून का स्थान प्रतिकारी कानून ले लेता है।

दुर्खीम के सावयवी समाज की अवधारणा उद्विकासीय अध्ययन का परिणाम है। आरम्भिक समाज में समाज की आवश्यकताएँ बहुत सीमित थी इन आवश्यकताओं की पूर्ति सामान्य श्रमविभाजन के द्वारा हो जाती थी। किन्तु जब समाज की आवश्यकताएँ बढ़ी तो समाज का विभेदीकरण भी बढ़ा है इस बढ़े हुए विभेदीकरण के कारण जटिलताएँ भी बढ़ी है। परिणामस्वरूप सावयवी समाज का उदय हुआ। सावयवी समाज नैतिकता घनत्व के कारण विशेषता युक्त स्वरूप को ग्रहण करता है।

दुर्खीम ने सावयवी समाज के लिए श्रम विभाजन को उत्तरदायी माना है। वह सावययवी समाज को सामाजिक सुदृढ़ता के आधार पर स्पष्ट करते हैं। दुर्खीम द्वारा प्रतिप्रादित श्रम विभाजन नामक पुस्तक के प्रथम भाग में सावयवी समाज एवं उसकी सुदृढ़ता का विश्लेषण किया गया है।

दुर्खीम श्रम विभाजन के आधार को व्यक्ति द्वारा हित, रूचि, अथवा संख्या के आधार पर स्पष्ट नहीं करता है। वह इसे विशुद्ध सामाजिक प्रक्रिया मानता है। इस प्रक्रिया के प्रथम पक्ष जनसंख्या वृद्धि तथा दूसरा पक्ष नैतिकता को बताते हैं। उनका विचार है कि यह समाज का नैतिक दायित्व है कि बढ़ती जनसंख्या के साथ प्रत्येक व्यक्ति को समाज में उचित स्थान और कार्य प्रदान किया जाय।

13.6 सावयवी समाज की विशेषता

यांत्रिक समाज जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि तथा जनसंख्या के नैतिक घनत्व में वृद्धि के कारण बराबर सावयवी समाज का स्वरूप ग्रहण करता है। इस समाज में विभेदीकरण की जटिल प्रक्रिया पायी जाती है जिसका कारण है कि सावयवी समाज की आवश्यकताएँ निरन्तर बढ़ती रहती है। समाज में विशिष्टीकरण जितना अधिक होगा उतना ही अधिक समाज की विशिष्ट आवश्यकताएँ होगी। विशिष्टीकरण की यह विशेषता समाज में विभेदीकरण को उजागर करती है। यह विशेषता सावयवी समाज की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

समाज के विभिन्न अंगों एवं व्यक्तियों के अन्योन्यायन की विधि होती है। यह वृद्धि प्रकार्यात्मक निर्भरता को दर्शाती है। क्योंकि औद्योगिक समाज में कोई भी कार्य अपने आप में पूर्ण नहीं होती है। प्रत्येक कार्य एक दूसरे पर निर्भर करता है। दुर्खीम यह स्वीकार करते हैं कि प्रकार्यात्मक निर्भरता के कारण सम्पूर्ण समाज में सम्बद्धता पायी जाती है।

श्रम विभाजन में वृद्धि तथा विभिन्न व्यवसायों और पेशों का विकास होता है। दुर्खीम कहते हैं कि सावयवी समाज में एक प्रकार का गतिशील घनत्व होता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि समाज में विभेदीकरण होता है तो इसके परिणाम स्वरूप समाज के व्यक्तियों में प्रभावपूर्ण सम्पर्क होता है। दुर्खीम सावयवी समाज में खण्डात्मक स्वरूप को दर्शाते हैं। दुर्खीम का तर्क है कि बढ़ती हुई जनसंख्या जीविकोपार्जन की प्रतियोगिता की अपेक्षा अपनी महत्वकांक्षाओं और प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए संघर्ष करती है। यह प्रतिष्ठा समाज से मिलती है जिसके कारण श्रम विभाजन में वृद्धि होती है और विभिन्न व्यवसायों तथा पेशों का विकास होता है।

दुर्खीम सामूहिक प्रतिनिधान के अवधारणा को सावयवी समाज का महत्त्वपूर्ण पक्ष मानते हैं। वह इसे सम्बन्धों के मूल में समाज के स्वरूप को दर्शाती है। समाज में लोगों के जो विचार, संवेग, अनुबंध, रीति–रिवाज आदि होते हैं। इन सभी की अभिव्यक्ति सामूहिक प्रतिनिधानों में होती है। सामूहिक प्रतिनिधान एक प्रकार से सावयवी समाज की साझा संस्कृति होती है। इस प्रकार सामूहिक प्रतिनिधान सावयवी समाज की वह सामान्य संस्थाएँ हैं जो साधारण जन–जीवन का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस प्रकार जो स्थान यांत्रिक समाज में सामूहिक चेतना का है वही स्थान सावयवी समाज में सामूहिक प्रतिनिधान का है।

दुर्खीम ने प्रतिकारी कानून के सन्दर्भ में यह स्पष्ट किया है कि यदि व्यक्तियों का सामाजिक जीवन एक जैसा है तो वे समान विश्वासों और संवेगों में बराबर भागीदारी करते हैं। ठीक इसके विपरीत प्रतिकारी कानून सामाजिक विभेदीकरण का अभिसूचक है। सामान्य जीवन में प्रतिकारी कानून को कई बार

पुनर्स्थापना कानून कहते हैं। सावयवी समाज की इस प्रकार की प्रतिकारी कानून के रूप में एक विशेष पहचान होती है।

13.7 यांत्रिक तथा सावयवी समाज की तुलना

यह कहा जाता है कि विशुद्ध रूप से कोई भी यांत्रिक समाज, यांत्रिक नहीं होता और न ही सावयवी समाज, सावयवी ही होता है, क्योंकि दोनों ही समाज उद्विकास की प्रक्रिया से गुजरता है। ऐसा भी होता है कि कोई यांत्रिक समाज विकास करते हुए आगे बढ़ जाता है और कोई समाज पीछे की ओर चला जाता है किन्तु इन समाजों में आपस में निरन्तरता बनी रहती है। इस प्रकार समाज के गतिशील होते हुए भी इनमें आपस में कुछ अन्तर होता है। दुर्खीम समाज के दोनों प्रकारों के माध्यम से व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध के साथ ही साथ समाज मे उनके व्यवहार क्रिया किस प्रकार से घटते बढ़ते रहते हैं को बताना चाहते थे। दुर्खीम का यह अध्ययन निष्कर्ष प्राप्त होता है कि दोनों समाजों में सम्पूर्ण सत्ता या प्रभाव समाज में होता है जिसका समाज ही अन्तिम निर्णायक है और व्यक्ति तो समाज के संकेतों पर अपनी गतिविधियों को करता है। दुर्खीम ने यांत्रिक और सावयवी समाज के मध्य भेद को निम्न प्रकार से प्रकट किया है

यांत्रिक समाज विशेषतः आदिम, या ग्रामीण समाज होता है। इस समाज में लोगों की स्थिति लगभग एक समान ही होती है। सभी की व्यवहारिक क्रिया दशा एक जैसी ही होती है। इस प्रकार के समाज में गैर–बराबरी न्यूनत होती है और सजातीयता अधिकतम। इस प्रकार यांत्रिक समाज में भेदभाव नहीं होता है जबकि सावयवी समाज में विभेदीकरण होता है। इसमें कार्य बंटे होते हैं और प्रत्येक कार्य को करने के लिए अलग लोग होते हैं। कार्य की दक्षता या विशिष्टता इस समाज को विकसित और विभेदीकृत बना देती है। नगरीय तथा महानगर समाज सावयवी समाज होते हैं।

- दुर्खीम के तत्कालीन समाज में उपयोगितावादी और सुखवादी प्रवृत्ति को प्रमुख स्थान दिया जाता था। जिसे दुर्खीम स्वीकार नहीं करता था। वह कहता हैं कि यांत्रिक समाज में व्यक्तिवाद का अभाव पाया जाता है और सावयवी समाज में वैयक्तिक चेतना को स्वतंन्त्रता दी जाती है। सावयवी समाज में व्यक्ति स्वतन्त्र होता है। व्यक्ति पर नियन्त्रण केवल बाजार का होता है। बाजार से सम्बन्धित अनुबन्ध समाज द्वारा स्वीकृत होतें हैं जिसमें समाज ही प्रमुख होता है।

- यांत्रिक समाज की आत्मा उसके विश्वासों और संवेगों में निहित होती है। यदि कोई जानबूझकर या अनजाने में अपराध करता है तो समाज उसे दण्ड देता

है। इसमें विश्वास और संवेग शक्ति के वह स्रोत होते हैं जिनके माध्यम से समाज की एकता और सम्बद्धता बनी रहती है जबकि सावयवी समाज में सामूहिक चेतना क्षीण हो जाती है। यहाँ समाज की एकता को बनाये रखने का काम सामूहिक प्रतिनिधान करते हैं। इस समाज में जो गतिशीलता पायी जाती है वह संविदा पर आधारित होती है क्योंकि समाज में एकाधिक विशिष्टीकरण पाया जाता है। जिसमें अनेक संस्कृतियाँ तथा भाषाएँ होती है। इस प्रकार यांन्त्रिक समाज की सुदृढ़ता, सामूहिक चेतना और सावयवी समाज की सुदृढ़ता, सामूहिक प्रतिनिधान द्वारा बनी रहती है।

- यांत्रिक समाज अपराध और दण्ड की दृष्टि से सावयवी समाज से सर्वथा भिन्न होता है। यांत्रिक समाज में अपराध वह है जो सामूहिक चेतना को ठेस पहुँचाए, उस पर आघात करे जबकि सावयवी समाज में अपराध वह है जो संविदा या अनुबन्ध का उल्लंघन करे। यहाँ अपराध व्यक्तियों पर क्रेन्द्रित होता है जबकि यांत्रिक समाज का अपराध सीधा समूह से सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार यांत्रिक समाज में दमनकारी कानून होता है, जिसका तात्पर्य है कि वह कभी भी भविष्य में सामूहिक विश्वास और संवेग को संदेह की दृष्टि से नहीं देखे। सावयवी समाज में प्रतिकारी या पुनर्स्थापना कानून होता है। सावयवी समाज सुधारवादी होता है। इसका उद्देश्य दण्ड द्वारा व्यक्ति की समाज में पुर्नस्थापना करना है।

- यांत्रिक समाज में परम्परागत आधार पर व्यक्ति अपना कार्य करते हैं। इसमें जो भी निर्धारित होता है वह सब मौखिक ही होता है। व्यक्ति पूर्णतया परम्परागत आचार और नैतिकता के आधार पर बधे होते हैं। यांत्रिक समाज की नींव नैतिकता और आचार की भूमि पर अवस्थित होती है जबकि सावयवी समाज में नैतिकता की भूमिका बहुत सीमित होती है। इसका स्थान इस समाज में संविदा ले लेता है। इस प्रकार यांत्रिक समाज की सुदृढ़ता नैतिकता पर आधारित होती है जबकि सावयवी समाज की सुदृढ़ता अनुबन्ध पर निर्भर होती है।

- दुर्खीम कहते हैं कि जिस प्रकार की सुदृढ़ता यांत्रिक समाज में होती है, कुछ वैसी ही सुदृढ़ता सावयवी समाज में भी होती है। यांत्रिक समाज में विशिष्टीकरण नहीं होता है लोग परस्पर मिल–जुल कर कार्य करते हैं जबकि सावयवी समाज में व्यक्ति गुमनाम हो जाता है। इसमें व्यक्ति का सम्बन्ध अन्य व्यक्तियों से केवल कार्यों के सन्दर्भ में होता है। ऐसा सम्बन्ध प्रकार्यात्मक निर्भरता पर आधारित होता है। यांत्रिक समाज अपने सदस्यों को प्रत्यक्ष रूप से जोड़ता है जबकि सावयवी समाज में यह जोड़ या एकता प्रकार्यात्मक निर्भरता द्वारा आती है।

- यांत्रिक समाज में संस्कृति और जीवन पद्धति सजातीय होते हैं। जिसके

कारण व्यक्ति एक दूसरे के साथ प्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहते हैं। सावयवी समाज में ऐसा सम्भव नहीं होता है क्योंकि इस समाज में सांस्कृतिक, क्षेत्रीय, व्यावसायिक विभिन्नता में खण्डात्मक विभाजन होता है। इस प्रकार यांत्रिक समाज की संरचना सम्बद्धता में बंधी होती है जबकि सावयवी समाज की व्यवस्था खण्डात्मक होती है।

- यांत्रिक समाज भाई बन्धुत्व का समाज होता है। यह सजातीय समाज है। बन्धुत्व की भावना सावयवी समाज में अनुपस्थित होती है। इसमें अतिविभेदीकरण देखने को मिलता है। यांत्रिक समाज में संरचना प्रायः सामान्य होती है, जबकि सावयवी समाज में संरचना असामान्य भी होती है।

13.8 सारांश

दुर्खीम ने सामाजिक निमार्ण हेतु सामाजिक विभिन्नता को आवश्यक माना है। विभिन्नता के इस परिप्रेक्ष्य में सामाजिक श्रम और सामाजिक समस्या के सार्थक प्रयास को समाज की सुदृढ़ता के लिए आवश्यक मानते हैं। श्रम विभाजन के महत्त्व को स्वीकार करते हुए समाज की उपयोगितावादी आवश्यकताओं द्वारा समाज में व्यक्ति की समृद्धि का अध्ययन करते हैं। आदिम समाजों के सन्दर्भ में वह समाज की संरचना को यांत्रिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हैं जिसमें विश्वास तथा सामूहिक चेतना महत्त्वपूर्ण होती है। यह समाज एक निश्चित आचार संहिता के आधार पर अपने आप को बनाये रखता है। जबकि सावयवी समाज के अन्तर्गत वह संविदा को महत्त्वपूर्ण मानते हैं इस समाज की विशेषता का महत्त्वपूर्ण आधार श्रम विभाजन और इसका विशेषीकरण होता है। सावयवी समाज को आधुनिक समाज के रूप में विश्लेषित किया जा सकता है। इस समाज में विशिष्टिकरण महत्वपूर्ण होता है जबकि दुर्खीम यह स्वीकार करते हैं कि प्रकार्यात्मक निर्भरता के कारण सम्पूर्ण समाज में सम्बद्धता पायी जाती है।

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, हरिश्चन्द्र : आधुनिक समाजवैज्ञानिक सिद्धान्त परिचय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1991.
2. यादव, गोपाल : सामाजिक संदर्श : सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी वर्ष 1997.
3. सिंह, श्यामधर एवम् सिंह, अशोक कुमार : आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी वर्ष 2014.

4. दोषी, एस, एल., जैन, पी. सी. : इमाईल दुर्खीम रावत पब्लिकेशन जवाहर नगर जयपुर, वर्ष 1996.

5- De La Division du travail Social, Paris- 1893.

6- Lee regles de la mehtode socialogique Paris-1895.

7- Le Suicide Paris-1897.

8- Les forms Elementarie de la vie religieuse Paris-1912.

9- Education et Sociology Paris-1922.

10- Sociologie et Philosophy Paris-1924.

11- L' Education morale Paris-1925.

13.10 बोध के प्रश्न

(क) लधु उत्तरीय प्रश्न

1. यांत्रिक समाज किसे कहते हैं?
2. यांत्रिक चेतना का मूल आधार क्या है?
3. सावयवी समाज किसे कहते हैं?
4. सावयवी समाज का महत्त्वपूर्ण पक्ष क्या है?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. यांत्रिक समाज को स्पष्ट करें।
2. यांत्रिक समाज की विशेषताओं को विस्तार पूर्वक समझाइयें।
3. सावयवी समाज को स्पष्ट करते हुए उसकी विशेषताओं को बताइये।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. इमाईल दुर्खीम का जन्म कहाँ हुआ था?

(क) फ्रान्स (ख) इटली

(ग) अमेरिका (घ) जर्मनी

2. इमाईल दुर्खीम ने यांत्रिक समाज की व्याख्या उन्होंने अपनी किस कृति में की है?

(क) ली सुसाईड (ख) सोशियोलाजी एट फिलासफी

(ग) द डिविजन ऑफ लेबर इन सोसाईटी (घ) शिक्षा नीतिशास्त्र

3. इमाईल दुर्खीम चेतना का मूल आधार किसे मानते हैं ?

(क) व्यक्तियों की सम्बद्धता को (ख) समाज की सुदृढ़ता को

(ग) सामाजिक परिचय को (घ) सामूहिक चेतना को

4. इमाईल दुर्खीम की विचारधारा पर सर्वाधिक प्रभाव किसका था ?

(क) मोन्टेस्क्यू (ख) मर्टन

(ग) हेनरी बर्गसन (घ) अगस्त कान्टे

5. इमाईल दुर्खीम ने व्यवस्था का विश्लेषण किस आधार पर किया है ?

(क) स्वार्थों के आधार पर (ख) तथ्यों के आधार पर

(ग) सावयवी आधार पर (घ) श्रम विभाजन के आधार पर

6. इमाईल दुर्खीम ने सावयवी समाज में किसके महत्त्व को सर्वोपरि माना है?

(क) व्यक्ति को (ख) तथ्यों को

(ग) आवश्यकता को (घ) संविदा को

13.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (क) 2. (ग) 3. (घ) 4. (क) 5. (ख)
6. (घ)

13.12 पारिभाषिक शब्दावली

Solidarity	एकात्मकता
Mechanical Solidarity	यांत्रिक एकात्मकता
Organic Solidarity	सावयवी एकात्मकता
Cohesion	सम्बद्धता
Organic Society	सावयवी समाज
Division of Labour	श्रम विभाजन

खण्ड

4

मैक्स वेबर

इकाई-14 5
आदर्श प्रारूप

इकाई-15 14
धर्म और आर्थिकी

इकाई-16 25
शक्ति एवं सत्ता

इकाई-17 35
तार्किक दृष्टिकोण

परामर्श-समिति

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति - अध्यक्ष वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
प्रो0(डा0) जी0एस0शुक्ला	कुलसचिव

विशेषज्ञ समिति

डा0 के0के0 मिश्र	प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

डॉ0एम0एन0सिंह	पूर्व निदेशक, समाजविज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ0 इति तिवारी	एसो0 प्रोफेसर, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद
श्री रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद

पाठ्यक्रम लेखन समिति

1- डॉ0 इति तिवारी	एसो0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट. मु. वि.वि., इलाहाबाद।
2. डॉ रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट.मु.वि.वि. इलाहाबाद।
3. अशीष अंशु,	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय डिग्री कालेज, गनाई गंगोली,पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड ।
4. डॉ0 अरूणा कुमारी	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी।
5. स्वाती एस0 मिश्रा	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आर्य महिला कन्या पी.जी.कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
6. डॉ0 अशोक कुमार श्रीवास्तव	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र,श्रीराम सुरेश सिंह महाविद्यालय, मीरजापुर।
7. डॉ0 वन्दना राव	असि. प्रो. समाजशास्त्र, राम सुभग सिंह महाविद्यालय,कुर्मी पट्टी पथरदेवा, देवरिया।
8. डॉ0 जय प्रकाश सिंह	असि. प्रो. समाजशास्त्र, ठाकुर जगन्नाथ सिंह महाविद्यालय, जौनपुर।

© उत्तर पदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड परिचय : मैक्स वेबर

यह इस पाठ्यक्रम का चौथा खण्ड हैं । इस खण्ड के पूर्व में दो खण्ड का निर्माण किया गया है। जिसमें इमाईल दुर्खीम का परिचय देते हुए उनके प्रमुख सिद्धान्तों को विश्लेषित किया गया है। खण्ड चार के अन्तर्गत मैक्स वेबर की वैचारिकी को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। जिसमें मैक्स वेबर का जीवन परिचय, मैक्स वेबर द्वारा वर्णित आदर्श प्रारूप की अवधारणा, धर्म और आर्थिकी संबंधी वेबर की विचारधारा, सत्ता एवं शक्ति की अवधारणा तथा वेब्रर के तार्किक दृष्टिकोण के विश्लेषण की विस्तृत एवं तथ्यपरक रूप में विवेचन किया गया है। जिसका संक्षिप्त परिचय सारणीवार इस प्रकार है।

इकाई-14 : इस इकाई के अन्तर्गत मैक्स वेबर द्वारा प्रतिपादित आदर्श प्रारूप की अवधारणा की विवेचना विस्तृत एवं तथ्यपरक की गयी हे। समाजशास्त्र में मैक्स वेबर के आदर्श-प्रारूप की अवधारणा का एक प्रमुख स्थान है। इस इकाई में जिन पक्षों की चर्चा की गयी है वे क्रमशः आदर्श प्रारूप की अवधारणा, आदर्श प्रारूप की मूल प्रस्थापनाएं (वर्स्टेहन एवं कार्य कारण संबंध), आदर्श प्रारूप अवधारणा की विशेषताएं वेबर का पद्धतिशास्त्र एवं आदर्श-प्रारूप, मूल्यांकन निर्णय एवं आदर्श प्रारूप की प्रायोगिक प्रक्रिया आदि है।

इकाई-15: इस इकाई के अन्तर्गत मैक्स वेबर द्वारा वर्णित धर्म एवं आर्थिकी संबंधी वैचारिकी को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। मैक्स वेबर के धार्मिक एवं आर्थिकी संबंधित वैचारिकी के अन्तर्गत यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि धार्मिक एवं आर्थिक घटनाएं एक दूसरे से संबंधित एवं एक दूसरे पर निर्भर हैं। इनमें से किसी भी एक घटना को दूसरे का निर्णायक कारण मानना उचित नहीं है। वहीं धार्मिक क्रियाओं का प्रभाव व्यक्ति के सामाजिक एवं आर्थिक प्रभावों पर भी पड़ता हे। इन्हीं सब पक्षों को और अधिक स्पष्ट करने के लिए इस इकाई में मुख्यतः धर्म का अर्थ एवं परिभाषा, पूंजीवाद का अर्थ एवं परिभाषा, धर्म एवं आर्थिकी के बीच संबंध, धर्म एंव आर्थिकी के आधार, धर्म एवं आर्थिकी से जुड़े कार्य-कारण संबंध आदि पक्षों का तथ्यपरक विवेचन किया गया है।

इकाई-16: इस इकाई के अन्तर्गत मैक्य वेबर द्वारा प्रतिपादित शक्ति एवं सत्ता की अवधारणा का वर्णन किया गया है। शक्ति एवं सत्ता के अन्तर्गत वेबर यह दिखाने का प्रयास करता है कि समाज की सत्ता संरचना का व्यक्ति के ऊपर किस तरह प्रभाव पड़ता है। साथ ही मैक्स वेबर यह भी मानता है कि शक्ति सामाजिक संबंधों का एक पहलू है। प्रस्तुत इकाई में शक्ति एवं सत्ता के अन्तर्गत शक्ति एवं सत्ता का अवधारणात्मक विवेचन सत्ता के प्रकारों के अन्तर्गत करिशमाई या चमत्कारिक सत्ता, वैधानिक सत्ता एवं परम्परागत सत्ता का विस्तृत एवं तथ्यपरक विवेचन किया गया है।

इकाई-17: इस इकाई के अन्तर्गत मैक्स वेबर की वैचारिकी अथवा वर्णित सिद्धान्तों में तार्किक दृष्टिकोणों को देखने का प्रयास किया गया है। मैक्स वेबर के दृष्टिकोणों में तार्किकता को स्पष्ट करते हुए इस इकाई में तार्किक दृष्टिकोण, वेबर की पद्धतिशास्त्र में तार्किकता, नौकरशाही एवं तार्किकता आदि पक्षों का तथ्यपरक विवेचन किया गया है।

इकाई–14 : आदर्श–प्रारूप

इकाई की रुपरेखा

14.0 मैक्स वेबर (1864–1920) : जीवन–चित्रण

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 आदर्श प्रारुप की अवधारणा

14.4 आदर्श प्रारुप की मूल प्रस्थापनाएँ

14.4.1 वर्स्टेहन

14.4.2 कार्यकारण सम्बन्ध

14.5 आदर्श प्रारुप अवधारणा की विशेषताएँ

14.6 वेबर का पद्धतिशास्त्र एवं आदर्श प्रारुप

14.7 मूल्यांकनात्मक निर्णय व आदर्श प्रारुप

14.8 आदर्श प्रारुप की प्रायोगिक प्रक्रिया

14.9 सारांश

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

14.11 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

14.12 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

14.13 पारिभाषिक शब्दावली

14.0 मैक्स वेबर (1864–1920) : जीवन–चित्रण

समाजशास्त्र के प्रारम्भिक चतुष्टय समाजशास्त्रियों में एक प्रतिष्ठित नाम मैक्स वेबर का है। मैक्स वेबर जर्मनी में राजनीतिक अर्थशास्त्री के साथ–साथ समाजशास्त्री के रुप में प्रख्यात रहे हैं। सामाजिक विज्ञानों की प्रकृति एवं उसके अध्ययन विधियों में गुणात्मक सुधार की निरन्तर अपेक्षा की जाती रही है। ये विज्ञान जहाँ अपने क्षेत्र में निश्चितता लाने की लिए निरन्तर प्रयासरत हैं, वहीं काफी जटिलताएँ भी इनका पीछा करती रहीं हैं। ऐसी स्थिति में समाज विज्ञानों की मूल अवधारणाओं जैसे सामाजिक क्रिया, सामाजिक पद्धतिशास्त्र, सामाजिक वर्ग व व्यवस्था तथा आदर्श प्रारूप एवं सत्ता व शक्ति की अवधारणाओं को सुव्यस्थित, क्रमबद्ध एवं स्पष्ट व्याख्या करने में जर्मन विद्वान् मैक्स वेबर का अद्वितीय योगदान रहा है। देखा जाये तो मैक्स वेबर की विचारधारा में अपने से

पूर्व के विद्वान के समन्वय के साथ–साथ नयापन एवं वैज्ञानिकता का पुट भी दिखाई देता है। यही नवीनता एवं वैज्ञानिक पक्ष ही उनकी सम्पदा है। वेबर की वैचारिकी पूर्णतः कपोलकल्पित विचारों या धारणाओं पर आधारित न होकर वैज्ञानिक पद्धति के ठोस बुनियाद पर आधारित है। विज्ञान का काम नवीन तथ्यों या घटनाओं को खोजना है। एक विज्ञान के रूप में वेबर का समाजशास्त्र इसी सत्य को प्रतिष्ठापित करता है।

मैक्स वेबर का जन्म 21 अप्रैल 1864 ई. में जर्मनी के इस्फूर्ट नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता एक प्रतिष्ठित उदारवादी राजनीतिज्ञ थे। इसी वजह से उनके यहाँ अनेक प्रमुख राजनीतिज्ञ एवं नेता आते–जाते रहते थे। इनसे स्वभावतः ही मैक्स वेबर को राजनीतिज्ञों से अपना सम्बन्ध स्थापित करने का अच्छा अवसर मिलता था। इतना ही नहीं उन राजनीतिज्ञों एवं नेताओं के दृष्टिकोण एवं वैचारिकी से भी परिचित होने का मौक उन्हें मिलता रहा। बाल्यावस्था से ही पड़ने वाले इस प्रकार के प्रभाव को मैक्स वेबर अपने वयस्क जीवन में भी टाल न सके। उनके पिताजी के राजनीति क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने के कारण मैक्स वेबर जब कभी–कभी पिताजी के साथ में जनता में व नेताओं के पास जाना होता था तो उन्हें नित्य नई–नई बातें सीखने को मिलती थी। इन सबके फलस्वरुप मैक्स वेबर का बचपन से ही बौद्धिक विकास एक नए ढंग से होता रहा। प्रकृति व समाज से जुड़ी घटनाओं के बारे में उनके मन में जानने की इच्छा व जिज्ञासा सदा ही झिलमिलाया करती थी। अपनी जिज्ञासाओं को शांत करने की दृष्टि से मैक्स वेबर सदा ही अपना समय पुस्तकों के विस्तृत अध्ययन में व्यतीत किया करते थे। मैक्स वेबर की बुद्धिमत्ता का परिचय इसी बात से ही मिल जाता है कि मात्र तेरह वर्ष की आयु में ही उन्होंने एक ऐतिहासिक निबन्ध इतने सुन्दर ढंग से लिखा कि लोग उसे पढ़कर आश्चर्यचकित रह गए और बालक के भावी जीवन की एक झलक उसी के माध्यम से देख ली थी। मैक्स वेबर तीन वर्ष तक हैडलबर्ग विश्वविद्यालय से कानून की शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद आप जीवन में कुछ नवीनता लाने की दृष्टि से सेना में भर्ती हो गए। सेना से जब काम छोड़कर लौटे तो आपने बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रवेश किया तथा सन् 1885 में कानून की उपाधि ली। सन् 1891 ई में मैक्स वेबर ने रोम का कृषि सम्बन्धी इतिहास लिखा जिससे आपने प्रचुर ख्याति पाई। सन् 1892 में आपकी प्रख्यात कृति Die Ver hattnisse der landarbeiter in ostelbischen Deutschland (Leipsic, 1892) प्रकाशित हुई। इससे आपकी प्रसिद्धि बढ़ी तथा फ्रेबर्ग विश्वविद्यालय ने आपको राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर के पद के लिए आमन्त्रित किया। इस विश्वविद्यालय में दो वर्ष कार्य करने के पश्चात् सन् 1896 में वेबर हैडसबर्ग विश्वविद्यालय में चले गये, परन्तु उनका बौद्धिक जीवन उनकी दीर्घकालीन बीमारी के कारण विघटित अवस्था में रहा और अवस्था सन् 1918 तक बनी रही।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- मैक्स वेबर के पद्धति शास्त्र सम्बन्धी आधार के बारे में जान सकेंगे।
- मैक्स वेबर के आदर्श प्रारुप की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- वेबर के आदर्श प्रारुप की मूल प्रस्थापनाओं को समझ सकेंगे।
- आदर्श प्रारुप की विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे।
- आदर्श प्रारुप की प्रायोगिक प्रक्रिया को समझ सकेंगे।

14.2 प्रस्तावना

समाजशास्त्र में मैक्स वेबर के आदर्श प्रारुप की अवधारणा का एक प्रमुख स्थान है। इसी धारणा के आधार पर ही वेबर ने अपने पद्धतिशास्त्रीय ढांचे को खड़ा किया है। सामाजिक विचारकों का एक वर्ग जो यह मानता था कि सामाजिक घटनाओं में प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति का प्रयोग नहीं हो सकता; का वेबर ने बड़ी प्रबलता से खण्डन किया। इस सन्दर्भ में वेबर की वैचारिकी है कि तार्किकता व वैज्ञानिकता का पुट केवल प्राकृतिक विज्ञानों में ही नहीं वरन् सामाजिक विज्ञानों में भी सम्भव है। इसी हेतु आपने आदर्श प्रारुप की अवधारणा का स्पष्ट विवेचन किया है। अस्तु इस अध्याय में मैक्स वेबर के आदर्श प्रारूप के समस्त पक्षों की तथ्यपरक विवेचना की गई है।

14.3 आदर्श प्रारुप की अवधारणा

मैक्स वेबर का मानना है कि तर्कसंगत रीति से सामाजिक घटनाओं के कार्य–कारण सम्बन्धों को तब तक स्पष्ट नहीं किया जा सकता, जब तक उन घटनाओं को पहले समान विशेषताओं के आधार पर कुछ सैद्धान्तिक श्रेणियों में बांट न लिया जाए। ऐसा करने से हमें उन घटनाओं में से अध्ययन के लिए कुछ आदर्श–प्रारूप' घटनाएं मिल जायेगी। जिनके आधार पर घटनाओं का तथ्यपरक सामान्यीकरण किया जा सकेगा। इस तरह से सामाजिक घटनाओं की तार्किक संरचना में आपने एक नए विचार का सूत्रपात किया। आदर्श प्रारुप की अवधारणा के स्पष्टीकरण में वेबर का कथन है कि समाजशास्त्रियों को अपनी उपकल्पना का निर्माण करने के लिए 'आदर्श' अवधारणाओं का चयन करना चाहिए। आदर्श–प्रारुप न तो औसत प्रारुप है, न ही आदर्शात्मक, बल्कि वास्तविकता के कुछ विशिष्ट तत्वों के विचारपूर्वक चुनाव तथा सम्मिलन द्वारा निर्मित आदर्शात्मक मान है। **दूसरे शब्दों में आदर्श–प्रारुप का तात्पर्य है कुछ वास्तविक तथ्यों के तर्कसंगत आधार पर यथार्थ अवधारणाओं का निर्माण करना।**

आदर्श–प्रारुप का तात्पर्य सामाजिक घटनाओं के प्रक्रियात्मक पक्षों के एक ऐसे प्रतिमान से है, जिसके प्रतिनिधित्व के द्वारा उस घटना से सम्बन्धित

पक्षों का गहन विश्लेषण व अध्ययन सम्भव हो सके तथा इसके द्वारा प्राप्त निष्कर्षों का दूसरे के सन्दर्भ में तार्किक व वैज्ञानिक सिद्ध हो सके।

14.4 आदर्श–प्रारुप की मूल प्रस्थानपाएँ

आदर्श–प्रारुप की अवधारणा के आधार के रुप में मैक्स वेबर ने कुछ पदों का प्रयोग किया है। जो इस अवधारणा के तार्किक विश्लेषण का आधार बने हैं। इनमे वर्स्टेहन तथा कार्य–कारण सम्बन्ध प्रमुख हैं, जिनकी विवेचना अधोलिखित है :

14.4.1 वर्स्टेहन

मैक्स वेबर ने आदर्श–प्रारुप के विश्लेषण में वर्स्टेहन की अवधारणा का प्रयोग किया है। वर्स्टेहन को स्पष्ट करते हुए आपने लिखा है कि 'सामाजिक प्रघटना के अन्तर्गत वैज्ञानिक के दृष्टिकोण से जो अर्थ एक क्रिया का है, वह उतना महत्वपूर्ण नहीं है। जितना कि उस क्रिया का, वह अर्थ, जो कि उसे करने वाला लगाता है। जर्मन भाषा में इसे ही 'Verstechen' कहा जाता है। वास्तव में सामाजिक क्रियाओं के अन्तर्गत व्यवहारों के अध्ययन की प्रकृति बहुआयामी होने के कारण जटिल भी होती है। अतः सामाजिक क्रिया के अन्तर्गत, कर्ताओं के व्यवहार के अध्ययन में उसको भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। जिससे उसके अन्तर्निहित अर्थों को भी विश्लेषित किया जा सके। समाजशास्त्र के क्षेत्र में वेबर ने इस अवधारणा को डिल्थे व सिमेल से लिया है, पर वेबर ने इसे थोड़ा अलग ढंग से विश्लेषित किया है।

14.4.2 कार्य–कारण सम्बन्ध

प्रकृति व समाज में कोई भी घटक निरपेक्ष नहीं होता। प्रत्येक अंग या भाग एक दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित एवं अन्तर्निभर होते हैं। वेबर के आदर्श प्रारुप की यह दूसरी मान्यता रही है। इसी सन्दर्भ में सामाजिक क्रिया के अर्थ को स्पष्ट करते हुए वेबर ने लिखा है कि "किसी भी क्रिया को हमें तभी सामाजिक क्रिया कहनी चाहिए, जबकि उस क्रिया के द्वारा लगाये गये व्यक्तिनिष्ठ अर्थ के अनुसार उस क्रिया में दूसरे व्यक्तियों के मनोभाव तथा क्रियाओं का समावेश हो और उन्हीं के अनुसार उसकी गतिविधि निर्धारित हो।'

इस प्रकार वेबर ने अपने पद्धतिशास्त्रीय विश्लेषण की व्याख्या के अन्तर्गत न केवल वैज्ञानिक पद्धति के विभिन्न चरणों के अनुक्रम पर वरन् चर सम्बन्धों के विश्लेषण हेतु कार्य–कारण सम्बन्धों के प्रति जागरुक रहने को सचेत किया है।

14.5 आदर्श–प्रारुप अवधारणा की विशेषताएं

मैक्स वेबर के आदर्श–प्रारुप की अवधारणा की प्रमुख विशेषताओं को बिन्दुओं पर स्पष्ट किया जा सकता है :

1. आदर्श प्रारुप की अवधारणा में कर्ता के क्रियाओं के इच्छित अर्थ को प्राथमिकता दी जाती है। क्योंकि व्यक्ति द्रव्य मात्र नहीं है, वरन् उसकी अपनी निजी–चेतना व विचार है जो उसके कार्य व व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इसी को मैक्स वेबर ने 'वर्स्टेहन' कहा है। जो उनकी एक प्रमुख विचारधारा है।

2. समाजशास्त्र विषय को अधिकाधिक रुप से वैज्ञानिक बनाने की दिशा में एक बड़ी जटिलता उसके अध्ययन क्षेत्र का विशाल व बहुआयामी होना भी है। इस सन्दर्भ में 'आदर्श–प्रारुप' के बारे में वेबर का कथन है कि यह 'सब कुछ' का वर्णन या विश्लेषण नहीं है, वरन् यह एक सामाजिक घटना के अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्षों का निरूपण है। इसीलिए आदर्श–प्रारुप में उसके कुछ तत्वों को विशुद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाता है तथा कुछ को जानबूझकर छोड़ दिया जाता है। अस्तु वेबर का कथन है कि आदर्श–प्रारुप के अन्तर्गत केवल सामाजिक क्रिया के प्रतिमान के तर्कसंगत तत्वों की ही व्याख्या करनी चाहिए।

3. आदर्श–प्रारुप की तीसरी विशेषता के रुप में कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक अध्ययनों के प्राप्ति की दिशा में 'मात्र इनका चयन करना ही अन्तिम लक्ष्य नहीं है, वरन् इनका हमें ठोस ऐतिहासिक समस्याओं के विश्लेषण हेतु साधन या उपकरण के रुप में प्रयोग करना चाहिए।

4. सामाजिक घटनाएं परिवर्तनशील प्रकृति की होती हैं। उनके विभिन्न पक्षों में परिवर्तन, समय व स्थान सापेक्ष होता रहता है। इसलिए सामाजिक क्षेत्र में किसी भी प्रकार के स्थिर सिद्धान्त की प्रणाली सम्भव नहीं है। आदर्श–प्रारुप कोई अन्तिम तथ्य नहीं है। अतः इसके प्रयोग के समक्ष हमें इस बात से सचेत रहना चाहिए कि कोई भी आदर्श–प्रारुप अपने संगठित स्वरुप में सभी ऐसे पक्षों को सम्मिलित कर रहा है कि नहीं। अन्यथा बहुत महत्वपूर्ण बातें व तथ्य जो कि अध्ययन के लिए उपयोगी है; छूट जायेंगे।

14.6 वेबर का पद्धतिशास्त्र एवं आदर्श–प्रारुप

मैक्स वेबर ने आदर्श–प्रारुप की वैचारिकी रूपी नींव पर ही पद्धतिशास्त्रीय रूपी महल खड़ा किया है। इस सन्दर्भ में मैक्स वेबर ने अपने से पूर्व के सामाजिक अध्ययनों में प्रचलित विधियों पर कड़ा प्रहार किया है, तथा कहा है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में मात्र ऐतिहासिक पद्धतियों व व्याख्याओं के द्वारा ही नहीं, वरन् प्राकृतिक विज्ञानों की विधियों का भी प्रयोग किया जा सकता है। जिसकी पूर्ति 'आदर्श प्रारुप' के द्वारा की जा सकती है। समाज में मानव की व्यवहारगत क्रियाओं में उसकी स्वाधीन इच्छा, प्रातीतिक भावनाएं तथा विचार यद्यपि वैज्ञानिक अध्ययन में प्रतीत होती हैं। पर जर्मन विद्वान मैक्स वेबर ने अपने पद्धतिशास्त्रीय व्याख्या को स्पष्ट करते हुए आदर्श–प्रारुप की धारणा के द्वारा वस्तुनिष्ठता लाने हेतु सचेत प्रयास किया है।

वेबर के अनुसार सामाजिक घटनाएं जटिल एवं विस्तृत होती है। अतः उनका विश्वास है कि 'सब कुछ का अध्ययन', 'कुछ नहीं का अध्ययन' है; अर्थात्

जो व्यक्ति यह सोचता है कि किसी सामाजिक घटना के सभी पक्षों व प्रतिरुपों का अध्ययन कर लेगा; वह वास्तव में नहीं कर पायेगा। अतः उसे अपने अध्ययन कार्य में अध्ययन विधि के रूप में 'आदर्श–प्ररुप' को प्रयोग में लाते हुए सामाजिक घटनाओं में से कुछ ऐसे आदर्श–प्रारुपों या टाइपों को अलग कर लेना चाहिए, जिससे इसके अध्ययन से सम्पूर्ण घटना के सम्बन्ध में यथार्थ व वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सके। वेबर के पद्धतिशास्त्र में यही आदर्श–प्रारुप की धारणा की प्रासंगिकता है। इस प्रकार से आदर्श–प्रारुप से चुने गए तत्व सम्पूर्ण घटना की सामान्य विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करेंगे और साथ ही समाज वैज्ञानिक के ध्यान को इधर–उधर के व्यर्थ तत्वों में भटकने से बचायेंगे। अस्तु ये तत्व ही वैज्ञानिकों के लिए आदर्श होंगे।

14.7 मूल्यांकनात्मक निर्णय व आदर्श–प्रारुप

देखा जाय तो मैक्स वेबर के आदर्श–प्रारुप की धारणा में वैज्ञानिक विशेषताओं का समावेश है। अतः पूर्वाग्रह व मूल्यों का उनके विश्लेषण में कोई भूमिका नहीं होना चाहिए। वेबर का कथन है कि आदर्श–प्रारुप को स्वीकार करने का तात्पर्य यह नहीं है कि हमारा अध्ययन भी आदर्शात्मक होगा या हमारा निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण मूल्यांकनात्मक निर्णयों पर आधारित होगा। आदर्श–प्रारुप की धारणा के स्पष्टीकरण में वेबर सदैव मूल्यांकनात्मक निर्णयों से बहुत दूर रहने की प्रति सदा जागरुक रहे। देखा जाय तो सामाजिक जीवन में हमें चारों तरफ मूल्यों का एक तरह से बोलबाला दिखाई देता है। भले ही समाज के अधिकाधिक सदस्य समाज के मान्य व निर्धारित मूल्यों से अपना अनुकूलन स्थापित कर संतुलित समाज के निर्माण में योगदान दे रहे होते हैं; पर वास्तविकता यह भी है कि समाज में मूल्यों से विचलन की प्रवृत्ति भी पायी जाती है। इस तथ्य से वेबर का तात्पर्य मूल्यों के इस प्रवाहमान प्रक्रियाओं से नहीं, बल्कि सामाजिक अध्ययनों में इनकी भूमिका को लेकर है।

वेबर का मानना है कि समाजशास्त्री को मूल्यांकनात्मक निर्णयों को नहीं, अपितु सर्वत्र सत्य वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास करना चाहिए। अपने अध्ययन हेतु आदर्श–प्रारुप की धारणा में ऐसे तत्वों का चयन नहीं करना चाहिए; जो मूल्यांकनात्मक निर्णयों पर आस्था अथवा विश्वास रखने पर आधारित हो। ऐसा करने से समाजशास्त्र अपने वैज्ञानिकता के स्तर से नीचे गिर जायेगा, जो किसी भी तरह से वस्तुनिष्ठ व यथार्थ अध्ययन में उपयोगी नहीं हो सकता। यहाँ यह ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि मैक्स वेबर का इस सम्बन्ध में यह कहना नहीं है कि मूल्यांकनात्मक क्रियाओं का समाजशास्त्र में अध्ययन नहीं किया जा सकता, अध्ययन किया जायेगा, परन्तु उनके अध्ययन में 'मूल्यांकनात्मक व्यक्तिगत निर्णयों से दूर रहते हुए। 'अच्छे–बुरे', 'उचित–अनुचित', 'ऐसा होता तो अच्छा होता' आदि का विश्लेषण 'आदर्श–प्रारुप' की धारणा में प्रयुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

14.8 आदर्श–प्रारुप की प्रायोगिक प्रक्रिया

सामाजिक घटनाओं के अध्ययन की प्रक्रिया में आदर्श–प्रारुप के प्रयोग की जिन बातों व तथ्यों को वेबर ने अपनी इस अवधारणा के स्पष्टीकरण में प्रयोग किया है, उनका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इतना ही नहीं इसके आधारभूत मूल्यों व दर्शन की भी समझ जरूरी है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आदर्श–प्रारुप की धारणा का आधार वैज्ञानिक मूल्य व विश्वासों पर आधारित एक व्यवस्था का प्रारुपण करना है। वेबर का पद्धतिशास्त्रीय बुनियादी शब्द ही 'आदर्श–प्रारुप' है। इस प्रकार समाजशास्त्र के क्षेत्र में प्रारुपवादी पद्धति के प्रयोग का श्रेय भी सर्वप्रथम मैक्स वेबर (1864–1920) को जाता है।

अपने जीवन–काल में मैक्स वेबर सदैव वैज्ञानिकता का मान बनाए रखने हेतु सचेत रहे। इसी मान को दृढ़ व बनाए रखने हेतु आपने 'आदर्श–प्रारुप' की अवधारणा का तथ्यपरक तरीके से प्रयोग करने का प्रयास किया है। मैक्स वेबर ने अपने पद्धतिशास्त्रीय व्याख्या के अन्तर्गत आदर्श–प्रारुप की धारणा के विश्लेषण का प्रयास किया है तथा स्पष्ट किया है। आपके अनुसार किसी सामाजिक घटना के अध्ययन हेतु उसके तत्वों का एक ऐसा समुचच्य लिया जाना चाहिए जो कि उस घटना का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न कर सकें। अपने विश्लेषणात्मक प्रयोजन के लिए कोई भी वैज्ञानिक किसी भी तथ्य या घटना के आदर्श–प्रारुप का निर्माण कर सकता है, चाहे वह वेश्याओं से सम्बन्धित हो या धार्मिक नेताओं से। वास्तव में सामाजिक घटनाओं का क्षेत्र बहुआयामी व जटिल प्रकार का है, अतः इन घटनाओं के अध्ययन में 'आदर्श–टाइप' की घटना के चयन के लिए समानताओं के आधार पर विचारपूर्वक तथा तर्कसंगत ढंग से कुछ वास्तविक घटनाओं या व्यक्तियों को इस प्रकार से चुन लिया जाना चाहिए, जो कि उस प्रकार की समस्त घटनाओं का व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व कर सके। इस प्रकार के चुनाव व सम्मिलन द्वारा जिस टाइप का निर्माण होता है उसे 'आदर्श–टाइप' या 'प्रारुप' कहा गया है।

मैक्स वेबर के आदर्श–प्रारुप की इस प्रक्रिया के अन्तर्गत वैज्ञानिक चरणों के अनुक्रम का पूर्णता से पालन किया जाता है। सामाजिक घटनाओं के समानताओं के आधार पर वर्गीकरण कर षोध समस्या का चयन कर लिया जाता है। उसके बाद शोध के विभिन्न चरणों का बिना पक्षपात व पूर्वाग्रह के धैर्य व निष्ठा के साथ अध्ययन किया जाता है। जिससे वैज्ञानिक सामान्यीकरण व निष्कर्ष की प्राप्ति सम्भव हो पाती है, जो किसी भी विज्ञान का प्रमुख तत्व है।

14.9 सारांश

मैक्स वेबर के आदर्श–प्रारुप की अवधारणा के तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि वेबर ने अपने से पूर्व के सभी विचारों के सामंजस्य को समन्वित करने का प्रयास किया है। इसके माध्यम से आपने समाजशास्त्र के क्षेत्र में एक

पद्धतिशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रदान करने का जो प्रयास किया है, उसका आदर्श प्रारुप एक प्रमुख घटक है। सामाजिक क्रियाओं के अन्तर्गत कर्ताओं के अन्तःमन में चलने वाली बातों व विचारों को वेबर ने एक अलग तरीके 'वर्स्टेहन' से अध्ययन का जो प्रयास किया, उसका आदर्श–प्रारुप के प्रारूपण में अत्यन्त ही महत्व है।

मैक्स वेबर के इस आदर्श–प्रारुप की अवधारणा के अन्तर्गत सामाजिक घटनाओं का तार्किक आधारों पर मानव क्रियाओं का कारण सहित सम्बन्धों का अधिक यथार्थ तथा व्यस्थित ढंग से अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाता है। जिससे नियन्त्रित तथा सन्देशरहित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। इसके प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि इसके माध्यम से प्राप्त तथ्यों को प्रयोगसिद्ध बनाया जा सकता है।

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Johnson Allan G (2000) "Ideal Type" The Blackwill Dictionary of Sociology, Willey-Blakwel
2. Stanford Encylopedia of Philosophy Pp. Max Weber (52 Ideal Type) Retrived 2009
3. अब्राहम एण्ड मार्गन (1985) सोशियोलॉजिकल थॉट मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, जयपुर
4. मिशेल जी.डी. (1968) ए डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी, सटलेज एण्ड केगन पाल, लंदन
5. गर्थ एच. एण्ड मिल्स (1958) फ्राम मैक्स वेबर : एशेज इन सोशियोलॉजी, सटलेज एण्ड केगन पाल, लंदन

14.11 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) मैक्स वेबर के आदर्श–प्रारुप से आप क्या समझते हैं?

(2) वेबर के आदर्श–प्रारुप की मूल प्रस्थापनाए क्या हैं? स्पष्ट कीजिए।

(3) आदर्श–प्रारुप अवधारणा की किन्ही दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

(4) आदर्श–प्रारुप की अवधारणा को कुछ उदाहरणों के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) वेबर के आदर्श–प्रारुप का उनके पद्धतिशास्त्र में क्या योगदान है? स्पष्ट कीजिए।

(5) मैक्स वेबर के द्वारा बताए गए प्रोटेस्टेण्ट आचारों व पूंजीवाद के बीच सम्बन्धों का विश्लेषण कीजिए।

(6) व्यावसायिक आचारों एवं पूंजीवाद के विकास के बीच क्या सम्बन्ध है? स्पष्ट कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मैक्स वेबर ने अपने आदर्ष प्रारुप में निम्न में से किस अवधारणा का प्रयोग किया है?

(क) वर्स्टेहन (ख) घटना क्रिया (ग) आधुनिकता (घ) भारत विद्या

2. समाजशास्त्र में प्रारुपवादी पद्धति की शुरुआत किस विद्वान द्वारा की गई है?

(क) इमाइल दुर्खीम (ख) मैक्स वेबर (ग) काल मार्क्स (घ) हरबर्ट स्पेंसर

3. मैक्स वेबर का आदर्श प्रारुप, उनके पद्धतिशास्त्र के लिए क्या कार्य करता है?

(क) साध्य के रूप में (ख) साधन के रूप में (ग) साध्य व साधन के रूप में (घ) इनमें से कोई नहीं

14.12 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (क), 2. (ख), 3. (ख)

14.13 पारिभाषिक शब्दावली

Idle Type	आदर्श–प्रारुप
Methodology	पद्धतिशास्त्र
Basis	आधार
Hypothesis	उपकल्पना
Ideology	विचार
Factor	कारक
Characterictics	विशेषता
Objectivity	वस्तुनिष्ठता
General Concepts	सामान्य आवधारणायें
Idealistic	आदर्शवादी

इकाई–15 : धर्म और आर्थिकी

इकाई की रुपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 धर्म : अर्थ एवं परिभाषा

15.3 विशेषता

15.4 पूंजीवाद : अर्थ एवं परिभाषा

15.5 धर्म व आर्थिकी सम्बन्धी वेबर का मत

15.6 धर्म व आर्थिकी के आधार

15.7 धर्म व आर्थिकी के कार्य–करणात्मक सम्बन्ध

15.8 सारांश

15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

15.10 बोध के प्रश्न

(क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

15.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

15.12 पारिभाषिक शब्दावली

15.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत धर्म एवं आर्थिक सम्बन्धों के बारे में जान सकेंगे।
- धर्म किस प्रकार व्यवहार को प्रभावित करता है? समझ सकेंगे।
- प्रोटेस्टेण्ट धर्म एवं पूँजीवाद के सम्बन्ध को, समझ सकेंगे।
- कैथोलिक धर्म अनुयायियों में किस प्रकार से ईश्वर की धारणा में विश्वास किया जाता है? जान सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

मैक्स वेबर एक ऐसे प्रमुख समाजशास्त्री रहे हैं जिन्होंने विश्व के प्रमुख धर्मों का व्यापक अध्ययन किया और इन अपने अध्ययनों के आधार पर धर्म की समाजशास्त्रीय व्याख्या करने का प्रयास किया। वेबर नितान्त नये ज्ञान की खोज में अपने को रत रखते थे। इसी के सन्दर्भ में पारसन्स ने लिखा है कि "निःसन्देह

वेबर सम्बन्धित क्षेत्रों में एक असाधारण रूप से योग्य सामाजिक और आर्थिक इतिहासकार थे और इस कारण आप सरलता से अपने बाकी शैक्षणिक जीवन को एक महान ऐतिहासिक अध्ययन की पूर्ति में लगा सकते थे, परन्तु ऐसा करने के बजाय आप सर्वथा भिन्न अध्ययन क्षेत्र की ओर मुड़े और समस्त महान विश्व धर्मों के धार्मिक आचारों तथा उनसे सम्बन्धित सामाजिक और आर्थिक संगठन के बीच पाए जाने वाले विद्यमान सम्बन्धों के विशुद्ध तुलनात्मक अध्ययन कार्य में लग गए। इस तुलनात्मक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह प्रमाणित करना था कि सामाजिक संरचना में कौन–कौन से तत्व समाज के लिए विशेष रूप से विशिष्ट एवं केन्द्रीय महत्व के हैं। जर्मन विद्वान मैक्स वेबर द्वारा एक नए तरीके से धर्म की समाजशास्त्रीय व्याख्या करने का जो प्रयत्न किया गया। वह समाजशास्त्र के भविष्य के लिए बहुत उपयुक्त व लाभकारी साबित हुआ। अस्तु इसी पक्ष का उल्लेख इस इकाई में किया गया है।

15.2 धर्म : अर्थ एवं परिभाषा

धर्म सम्पूर्ण जगत का प्राणन–शक्ति है। धर्म से ही सृष्टि जीवन की कल्पना की जा सकती है। धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है – धारण करना। कर्तव्य धारण किया जाता है। अतः कर्तव्य ही धर्म है। धर्म से ही मनुष्य को प्रेरणा एवं प्रकाश उपलब्ध होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि धर्म मानव समाज का ऐसा व्यापक एवं शाश्वत तत्व है जो सम्पूर्ण समाज को गति दे रहा है। धर्म मानव को अलौकिक शक्ति से जोड़ता है। इसी नाते धर्म के सम्बन्ध में मार्क्स कहते हैं कि धर्म जनता के लिए अफीम है।

धर्म के सम्बन्ध में एडवर्ड टायलर कहते हैं कि "धर्म आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास है।"

दुर्खीम के अनुसार, "धार्मिक, विश्वास, पवित्रता और अपवित्रता पर आधारित होते हैं।"

मैलिनोवस्की धर्म को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि, "धर्म क्रिया की एक विधि है। साथ ही साथ विश्वासों की एक व्यवस्था भी है। वहीं धर्म एक समाजशास्त्रीय घटना के साथ–साथ एक व्यक्तिगत अनुभव भी है।"

इंगर धर्म को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि, "धर्म विश्वासों की एक व्यवस्था है। जिसके द्वारा मानव समूह के लोग मानव–जीवन की आधारभूत समस्याओं से संघर्ष करते रहते हैं।

15.3 विशेषता

धर्म की विषेशता को अधो लिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया गया है :

1. धर्म अलौकिक शक्तियों में विश्वास है।
2. धर्म पवित्रता एवं अपवित्रता की धारणा से पोषित है।

3. धर्म प्रार्थना, पूजा एवं आराधना की एक समग्र पद्धति है।
4. धर्म से संवेदनात्मक भावनाएं जुड़ी होती हैं।
5. धर्म संस्कृति द्वारा परिभाषित अन्तिम सत्य है।
6. धर्म विभिन्न धार्मिक सामग्रियों एवं प्रतीकों से संदर्भित है।
7. धर्म के पालन हेतु कुछ निषेधों की भी चर्चा की गयी है।
8. धर्म धार्मिक संस्तरण पर आधारित है।
9. धर्म लोगों को समन्वित जीवन की तरफ उन्मुख करता है।
10. कर्तव्य के रूप में धर्म को देखा जाता है।

15.4 पूँजीवाद : अर्थ एवं परिभाषा

विश्व स्तर पर पूँजीवाद का आरम्भ मशीनीकरण की प्रक्रिया से माना जाता है। किन्तु सामन्तवादी व्यवस्था के अन्तर्गत यह अति–प्राचीन काल से ही दिखाई देता है। पूँजीवाद श्रम की प्रक्रिया और आर्थिक परिप्रेक्ष्य के समन्वयात्मक स्वरूप को उजागर करता है जो अर्थ की संस्कृति का समाज वैज्ञानिक ढाँचा है।

कार्ल मार्क्स के अनुसार, "पूँजीवाद का आधार उत्पादन की शक्तियों और उत्पादन से सम्बन्धित श्रम के संदर्भ में माना जाता है।"

15.5 धर्म व आर्थिकी सम्बन्धी वेबर का मत

वेबर का यह आधारभूत विचार रहा है कि सामाजिक घटनाओं में अध्ययन के लिए ऐसे तत्वों का चुनाव किया जाना चाहिए जो देखने में समान, परन्तु कार्य–कलापों में कुछ विविधताएँ दर्शाते हो। इस प्रकार से हमें कार्य–कारण सम्बन्धों की एक स्पष्ट रूपरेखा मिल जाती है, जो यथार्थ व वास्तविक अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त ही लाभकारी साबित होते हैं। वेबर ने अपने से पूर्व के विद्वानों के विचारों व दृष्टिकोणों का केवल अनुसरण न करके उनमें नवीन दृष्टि डालने का प्रयत्न किया है। इसी सन्दर्भ में वेबर ने मार्क्स के द्वन्द्वात्मक विश्लेषण पर बुनियादी आलोचना को लागू किया एवं अपना मत व्यक्त किया। धार्मिक आचारों व सामाजिक–आर्थिक घटनाओं के बीच स्पष्ट सम्बन्ध अवश्य ही है। मैक्स वेबर ने विश्व के छः महान धर्मों कन्फ्यूशियन, हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम तथा यहूदी का अध्ययन इस दृष्टिकोण से किया कि ये सभी दुनिया के महान धर्म है, तथा अपने प्रकृति में एक समान धर्म के रुप हैं। परन्तु इनके व्यवहारगत भावों व विचारों मैं विभिन्नताएं हैं। अतः इनके समन्वित अध्ययन से उन कार्य–कारण सम्बन्धों का पता लगाया जा सकता है जो कि मानव के सामाजिक व्यवहार व क्रियाओं में मौलिक हो सकते हैं। वेबर का कथन है कि इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन में जिस पद्धति का वस्तुनिष्ठता के साथ प्रयोग किया जाता है वह प्राकृतिक विज्ञानों की नियन्त्रित प्रयोगशाला में प्रयोग में लाई जाने वाली प्रत्यक्ष पद्धति के बहुत कुछ समान है। इस प्रकार से वेबर ने अपने गहन पद्धतिशास्त्रीय

फ्रेम में धर्म व आर्थिक व्यवहारों के बीच सम्बन्धों के अध्ययन हेतु जिन नमूनों का आधार बनाया है, वे विस्तृत व वैश्विक स्तर पर हैं। अतः इनसे उम्मीद होती है कि ये निष्कर्ष सामान्य व वैज्ञानिक ही हों।

15.6 धर्म व आर्थिकी के आधार

समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र में वैज्ञानिकता के तत्वों को बनाए रखने हेतु वेबर सदैव क्रियाशील रहे। ऐतिहासिक रूप से सामाजिक घटनाओं की व्याख्या के स्थान पर प्रत्यक्ष व्यवहारों के अध्ययन के अन्तर्गत कार्य करने के प्रति आप सदैव सचेत रहे। धर्म व आर्थिकी सम्बन्धों का अध्ययन भी इसी का एक प्रमुख भाग है, और इसके सम्बन्ध में जो आधारभूत विचार व मान्यताएँ तथा आधार रहे हैं उनका विवरण निम्न बिन्दुओं के अनुसार है :

1. इस सम्बन्ध में वेबर की पहली मान्यता है कि धार्मिक तथा आर्थिक घटनाएं एक दूसरे से सम्बन्धित और एक दूसरे पर निर्भर हैं। इनमें से किसी भी एक घटना को दूसरे का निर्णायक कारक मानना उचित नहीं है। वास्तव में इन दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है।

2. वेबर का मानना है कि सिर्फ धर्म एवं आर्थिकी ही सामाजिक घटनाओं की व्याख्या का एकमात्र आधार नहीं है, वरन् अन्य भी कई कारक हैं जो एक दूसरे से सम्बन्धित व अन्तर्निर्भर हैं।

3. वेबर का कथन है कि अध्ययन कार्य में सभी पक्षों का अध्ययन एक दूसरे पर प्रभाव पड़ने के सन्दर्भ में अत्यधिक श्रम व समय साध्य है तथा इसमें अध्ययनकर्ता के भटकने का भी अवसर बना रहता है। अतः धर्म व आर्थिक सम्बन्धों के अध्ययन में धार्मिक कारक को एक प्रकार का परिवर्तनीय तत्व मानकर उसका आर्थिक तथा सामाजिक घटनाओं पर प्रभाव मालूम करने का प्रयत्न करना है।

4. 'आदर्श–प्रारुप' की धारणा का अपने इस अध्ययन में प्रयोग करते हुए वेबर ने सभी धर्मों के समस्त तत्वों का प्रयोग न करके उनके 'आदर्श–प्रारुपों' का प्रयोग किया है तथा इसी प्रकार आर्थिक क्रियाओं के अन्तर्गत भी आपने 'आदर्श–प्रारुपों' का चयन किया है। इसके पश्चात् दोनों के बीच अन्तःसम्बन्धों की व्याख्या किया है।

15.7 धर्म व आर्थिकी के कार्य–करणात्मक सम्बन्ध

उपर्युक्त आधारभूत तथ्यों से यह बात स्पष्ट होती है कि धार्मिक क्रियाएं अर्थात् ऐसी क्रियाएं जो सामाजिक क्रियाओं के दायरों के अन्तर्गत आती हैं, उनका मानव के सामाजिक आर्थिक व्यवहार व क्रियाओं पर प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। वेबर का इस सम्बन्धी समस्त विवरण उनकी प्रख्यात रचना **"द प्रोटेस्टेन्ट इथिक एण्ड दि स्पिरिट ऑफ कैपिटिलिज्म"** में देखने को

मिलता है। इसमें आपने प्रोटेस्टेन्ट धर्म और पूंजीवाद के सम्बन्ध को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया है।

मैक्स वेबर ने धर्म और पूंजीवाद की क्रियाओं के बीच के सम्बन्ध को प्रमाणित करने के लिए इन दोनों के लिए आदर्श–प्रारुपों का चयन किया है। इस के अन्तर्गत आपने पूंजीवाद के विशिष्ट लक्षणों को इस प्रकार से लिया है– इस अर्थव्यवस्था में उद्योग, व्यापार और वाणिज्य बड़े पैमाने में बिल्कुल वैज्ञानिक आधारों पर विवेकपूर्ण ढंग से संगठित तथा संचालित होता है। निजी सम्पत्ति सम्पूर्ण पूंजीवादी व्यवस्था का सर्वप्रमुख अंग होती है; उत्पादन का काम बड़े–बड़े मिल तथा कारखानों में अधिक लोगों की सहायता से मशीनों द्वारा ही होता है; और इस प्रकार से उत्पादित वस्तुओं की संगठित विक्रय व्यवस्था की जाती है; अधिकतम कार्यकुशलता के लिए श्रम विभाजन तथा विशेषीकरण पर अधिक बल दिया जाता है। और सर्वप्रमुख उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। पूंजीवादी व्यवस्था में कार्य ही जीवन तथा कुशलता ही धन है। इस व्यवस्था में कार्य ही जीवन तथा कुशलता ही धन है। प्रत्येक व्यक्ति को अधिकतम उत्साह तथा प्रधिकतम कुशलता के साथ कार्य करना पड़ता है। इस व्यवस्था में जोखिम अधिक होता है; इस कारण इसमें व्यक्ति में विश्वास, कर्तव्यपरायणता तथा अपने व्यवसाय के प्रति पूरी निष्ठा होनी चाहिए। इसे ही 'व्यावसायिक आचार' कहा जाता है। जो व्यक्ति अपने कार्य या व्यवसाय में कुशल हैं, वे धन और मान दोनों को ही पाते हैं; और जिनमें कार्यकुशलता कम होती है, वे धन और मान दोनों से ही वंचित रहते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था में जो कुछ भी अकुशल और पुराना है, उसका पतन अनिवार्य है। संक्षेप में, यही पूंजीवाद का प्रमुख तत्व है।

सामाजिक विचारों के क्रम में प्रत्येक व्यक्ति का अपने दृष्टिकोण का एक आधार होता है। इस क्रम में मार्क्स ने जहाँ समस्त सामाजिक व्यवहारों व क्रियाओं के मूल आर्थिक कारकों को माना है वहीं मैक्स वेबर ने पूंजीवादी व्यवस्था के पीछे कार्य करने वाली शक्ति का कारण प्रोटेस्टेण्ट धर्म के उपदेशकों व नेताओं द्वारा सामाजिक जीवन के लिए जो नियम व मूल्य प्रतिपादित किये जाते रहे हैं, वे पूंजीवादी व्यवस्था के तत्वों को प्रेरित व आगे बढ़ाने में मददगार रहे हैं। इस सन्दर्भ में वेबर ने लिखा है कि बेंजामिन फ्रेंकलिन जो कि पूंजीवाद के मूल सिद्धान्तों के प्रारम्भिक प्रतिपादक माने जाते हैं। जिन्होंने अपनी आत्मकथा में जिन बातों को रखा है वे प्रोटेस्टेण्ट धर्म के आचारों के बहुत कुछ अनुरुप है। उनके द्वारा दिये गये उपदेश जैसे– 'समय ही धन है', 'धन से धन कमाया जाता है', 'एक पैसा बचाना एक पैसा कमाना है', 'ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है', जल्दी सोना और जल्दी उठना' व्यक्ति को स्वस्थ, धनी और बुद्धिमान बनाता है। इस सभी उपदेशों के पीछे जो एक धारणा या भावना विद्यमान है वह है 'कार्य करना ही सबसे बड़ा गुण है।' आधुनिक पूंजीवाद का विकास की इन परिस्थितियों को प्रोटेस्टेण्ट धर्म के आचार नियमों से एक गहरा सम्बन्ध है। यह मूल सिद्धान्त निम्नलिखित कुछ विवेचनाओं से स्पष्ट हो जायेगा। पूंजीवादी व्यवस्था को आगे बढ़ाने में प्रोटेस्टेण्ट धर्म के तत्वों का प्रभाव इस प्रकार देखा जा सकता है।

प्रोटेस्टेण्ट आचार की अवधारणा 'काम करना ही सबसे बड़ा गुण है' की वैचारिकी पर आधारित है। दुनिया के ऐसे देश जहाँ ईसाई धर्म अन्तर्गत कैथोलिक धर्मावलम्बियों का संग्रह पाया जाता है, में ईश्वरीय बातों पर विश्वास किया जाता है। इस सन्दर्भ में एक गाथा इस प्रकार है– प्रारम्भ में आदम तथा ईव ने स्वर्ग में अच्छे और बुरे ज्ञान के वृक्षों के फलों को खा लिया था। इस अपराध के फलस्वरूप ईश्वर ने उन दोनों को दण्ड देने का निश्चय किया तथा दण्ड में यह रहा कि अब से ईव व उसकी कन्याएं कष्ट से बच्चे को जन्म देंगी और आदम तथा उनके पुत्रों को एड़ी चोटी का पसीना एक करके रोटी कमानी होगी। इस प्रकार से यह पता चलता है कि कैथोलिक सम्प्रदाय के आचार मूल्यों में श्रम को एक सकारात्मक गुण के रूप में नहीं, बल्कि एक नकारात्मक गुण या दंड के रूप में लिया जाता है। वहीं इसके ठीक विपरीत प्रोटेस्टेण्ट आचार में कार्य को सबसे बड़ा गुण माना गया है, तथा 'कर्म ही पूजा है' या 'परिश्रम से ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है' को स्वीकार व मान्यता प्रदान की गई है। अतः इस प्रकार से पूंजीवाद के विकास में प्रोटेस्टेण्ट धर्म की एक बड़ी देन है।

वेबर के धर्म व आर्थिकी के सम्बन्धों के सन्दर्भ में दूसरे पक्ष के रूप में प्रोस्टेण्ट धर्म के 'व्यावसायिक आचार' को ले सकते हैं। इसका सम्बन्ध उस विश्वास से है जिसे कैल्विनवाद कहा जाता है और जिसके अनुसार प्रत्येक आत्मा व्यक्ति के मृत्यु के पश्चात् या तो स्वर्ग या नरक में जाती है। साथ ही साथ व्यक्ति के जीवन काल में कोई शक्ति या कार्य उसे बदल नहीं सकते। परन्तु उसके जीवन काल में कुछ प्रकार के ऐसे लक्षण प्रकट होते हैं जो यह संकेत कर देते हैं कि उसकी आत्मा स्वर्ग या नरक में जायेगी। प्रोटेस्टेण्ट धर्म के अनुसार अपने कार्य को भली प्रकार तथा सफलतापूर्वक करना ईश्वरीय इच्छा का ही गुण कीर्तन करना है। केवल गिरजाघर जाने या तीर्थ यात्रा करने से ही मुक्ति नहीं मिल सकती; मुक्ति तो अपने कर्मों या व्यवसायों को उचित ढंग से करने से ही मिल पायेगी। अतः धार्मिक आचारों का पालन गिरजाघरों में नहीं वरन् उद्योगों व बाजारों में किया जाना चाहिए। यह प्रोटेस्टेण्ट विचार पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास में अत्यधिक प्रेरक सिद्ध हुआ। क्योंकि पूंजीवादी विकास में प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने कार्य क्षेत्र में अधिकाधिक निष्ठा व उत्साह के साथ–साथ कार्य करता है।

सामाजिक आर्थिक व्यवहारों पर धार्मिक आचारों के सम्बन्धों का वेबर ने प्रोटेस्टेण्ट धर्म के इस मूल्य कि 'शराबखोरी एक बुराई है' तथा ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है, पर परीक्षण किया। शराब पीने से मनुष्य के शारीरिक व मानसिक सक्रियता में कमी आती जाती है। प्रोटेस्टेण्ट धर्म के शराबखोरी पर प्रतिबन्ध ने पूंजीवादी व्यवस्था जिसमें मशीनों पर काम किया जाता है। वहाँ कार्य करने वाले के लिए अनुकूल माहौल तैयार किया है। शराब पीकर हल चलाया जा सकता है। पशुओं को चराया जा सकता है। पर मशीन चलाने पर जान–माल का खतरा है। इस प्रकार से प्रोटेस्टेण्ट धर्म के विचारों ने पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था के लिए अनुकूल परिस्थितियां पैदा किए है।

बेंजामिन फ्रेंकलिन ने लिखा है कि 'धन से धन कमाया जाता है' प्रोटेस्टेण्ट धर्म के अन्तर्गत ऋण पर सूद, ब्याज वसूल करने की मान्यता या स्वीकृति है। इसका अर्थ है कि अपने धन का उपयोग धन कमाने के लिए करना चाहिए और इसमें सूद, ब्याज के रूप में प्राप्त धन भी सम्मिलित है। इसके ठीक विपरीत कैथोलिक धर्म में सूद अथवा ब्याज लेना बुरा समझा जाता है। धन को खुले आम बिना किसी ईश्वरीय दण्ड या कोप के भय से धन कमाने या शूद एकत्रित करने के लिए लगाने की स्वीकृति प्रोटेस्टेण्ट धर्म में है। यह सभी बातें पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था के विकास में सहायक सिद्ध हुई है।

प्रोटेस्टेण्ट धर्म का पूंजीवाद के विकास में अन्तिम प्रभाव इस रूप में है कि यह कैथोलिक आचार की भांति अधिक छुट्टी (अवकाश) के पक्ष में नहीं है। प्रोटेस्टेण्टवादियों के लिए कर्म ही आराधना है। पूंजीवादी व्यवस्था की सफलता के लिए भी अधिक कार्य और कम छुट्टियां (अवकाश) आवश्यक है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म और उसका आर्थिक आचार वह प्रभावशाली शक्ति है जोकि पूंजीवाद के विकास में प्रमुख कारक है, परन्तु जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रोटेस्टेण्ट आचार पूंजीवाद के विकास में एक मात्र कारक है। अन्य अनेक कारकों का भी योग इस दिशा में अवश्य रहा होगा। इस अर्थ में मैक्स वेबर को एक कारकवादी नहीं, बल्कि बहु–कारक वादी माना जा सकता है।

मानव समाज के व्यवहारों को किसी भी एक तरीके से समझने का प्रयास अतार्किक एवं अपूर्ण है। जहां मार्क्सवादी विचारकों ने आर्थिक आधारों पर संस्कृति व धर्म को समझने व समझाने का प्रयस किया है, वहीं वेबर का इस सम्बन्ध में विचार इसके ठीक विपरीत है। समाजशास्त्रीय क्षेत्र में यद्यपि दोनों विचारकों ने एकांगी विचारों का समर्थन नहीं किया है, पर एकांगी पीड़ा से ग्रस्त रहे हैं। वास्तव में व्यक्ति के जीवन की परिस्थितियां इसे किसी भी तरह के विचार के लिए प्रेरित व क्रियान्वित करती है, इन्हीं सब का प्रभाव रहा कि मार्क्स ने जीवन के प्रारम्भ से ही मजदूरों की असामान्य व जटिल परिस्थितियों को देखा था तथा उनके कष्ट व दर्दों को महसूस किया था। जिसका परिणाम रहा कि मजदूरों के हितों के खातिर अपने 'मजदूरों एक हो जाओं' का नारा दिया। इन सबके कल्याण का मूल आधार आपने आर्थिक हितों को माना। मार्क्स का यह स्पष्ट विचार रहा कि आर्थिक परिस्थितियां ही सामाजिक प्रकृति को निर्धारित करती है। चूंकि वेबर का पारिवारिक जीवन समृद्धता में तथा राजनैतिक माहौल में बीता था। अतः आपके दृष्टिकोण में स्वाभाविकतया एक अलग प्रारुप जन्म लिया है। वेबर ने अपने से पूर्व के सभी विद्वानों के विचारों का सामान्यीकरण करके अपना मत सिद्धान्त धर्म व आर्थिकी के सम्बन्ध में दिया है।

मैक्स वेबर ने अपने इस सिद्धान्त की पुष्टि हेतु अनेक प्रमाण भी दिए है कि आधुनिक पूंजीवाद के विकास व प्रोटेस्टेण्ट धर्म एक दूसरे से घनिष्ठत सम्बन्धित हैं। पर अपने भी वह गलती नहीं की है कि धर्म ही पूंजीवाद के उत्पत्ति

व विकास में एकमात्र कारक है। फिर भी यह स्वीकार किया है कि सबसे अधिक प्रभावशाली कारक या शक्ति धर्म ही रहा है। मैक्स वेबर ने कन्फ्यूशियस धर्म, बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म इस्लाम धर्म और यहूदी धर्म का विश्लेषण किया है। और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि इन सभी धर्मों के आर्थिक आचारों के अनुरुप ही समाज का आर्थिक तथा सामाजिक संगठन निश्चित हुआ। उदाहरणार्थ, हिन्दू धर्म को ही लीजिए। मैक्स वेबर ने हिन्दू धर्म को जिस रूप में दखा और प्रस्तुत किया है उसके अनुसार मूल अर्थों में हिन्दू धर्म में मुक्ति का अर्थ केवल 'कर्म के चक्र से मुक्ति है, किन्तु इस लक्ष्य को दूसरे लोगों से अधिक सांसारिक सफलता पाकर प्राप्त नहीं किया है। इस प्रकार मैक्स वेबर ने स्पष्ट किया कि हिन्दू धर्म की आचार परख परिस्थितियों ने ऐसा वातावरण तैयार किया है। जहाँ पूंजीवाद का विकास नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में यदि कहा जाय कि यदि आप दूसरे व्यक्तियों से कहीं अधिक सांसारिक सफलताएँ प्राप्त करते हैं, तो वे सफलताएँ आपके मुक्ति प्राप्ति में सहायक कदापि सिद्ध नहीं होंगी। मुक्ति तो समस्त सांसारिक मायाओं, इच्छाओं और अभिरुचियों से अपने को पूर्णतया अलग या दूर रखकर और ब्रह्मा से साक्षात्कार करके उसमें अपने को विलीन कर देने पर ही प्राप्त कर दी जा सकती है। संक्षेप में, हिन्दू धर्म ने इसके मानने वालों को भौतिक उन्नति करने में, सांसारिक सफलताएं अथवा लौकिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में किसी प्रत्यक्ष अभिरुचि की प्रेरणा नहीं दी।

इस प्रकार से मैक्स वेबर के द्वारा धर्मों के अध्ययन की जो परम्परा विकसित की गई, उसने सामाजिक विश्लेषण को एक नया आयाम प्रदान किया है। मैक्स वेबर ने अपने पद्धतिशास्त्रीय सूझ–बूझ का अनूठा प्रयास किया। जिसके द्वारा मानव के आर्थिक व नैतिक आचारों को धर्म से प्रभावित हुए देखा गया। मैक्स वेबर के धर्म व आर्थिकी के इन सम्बन्धों के अध्ययन को धर्म के समाजशास्त्र के रूप में बहुत प्रसिद्धि मिली तथा इसका एक सिलसिला समाज विज्ञानों में खासकर समाजशास्त्र में प्रारम्भ हुआ। वेबर ने इस बात पर जोर देकर कहा है विचार नहीं, बल्कि धार्मिक स्वार्थ कर्म को प्रेरित करते हैं और यही कर्म आर्थिक व सामाजिक संगठन को निश्चित करते हैं।

वेबर के अनुसार सामाजिक जीवन की हमारी अधिकांश क्रियाएं, हमारे धार्मिक तथ्यों से अन्तर्सम्बन्धित होती है और ये एक ऐसे कारक के रूप में कार्यरत होती हैं, जो एकमात्र तो नहीं परन्तु सर्वाधिक प्रबलकारी हैं। भारतीय समाज के सन्दर्भ में जहाँ का सामाजिक जीवन अभी भी धार्मिकता से परिपूर्ण रहा है, में यह एक प्रमुख निर्धारक है। वेबर के विचारों का समाजशास्त्रीय जगत में बहुत स्वागत हुआ तथा इस विषय पर अनेकानेक अध्ययनों व परिचर्चाओं की शुरुआत हुई, जिन्होंने इसको आगे बढ़ाने के साथ–साथ और ज्यादा सटीक व सैद्धान्तिक आधार को मजबूत बनाया। वेबर के ये विचार धार्मिकता की भावना या कर्मकाण्डों की सार्थकता या उपयोगिता के मूल्यांकन से कोई ताल्लुक नहीं रखते हैं वरन् ये वैज्ञानिक तथ्यों का सही दिशा में एक निरन्तर प्रयास है।

15.8 सारांश

मैक्स वेबर के धर्म व आर्थिक व्यवहारों के उपर्युक्त विश्लेषण में यही स्पष्ट होता है कि पूंजीवाद के विकास में धार्मिक व नैतिक परिस्थितियों के प्रभाव को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता। अपने विभिन्न उदाहरणों व तथ्यों को आधार बनाते हुए वेबर ने इस बात का परीक्षण किया कि धार्मिक उपदेशों का किस तरह से मानव जीवन के विविध आयामों पर प्रभाव पड़ता है। इस सन्दर्भ में वेबर ने मार्क्स के इस कथन को कि उत्पादक सम्बन्ध व शक्तियां मानवीय व्यवहार के निर्धारक के रूप में होती है का, प्रतिरोध किया तथा यह मत व्यक्त किया कि इनके निर्धारण में आर्थिक शक्तियों का नहीं, वरन् धार्मिक विचारों व नैतिकता का समावेश है।

वेबर ने यह भी स्पष्ट किया है कि पूंजीवाद के विकास में प्रोटेस्टेण्ट धर्म ने जिस सीमा तक अपना प्रभाव छोड़ा है। वह इसके बिना असम्भव था। पूंजीवाद का सर्वोत्तम विकास प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलम्बी देशों में ही हुआ है। इस प्रकार वेबर के अनुसार सामाजिक जीवन तथा आर्थिक संगठन में धर्म का अपना महत्व है। जहाँ मार्क्स धर्म को समान मानते हैं, वहीं वेबर इसे एक निर्धारक कारक मानकर उसके प्रभाविता को स्पष्ट करते हैं। वेबर ने अपने उपर्युक्त सम्बन्धों के विश्लेषण में काल्पनिकता व दार्शनिकता का बिल्कुल भी प्रवेश नहीं होने दिया है। आपने इन कमियों से दूर रहते हुए सदैव समाजशास्त्र को वैज्ञानिक धरातल पर खड़े करने का प्रयत्न किया है, जिसका प्रतिफल है कि धर्म के प्रभावों का सामाजिक–आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है? आप आंकलन कर पाएं।

15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Weber Max : The Theory of Social & Economic Organization 1947.
2. Weber Max : Methodology of the Social Sciences
3. मिशेल क्ली डी (1968) : ए डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी, रुटलेज एण्ड केगन पाल, लंदन
4. पार्सन्स, टी. (1949) : द स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन, ग्लेनको इलियानिश
5. Sica Alan (2004) : Max Weber and the New Century, London. Transaction Publishers p. 24.
6. बेन्डिक्स राइन हार्ड (1969) : मैक्स वेबर एक बौद्धिक व्यक्तित्व हिन्दी में अनुवादित द्वारा. के एस. शर्मा) हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

15.10 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मैक्स वेबर द्वारा प्रोटेस्टेण्ट धर्म पर कौन सी पुस्तक लिखी गई है?
2. प्रोटेस्टेण्ट धर्म की कुछ आचारों का उल्लेख कीजिए।
3. कैल्विनवाद क्या है? संक्षिप्त विवेचना कीजिए।
4. प्रोटेस्टेण्ट धर्म 'छुट्टी (अवकाश) के पक्ष में नहीं है, स्पष्ट कीजिए।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मैक्स वेबर द्वारा उल्लिखित धर्म व आर्थिकी के आधारों को स्पष्ट कीजिए।
2. मैक्स वेबर के अनुसार धर्म की विवेचना कीजिए।
3. मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत धर्म और आर्थिकी के कार्य–कारण सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।
4. आदर्श–प्रारुप व मूल्यांकनात्मक निर्णय के सम्बन्धों का विश्लेषण कीजिए।
5. पूंजीवाद पर एक निबन्ध लिखिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) मैक्स वेबर विश्व के कुल कितने धर्मों का अध्ययन किया है?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पाँच

(ड.) छः

(2) धर्म के समाजशास्त्र के जनक कौन हैं?

(क) दुर्खीम (ख) आगस्ट कॉम्ट

(ग) मैक्स वेबर (घ) कार्ल मार्क्स

(3) आधुनिक पूंजीवाद का जनक कौन है?

(क) मैक्स वेबर (ख) कार्ल मार्क्स

(ग) आगस्ट कॉम्ट (घ) बेंजामिन फ्रैंकलिन

(4) कैल्विनवाद का क्या अर्थ है?

(क) ईश्वरवादी (ख) प्रकृतिवादी

(ग) पूंजीवादी (घ) व्यक्तिवादी

(5) 'काम करना ही सबसे बड़ा गुण है' यह आचार किससे सम्बन्धित है?

(क) प्रोटेस्टेण्ट (ख) कैथोलिक

(ग) यहूदी (घ) बौद्ध धर्म

(6) मैक्स वेबर ने मानव व्यवहारों का निर्धारक कारक माना है।

(क) धार्मिक आचार (ख) आर्थिक सम्बन्धी

(ग) राजनीतिक (घ) मनोवैज्ञानिक

15.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ड.), 2. (ग), 3. (घ), 4. (क), 5. (क), 6. (क)

15.12 पारिभाषिक शब्दावली

Religion	धर्म
Economic	आर्थिक
Basis	आधार
Capitalism	पूंजीवाद
Ideology	विचार
Factor	कारक
Characterictics	विशेषता
Conclusion	सारांश

इकाई–16 : शक्ति एवं सत्ता

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 शक्ति एवं सत्ता

16.3 सत्ता के प्रकार या स्वरुप

(क) करिश्माई या चमत्कारिक सत्ता

(ख) वैधानिक सत्ता

(ग) परम्परात्मक सत्ता

16.4 सारांश

16.5 सन्दर्भ

16.6 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

16.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

16.8 पारिभाषिक शब्दावली

16.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- शक्ति व सत्ता के अर्थ को जान सकेंगे।
- शक्ति व सत्ता के बीच अन्तरों को समझ सकेंगे।
- वेबर के सत्ता के प्रकारों को समझ सकेंगे।
- शक्ति एवं सत्ता को परिभाषित कर सकेंगे।
- शक्ति एवं सत्ता के विकास यात्रा को समझ सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

शक्ति व सत्ता का विश्लेषण यद्यपि राजनीतिशास्त्र के विषयान्तर्गत आता है, परन्तु समाजशास्त्र के अन्तर्गत भी जर्मन विद्वान मैक्स वेबर में इसको विश्लेषित करने का अनूठा प्रयत्न किया। प्रख्यात समाजशास्त्री युगल मैकाइवर व पेज ने कहा है कि "समाजशास्त्री होने के नाते हमारी प्रत्यक्ष रुचि सामाजिक सम्बन्धों में है। इस नाते नहीं कि वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक या धार्मिक

है, वरन् इस कारण कि वह सामाजिक भी है।" यह इसी बात की ओर संकेत करता है कि समाजशास्त्र के क्षेत्र में सभी प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन होता है और किया भी जाना चाहिए। इसी सन्दर्भ में मैक्स वेबर का शक्ति व सत्ता सम्बन्धी विश्लेषण भी आता है जो मैक्स वेबर के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन का परिणाम व प्रभाव है। अस्तु प्रस्तुत इकाई में सत्ता एवं शक्ति के विभिन्न पक्षों की तथ्यपरक व्याख्या की गई है।

16.2 शक्ति एवं सत्ता

मैक्स वेबर के अनुसार शक्ति सामाजिक सम्बन्धों का एक पहलू है। अपने सामाजिक व्यवस्था के विश्लेषण में आपने लिखा है कि शक्ति से तात्पर्य उस अवसर से है जिसको कि एक व्यक्ति या कुछ व्यक्ति किसी सामूहिक क्रिया में अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए, उस क्रिया में भाग लेने वाले दूसरे व्यक्तियों द्वारा विरोध करने पर भी प्राप्त कर लेते हैं। शक्ति की अपनी व्याख्या में मैक्स वेबर ने यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य की साधारण शक्ति व आर्थिक शक्ति में अन्तर है। साधारण शक्ति मानव की जैविकीय शक्ति के अन्तर्गत आती है। जबकि आर्थिक शक्ति वह है जो हमें न केवल आर्थिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित करती है, वरन् सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्रदान करती है। आर्थिक शक्ति के माध्यम से भी आपने समाज की संरचना को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। शक्ति का अस्तित्व सामाजिक अन्तःक्रिया में है और यह असमानता की स्थितियाँ पैदा करती हैं क्योंकि जिसके हाथ में शक्ति है वह इसे दूसरों पर इसे लागू करने का प्रयास करता है। शक्ति का प्रभाव अलग–अलग स्थिति में अलग–अलग होता है। इस सन्दर्भ में वेबर मानते हैं कि जीवन के सभी क्षेत्रों में यथा– युद्ध क्षेत्र, राजनीति, बाजार, भाषण, मंच किसी भी सामाजिक समारोह, खेलकूल, वैज्ञानिक गोष्ठियों और परोपकार की गतिविधियों में भी शक्ति का प्रयोग सम्भव है।

सत्ता का तात्पर्य होता है, एक व्यक्ति जिसे ओदश देने की शक्ति प्राप्त है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना चाहिए कि जहाँ आदेश देने वाला होता है वहीं आदेश को मानने वाले भी होने चाहिए। जहाँ शक्ति में आदेश देने वाले का दबाव या भय सन्निहित होता है वहीं सत्ता में उसकी शक्ति को सामाजिक वैद्यता प्राप्त होती है अर्थात् आदेश को मानने वाले लोगों की आन्तरिक स्वीकृत उनके आदेशों में दिखाई देने लगती है। मैक्स वेबर के अनुसार सत्ता विशेषतया आर्थिक आधारों पर निर्भर होती है। इसके बाद भी इसका आधार मात्र आर्थिक नहीं कहा जा सकता है। वेबर के इन विचारों का हम अपने जीवन में कभी–कभी अनुभव कर सकते हैं। समाज में प्रायः धनी व संभ्रान्त लोगों को लोग आदर्श मान लेते हैं तथा उनके कहे व बताए बातों को सही व उचित मानते हैं। भौतिक प्रधान समाज में जहाँ अर्थव्यवस्था ही व्यक्ति के सामाजिक प्रस्थिति के निर्धारक के रूप मे कार्य करती है। यह स्पष्ट हो जाता है कि सत्ता उन्हीं के हाथों में रहती है जिनके पास सम्पत्ति तथा उत्पादन के साधन केन्द्रित हो। इसी सत्ता के आधार पर मजदूर की स्वाधीनता खरीदी जाती है और मालिक को मजदूर के ऊपर एक विशेष प्रकार

के अधिकार प्राप्त होते हैं। यद्यपि इस प्रकार की सत्ता वर्तमान लोकतान्त्रित परिदृष्य में कम से कम होती जा रही है। वर्तमान में समाज जबकि, उत्तर आधुनिकता की तरफ अग्रसर हो रहा है, में व्यक्ति की सत्ता के प्रकार्यात्मक पहलुओं पर गहन विवेचन व विश्लेषण भी हो रहे हैं, जो व्यक्ति व समाज के मध्य के ऐसे सम्बन्धों को जहाँ एक व्यक्ति दूसरे का नियन्त्रण करता है या करना चाहता है, का अधिक से अधिक स्पष्टीकरण हो रहा है एवं सत्ता जोकि सामाजिक–सांस्कृतिक होती है, के विविध पक्षों पर भी मैक्स वेबर ने अपना दृष्टिकोण प्रतिपादित किया है :

16.3 सत्ता के प्रकार या स्वरुप

मैक्स वेबर प्रभुत्व या शक्ति के तीन स्रोत बताते हैं जिसे शक्ति या सत्ता के प्रकार के रूप में माना जा सकता है जिसकी विवेचना इस प्रकार है :

(क) करिश्माई या चमत्कारिक सत्ता

यह वैयक्तिक एवं अस्थायी शक्ति है। करिश्माई नेतृत्व एक व्यक्ति का नेतृत्व है जिसका आधार उसके असाधारण गुण होते हैं। ये गुण ही उसकी शक्ति की रुपरेखा तैयार करते हैं। जब ऐसे नेतृत्व में असाधारण गुण खत्म हो जाते हैं या उसका क्षय हो जाता है तो यह नेतृत्व आने वाले समय में अपने अस्तित्व को खोने लगता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इसकी प्रकृति अस्थायी होती है। वास्तव में यह सत्ता न तो वैधानिक नियमों और न ही परम्परा पर बल्कि कुछ करिश्मा या चमत्कार पर आधारित होती है। जब करिश्माई सत्ता नेतृत्व का अन्त हो जाता है और उसके अनुयायियों में कोई करिश्माई नेतृत्व नहीं उत्पन्न हो पाता है तो उस सत्ता को बनाये रखने के लिए किसी न किसी संगठन का निर्माण किया जाता है जिसे मैक्स वेबर करिश्मा अथवा चमत्कार का सामान्यीकरण कहते हैं।

मैक्स वेबर के अनुसार जादूगर, पीर, पैगम्बर, अवतार, धार्मिक नेता, सैनिक, योद्धा, किसी दल के नेता आदि इसी प्रकार के सत्ताधारी व्यक्ति होते हैं। ऐसे व्यक्तियों की सत्ता को लोग इसी कारण स्वीकार कर लेते हैं कि ऐसे लोगों में कुछ अद्वितीय गुण पाए जाते हैं और ये अद्भुत गुण सामान्य जनमानस को नहीं मिले होते हैं। समाज में ऐसे अद्भुण गुणों के प्रति लोगों में श्रद्धा स्वाभावतः ही होती है। इन गुणों को बहुधा दैवीय या ईश्वरीय अंश मानकर उनके प्रति लोग नतमस्तक हो जाते हैं।

समाज में करिश्माई नेतृत्व की उत्पत्ति संकटपूर्ण स्थितियों से होती है। कठिनाईयाँ ही करिश्माई नेतृत्व को पैदा करती है। पैगम्बर, तीर्थकर व महन्त लोग ऐसी समस्याओं के हल का कोई न कोई रास्ता खोज निकालते हैं, जिससे इनकी करिश्माई सत्ता को समाज द्वारा मानकर समर्थन किया जाता है। इन सभी वर्गों के लोग अपने व्यक्तित्व को इस प्रकार विकसित एवं संवर्द्धित करते हैं कि

समाज के लोगों में यह विष्वास हो जाता है कि उनमें अद्भुत गुणों की क्षमता विकसित हो गई है।

जादूगर लोग अपने जादू के खेल में ऐसे–ऐसे कारनामें दिखाते हैं कि उनको देखकर विश्वास हीं नहीं होता है कि ऐसा सम्भव हो सकता है? पैगम्बर जिसका अर्थ होता है, ईश्वर द्वारा भेजा गया ऐसा दूत, जिसे उसने सामाजिक–धार्मिक उपदेशों को जनमानस तक पहुँचाने हेतु पृथ्वी पर भेजा है। इस प्रकार के सत्ताधारी व्यक्तियों की आज्ञा अथवा आदेश का पालन श्रद्धा भक्ति के साथ किया जाता है। इस प्रकार की सत्ता या शक्ति के परिणाम समाज के लिए अनावश्यक या अहितकर ही नहीं होते हैं, वरन् समाज में एक विश्वास की भावना पैदा करके उनके बीच सन्तुलन का भी कार्य करते हैं। समाज में इस प्रकार सत्ता का प्राचीन सिलसिला रहा है। यह सदियों से मानव समाज के मन में बातें रही है कि पुजारियों, ओझा एवं तंत्र विद्या के ज्ञाताओं के पास दैवीय शक्ति होती है। इसी शक्ति के बल पर वे मानव के लिए अहितकर एवं विभिन्न समस्याओं का समाधान करते हैं।

(ख) वैधानिक सत्ता

वैधानिक शब्द से यह तात्पर्य है कि एक शक्ति या सत्ता जो वैध हो अर्थात् जिसे राज्य द्वारा प्रतिपादित कुछ सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार उचित व तर्कयुक्त माना गया हो। ऐसे पदों पर रहने वाले व्यक्तियों को कुछ परिस्थितियों में कुछ विशेष कार्यों को करने हेतु अधिकार प्राप्त होते हैं। वैधानिक सत्ता का प्रावधान सामाजिक तथ्यों एवं साधनों के बीच तार्किक सम्बन्धों के द्वारा किया जाता है। इस प्रकार की सत्ता में कोई व्यक्ति या परम्परा महत्वपूर्ण नहीं होती है, बल्कि नियम महत्वपूर्ण होते हैं। मूलतः यहाँ नियमों का शासन होता है जिसे नियमों द्वारा चयनित व्यक्ति ही संचालित करता है। इस प्रकार की सत्ता में चयन एवं निष्कासन भी नियमों के आधार पर ही होता है।

नौकरशाही इसी प्रकार की सत्ता है। वर्तमान जटिल समाज में इसी प्रकार की सत्ता का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। शक्ति के सम्बन्ध में मैक्स वेबर का कथन है कि "सामाजिक सम्बन्धों में जब कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति में हो कि दूसरे के प्रतिरोध करने पर भी अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर पाए, तो वह शक्ति है।" इस प्रकार की सत्ता के अन्तर्गत एक व्यक्ति को वैधानिक नियम के अन्तर्गत जितना अधिकार प्राप्त हुआ है, उसके बाहर या उससे अधिक उस सत्ता का प्रयोग वह व्यक्ति नहीं कर सकता है। इस प्रकार देखा जाय तो एक व्यक्ति की सत्ता जो कि वैधानिक दायरे में होती है तथा उसके बाहर का जो क्षेत्र होता है उसके बीच में एक आधारभूत अन्तर होता है। यह स्थिति उसे किसी अन्य प्रकार की सत्तात्मक संरचना से अलग करती है।

देखा जाय तो वैधानिक सत्ता का सम्बन्ध समय सापेक्ष भी होता है। अर्थात् एक व्यक्ति जिसे सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत एक पद प्रदान किया गया है, लेकिन उस व्यक्ति की सत्ता तभी तक बनी रहती है, जब तक वह उस

पद पर बना रहता है। जैसे एक जिलाधिकारी जो कि जिले का सर्वोच्च अधिकारी माना जाता है लेकिन तभी तक उसकी अधिकारिता होती है, जब तक वह इस पद पर तैनात होता है। इसके विपरित सेवानिवृत्त होने के बाद उसी के कार्यालय के कर्मचारी एवं अधिकारी उसे दूसरे ढंग अथवा दृष्टिकोण से देखते हैं। आधुनिक समाज में बढ़ती हुई जटिलता के कारण मानव व्यवहार के नियमन व नियन्त्रण हेतु नियमों व कानूनों को ज्यादा से ज्यादा उपयुक्त एवं प्रभावी बनाने का कार्य निरन्तर चल रहा है। व्यवहारिक धरातल पर देखा जाय तो में मानव स्वभाव से ही स्वार्थी प्रवृत्ति का होता है। वह स्वार्थवश दूसरे व्यक्तियों को, जिनके पास शक्ति नहीं होती है, को शोषित करता है। जिसके परिणाम के रूप आन्दोलन या क्रान्ति को देखते हैं। समाज में शक्ति या सत्ता के संचालन का प्रमुख केन्द्र राज्य होता है, जिसके हाथ में शक्ति केन्द्रित रहती है। राज्य अपने अधिकार क्षेत्र में अपनी नीतियों व योजनाओं के सफल संचालन के लिए कानून सम्मत न्याय व सुव्यस्थित व्यवस्था की स्थापना करता है। जिसके दायरे अथवा कार्य क्षेत्र में नौकरशाही जैसी संस्थाएं भी आती हैं, जो वैधानिक सत्ता का सूचक हैं।

सामाजिक घटनाओं पर नियन्त्रण की सफल प्राप्ति हेतु वैज्ञानिक व तार्किक तरीके से इस व्यवस्था में शक्ति या सत्ता संचालन की व्यवस्था रहती है। जिसके कारण कोई अव्यवस्था नहीं उत्पन्न होती है तथा सामान्य सामाजिक क्रियाएं अपनी–अपनी पटरी पर अनवरत चलती रहती है। यहाँ इस बात का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि ऐसी संरचना के अन्तर्गत भी उच्चता एवं निम्नता के स्तर का एक संस्तरण होता है जैसे– नौकरशाही व्यवस्था में अधिकारी व कर्मचारियों की स्थिति।

(ग) परम्परात्मक सत्ता

ऐतिहासिक कालों से आज तक हम देखें तो स्पष्ट होता है कि परम्परा की वैचारिकी का अस्तित्व सर्वत्र पाया जाता है। समाज कितना भी आगे बढ़ जाए पर उसके अंग अथवा विचार अपने पूर्वजों से अवष्य सम्बन्धित होता है। परम्पराएं मानव समाज में नियन्त्रण व व्यवस्था की रचना में महत्वपूर्ण योगदान देती रही हैं। इन्हीं के अन्तर्गत उनके परम्परात्मक शक्ति या सत्ता की संरचना को भी देखा जा सकता है। इस प्रकार की सत्ता वैज्ञानिक नियमों के अन्तर्गत या करिश्माई व्यक्तित्व के अन्तर्गत नहीं वरन् इसकी शक्ति, परम्परा से पोषित होती है। इस प्रकार की सत्ता का एक उदाहरण भारतीय समाज में देखा जा सकता है। जैसे– पंचायत में 'पंचों की सत्ता'। भारत में प्राचीन समय में ग्रामीण समाज के छोटे–मोटे झगड़ों व विवादों का हल पंचायतें किया करती थीं। दोनों पक्षों में से जो अपने को शोषित समझता था। गाँव के वरिष्ठ एवं उम्रदराज तथा सम्मानित व्यक्तियों को लोग अपने यहाँ पंच के रूप में बुलाते थे। इस प्रकार की पंचायतों के निर्णयों को लोग सहज भाव से स्वीकार करते थे।

मैक्स वेबर ने अपने सत्ता/शक्ति के अध्ययन में इसी प्रकार की सत्ता को परम्परागत सत्ता के रूप में परिभाषित किया है। मैक्स वेबर के इस प्रकार की सत्ता के प्रभावों व विशेषताओं का उल्लेख किया है। भारत के सन्दर्भ में इस प्रकार की सत्ता के बारे में जानना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि वर्तमान में भी इस प्रकार की सत्ता का प्रभाव भारतीय समाज के खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में दिखाई देता है। जैसे– परिवार के अन्तर्गत भारत का अधिकांश भाग पितृसत्तामक परिवार के अन्तर्गत आता है। इसमें पिता की आज्ञा का पालन हम लोग इसलिए नहीं करते हैं कि उन्हें कोई वैधानिक सत्ता प्राप्त है। वरन् उनका सम्मान हम इसलिए करते हैं कि ऐसा हमारे यहाँ परम्परागत रूप से होता आ रहा है।

मानव समाज में परम्परागत प्रभुत्व का आधार भी देखा जा सकता है। इस प्रकार की शक्ति को वैधता परम्पराएँ प्रदान करती हैं। परिवार में पिता या मुखिया की सत्ता तथा पुरोहित की सत्ता परम्परागत प्रभुत्व ही है। आदिम व सरल समाजों में परम्परागत सत्ता का महत्व अधिक होता है। परम्परागत सत्ता में जनता एवं सत्ता के बीच का संबंध कई पीढ़ियों से चला आता है। चूँकि सत्ता एवं जनता के पूर्वजों के बीच संबंध वही थे जो आज हैं और उन पर इसलिए प्रश्न चिन्ह भी लगाया जाता क्योंकि वह पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है। इस प्रकार की सत्ता में उस व्यक्ति को अपनी इच्छाओं को आरोपित करने का अधिकार परम्पराओं से ही प्राप्त होता है। इस प्रकार की सत्ता लम्बे समय तक चलती रहती है। जैसे– इंग्लैण्ड की रानी, परिवार में पिता, जनजातीय प्रमुख आदि।

कोई भी समाज हो वह अपने परम्परागत आधारों पर ही आगे बढ़ता है। अस्तु इनकी अवहेलना मानव समाज को समझने की दृष्टि से भी नहीं की जा सकती। परम्पराओं में बड़ी शक्ति होती है। परम्परायें मानव समाज में नियन्त्रण का भी कार्य करती हैं। इस प्रकार की सत्ता में ऐसा विश्वास किया जाता है कि इनके अनुपालन से सामाजिक जीवन में सफलता मिलती है तथा पारलौकिक उत्थान भी सम्भव होता है। वर्तमान समय में समाज विज्ञानों में ऐसी प्रवृत्तियाँ भी उभरकर आ रही हैं कि प्राचीनता या परम्परा को वर्तमान सन्दर्भ में समझने व परखने की एक प्रक्रिया चल पड़ी है। मानव की चेतना अपने से बाह्य पदार्थों के समायोजन एवं अनुकूलन हेतु विभिन्न तरह के व्यवहार ढंग को अपनाती है। इन तरीकों से जो तरीके व्यक्ति व समाज के लिए हितकर होते हैं, उन्हें समाज द्वारा अपना लिया जाता है, तथा धीरे–धीरे परम्पराओं के रूप में उनकी सत्ता स्थापित हो जाती है। अर्थात् इनके भीतर एक ऐसी शक्ति का समावेश हो जाता है, जो प्रभावकारी उपकरण के रूप में साबित होती है। इतना ही नहीं इनकी सामाजिक क्रियाओं के प्रवाह में भी सक्रिय उपयोगिता अथवा उपादेयता होती है। इस प्रकार देखा जाय तो मैक्स वेबर ने इस पक्षों का मैक्स वेबर ने स्पश्ट करने का प्रयास अपने परम्परात्मक सत्ता को समझाने की दृष्टि से किया है।

16.4 सारांश

मैक्स वेबर अपने अकादमिक जीवन में तार्किकता को बनाए रखने के लिए जीवन भर प्रतिबद्धता दिखाते रहे। जीवन में समाज की सत्ता संरचना का व्यक्ति के ऊपर प्रभाव पड़ता है। समाजशास्त्र में विकासवादी नियमों (सिद्धान्त) के प्रयोग की संभावना के प्रति अपनी असहमति प्रकट करते हुए वेबर ने तार्किकीकरण/युक्तिकरण को पूंजीवादी समाज की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। मैक्स वेबर के अनुसार तार्किक दृष्टिकोण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानवीय सम्बन्धों के प्रत्येक क्षेत्र में परिकलन, गणना और नियोजन का प्रयोग किया जाता है। वास्तव में जहाँ मार्क्सवादियों ने युक्तिकरण को प्रमुख रूप से कारखानों के क्षेत्र में श्रम प्रक्रिया में प्रयोग किया है। वेबर ने सभी सामाजिक क्षेत्रों में अर्थात् राजनीति, धर्म, आर्थिकी संगठन तथा प्रशासन इत्यादि तक इसका प्रयोग किया है। राजनीति में व्यक्तिगण अपने स्थिति को ऊँचा उठाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं जिसके कारण उनमें अधीनता व उच्चता के बीच एक प्रकार की प्रतिस्पर्धा पायी जाती है। राजनीति के अन्तर्गत किसी भी राजनीतिक दल या पार्टी के नेता कई स्तरों में बंटे होते हैं। इसमें छोटे स्तर के नेताओं से लेकर बड़े स्तरों तक नियमों व आदेशों को मनवानें की एक शक्ति होती है जिसे वेबर ने वैधानिक सत्ता के नाम से पुकारा है। इसी प्रकार से धर्म के क्षेत्र में परम्पराओं का प्रभुत्व होता है। किसी भी धर्म में उनके पूजा स्थलों व देवालयों के जो महन्त या पुजारी होते हैं। उंनकी उच्चता होती है। वे सर्व शक्तिमान होते हैं। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह प्रतिबद्धता शक्ति ही नहीं वरन् सत्ता के अन्तर्गत है, जिसके आधार पर समाज के सामान्य मूल्य परम्पराएं होती हैं। लोग बड़ी श्रद्धा व लगन के साथ उनके सामने नतमस्तक हो जाते हैं। ऐसा उनके व उनके अनुयायियों के बीच एक सत्तात्मक संरचना के कारण होता है। आर्थिक संगठनों के क्षेत्र में इस तरह की शक्ति या सत्ता के भेद का अनुप्रयोग बहुत पहले से होता आ रहा है। जिसमें मार्क्स के द्वारा किए गए समाजों के विभाजन में दास युग से ही इस वैचारिकी को देखा जा सकता है। जिसकी वर्तमान परिणाति उत्तरआधुनिक युग में भी देखी जा सकती है। प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत नौकरशाही में अधिकारियों के मातहत कर्मचारियों के बीच सम्बन्धों को देखा जा सकता है। जिसके अन्तर्गत प्रत्येक अधिकार समान अधिकारी के नीचे के अधिकारी अपने से ऊपर के अधिकारी के प्रति जवाबदेह होते हैं।

इस प्रकार मैक्स वेबर ने अपने सत्ता के विश्लेषण के आधर पर समाज की व्यवस्था को समझने में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिसके माध्यम से समाज के इन महत्वपूर्ण व प्रभावकारी परिस्थितियों को विश्लेषण कर उन्हें अधिकाधिक रूप से नियोजन में प्रयोग किया जा सके। यह पक्ष वेबर के समाजशास्त्र का प्रमुख तत्व रहा है। जिसका प्रमुख रूप से वेबर ने अपने औपचारिक तार्किकता के विश्लेषण अर्थात् प्रशासनतन्त्र व नौकरशाही में विशेष

रूप से प्रयोग किया है। वेबर की इस तार्किकता की अवधारणा ने मानव समाज में प्रचलित व्यवहारों के एक सूक्ष्म निरीक्षण व जांच के लिए एक अन्तर्दृष्टि प्रदान की, जिससे सामाजिक विज्ञानों में खासकर समाजशास्त्र में एक नए ज्ञान का उद्‌भव हुआ एवं घटनाओं को मानव समाज एक दृष्टिकोण से देखने के लिए अग्रसर हुआ।

16.5 सन्दर्भ

1. Breiner Peter, Max Weber & Democratic Politics, Cornell University Press, 1996.
2. Franco Ferrarotti, John Fraser Max Weber & the Destiny of Reason, M.E. Sharpe, 1982.
3. Weber Max : H.P. Secher, Basic Concept in Sociology, Citadel Press, 1962.
4. A.M. Handerson, Talcott Parsons; Max Weber : The Theory of Social & Economic Organization, Oxford University Press, 1947.
5. रावत हरिकृष्ण, समाजशास्त्र विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2007

16.6 सम्बन्धित प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शक्ति व सत्ता के बीच के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
2. मैक्स वेबर के तार्किक सत्ता की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।
3. वैधानिक सत्ता की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. चमत्कारिक सत्ता की विस्तृत विवेचना कीजिए।
2. मैक्स वेबर द्वारा वर्णित परम्परागत सत्ता की विस्तृत विवेचना कीजिए।
3. वैधानिक सत्ता से आप क्या समझते हैं? इसके प्रमुख तत्वों की व्याख्या कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सत्ता की प्रकृति होती है :

   (अ) सामाजिक–सांस्कृतिक (ब) शारीरिक

   (स) मानसिक (द) मनोरंजनात्मक

2. मैक्स वेबर ने सत्ता के कितने प्रकार का उल्लेख किया हैं?

   (अ) दो (ब) तीन

   (स) चार (द) पाँच

3. जादूगर लोग किस प्रकार की सत्ता रखते हैं?

   (अ) चमत्कारिक सत्ता (ब) परम्परागत सत्ता

   (स) वैज्ञानिक सत्ता (द) राजनीतिक सत्ता

4. पिता की सत्ता किस प्रकार की मानी जाती है?

(अ) वैधानिक (ब) परम्परागत

(स) धार्मिक (द) करिश्माई सत्ता

5. जिलाधिकारी की सत्ता किस प्रकार की होती है?

(अ) चमत्कारी सत्ता (ब) राजनीतिक सत्ता

(स) वैधानिक सत्ता (द) परम्परागत सत्ता

16.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (अ) 2. (ब) 3. (अ) 4. (ब) 5. (स)

16.8 पारिभाषिक शब्दावली

Power	शक्ति
Authority	सत्ता
Magician	जादूगर
Legal Authority	वैधानिक सत्ता
Traditional Authority	परम्परागत सत्ता
Charismatic Authority	करिश्माई सत्ता
Autocracy	तानाशाही
Power elite	सत्ताधारी अभिजन
Authoritarianism	सत्तावाद
Personality	व्यक्तित्व

इकाई–17 : तार्किक दृष्टिकोण

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 तार्किक दृष्टिकोण
17.3 तार्किकता और मैक्स वेबर
17.4 वेबर का पद्धतिशास्त्र व तार्किकता
17.5 मैक्स वेबर की नौकरशाही की अवधारणा व तार्किकता
17.6 सारांश
17.7 सन्दर्भ
17.8 बोध के प्रश्न
(क) लघु उत्तरीय प्रश्न
(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न
17.9 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर
17.10 पारिभाषिक शब्दावली

17.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- वेबर के समाजशास्त्र के मूल आधार, तार्किक दृष्टिकोण के तथ्य को समझ सकेंगे।
- तार्किकीकरण या युक्तिकरण की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- समाजशास्त्रीय पद्धति में तार्किकता के महत्व को समझ सकेंगे।
- समाजशास्त्र में तर्क अथवा विज्ञान की विचारधारा के विकास यात्रा को समझ सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

मैक्स वेबर के विचारों में अथवा समाजशास्त्रीय अवदानों में दार्शनिक स्तर पर सर्वाधिक प्रमुख अवदान उनके मूल्य स्वतन्त्रता का सिद्धान्त है। उनका यह सिद्धान्त अपने अन्दर कई ऐसे आयामों एवं तत्वों को समाहित किए हुए है जिसके कारण उनकी वैचारिकी सामान्यतया बहुत ही जटिल दिखाई देती है। मैक्स वेबर के इस अवदान को समाज विज्ञान में 'वस्तुपरकता' (आब्जेक्टिवटी) के

रूप में समझा जाता है। मैक्स वेबर के अनुसार समाजशास्त्र या विज्ञान का चयन एक मूल्य निर्णय है, जिसे साधक तार्किकता की दृष्टि से उचित ठहराया नहीं जा सकता और यही बात अध्ययन के किसी विशिष्ट उद्देश्य के चयन के बारे में कही जा सकती है। किन्तु जब एक बार इस प्रकार का चयन कर लिया जाता है तब समाजशास्त्रीय अध्ययन को इस अर्थ में मूल्यस्वतंत्र कहा जा सकता है कि इसके तार्किक संगति की वैज्ञानिक समुदाय द्वारा समीक्षा की जा सकती है। जर्मन विद्वान मैक्स वेबर ने अपने समाजशास्त्रीय पद्धतिशास्त्र में इस बात पर जोर दिया है कि समाज विज्ञानों में मूल्य मुक्त निर्णय को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। अस्तु इन्हीं पक्षों की व्याख्या अगले बिन्दुओं के अन्तर्गत की गई है।

17.2 तार्किक दृष्टिकोण

वेबर द्वारा प्रदत्त तार्किकता या तार्किकीकरण समाज विज्ञान में एक प्रमुख तत्व के रूप में है। प्रशासन तंत्र या नौकरशाही के विश्लेषण में वेबर ने औपचारिक तार्किकता का प्रयोग किया है। यद्यपि वेबर ने अपने विश्लेषणों में इसका कई तरह से प्रयोग किया है। अपने सत्ता के विश्लेषण में जिन तीन सत्ताओं की चर्चा वेबर ने की है उनमें से एक प्रमुख सत्ता तार्किक सत्ता है। यह सत्ता का वह प्रकार है जिसकी वर्तमान सन्दर्भों में अधिकाधिक महत्ता है। इस सत्ता का आधार वैधानिक और तार्किकता के आधार पर बने नियम होते हैं। वेबर ने तार्किकीकरण की प्रक्रिया का प्रयोग अपने धर्म, कानून व संगीत की व्याख्या में भी किया है।

मैक्स वेबर ने अपने तार्किकरण की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए लिखा है "युक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानवीय सम्बन्धों के प्रत्येक क्षेत्र में परिकलन, गणना और नियोजन का प्रयोग किया जाता है।" समाजशास्त्र के क्षेत्र में विकासवादी नियमों के प्रति आपने असहमति प्रकट करते हुए तार्किकीकरण या तार्किक दृष्टिकोण को पूंजीवादी समाज की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। मार्क्स के सिद्धान्तों का समर्थन करने वाले विद्वानों ने जहाँ युक्तिकरण की प्रक्रिया को केवल कारखानों में और वह भी श्रम प्रक्रिया में प्रयोग किया है, वहाँ वेबर ने इसका सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में जैसे– राजनीति, धर्म, आर्थिक संगठन, और यहाँ तक कि संगीत के संकेतों तक में इसकी उपस्थिति को स्वीकार किया है।

मैक्स वेबर ने सामाजिक विज्ञानों में शोध विधियों के साथ–साथ वस्तुपरकता और मूल्य तटस्थता जैसे मुद्दों को लेकर सर्वप्रथम एक लम्बी बहस की शुरूआत की। वस्तुपरकता को बनाए रखने की दृष्टि से वेबर ने एक प्रमुख तर्क यह दिया

कि समाजशास्त्र में मानवीय व्यवहार के सन्दर्भ में प्राकृतिक विज्ञानों से मिलते–जुलते नियम खोजे जा सकते हैं। इस धारणा के अन्तर्गत यह विश्वास रहता है कि समाज की प्रकृति का एक अंग है। अस्तु इसके नियम भी प्राकृतिक हो सकते हैं। इस प्रकार हम देखें तो दोनों की समानता के पीछे अन्तर्निहित तार्किकता ही प्रमुख होती है। अर्थात् दोनों ही स्थिति में निरन्तरता की खोज की जाती है। इसका एक प्रमुख उदाहरण जीवन के सावयव से समाज की तुलना करना है। इसी के द्वारा सावयवीवाद की अवधारणा का प्रतिपादन हुआ। इस प्रकार प्रत्यक्षवादी विचारधारा भी इसका एक प्रमुख उदाहरण है।

वेबर ने तार्किक दृष्टिकोण को सभी ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्रों के लिए आवश्यक एवं अपरिहार्य बताया है। यह किसी भी तथ्य को सिद्ध करने में एक यन्त्र की तरह है। इसके माध्यम से तथ्यपरक एवं विश्वसनीय जानकारी मिल पाती है। तार्किकता के माध्यम से जो सूचनाएं प्राप्त होती है। उनका किसी भी परिवेश में परीक्षण किया जा सकता है, क्योंकि तर्क का तात्पर्य होता ही है कि किसी घटना या वस्तु का जो भी अर्थ लगाया जाय, उसको सामान्य रूप से स्वीकार किया जाए। वास्तव में तार्किक किसे कहा जाए, यह बहुत कुछ रूप में ऐतिहासिक परिवर्तन पर निर्भर करता है। इस अर्थ में सभी सामाजिक वैज्ञानिक शोधकार्य मूल्यों द्वारा प्रभावित होते हैं। ये मूल्य न केवल किसी व्यक्तिगत समाजशास्त्री, अपितु समाज वैज्ञानिकों के समुदाय और सम्पूर्ण रूप में तत्कालीन संस्कृति के भी होते हैं।

17.3 तार्किकता और मैक्स वेबर

तार्किकता मैक्स वेबर की एक प्रमुख अवधारणा है। वेबर ने पशुवत व्यवहार और ऐसी मानवीय क्रियाओं में अन्तर बताया है जो विवेक सम्मत (तार्किक) होती हैं। मानवीय विवेक सम्मतता की कई विशेषताएं है जिनमें मुख्य रूप से हैं– चेतना, चिंतन, अभिप्राय (इरादा), प्रयोजन और अर्थ। ये विशेषताएं पशु व्यवहार में नहीं होती हैं। इसी आधार पर उन्होंने कहा है कि समाजशास्त्र को मानवीय क्रिया के अर्थ और उनके पीछे छिपे हुए विकल्पों का व्याख्यात्मक अध्ययन करना चाहिए। वेबर के अनुसार समाजशास्त्र के अध्ययन का उपयुक्त एवं प्रमुख उद्देश्य सामाजिक क्रिया का अध्ययन करना है। सामाजिक क्रिया के अध्ययन में मानवीय व्यवहारों पर पड़ने वाले प्रभावों का तार्किक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन वेबर का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

इस प्रकार के अपने अध्ययनों में तार्किकता को वेबर ने प्रमुखता प्रदान की है। अर्थात् सामाजिक कर्ता की क्रिया व्यवस्था में लक्ष्य व साधनों के बीच जो कारण–प्रभाव सम्बन्ध होते हैं उनके बीच के अध्ययन की व्याख्या तर्कसंगत आधार पर होनी चाहिए। अपने क्रियात्मक अध्ययन की श्रंखला में वेबर ने सामाजिक क्रिया के चार विवेचना किये हैं– पारम्परिक, भावात्मक, मूल्यांकनात्मक और तार्किक क्रिया। पारम्परिक क्रिया इसलिए की जाती है कि क्योंकि ऐसा हर समय किया जाता रहा है। भावात्मक, क्रियाएं, उद्वेगों पर आधारित होती है या उनके द्वारा चालित होती है, मूल्यांकनात्मक क्रियाएं हमारे परम मूल्यों द्वारा निर्देशित होती है और तार्किक क्रियाएं या साधक क्रियाएं लक्ष्य प्राप्ति के उद्देश्यों से की जाती हैं।

इनमें से अन्तिम दोनों प्रकार की क्रियाएं बुद्धिसंगत या तर्कसम्मत होती हैं। यद्यपि वेबर ने इस बात पर विषेश बल दिया है कि लक्ष्यों और परम मूल्यों दोनों में से किसी का तार्किक आधार पर चयन करना सम्भव नहीं है फिर भी जब इन क्रियाओं का एक बार चयन कर लिया जाता है, तब इन्हें न्यूनाधिक मात्रा में तार्किक साधनों द्वारा प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मानव की क्रियाएं तर्क, मूल्य, भावना और परम्परा अथवा इन चारों में से किन्हीं के मिश्रण से प्रेरित हो सकती हैं।

मैक्स वेबर ने अपने क्रिया सिद्धान्त में विषय वस्तु को अध्ययन की पद्धति के जोड़कर सामाजिक व्यवस्थाओं के साथ व्यक्तियों को जोड़ने का एक ढांचा अथवा संरचना प्रस्तुत किया है। वेबर के दृष्टि में क्रिया एवं अन्तर्क्रिया के आधार पर निर्मित प्रतिमान ही व्यवस्था या प्रणाली की व्याख्या है। इन व्यवसायों का अध्ययन करने और समझने का एक ही तरीका है और वह तरीका यह है कि कर्तागण जो कुछ करते हैं, उनको वे क्या अर्थ प्रदान करते हैं। इसे कर्ता के दृष्टिकोण से ठीक प्रकार से समझने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से पूर्णतः शुद्ध वास्तविक सामाजिक विज्ञान असम्भव के साथ–साथ अवांछित भी है, क्योंकि सामाजिक जीवन की प्रकृति ही कुछ ऐसी है जिसमें समानुभूति का प्रयोग आवश्यक हो जाता है, ताकि व्यक्तिपरक समझ और अर्थ का प्रयोग किया जा सके। वेबर ने इसके लिए वर्स्टेहन पद्धति को अपनाया है, जिसमें व्यक्ति अर्थात् क्रिया के कर्ता के दृष्टिकोण से समाजिक घटनाओ की विषय–वस्तु को समझने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र में सामाजिक क्रिया के अध्ययन के दृष्टिकोण में तार्किकता का प्रयोग किया है।

17.4 वेबर का पद्धतिशास्त्र व तार्किकता

मैक्स वेबर ने लिखा है कि समाजशास्त्रियों को प्रत्येक सामाजिक घटना या क्रिया का यथार्थ अर्थ खोजने का प्रयास करना चाहिए। अपने समाजशास्त्र को विज्ञान के रूप में प्रस्थापित करने के उद्देश्य हेतु वेबर सदैव प्रयत्नशील और जागरूक रहे। इस उद्देश्य से आपने कठोरतापूर्वक 'क्या है' को 'क्या होना चाहिए' से प्रयोगसिद्ध ज्ञान को भविष्य कथन से तथा सर्वत्र सत्य वैज्ञानिक विश्लेशण को मूल्यांकनात्मक निर्णय ये बिल्कुल अलग रखा है। वास्तव में इन दोनों का अन्तर का आधार तार्किक विश्लेशण है। तार्किकता के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष एक स्थिर व प्रतिमानित पद्धतिशास्त्र को जन्म देते हैं, जिनके बीच सम्बन्धों व क्रियाओं का एक मान्य व उचित प्रवाह होता है। मैक्स वेबर ने अपने समय से पूर्व तक के विचार व अध्ययन प्रणालियों में दार्शनिकता को अधिक तथा वैज्ञानिकता को कम देखा। जिसके कारण विज्ञान की सत्ता को समाजशास्त्र में प्रभावित करने हेतु आपने दृढ़तापूर्वक कहा है कि समाजशास्त्र में (1) अपने अध्ययन को 'क्या है' तक ही सीमित रखना चाहिए (2) गैर आदर्शात्मक या प्रामाणिक आधार पर मानवीय सम्बन्धों के ऐतिहासिक उद्विकास के विशिष्ट तथा विभेदक पक्षों का अध्ययन करना चाहिए। (3) सामाजिक जीवन की बुनियादी गतिविधियों में पाई जाने वाली घटनाओं के क्रम तथा उसकी क्रियाशीलता एवं परिणामों को कारण सहित जानने का प्रयत्न करना चाहिए। (4) विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों की अन्तःक्रिया की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करनी चाहिए और सर्वत्र सत्य वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने के लिए मूल्यांकनात्मक निर्णय से बचना चाहिए। यहाँ यह स्पष्ट होता है कि उपयुक्त सभी आधार समाजशास्त्र को अधिकाधिक तार्किक बनाने की दृष्टि से आवश्यक है। इस प्रकार मैक्स वेबर के सम्पूर्ण पद्धतिशास्त्रीय आधार तार्किकता या तार्किक दृष्टिकोण ही है।

17.5 मैक्स वेबर की नौकरशाही की अवधारणा व तार्किकता

नौकरशाही एक आधुनिक अवधारणा है। इसका उद्भव यूरोपीय समाज में औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप हुआ। इस पद का सर्वप्रथम प्रयोग डी. गोर्ने ने किया था। सामाजिक विज्ञानों में इस अवधारणा का प्रयोग मैक्स वेबर के द्वारा किया गया। वेबर ने इस पद से सम्बन्धित तथ्यों को अन्तःक्रम में व्यवस्थित कर उसे आगे बढ़ाने का कार्य किया। आपके अनुसार नौकरशाही की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी बुनियाद युक्तिसंगत तथ्यों पर आधारित है। अर्थात् वैज्ञानिक जनसमुदाय द्वारा इसके तत्वों का परीक्षण किया जा सकता है। अधिकारीतंत्र का संगठन और उसके कामकाज करने की पद्धति अवैयक्तिक नियमों पर चलती है। अर्थात् यहाँ पर कार्यालय का तन्त्र या शासन कार्य करता

है। "किसी भी प्रतिष्ठान को जब कोई कार्यालय चलाता है या उसके अधिकारी चलाते हैं तो उस व्यवस्था को नौकरशाही कहते हैं।" देखा जाय तो वेबर की इस नौकरशाही संरचना में सारे कार्य तार्किक नियमों के आधार पर ही संगठित किए जाते हैं। नौकरशाही में श्रम विभाजन की विशेषता से यह स्पष्ट होता है कि इसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार व कर्तव्यों का एक क्रम निश्चित किया जाता है, यह सब कुछ तार्किक होता है क्योंकि बिना किसी नियोजक या प्रशासक के कार्यों का सही परिणाम नहीं मिल पाता है। इसका प्रमुख आधार यह है कि प्रशासन में उच्च अधिकारी अपने से निम्नस्थ अथवा अधीनस्थ कर्मचारियों के ऊपर नियन्त्रण रखते हैं। जिससे उनके कार्यों को सही दिशा निर्देश मिलता है ताकि वे समाज की इस व्यवस्था के लिए लाभकारी साबित हो सकें।

मैक्स वेबर के नौकरशाही की एक दूसरी प्रमुख विशेषता निश्चित कार्य विधियाँ व निश्चित कार्यक्षेत्र है। इस व्यवस्था में कार्य करने वाले व्यक्तियों में अलग–अलग गुणों का प्रभाव होता है। वे एक निश्चित कार्यक्षेत्र के मालिक या विशेषज्ञ होते हैं, जिनका प्रयोग वे अपने प्रशासन तन्त्र में करते हैं। जैसे जिले के प्रशासन तन्त्र में जिलाधिकारी की प्रस्थिति सर्वोच्च होती है वह एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसके लिए कार्य के तरीके उसके अन्य निम्नस्थ कर्मचारियों व अधिकारियों से भिन्न होते हैं। साथ ही साथ उनके कार्यक्षेत्र भी अलग–अलग होते हैं। जैसे जिलाधिकारी के साथ कई सहायक जिलाधिकारी के पद भी सृजित होते हैं जिन पर कार्य करने वाले व्यक्तियों का कार्यक्षेत्र वित्त, प्रशासन, कार्मिक इत्यादि में विभक्त होता है। इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि ऐसा कर देने से तन्त्र के सारे कार्यों में एक सामंजस्य बना रहता है, खासकर इसलिए की हर कोई पदारूढ़ व्यक्ति अपने–अपने कार्यक्षेत्र के प्रति जवाबदेह होता है।

नौकरशाही की अन्य विशेषताओं जैसे– कार्यों को पूरा करने के लिए विधिपूर्वक व्यवस्था, पदसोपान पद्धति, पद के लिए योग्यताएं इत्यादि भी तार्किक आधार पर ही तय किये जाते हैं। इसके अन्तर्गत कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का कार्य पूर्व निश्चित होता है और कार्यों में पदों का एक सोपानिक क्रम होता है जिसमें नीचे के पद पर कार्यरत व्यक्ति अपने सम्बन्धित उच्च पद पर कार्यरत के अधीन रहता है। यह सब कुछ इस तार्किकता पर आधारित होता है कि व्यक्तियों को अपने पद के कर्तव्यों के प्रति जवाबदेह बनाया जा सकता है, जो अत्यन्त आवश्यक है खासकर इसलिए कि व्यक्ति दायित्व निर्वाह के लिए सचेत रहेगा। आधुनिक नौकरशाही दफ्तरों का कार्य संचालत लिखित दस्तावेजों या

फाइलों के माध्यमं से होता है, जिन्हें कि सुरक्षित रखा जाता है। इन विभिन्न 'फाईलों' से सम्बन्धित विविध कार्यो को करने तथा इन फाइलों को सुरक्षित रखने के लिए क्लर्क, फाइल कीपर आदि होते हैं। विभिन्न विशयों से सम्बन्धित अलग–अलग फाइल बनाई जाती है। इन सबका आधार तार्किक होता है। तार्किक आधार होने के कारण जवाबदेही को अधिक स्पष्ट व पारदर्शी बनाया जा सके। इस प्रकार नौकरशाही या प्रशासन तंत्र की लगभग सभी विशेषताओं में तार्किकता को आधार बनाने का प्रयास वेबर ने किया है।

इस प्रकार मैक्स वेबर के अनुसार कर्मचारी तन्त्र में स्पष्ट रूप से कार्यों का विभेदीकरण पाया जाता है और प्रत्येक व्यक्ति नियमानुसार अपनी–अपनी प्रस्थितियों को पूरा करते हैं। पदासीन व्यक्ति को उसकी तकनीकी योग्यता देखकर ही किसी विशिष्ट पद पर आरूढ़ किया जाता है। पद रचना में एक प्रकार का संस्तरण पाया जाता है और सामान्य नियमों के अधीन सभी कर्मचारियों को कार्य करना पड़ता है। इन सब प्रक्रियाओं में मैक्स वेबर ने यह दर्शाने का यत्न किया है कि वस्तु स्थिति को स्पष्ट करने के लिए तार्किकता को आधार बनाकर ही समझा जा सकता है। जो कि नौकरशाही की संरचना को स्पष्ट करने में सहायक हो सकती है। वेबर ने तार्किक दृष्टिकोण को अपने अध्ययनों में सर्वत्र बनाए रखने का प्रयास किया है जिसके आधार के रूप में वैज्ञानिक नियमों को आपने प्रमुख माना है।

17.6 सारांश

उपर्युक्त सभी तथ्यों से स्पष्ट होता है कि मैक्स वेबर ने समाजशास्त्रीय जगत में अपने तार्किक दृष्टिकोण को सर्वत्र बनाए रखा। जिससे समाजविज्ञानों के क्षेत्र में एक क्रान्ति उत्पन्न हुई। वेबर ने यह स्पष्ट किया कि पद्धतिशास्त्र की व्याख्या में भी तार्किकता ही वह प्रमुख अस्त्र है जिसके माध्यम से सही स्थिति तक पहुँचा जा सकता है। अपने पद्धतिशास्त्र व्याख्या में वेबर ने मूल्य निर्णय की भावना से सदैव दूर रहने का संकेत किया है। सामाजिक क्रिया की व्याख्या में भी आपने सामाजिक कर्ताओं के बीच बनने वाले सम्बन्धों को तार्किक आधारों पर समझाने का प्रयास किया है। वेबर के आदर्श प्रारूप की अवधारणा के पीछे भी तार्किकता का ही आधार रहा है जिसमें वेबर ने सामाजिक घटनाओं के एक से दिखने वाले तत्वों में से महत्वपूर्ण पक्षों को आधार बनाकर समझाने का प्रयास किया है। यह उनके तार्किक दृष्टिकोण की एक अनूठी मिसाल है जिसने

समाजशास्त्र के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पन्न किए। नौकरशाही के विश्लेषणों में भी वेबर ने तार्किकता के आधार पर इसके संरचना व प्रकार्यों को समझाने का यत्न किया है जिसके अन्तर्गत उनके कार्यक्षेत्र के विभाजन से लेकर योग्यता व मानदण्डों तक की समीक्षा की गई है। वेबर ने सामाजिक व्यवस्था व वर्ग के आधारों को इसके अन्तर्निहित तत्वों के तार्किक आधारों को लेकर विश्लेषित करने का प्रयास किया है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मैक्स वेबर ने अपने अध्ययन विश्लेषणों में तार्किक दृष्टिकोण को बनाए रखने का प्रयास किया है, जो उनके समाजशास्त्र के मूल में है, यही उनके समाजशास्त्र की एक प्रमुख विशेषता है।

17.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Sadri Ahmad : Max Weber's Sociology of Intellectuals, Oxford University Press, 1992.
2. Ringer, Fritz : Max Weber's Methodology : The Unification of the Cultural and Social Sciences, Howard University Press, 1997.
3. रावत, हरिकृष्ण : समाजशास्त्रीय चिन्तक व सिद्धान्तकार, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2003
4. Ronald M. Glassman, Vatro Murvar : Max Weber's Political Sociology: A Pessimistic Visions of A Rationalized World.

17.8 सम्बन्धित प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मैक्स वेबर के तार्किकीकरण को परिभाषा कीजिए।
2. सामाजिक क्रिया की व्याख्या में वेबर के तार्किकता को स्पष्ट कीजिए।
3. तार्किकता का प्रमुख आधार क्या है? विवेचना कीजिए।
4. वेबर के पद्धतिशास्त्र में तार्किकता को स्पष्ट कीजिए।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. वेबर के तार्किक दृष्टिकोण की अवधारणा की विवेचना कीजिए।

2. वेबर के पद्धतिशास्त्र में तार्किकता का किस प्रकार से प्रयोग हुआ है, वर्णन कीजिए?

3. वेबर की नौकरशाही में तार्किक दृष्टिकोण के पक्षों को स्पष्ट कीजिए।

4. वेबर के तार्किक दृष्टिकोण का परीक्षण कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वेबर के अनुसार तार्किक संगति की व्याख्या की जा सकती है।

   (अ) धार्मिक समुदाय द्वारा (ब) राजनेताओं द्वारा

   (स) व्यापारियों द्वारा (द) वैज्ञानिक समुदाय द्वारा

2. मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया के कितने प्रकार बताए हैं?

   (अ) एक (ब) दो

   (स) तीन (द) चार

3. वेबर के अनुसार समाजशास्त्र में अध्ययन होना चाहिए।

   (अ) 'क्या है' का (ब) 'क्यों का'

   (स) 'कैसे का' (द) 'कहाँ है का'

4. मैक्स वेबर ने अपने अध्ययनों में सर्वत्र किससे बचने का सुझाव दिया है?

   (अ) मूल्यांकनात्मक निर्णयों से (ब) तार्किक निर्णयों से

   (स) भावनात्मक निर्णयों से (द) इनमें से कोई नहीं

5. नौकरशाही का एक प्रमुख गुण नहीं है।

   (अ) कर्मचारी तन्त्र (ब) पद सोपान

   (स) कार्यक्षेत्र का विभाजन (द) अनुत्तरदायित्व

17.9 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (द), 2. (ब), 3. (अ), 4. (अ), 5. (द)

17.10 पारिभाषिक शब्दावली

Logic	तर्क
Social Action	सामाजिक क्रिया
Logical Action	तार्किक क्रिया
Traditional Action	परम्परागत क्रिया
Beuracracy	नौकरशाही
Ideal Type	आदर्श प्रारूप
Methodology	पद्धतिशास्त्र
Action Research	क्रियान्मुखी शोध
Actionalism	क्रियावाद
Approach	दृष्टिकोण अथवा परिप्रेक्ष्य

खण्ड

5

तुलनात्मक विश्लेषण

इकाई-18 5
समाजशास्त्रीय पद्धति-मार्क्स, दुर्खीम और वेबर

इकाई-19 14
धर्म : दुर्खीम और वेबर

इकाई-20 25
इमाईल दुर्खीम एवं कार्ल मार्क्स

इकाई-21 38
पूँजीवाद : कार्ल मार्क्स और मैक्य वेबर

परामर्श-समिति

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति - अध्यक्ष
	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
प्रो0(डा0) जी0एस0शुक्ला	कुलसचिव

विशेषज्ञ समिति

डा0 के0के0 मिश्र	प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

डॉ0एम0एन0सिंह	पूर्व निदेशक, समाजविज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ0 इति तिवारी	एसो0 प्रोफेसर, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद
श्री रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद

पाठ्यक्रम लेखन समिति

1- डॉ0 इति तिवारी	एसो0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट. मु. वि.वि., इलाहाबाद।
2. डॉ रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट.मु.वि.वि. इलाहाबाद।
3. अशीष अंशु,	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय डिग्री कालेज, गनाई गंगोली,पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड ।
4. डॉ0 अरूणा कुमारी	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी।
5. स्वाती एस0.मिश्रा	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आर्य महिला कन्या पी.जी.कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
6. डॉ0 अशोक कुमार श्रीवास्तव	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र,श्रीराम सुरेश सिंह महाविद्यालय, मीरजापुर।
7. डॉ0 वन्दना राव	असि. प्रो. समाजशास्त्र, राम सुभग सिंह महाविद्यालय,कुर्मी पट्टी पथरदेवा, देवरिया।
8. डॉ0 जय प्रकाश सिंह	असि. प्रो. समाजशास्त्र, ठाकुर जगन्नाथ सिंह महाविद्यालय, जौनपुर।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड परिचय : तुलनात्मक विश्लेषण

यह इस पाठ्यक्रम का पाँचवां खण्ड हैं । इस खण्ड से पूर्व में खण्ड -चार का अध्ययन किया गया हैं । खण्ड चार में पाठ्यक्रम के अनुसार मैक्स वेबर के द्वारा रचित सिद्धान्तों का विवेचन समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में किया गया है। खण्ड पाँच के अन्तर्गत मुख्यतः मार्क्स दुर्खीम एवं वेबर के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस खंड में जिन बिन्दुओं पर इकाईवार तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है, वे क्रमशः समाजशास्त्रीय पद्धति, धर्म, पूँजीवाद है।मार्क्स, दुर्खीम एवं वेबर के विचारों के तुलनात्मक विश्लेषण का संक्षिप्त परिचय सारणीवार निम्नलिखित है।

इकाई-18 : इस इकाई के अन्तर्गत समाजशास्त्रीय पद्धति के रूप में मार्क्स, दुर्खीम और वेबर के तुलनात्मक पद्धतियों को विश्लेषित किया गया है। इस इकाई में पद्धतिशास्त्र के अर्थ व अवधारणा के साथ ही साथ कार्ल मार्क्स के अध्ययन पद्धति के अन्तर्गत सामाजिक संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन का भी विवेचन किया गया है।इस इकाई में दुर्खीम के पद्धतिशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक तथ्य, दुर्खीम का सामाजिक प्रकार्यवादी दृष्टिकोण, व्यक्ति और समाज के संदर्भ में दुर्खीम का विचार वैज्ञानिक और प्रासंगिक स्वरूप को समाज के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही इस इकाई में वेबर के अध्ययन पद्धति में वर्स्टेहन और आदर्श प्रारूप का विवेचन किया गया है। इन तीनों विचारकों के विचारों का विश्लेषण आधार समाजशास्त्रीय है। अतः सामाजिक विचारधारा के विस्तार में इसके विचारों का तुलनात्मक विवेचन समाजशास्त्रीय संदर्भ में दिया गया है।

इकाई-19: इस इकाई के अन्तर्गत दुर्खीम और वेबर के धर्म सम्बंधी विचारों को दिया गया है। इस इकाई के अन्तर्गत दुर्खीम और वेबर के धर्म सम्बन्धी विचारों को दिया गया है। इस इकाई में टोटमवाद, पवित्रता और सामाजिक प्रकार्य की चर्चा की गयी है। साथ ही साथ इस इकाई में वेबर से सम्बन्धित धार्मिक विचारों का भी अध्ययन किया गया है। वेबर का धर्म सम्बन्धी विचार और उसका अन्य धर्मो से सम्बन्ध तथा आपसी सम्बन्ध को भी स्पष्ट किया गया है।

इकाई-20: इस इकाई के अन्तर्गत इमाईल दुर्खीम एवं कार्ल मार्क्स के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया हैं।इस इकाई में जिन बिन्दुओं पर इमाईल दुर्खीम एवं कार्ल मार्क्स का तुलनात्मक विवेचन किया गया है।उनमें इमाईल दुर्खीम का जीवन परिचय, दुर्खीम की बौद्धिक समस्या की मूल मान्यताएं दुर्खीम के सैद्धान्तिक विश्लेषण के अन्तर्गत - सामाजिक तथ्य का सिद्धान्त, आत्महत्या का सिद्धान्त , प्रकार्यवादी सिद्धान्त। इसी के साथ साथ कार्ल मार्क्स का जीवन परिचय, मार्क्स के संघर्ष संबंधी के मुख्य बिन्दु, मार्क्स के संघर्ष संबंधी अवधारणा के परिवर्त्य मार्क्स के सैद्धान्तिक विश्लेषण के अन्तर्गत द्वन्द्व का सिद्धान्त, ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त, कार्ल मार्क्स का परकीयकरण का सिद्धान्त, कार्ल मार्क्स का वर्ग सिद्धान्त एवं वर्ग चेतना आदि प्रमुख है।

इकाई-21: इस इकाई के अन्तर्गत कार्ल मार्क्स एवं वेबर के पूँजीपति विचारधारा का

तुलनात्मक वर्णन किया गया है।जिसमें पूँजीवादी विचारधारा के उदभव एवं विकास यात्रा को देखने का प्रयास किया गया है। साथ ही साथ पूँजीवादी विचारधारा के उदभव एवं विकास के सन्दर्भ में मार्क्स एवं वेबर के विचारों को जिन बिन्दुओं पर स्पष्ट किया गया है वे क्रमशः पूँजीवाद का उदगम एवं अर्थ, पूँजीवाद की अवधारणा, कार्ल मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद का लक्षण, मैक्स वेबर का पूँजीवाद, मैक्स वेबर के अनुसार पूँजीवाद का लक्षण, पूँजीवाद के संदर्भ में मार्क्स एवं वेबर का तुलनात्मक विश्लेषण प्रमुख है।

इकाई–18 : समाजशास्त्रीय पद्धति–मार्क्स, दुर्खीम और वेबर

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 पद्धतिशास्त्र : अर्थ एवं अवधारणा

18.3 कार्ल मार्क्स का पद्धतिशास्त्र

18.3.1 सामाजिक संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन

18.4 दुर्खीम का पद्धतिशास्त्र

18.4.1 सामाजिक तथ्य

18.4.2 दुर्खीम का सामाजिक प्रकार्यवादी दृष्टिकोण

18.4.3 व्यक्ति और समाज के संदर्भ में दुर्खीम का विचार

18.5 मैक्स वेबर की अध्ययन पद्धति

18.5.1 वर्स्टेहन

18.5.2 आदर्श प्रारूप

18.6 सारांश

18.7 सन्दर्भ ग्रंथ

18.8 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

18.9 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

18.10 पारिभाषिक शब्दावली

18.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- पद्धतिशास्त्र के अर्थ को समझ पायेंगे।
- समाजशास्त्र के क्षेत्र में मार्क्स के अध्ययन पद्धति को समझ पायेंगे।
- दुर्खीम व वेबर के अध्ययन–पद्धतियों को स्पष्ट रूप से जान पायेंगे।
- मार्क्स, दुर्खीम व वेबर के विचारों के अन्तर्सम्बन्धों को समझ पायेंगे।

18.1 प्रस्तावना

इस खण्ड में हम मार्क्स, दुर्खीम और वेबर के विचारों की तुलना कुछ मुद्दों पर करेंगे। तुलना करने से पर्व हमें उनकी विशिष्ट अध्ययन पद्धतियों को

समझना पड़ेगा। इस कार्य के लिए हमने इस खण्ड को 04 इकाईयों में बांटा है। पहली इकाई में अध्ययन पद्धति को समझना और उसकी आवश्यकता पर ध्यान केन्द्रित करना है। दूसरे खण्ड में कार्ल मार्क्स के अध्ययन परिप्रेक्ष्य को लेंगे। तीसरा और चौथा खण्ड में हम दुर्खीम और मैक्स वेबर की अध्ययन पद्धतियों को समझने का प्रयास करेंगे।

अध्ययन पद्धति से हमारा तात्पर्य उन तरीकों एवं प्रविधियों से है जिनकी सहायता से हम किन्हीं समस्याओं का अध्ययन करते हैं। यहाँ एक बात पर विशिष्ट ध्यान देना चाहेंगे कि अध्ययन पद्धति एवं पद्धतिशास्त्र दोनों एक ही नहीं है। जहाँ अध्ययन पद्धति, पद्धतिशास्त्र का एक भाग है। वहाँ पद्धतिशास्त्र कई अध्ययन पद्धतियों की एक व्यवस्था है। अध्ययन पद्धति वह उपकरण एवं तकनीकी है जो पद्धति के परिप्रेक्ष्य को लागू करने में सहायक होते हैं। उदाहरण स्वरूप इमाईल दुर्खीम ने आत्महत्या की समस्या को समझने के लिए जो पद्धतीय परिप्रेक्ष्य अपनाया वह सामाजिक घटना को एक सामाजिक तथ्य के रूप में स्वीकार करते हैं।

18.2 पद्धतिशास्त्र : अर्थ एवं अवधारणा

समाजविज्ञान तथा समाजशास्त्र में पद्धतिशास्त्र का प्रयोग विभिन्न संदर्भों एवं अर्थों में किया जाता है। प्रथम – सिद्धान्त निर्माण के संदर्भ में पद्धतिशास्त्र शब्द का प्रयोग उन आधारभूत मान्यताओं एवं दार्शनिक दृष्टियों के विवादात्मक परिप्रेक्ष्य की चर्चा के संदर्भ में किया जाता है। द्वितीय – पद्धतिशास्त्र का प्रयोग अनुभवजन्य आधारित सिद्धान्त की प्रचलित विभिन्न विधियों की उपयोगिता के संदर्भ में भी किया जाता रहा है। तृतीय – आनुभविक अनुसंधान की किसी पद्धति को ही पद्धतिशास्त्र के रूप में स्वीकार कर लेना किसी शब्द अनुचित शब्द ही माना जायेगा।

समाजशास्त्र विश्वकोष में एच.के. रावत ने पद्धतिशास्त्र को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि पद्धतिशास्त्र की अवधारणा का प्रयोग मुख्यतः दो अर्थों में किया गया है : प्रथम तथ्यों के संकलन–विश्लेषण की उन विधियों एवं तकनीकों के पुंज को पद्धतिशास्त्र के नाम से विभूषित किया जाता है जो किसी विशिष्ट विषय की शाखा में प्रयोग की जाती है। पद्धतिशास्त्र का यह सामान्य अर्थ है और इसी अर्थ में इस अवधारणा के सर्वाधिक प्रयोग का चलन है। पी–एच.डी. की उपाधि के लिए लिखे जाने वाले अधिकांश शोध–प्रबंधों में 'पद्धतिशास्त्र' के शीर्षक के अन्तर्गत गवेषणा में प्रयोग की गई विधियों एवं तकनीकों का ही उल्लेख होता है। द्वितीय अर्थ में, पद्धतिशास्त्र का प्रयोग तात्विक सिद्धान्त के लिए किया जाता है। ये दोनों ही प्रयोग भ्रामक है। शोध–पद्धतियाँ तथा तकनीकें तो अन्वेषण के सामान्य तौर–तरीके हैं। एक पद्धतिशास्त्री तो इन विधियों तथा तकनीकों का मूल्यांकन भी करता है कि वे किस सीमा तक ज्ञान प्राप्ति में सक्षम हैं। इसी प्रकार तात्विक सिद्धान्त के अर्थ में पद्धतिशास्त्र का प्रयोग भी ठीक नहीं है। तात्विक

सिद्धान्त के द्वारा सिद्धान्तों की विषय–वस्तु की अपेक्षा सिद्धान्तों की प्रामाणिकता के सामान्य आधारों को ज्ञात किया जाता है। आजकल वैज्ञानिक अन्वेषण को निर्देशित करने वाले सिद्धान्तों के व्यवस्थित एवं तार्किक अध्ययन को पद्धतिशास्त्र कहा जाता है।

वैज्ञानिक अन्वेषण की तार्किकता के अर्थ में, पद्धतिशास्त्र का मूल मन्तव्य किसी विषय से सम्बन्धित गवेषणा की प्रचलित विधियों का दार्शनिक मूल्यांकन करना है। अतः एक आदर्शात्मक अनुशासन के रूप में पद्धतिशास्त्र कार्यरत वैज्ञानिक के तथ्यात्मक अध्ययन से पूर्णतः भिन्न है। पारसन्स के अनुसार, 'यह न तो पूर्णतः वैज्ञानिक है और न ही यह पूर्णतः एक दार्शनिक शाखा है।'

18.3 कार्ल मार्क्स का पद्धतिशास्त्र

कार्ल मार्क्स को आधुनिक समाजवादी विचारधारा का जनक माना जाता है। मार्क्स की आधुनिक साम्यवादी विचारधारा ने सम्पूर्ण विश्व के इतिहास की दिशा ही बदल दी।

मार्क्स ऐसे पहले समाज वैज्ञानिक हैं, जिन्होंने 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' की अवधारणा को समाज विज्ञान में स्थापित किया। यह सिद्धान्त मुख्यतः संस्कृति, इतिहास और सामाजिक परिवर्तन की समस्त आदर्शवादी व्याख्याओं को अस्वीकार करता है। मुख्यतः यह सिद्धान्त मानवशास्त्री दर्शन पर आधारित है। यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि सभी आधारभूत ऐतिहासिक प्रक्रियायें कहीं न कहीं संघर्षरत आर्थिक प्रणाली से जुड़ी हुई हैं, जो समस्त सामाजिक घटनाओं जैसे–धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीति को प्रभावित करती हैं।

मार्क्स की अध्ययन पद्धतियों का समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र एवं इतिहास के लेखन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। यहाँ मार्क्स की पद्धतियों को हम उनके द्वारा दिये गये विचारों की संक्षिप्त व्याख्या के रूप में देख रहे हैं। कार्ल मार्क्स अपने ऐतिहासिक भौतिक अवधारणा में कहता है कि मानव–सभ्यता की शुरूआती अवस्था जैसे–जैसे विशेषीकृत होती गयी वैसे–वैसे उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन होता गया। साथ ही साथ आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन होता गया। उत्पादन प्रणाली का परम्परागत स्वरूप आज उत्तर आधुनिकता के मुहान पर खड़ी हो चुकी है। इस विकास यात्रा को मानव ऐतिहासिक भौतिकवाद का नाम देता है।

मार्क्स अपने सिद्धान्त विश्लेषण में एक ऐसे परिप्रेक्ष्य का चयन किया जो अन्य विश्लेषकों से अलग था। संघर्ष को सामाजिक परिवर्तन हेतु उत्तरदायी माना। वास्तव में देखा जाय तो वर्ग संघर्ष के द्वारा ही समाज एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तित होता रहता है। संघर्ष के परिणामस्वरूप समाज की विकास की प्रक्रिया आगे बढ़ती गयी।

मानव सभ्यता के शुरूआती दौर में समाज में कोई वर्ग भेद नहीं था। सबको समान अधिकार प्राप्त थे। जैसे–जैसे मानव सभ्यता की सीढ़ियों को पार

करता गया, वैसे–वैसे मानव के बीच संघर्ष को गति मिलती रही। वर्ग संघर्ष के संदर्भ में वह दो वर्गों की बात करता है– बुर्जुवा एवं सर्वहारा।

मार्क्स के अनुसार, "वर्ग संघर्ष एक ऐसी प्रक्रिया है जो आदिम सामाजिक व्यवस्था के विघटन, उत्पादन के औजारों में सुधार एवं फलतः अतिरिक्त उत्पादन पर एक समूह विशेष अधिकार से सृजित होती है तथा कालान्तर में विभिन्न स्वरूपों में परिलक्षित होती है।"

अलगाव की अवधारणा को मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध कृति **'दास कैपिटल'** में प्रतिपादित किया। मार्क्स ने यह अवधारणा हीगल से ग्रहण की थी। यद्यपि मार्क्स के विचार हीगल के विचारों के बिल्कुल विपरीत थे। जहाँ हीगल के अलगाव का सिद्धान्त दार्शनिक और आदर्शवादी है, वहीं मार्क्स का अलगाववाद व्यावहारिक एवं भौतिक जगत् से सम्बन्धित था।

18.3.1 सामाजिक संघर्ष एवं सामाजिक परिवर्तन

मार्क्स के इतिहास के भौतिकवादी व्याख्या से सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा स्पष्ट दिखाई देती है। मार्क्स का मानना है कि ऐतिहासिक परिवर्तन ब्रह्माण्ड के इतिहास में समस्त परिवर्तन उत्पादन प्रणाली में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप होते हैं। इसके अतिरिक्त भौगोलिक परिस्थितियाँ, जनसंख्या की वृद्धि एवं उनकी वैचारिकी पर विभिन्न कारकों के कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ते हैं। मार्क्स मानता है कि जीवन के लिए आवश्यक भौतिक संसाधनों जैसे– भोजन, वस्त्र, मकान एवं उत्पादन के उपकरण आदि से जुड़ी उत्पादन प्रणाली ही सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मानव को जीवित रहने के लिए भौतिक वस्तुओं की महत्वपूर्ण आवश्यकता होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति उत्पादन के ही द्वारा होती है। इस तरह उत्पादन के लिए उत्पादन की शक्तियाँ आवश्यक होती हैं। इसलिए वह अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करता है। कालान्तर में उत्पादन के प्रणाली एवं उत्पादन के कुछ निश्चित सम्बन्धों जैसे– स्वामी, दास, जमींदार, किसान, पूँजीपति एवं कामगार के बीच पाये जाने सम्बन्धों को उत्पन्न करती है। मार्क्स आगे यह भी कहता है कि उत्पादन के ये सम्बन्धित व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर नहीं होते हैं, बल्कि उत्पादन की शक्तियों के अनुसार तय होते हैं। उत्पादन के ये संबंध विभिन्न कालक्रमों में सांस्कृतिक व्यवस्था, नैतिकता, धार्मिक तथा सामाजिक एवं राजनैतिक विचारों एवं संस्थाओं को मुख्यतः निर्धारित करते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जब समाज की उत्पादन शक्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता है तो उसी के साथ–साथ उत्पादन के सम्बन्धों में भी बदलाव आ जाते हैं। यही सामाजिक सम्बन्धों में बदलाव, सामाजिक परिवर्तन को दृष्टिगोचर करता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज में जो भी बदलाव अथवा परिवर्तन हुए वह बुर्जुवा तथा सर्वहारा के संघर्षों द्वारा ही हुए। इसी संघर्षों के परिणामस्वरूप मार्क्स सामाजिक परिवर्तन को देखता है।

18.4 दुर्खीम का पद्धतिशास्त्र

कहा जाता है कि जिस समाजशास्त्र की नींव ऑगस्ट ने रखी, उस पर एक विशाल भवन इमाईल दुर्खीम ने खड़ा किया। अर्थात समाजशास्त्र को पुष्पित एवं पल्लवित करने में इमाईल दुर्खीम का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। समाजशास्त्र को वैज्ञानिक धरातल पर इमाईल दुर्खीम ने ही खड़ा किया था। अस्तु यहाँ हम उनकी वैचारिकी में पद्धतिशास्त्र को देखने का प्रयास करेंगे।

18.4.1 सामाजिक तथ्य

सामान्यतः ऐसी मान्यता है कि सामाजिक तथ्य एक जटिल विचार है जिसमें वाह्यता, बाध्यता और अपरिहार्यता के गुण विद्यमान रहते हैं। सामाजिक तथ्य के संदर्भ में इमाईल दुर्खीम कहते हैं कि सामाजिक तथ्य, व्यवहार का वह पक्ष है जिसका निरीक्षण वैषयिक रूप में संभव है और जो विशेष ढंग से व्यवहार करने को बाध्य करता है। इस प्रकार देखा जाय तो तथ्य के अनेक आयाम है और संदर्भ के अनुसार हम उनको अलग–अलग विश्लेषित करते हैं।

दुर्खीम कहता है कि समाजशास्त्र सभी मानवीय क्रियाओं का अध्ययन नहीं करता, अपितु सामाजिक तथ्य ही समाजशास्त्र के अध्ययन की विषय–वस्तु है। आगे कार्ल मार्क्स पुनः कहता है कि तथ्यों में कार्य करने, सोचने, अनुभव करने के वे तरीके सम्मिलित हैं जो व्यक्ति हेतु बाहरी होते हैं तथा जो अपनी दबाव शक्ति के माध्यम से व्यक्ति को नियंत्रित करते रहते हैं।

18.4.2 दुर्खीम का सामाजिक प्रकार्यवादी दृष्टिकोण

सामाजिक प्रकार्य के संदर्भ में दुर्खीम कहता है कि प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे विचार, भावनाएं तथा धारणाएं निहित होती हैं जिन्हें समाज का सदस्य होने के नाते समाज के लोग स्वीकार करते हैं। इसका निर्माण कहीं न कहीं सामूहिक चेतना द्वारा होता है। अधिकांश लोगों द्वारा मान्य एवं स्वीकार कर लेने के कारण ये सामूहिक रूप से समस्त समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। और ये उनके प्रतीक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

दुर्खीम धर्म के सामाजिक सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए कहता है कि सामूहिक जीवन के समस्त वस्तुएं एवं घटनाओं के पवित्रता अथवा अपवित्रता दो भागों में बांटा जा सकता है। पवित्र वस्तुएं समाज के प्रतीक या सामूहिक चेतना के प्रतिनिधि होते हैं। समाज इन्हें पवित्र मानता है। इसलिए ये पवित्र होती हैं। इनके प्रति व्यक्ति की श्रद्धा होती है। व्यक्ति अपने उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न विश्वासों, कर्मकाण्डों, संस्कारों एवं उत्सवों को आयोजित करता है।

दुर्खीम आस्ट्रेलिया के अरूण्टा जनजातियों के आधार पर कहते हैं कि धार्मिक अनुभव एक प्रकार की सामूहिक उत्तेजना का कारण है तथा सामूहिक सत्य के भी कारण हैं। इसी सामूहिक सत्य के आगे सभी को नतमस्तक अथवा झुकना पड़ता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दुर्खीम जिस प्रकार्यवाद की दलील देता है वह कहीं न कहीं सामाजिक तथ्य से संबंधित है। जो सामूहिक चेतना के रूप में अभिव्यक्त होता है। और इस सामूहिक चेतना के माध्यम से विभिन्न व्यक्ति एक–दूसरे के साथ एकता के सूत्र में बंधे रहते हैं। यही दुर्खीम का प्रकार्यवाद है।

18.4.3 व्यक्ति और समाज के संदर्भ में दुर्खीम का विचार

मानवीय व्यवहार और समाज में उसकी क्रियाओं के संदर्भ में अपनाये जाने वाले परम्परागत व्यवहार को दुर्खीम ने सामाजिक समरसता और व्यावहारिक क्रियाशीलता के रूप में स्वीकार किया। इसी के आधार पर वह अपने प्रकार्यवादी दृष्टिकोण की चिन्तन परम्परा को बढ़ाता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार हम देखें तो दुर्खीम का पद्धतिशास्त्र प्रत्यक्षवाद के वैज्ञानिक विश्लेषण को स्पष्ट करता है। यह सामाजिक तथ्य तथा सम्बन्धों के मध्य विश्लेशण की परम्परा को समाज वैज्ञानिक रूप में प्रकट करता है। दुर्खीम यथार्थ, प्रत्यक्ष तथा वास्तविक विज्ञान के समन्वय को समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में सम्मिलित करने का प्रयास करता है।

18.5 मैक्स वेबर की अध्ययन की पद्धति

मैक्स वेबर अपने अध्ययन परम्परा में क्रियाशीलता को अन्तःसम्बन्धों से संलग्न करके चिन्तन की नवीन परम्परा का विकास समाज वैज्ञानिक रूप में आरम्भ करता है। वह मानवीय विचारों को सम्बन्धों के संदर्भ में ऐतिहासिक दृष्टिकोण के आधार पर प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति पद्धतिशास्त्र के रूप में प्रचलित करने का प्रयास करता है। मैक्स वेबर की अध्ययन पद्धति को उसकी वैचारिकी के आधार पर अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया गया है :

18.5.1 वर्स्टेहन

मैक्स वेबर का तर्क है कि समाजशास्त्र के अन्तर्गत समाज एवं संस्कृति का अध्ययन व्यक्ति अनुभवों के माध्यम से करता है। यह मानव क्रिया और उसके अन्तःसम्बन्धों के आधार पर कर्ता द्वारा विश्लेषित किया जाता है। व्यवहार के संदर्भ में कर्ता मूल्यांकन करता है कि व्यवहार का पक्ष किस प्रकार को होगा। जो मनोभावों और परिस्थितियों से सम्बन्धित होगा। यह सामाजिक संदर्भ में कारणात्मक व्याख्या को इंगित करता है। इसके संदर्भ में वह आदर्ष–प्रारूप की व्याख्या निम्न प्रकार से करता है :

18.5.2 आदर्श प्रारूप

आदर्श प्रारूप घटना के परिप्रेक्ष्य में विशिष्ट सत्यता का बोध कराता है। जो व्यवहार तथा व्यक्ति के क्रिया–कलाप द्वारा उसकी पहचान को स्पष्ट करता है। यह वैकल्पिक परिकल्पना का भी बोध कराता है। जिससे सत्यता से सम्बन्धित विशिष्ट आयाम का अनुमानित ज्ञान प्राप्त हो सके।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम दुर्खीम के पद्धतिशास्त्र को हम देखें तो वेबर समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में स्थापित करने के लिए एक ऐसे पद्धतिशास्त्र का विकास करना चाहते थे जो सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक गतिविधियों तथा उनसे जुड़े सांस्कृतिक अन्तःक्रिया को प्रस्तुत किया जा सके।

18.6 सारांश

समाजशास्त्र के विषय को विज्ञान के रूप में प्रस्थापित करने के प्रयास क्रम में मार्क्स, दुर्खीम एवं वेबर की देन महत्वपूर्ण रही है। इन तीनों विद्वानों की समाज का देखने की दृष्टि यद्यपि विस्तृत आधारों पर अलग–अलग प्रतीत होती है। क्योंकि अलग–अलग महत्वपूर्ण आधारों को लेकर इन विद्वानों ने समाज व सामाजिक प्रक्रियाओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। कार्ल मार्क्स ने समाज के विकास क्रम को दो वर्गों के बीच संघर्ष की प्रक्रिया के रूप में समझाया है। मार्क्स के द्वारा स्पष्ट किया गया है कि आर्थिक आधार ही समाज की अधि–संरचना का निर्माण करते हैं, इन्हीं सामाजिक जीवन की विभिन्न अभिव्यक्तियों अर्थात् अधो–संरचना की प्रकृति व विशेषता पर निर्भर करती है। यद्यपि मार्क्स के घनिष्ठ मित्र व सहयोगी एंगेल्स ने यह बात बार–बार दोहराया है कि मार्क्स का सूक्ष्म रूप से अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि उनके विचार एकांगी ही न होकर आर्थिक आधारों के अतिरिक्त अन्य सामाजिक, राजनीतिक आधारों को महत्वपूर्ण माने गये हैं।

फ्रांस में समाजशास्त्र की नींव डालने का श्रेय यदि कॉम्ट को है तो इस विज्ञान (समाजशास्त्र) की संरचना को दृढ़ बनाने का काम दुर्खीम ने ही किया। दुर्खीम ने अपने विस्तृत अध्ययनों के द्वारा सामाजिक घटनाओं के विश्लेषण तथा निरूपण में सामाजिक कारकों के महत्व को इस भांति स्पष्ट किया है कि आज के विचारकों के लिए यह एक महत्वपूर्ण अंग बना हुआ है। मार्क्स और दुर्खीम दोनों विचारकों के वैचारिक आधारों में सबसे सरल व सामान्य अन्तर जो प्रतीत होता है वह है मार्क्स के सामाजिक विचारों का आधार आर्थिक निर्धारण तथा दुर्खीम के सामाजिक विचारों के विश्लेषण का आधार विशुद्ध रूप से सामाजिक है।

मार्क्स, वेबर तथा दुर्खीम तीनों विद्वानों के विचारधाराओं में जिस बिन्दु पर अन्तर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है वह है धर्म के सन्दर्भ में प्रस्तुत विचार। "मार्क्सवादियों के लिए प्रोटेस्टेण्ट धर्म पूँजीवाद के विकास की उपोत्पाद है। वहीं वेबर का इस सन्दर्भ में मत है कि पूँजीवाद को हम विकसित रूप में पाते हैं। वह प्रोस्टेण्ट धर्म के बिना कदापि सम्भव नहीं था। दुर्खीम का इस सन्दर्भ में मत है कि धर्म का मूल स्रोत समाज ही है। स्वर्ग का साम्राज्य एक महामण्डित समाज है।"

18.7 सन्दर्भ ग्रंथ

1. मुकर्जी, रवीन्द्रनाथ : सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2003

2. मुकर्जी, रवीन्द्रनाथ : समकालीन उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 1996

3. वेबर, मैक्स : द मेथडोलॉजी ऑफ सोशल साइंसेज, 1949

4. दुर्खीम, इमाईल : द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड, 1890

5. मार्क्स, कार्ल : द जर्मन आइडोलॉजी विथ एंगेल्स, 1845

6. रावत एच. के. : समाजशास्त्र विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, 2001

18.8 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पद्धतिशास्त्र का क्या अर्थ है? स्पष्ट कीजिए।
2. मार्क्स के सामाजिक संघर्ष व सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्धों को स्पष्ट कीजिए।
3. दुर्खीम के सामाजिक तथ्य को स्पष्ट कीजिए।
4. मैक्स वेबर के अध्ययन पद्धति वर्स्टेहन को स्पष्ट कीजिए।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कार्ल मार्क्स के पद्धतिशास्त्र की विवेचना कीजिए।
2. इमाइल दुर्खीम के पद्धतिशास्त्र की व्याख्या कीजिए।
3. मैक्स वेबर के अध्ययन पद्धति की व्याख्या कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्न में किस विद्वान ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की है?

(क) दुर्खीम (ख) मार्क्स

(ग) वेबर (घ) कॉम्ट

2- 'The Rules of Sociological Method' पुस्तक किस विद्वान द्वारा रचित की गई थी।

(क) वेबर (ख) कॉम्ट

(ग) मार्क्स (घ) दुर्खीम

3. 'वर्स्टेहन पद्धति' का अपने सामाजिक विश्लेषण में प्रयोग किया।

(क) दुर्खीम (ख) कॉम्ट

(ग) वेबर (घ) पारसन्स

4. वेबर के द्वारा कौन सी अवधारणा स्पष्ट की गई।

(क) सामाजिक तथ्य (ख) सामाजिक संघर्ष

(ग) सामाजिक संस्कृति (घ) आदर्श प्रारूप

5. दुर्खीम ने समाज में एकता के कितने प्रकार बताए हैं।

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पाँच

18.9 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ख), 2. (घ), 3. (ग), 4. (घ), 5. (क)

18.10 पारिभाषिक शब्दावली

Comparative	तुलनात्मक
Methodology	पद्धतिशास्त्र
Social Conflict	सामाजिक संघर्ष
Versthen	वर्स्टेहन (अध्ययन पद्धति)
Method	पद्धति
Sociological Method	समाजशास्त्रीय पद्धति

इकाई–19 : धर्म : दुर्खीम और वेबर

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 भूमिका : दुर्खीम के धर्म सम्बन्धी विचार
19.3 धर्म का सामाजिक प्रकार्य
19.4 पवित्रता से सम्बन्धित कुछ तथ्य
19.5 दुर्खीम के टोटमवाद का अध्ययन
19.6 टोटमवाद की विशेषताएँ
19.7 मैक्स वेबर का धर्म सम्बन्धी विचार
19.8 धर्म का समाजशास्त्रीय आधार
19.9 सारांश
19.10 सन्दर्भ ग्रंथ
19.11 बोध के प्रश्न
(क) लघु उत्तरीय प्रश्न
(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न
19.12 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर
19.13 पारिभाषिक शब्दावली

19.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप धर्म के सम्बन्ध में दुर्खीम और वेबर के निम्न विचारों को आप जान पायेंगे :

- दुर्खीम के धर्म सम्बन्धी विचार
- दुर्खीम के टोटम सम्बन्धी विचार
- मैक्स वेबर का धर्म सम्बन्धी विचार
- भारत के धर्म
- चीन का धर्म
- प्राचीन यहूदी धर्म

19.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत आप दुर्खीम एवं वेबर के धर्म सम्बन्धी विचारों के अध्ययन के पश्चात् उसके तुलनात्मक विश्लेषण को समझ पायेंगे। इस इकाई में

हमने प्रयास किया है कि दुर्खीम के धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण एवं इस सम्बन्ध में उनकी महत्वपूर्ण अवधारणा टोटम को भी हमने शामिल किया है। साथ ही वेबर की धर्म सम्बन्धी महत्वपूर्ण विचारों तथा उनकी पुस्तक 'प्रोटेस्टेंट इथिक्स एण्ड दी स्प्रिट ऑफ कैप्टलिज्म' से हमने भारत के धर्म, चीन का धर्म तथा प्राचीन यहूदी धर्म की चर्चा की है। इस इकाई के माध्यम से आप दुर्खीम तथा वेबर के धर्म सम्बन्धी सिर्फ विचार ही नहीं बल्कि उनके इस सम्बन्धी में विशिष्ट समाजशास्त्रीय पद्धति से भी परिचित हो पायेंगे।

19.2 दुर्खीम का धर्म सम्बन्धित विचार

दुर्खीम अपनी पुस्तक 'द एलीमेन्ट्री फॉर्म्स ऑफ रिलीजियस लाईफ' में अपने धर्म सम्बन्धी सिद्धान्त की गहन विवेचना की है। दुर्खीम का यह एक ऐसा ग्रन्थ है जहाँ से हम 'धर्म के समाजशास्त्र' एवं 'ज्ञान के समाजशास्त्र' की नींव को देखते हैं। धर्म के प्रारम्भिक स्वरूपों के अध्ययन के द्वारा दुर्खीम ऐतिहासिक विधियों के द्वारा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के महत्व को दर्शाते हैं। देखा जाय तो इस विधि के द्वारा दुर्खीम धर्म की उत्पत्ति तथा धर्म की रचना एवं धर्म प्रकृति को स्पष्ट रूप से समझने का प्रयत्न किया है।

दुर्खीम अपनी पुस्तक 'द एलीमेन्ट्री फॉर्म्स ऑफ रिलीजियस लाईफ' में आदिम अथवा जनजातीय समाजों में प्रचलित विभिन्न धार्मिक विश्वासों और विभिन्न कर्मकाण्डों का विश्लेषण करके गोत्र एवं टोटम व्यवस्था को प्राचीन धार्मिक व्यवस्था का सबसे बड़ा आधार बताया है। दुर्खीम ने अपनी इस पुस्तक में आस्ट्रेलिया के अरुण्टा जनजातियों के अध्ययन के आधार पर अपने धर्म सम्बन्धी सिद्धान्त की गहन विवेचना की है। साथ ही साथ इस जनजाति में पायी जाने वाली टोटम व्यवस्था का उल्लेख किया है। दुर्खीम की यह कृति तीन भागों में विभाजित है।

दुर्खीम धर्म की परिभाषा देने से पहले धर्म के सम्बन्ध में पूर्व में प्रचलित विभिन्न परिभाषाओं का खण्डन करते हैं, जिसमें वे कहते हैं कि अब तक मैक्समूलर, टायलर एवं फ्रेजर जैसे समाज वैज्ञानिक एवं मानवशास्त्रियों ने धर्म को रहस्यात्मक, अव्यक्त, आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास आदि–आदि के रूप में मानते रहे हैं, जबकि धर्म सम्पूर्ण रूप से एक सामाजिक तथ्य या सामाजिक घटना है। इस प्रकार नैतिक रूप से सामूहिक चेतना का प्रतीक ही धर्म है। इस सन्दर्भ में दुर्खीम अन्त में कहता है कि 'समाज ही वास्तविक देवता है।'

दुर्खीम अपने धर्म सम्बन्धी सिद्धान्त में कहते हैं कि इस धरती पर ऐसे कई समाज हैं जिनमें आत्मा एवं देवता का कोई स्थान नहीं है। उदाहरण के रूप में बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म को देखा जा सकता है जिसमें धर्म के सन्दर्भ में किसी भी देवता की कल्पना नहीं की गयी है। दोनों ही धर्म नास्तिक हैं। इस प्रकार दुर्खीम उपर्युक्त समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों की आलोचना करते हुए धर्म की परिभाषा के सन्दर्भ में कहते हैं कि "धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों एवं

कर्मकाण्डों अथवा क्रियाओं की एक संगठित व्यवस्था है। विष्वास एवं क्रियाएं जो उन सभी लोगों को चर्च नामक अलग नैतिक समुदाय के रूप में संगठित करते हैं एवं उनका अनुसरण करते हैं।"

दुर्खीम अपने धर्म सम्बन्धी व्याख्या में समस्त वस्तुओं को पवित्रता एवं अपवित्रता में बाँटते हैं। आगे कहते हैं कि समस्त धर्मों का सम्बन्ध 'पवित्र' पक्ष से होता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी पवित्र वस्तुएं ईश्वरीय या ईश्वर होती हैं, लेकिन समस्त ईश्वरीय या आध्यात्मिक घटनाएं तथा वस्तुएं पवित्र अवश्य होती हैं। इस प्रकार ये पवित्र वस्तुएं समाज के प्रतीक या सामूहिक चेतना के प्रतिनिधि के रूप में होते हैं। समाज के सदस्य जिन्हें पवित्र समझते हैं, उन्हें अपवित्रता से सदैव दूर रखने का प्रयत्न करते हैं। इस उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मानव अनेक विश्वासों, कर्मकाण्डों, आचरणों, विभिन्न उत्सवों आदि को जन्म देता है। इस प्रकार धर्म इन्हीं प्रयत्नों का परिणाम है। इन विश्वासों, कर्मकाण्डों, आचरणों का समाज पर इतना दबाव होता है कि उस सामूहिक सत्ता के आगे मनुष्य नतमस्तक हो जाता है। और यहीं से धर्म की नींव पड़ती है।

उपर्युक्त तथ्यों के प्रमाणिकता के सन्दर्भ में दुर्खीम द्वारा आस्ट्रेलिया की अरुण्टा जनजातियों के अध्ययन को देखा जा सकता है। इन जनजातियों के अध्ययन के आधार पर दुर्खीम कहते हैं कि विभिन्न त्यौहारों एवं उत्सवों पर सभी लोग एकत्रित होते हैं तो प्रत्येक सदस्य को ऐसा अनुभव होता है कि समूह की शक्ति उनकें वैयक्तिक शक्ति की अपेक्षा कहीं अत्यधिक उच्च एवं शक्तिशाली है। इसी को दुर्खीम सामूहिक शक्ति कहता है जिसके सामने प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्य रूप से झुकना पड़ता है। इसके साथ ही साथ विभिन्न कर्मकाण्डों एवं उत्सवों पर एकत्रित मानव समाज की भीड़ अपने अन्दर एक अलग प्रकार की मानसिक उल्लास को महसूस करता है एवं उसे प्रदर्शित भी करता है। इस प्रकार ऐसे उत्सवों में एक ही समय पर अनेक व्यक्ति एकत्रित रहते है जिसके कारण व्यक्ति के विचार एवं संवेग सभी उपस्थित व्यक्तियों के विचारों एवं संवेगों के अनुकूल होते हैं। इन संवेगों को अनुभव करते हुए व्यक्ति अलग, उल्लास महसूस करता है और वह अपने शक्ति को गौण मानता है और सामूहिक शक्ति को प्रधानता देता है। इस प्रकार व्यक्ति द्वारा उस समूह की शक्ति के आगे झुक जाता है। और उस शक्ति से प्रभावित होकर उसके मन में उस समूह के प्रति श्रद्धा, भक्ति एवं भय की भावना उत्पन्न होती है। इस प्रकार वह उस समूह को श्रेष्ठ और महान समझने लगता है। इस प्रकार वह समूह या समाज धार्मिक–पूजा अथवा विश्वास का प्रतीक हो जाता है। इस प्रकार दुर्खीम अपने धर्म सम्बन्धी विचारों को पवित्र एवं अपवित्र दो श्रेणियों में बाँटता है।

धर्म का सम्बन्ध केवल पवित्रता के साथ है एवं धार्मिक घटनाओं क अपवित्रता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। दुर्खीम धर्म की व्याख्या के पश्चात् कहते हैं कि जब धर्म के अन्तर्गत पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वास एवं कर्मकाण्ड होने लगते हैं तो स्वतः ही इस प्रकार की क्रियाएं एक नैतिक समुदाय को जन्म देने लगती है। जैसे चर्च, मन्दिर एवं मठ ऐसे ही नैतिक समुदाय के उदाहरण हैं

इस प्रकार धर्म वह शक्ति है जिसका उद्भव एवं विकास का स्थल समाज ही होता है। जिसके माध्यम से समाज के संगठन एवं उसकी एकता को बल मिलता है। दुर्खीम अपने धर्म सम्बन्धी वैचारिकी में जिन पक्षों पर विशेष बल दिया है वे धर्म, विश्वास, कर्मकाण्ड एवं नैतिकता के सूत्र से आबद्ध रहते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों की एक संगठित व्यवस्था है। यह व्यवस्था एक धर्म को मानने वालों को एक नैतिक समुदाय के रूप में बाँधती है। इस प्रकार धर्म की उत्पत्ति समाज से ही होती हैं तथा सामाजिक अस्तित्व को बनाए रखना तथा उसकी रक्षा करना धर्म का प्रमुख प्रकार है।

19.3 धर्म का सामाजिक प्रकार्य

दुर्खीम धर्म के अनेक सामाजिक प्रकार्यों की चर्चा करता है। जिसकी क्रमवार व्याख्या इस प्रकार है :

1. धर्म अपने सदस्यों को पवित्रता तथा अपवित्रता के भेद को मानने तथा अपवित्र क्रियाओं से दूर रहने की शिक्षा देता है। क्योंकि पवित्र जीवन से दूर हो जाना अथवा पृथक हो जाना धार्मिक भ्रष्टाचार है।

2. धर्म लोगों को पवित्र धार्मिक क्रियाओं को करने की शिक्षा देता है कि वह पाप एवं पुण्य के अन्तर को जान सके एवं अन्तर को समझकर वे अपवित्रता से जुड़ी क्रियाओं से अलग हो सके।

3. धर्म लोगों को सामूहिक जीवन में भाग लेने एवं अनुशासन में रहने की प्रेरणा देता है।

4. धर्म से जुड़े सामाजिक प्रकार्यों को करने से समाज में एकता बनी रहती है।

5. धर्म ही एक ऐसा प्रकार्य है जिसके माध्यम से समूह को पुनर्जीवन प्रदान किया जाता है। धर्म व्यक्ति के जीवन में समाज की उपादेयता अथवा महात्म्य को सिद्ध करता है।

6. धर्म के माध्यम से व्यक्ति अपने संवेगों एवं भावनाओं को संतुलित रखता है। धर्म का सामाजिक प्रकार्य, समाज में सामाजिक एकता की उत्पत्ति, वृद्धि एवं स्थिरता प्रदान करता है।

7. धार्मिक क्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति एक सामूहिक आदर्श को व्यक्त करता है।

19.4 पवित्रता से सम्बन्धित कुछ तथ्य

1. धर्म का सम्बन्ध पवित्र वस्तुओं से होता है। ये पवित्र वस्तुएं भौतिक तथा अभौतिक दोनों रूपों में हो सकती हैं।

2. जनमानस की मान्यता के आधार पर पवित्र वस्तुओं में कुछ ऐसे गुण एवं शक्तियाँ होती हैं। जो मानव समाज के लिए लाभदायक या हानिकारक दोनों रूपों में हो सकती हैं।

3. वस्तुतः देखा गया है कि पवित्र वस्तुओं के प्रति लोगों की विशेष श्रद्धा एवं अभिव्यक्ति होती है।

4. समाज का ही दृष्टिकोण विभिन्न वस्तुओं को पवित्रता एवं अपवित्रता की श्रेणी में बाँटता है।

5. पवित्र वस्तुओं की बाजार में कोई सौदेबाजी नहीं हो सकती है। इस प्रकार धर्म का कोई भी सम्बन्ध उपयोगितावादी वस्तुओं से नहीं होता है। इसका सम्बन्ध मात्र पवित्र वस्तुओं से होता है।

6. पवित्रता से जुड़ी वस्तुएँ मूर्त रूप होने के कारण देखी एवं अनुभव की जा सकती है।

19.5 दुर्खीम का टोटमवाद

टोटम शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग जे. लोंग ने किया था। दुर्खीम ने टोटमवाद को धर्म के प्रारम्भिक स्वरूप के रुप में माना है। आस्ट्रेलिया की अरूण्टा जनजातियों में पाये जाने वाले टोटमवाद के अध्ययन के आधार पर धर्म की उत्पत्ति को व्याख्यायित किया है। दुर्खीम आदिम समाज में पाये जाने वाले टोटम अथवा गोत्र की व्याख्या सामाजिक संगठन के सम्बन्ध में करते हैं। टोटम के सम्बन्ध में दुर्खीम लिखते हैं कि टोटम एक नाम भी है एवं एक प्रतीक भी है। नाम के रूप में देखा जाय तो टोटम किसी गोत्र समूह से सम्बन्धित वस्तु के रूप में है। यह गोत्र समूह का नाम भी है। दुर्खीम ने अपने अध्ययन में यह भी बताया है कि आस्ट्रेलिया की जनजातियों में प्रत्येक गोत्र का एक निश्चित टोटम होता है। और इसी टोटम के आधार पर गोत्र का नामकरण होता है। आगे यह भी स्पष्ट किया है कि एक जनजाति के दो गोत्रों का समान अथवा एक ही टोटम नहीं हो सकता है। एक टोटम को मानने वाले परस्पर नातेदारी एवं रक्त से संबंधित होते हैं। इस आधार पर वे अपनी उत्पत्ति उस टोटम से मानते हैं। जिसके कारण वे अपने को गोत्र का भाई–बहन के रूप में समझते हैं। इसलिए आपस में वह विवाह नहीं करते हैं। इस प्रकार एक गोत्र के लोग अपने आप को सवंशीय मानते हैं।

टोटम या टोटमवाद उन प्रघटनाओं से सम्बन्धित होता है जिसमें गोत्र अपनी उत्पत्ति किसी पशु अथवा पक्षी के साथ संलग्न करते हैं। ऐसे गोत्र टोटम के रूप में चयनित पशु अथवा पक्षी का मांस नहीं खाते हैं। इस प्रकार जब किसी वस्तु अथवा प्रतीक को टोटमवाद के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है तो ऐसी वस्तुओं में पवित्रता के सभी गुण सम्मिलित हो जाते हैं एवं वे समाज में टोटम का

प्रतिनिधित्व करते हैं। टोटम से सम्बन्धित धार्मिक कर्मकाण्ड एवं विश्वास लगभग वहीं होते हैं जो धर्म के साथ जुड़े होते हैं।

दुर्खीम आगे टोटमवाद को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि टोटमवाद नैतिक कर्तव्यों एवं मौलिक विश्वासों का एक समूह है जिसके द्वारा समाज, पशु, पौधे एवं अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के मध्य एक पवित्र एवं आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस आधार पर जनजाति समाज यह मानते हैं कि प्रत्येक टोटम में अलौकिक शक्ति का निवास होता है। जो उनके सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन को नियंत्रित करते हैं।

19.6 टोटम की विशेषताएँ

दुर्खीम टोटम की विशेषताओं को अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया है:

1. जनजातीय समाज में प्रत्येक गोत्र का एक निश्चित टोटम होता है।
2. गोत्र के सभी सदस्य उस टोटम के साथ पवित्र एवं अलौकिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं।
3. गोत्र का नाम उसके टोटम के आधार पर रखा जाता है।
4. प्रत्येक गोत्र का एक परिचय चिन्ह भी निर्धारित होता है। उस परिचय चिन्ह को हम जनजातीय समाज में देख सकते हैं।
5. टोटम कोई पशु–पक्षी, पेड़–पौधा एवं निर्जीव तथा अलौकिक वस्तु आदि के रूप में हो सकती है।
6. प्रायः टोटम की प्रकृति धार्मिक होती है। टोटम के आधार पर ही वस्तुओं को पवित्रता एवं अपवित्रता के रूप में समझा जाता है।
7. जनजातीय समाज में गोत्र के सदस्य यह विश्वास करते हैं कि संकट की घड़ी में टोटम रक्षा करता है। साथ ही साथ वह भविष्यवाणियाँ एवं चेतावनियाँ भी देता है।
8. जनजातीय समाज में टोटम के प्रति प्रत्येक गोत्रों के लोगों में आदर एवं सम्मान की भावना पायी जाती है जिसके कारण इसकी मृत्यु पर शोक भी प्रकट किया जाता है।
9. टोटम से जुड़े नियमों का उल्लघंन करने वालों की सामाजिक निन्दा भी की जाती है, वहीं इन नियमों का पालन करने वालों को सम्मान एवं आदर किया जाता है।
10. टोटम सामूहिक प्रतिनिधित्व के रूप में होते हैं। ये एक गोत्र के सदस्यों को नैतिक बन्धन में बाँधते हैं।
11. ये टोटम को मानने वाले लोग अपने भाई–बहन के रूप में मानते हैं। जिसके कारण वे बर्हिविवाह का पालन करते हैं।

12. टोटम धर्म की उत्पत्ति की आधार एवं सामूहिक प्रतिनिधित्व के प्रतीक के रूप में माने जाते हैं।

19.7 मैक्स वेबर का धर्म सम्बन्धी विचार

मैक्स वेबर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक The Protestant Ethic and the Spirit and the Spirit of Capitalism में धार्मिक व्यवहार के प्रभाव को आचार और अर्थ व्यवस्था के आधार पर समझाने का प्रयास किया है। धर्म के समाजशास्त्र के सन्दर्भ में मैक्स वेबर कहते हैं कि मनुष्य कर्ता के रूप में इस ब्रह्माण्ड पर अपने चारों ओर की दुनिया का अन्तर्बोध करता है। इसी के आधार पर वह अपने जीवन को गति देता है। मैक्स वेबर धर्म की आचार संहिता पर विशेष बल देते हैं। जिसके अन्तर्गत वे कहते हैं कि धर्म की आचारसंहिता पर ही पूंजीवादी व्यवस्था का निर्माण होता है। वहीं वेबर धर्म के महत्व को अर्थव्यवस्था और राजनीति व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। धर्म के महत्व को प्रकट करते हुए वेबर कहते हैं कि इस ब्रह्माण्ड पर प्रत्येक व्यवस्थाएँ, उपव्यवस्थाओं को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती रहती हैं।

वेबर ने विश्व के प्रमुख धर्मों का व्यापक आधार पर तथ्यपरक अध्ययन किया है। इस अध्ययन के आधार पर वह धर्म की समाजशास्त्रीय व्याख्या करने का प्रयास करता है। वेबर के धर्म सम्बन्धी विचार के संदर्भ में प्रमुख समाज वैज्ञानिक पारसन्स कहता है कि मैक्स वेबर समाज के समस्त सम्बन्धित क्षेत्रों में एक असाधारण रूप से एक योग्य सामाजिक और आर्थिक इतिहासकार थे।

वेबर अपने धर्म सम्बन्धी अध्ययन में कहते हैं कि इतिहास की विकास यात्रा केवल आर्थिक कारकों या जीवित रहने के साधन पर ही निर्भर नहीं हैं, बल्कि उसके केन्द्र में धार्मिक विश्वास एक आधारशिला के रूप में है। यहाँ वेबर मार्क्स के सामाजिक संरचना में आर्थिक कारकों को नकारते हुए कहते हैं कि कला, साहित्य, सामाजिक, राजनीतिक संरचना एवं धर्म तथा दर्शन भी आर्थिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

इस प्रकार देखा जाये तो 20वीं शताब्दी में ज्ञान के समाजशास्त्र के क्षेत्र में मैक्स वेबर का योगदान अतुलनीय रहा है। वेबर का अध्ययन का प्रमुख क्षेत्र धार्मिक जीवन और आर्थिक घटनाओं के बीच प्रत्यक्ष एवं तथ्यपरक सम्बन्ध स्थापित करना था।

मैक्स वेबर कहता है कि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारकों में धार्मिक कारकों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मैक्स वेबर के धर्म के विवेचन का मुख्य उद्देश्य धार्मिक और आर्थिक घटनाओं के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों का विश्लेषण करना था। इस आधार पर वेबर अपने अध्ययन को धर्म का समाजशास्त्र न कहकर बल्कि संस्कृतियों का समाजशास्त्र कहा है।

वेबर मनुष्य के आर्थिक जीवन पड़ने वाले धार्मिक प्रभावों की विवेचना करने के लिए धर्म के आर्थिक नीतिशास्त्र को महतीय माना है। धर्म के समाजशास्त्र के अन्तर्गत मैक्स वेबर मानव समाज के व्यवहारों का विस्तृत एवं तथ्यपरक विवेचन किया है। मैक्स वेबर धर्म के प्रभाव के अध्ययन के लिए धार्मिक कारकों से जुड़े पक्षों के अध्ययन पर विशेष बल दिया है। उपर्युक्त तथ्यों के प्रमाणीकरण के लिए मैक्स वेबर ने विश्व के प्रमुख छः धर्मों का अध्ययन किया है, जो इस प्रकार हैं :

1. कन्फ्यूसियसवाद
2. हिन्दू धर्म
3. यहूदी धर्म
4. ईसाई धर्म
5. बौद्ध धर्म
6. इस्लाम धर्म

उपर्युक्त धर्मों के अध्ययन के संदर्भ में वेबर की वैचारिकी की संक्षिप्त विवेचना इस प्रकार है :

वेबर अपनी पुस्तक चीन का धर्म, (The Religion of China) में कन्फ्यूशियस एवं ताओवाद के अध्ययन का विस्तार से उल्लेख किया है। अपने अध्ययन के आधार वेबर कहता है कि कन्फ्यूशियस तथा प्रोटेस्टेण्ट धर्म की नीतियों में भिन्नता अथवा अलगाव होने के कारण चीन एवं पश्चिम के समाजों में प्रचलित आर्थिक मनोवृत्तियों में बड़े स्तर पर भिन्नता पायी जाती है। कन्फ्यूशियस धर्म अपने अनुयायियों को संसार के वर्तमान स्वरूप से अनूकूलन करने पर विशेष बल देता है। साथ ही यह धर्म पारिवारिक सम्बन्धों के परम्परागत शैली को भी बनाये रखने पर विशेष बल देता है। इस तरह देखा जाय तो धर्म लोगों को परम्पराओं एवं परिपाटियों में बँधे रहने पर विशेष बल देता है।

वेबर ने हिन्दुज्म, बुद्धिज्म एवं जैनिज्म को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक The Religion of India, 1916 में भारतीय धर्म के संदर्भ में देखने का प्रयास किया है। हिन्दू धर्म भारत का सबसे पुरातन धर्म है जो ईसा के लगभग 3000 वर्ष पूर्व आर्यों के साथ भारत में आया था, जिसके कारण प्रारम्भ से हिन्दू धर्म को आर्य धर्म भी कहा जाता है। कालान्तर में हिन्दू धर्म को जाति व्यवस्था के रूप में परिणित कर दिया गया। अस्तु हिन्दू धर्म को जाति व्यवस्था के सन्दर्भ में स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है। जाति व्यवस्था के उत्पत्ति के संदर्भ में देखा जाय तो इसके मूल में व्यवसायी विशेषीकरण दृष्टिगोचर होता है। कालान्तर में कुछ स्वार्थपरक शक्तियों ने वंशानुगत आधार पर अपने को केन्द्र में स्थापित कर लिया। जिसके कारण समस्त सत्ता इन्हीं के हाथों में आ गयी। शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार भी इन्हीं को था। कालान्तर में यह व्यवस्था एक मजबूत स्तम्भ के रूप में स्थापित

हुई। जिसके कारण समाज एक बड़ा तबका मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित होता गया। उसका पूरा जीवन ही हॉशिए की तरफ बढ़ता गया।

इस प्रकार जाति व्यवस्था, हिन्दू धर्म के विश्वास, बौद्ध एवं जैन धर्म परस्पर एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते रहे। जिसके कारण पूंजीवाद के विकास के विकास को बल मिला।

प्राचीन यहूदी धर्म नामक पुस्तक वेबर के मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में वेबर उन पक्षों का उल्लेख किया जो पश्चिमी समाजों के धर्म में तार्किकता तथा वैज्ञानिकता के विकास के लिए उत्तरदायी रहे हैं। यहूदी धर्म प्रोटेस्टेण्ट धर्म के अन्तर्गत एक ऐसी नैतिकता को विकसित किया जो संसार की संरचना में आमूल–चूल परिवर्तन लायी। यहूदी धर्म के अर्न्तगत पैगम्बर को संसार का शाश्वत न मानकर इसे उत्पन्न किया गया मानते हैं। इस आधार पर देखा जाय तो यहूदियों का विश्वास है कि भविष्य में ईश्वर के द्वारा निर्मित एक ऐसी सामाजिक एवं राजनतिक क्रान्ति होगी और उसी क्रान्ति के परिणाम के रूप में व्यक्तियों के मनोवृत्तियों का निर्धारण होगा।

उपर्युक्त धर्मों के अध्ययनों के आधार पर मैक्स वेबर यह निष्कर्ष देता है कि धार्मिक कारक ही समाज की आर्थिक संरचना एवं नीति का निर्धारण करते हैं।

19.8 धर्म का समाजशास्त्रीय आधार

मैक्स वेबर के धर्म सम्बन्धी समाजशास्त्रीय आधारों को अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया है :

1. मैक्स वेबर धर्म के समाजशास्त्रीय आधार के संदर्भ में कहते हैं कि धार्मिक तथा आर्थिक घटनाएँ सदैव एक–दूसरे से सम्बन्धित होती हैं एवं एक–दूसरे पर निर्भर होती हैं। इस कारण किसी एक पक्ष को सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी मानना उचित नहीं है।

2. इतिहास की व्याख्या सिर्फ आर्थिक आधारों पर नहीं की जा सकती। इसकी व्याख्या के लिए सामाजिक घटनाओं को भी जिम्मेदार मानना होगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि धार्मिक एवं आर्थिक कारण मानव समाज के अस्तित्व तथा निरन्तरता के लिए उत्तरदायी रहे हैं।

3. मैक्स वेबर धार्मिक कारक को एक परिवर्तनीय तत्व मानकर उसके आर्थिक तथा अन्य सामाजिक घटनाओं पर प्रभावों को देखने का प्रयास करते हैं।

4. मैक्स वेबर धर्म के आर्थिक आचारों को अपने अध्ययन का आधार मानते हैं। इसी के आधार पर आर्थिक जीवन पर धर्म के पड़ने वाले प्रभाव को ढूढ़ने का प्रयास करते हैं।

19.9 सारांश

इस इकाई हमने आपका परिचय इमाइल दुर्खीम और मैक्स वेबर के धर्म सम्बन्धी विचारों से कराया। दुर्खीम की पुस्तक 'द एलिमेंटरी फॉर्म्स ऑफ रिलिजियस लाइफ' से आपने दुर्खीम के महत्वपूर्ण विचारों को समझा तथा आपने अध्ययन किया कि किस प्रकार दुर्खीम के टोटम सम्बन्धी अवधारणा उसके धर्म की अवधारणा को समझने के लिए महत्वपूर्ण हैं। वेबर की प्रमुख संकल्पनाओं को आपने 'प्रोटेस्टेंट इथिक्स एंण्ड दी स्प्रिट ऑफ़ कैपिटलिज्म' में वेबर के विचारों को भी आपने पढ़ा तथा पाया कि विभिन्न धर्मों के आर्थिक नैतिक विचार विभिन्न समाजों के आर्थिक दर्शन को तय करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन किया और इस क्रम में आपने भारत के धर्म, चीन का धर्म और प्राचीन यहूदी धर्म को पढ़ा और समझा।

19.10 सन्दर्भ ग्रंथ

1. मुकर्जी, रवीन्द्रनाथ : सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2003
2. मुकर्जी, रवीन्द्रनाथ : समकालीन उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, विवेक प्रकाशन नई दिल्ली, 1996
3. पाण्डेय, रविप्रकाश : समाजशास्त्रीय सिद्धान्त : अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य, विजय प्रकाशन, वारणसी, 2014
4. वेबर, मैक्स : द मेथडोलॉजी ऑफ साइंसेज, 1949
5. दुर्खीम, इमाईल : द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड, 1890
6. मार्क्स, कार्ल : द जर्मन आइडोलॉजी विथ एंगेल्स, 1845

19.11 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. टोटम से आप क्या समझते हैं? एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें?
2. वेबर के धर्म सम्बन्धी विचारों पर संक्षिप्त में चर्चा करें?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. दुर्खीम के धर्म की संकल्पना को सविस्तार वर्णन करते हुए भारत में धर्म के किन्हीं 5 विश्वासों एवं अनुष्ठानों की परिचर्चा करें?
2. वेबर के धर्म सम्बन्धी विचारों पर एक निबन्ध लिखें। भारत के सम्बन्ध में वेबर के धार्मिक विचारों का आलोचनात्मक परीक्षण करें?

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

'द एलिमेंटरी फॉर्म्स ऑफ रिलिजियस लाइफ' पस्तक के लेखक कौन हैं?

(क) वेबर (ख) फ्रेजर

(ग) मार्क्स (घ) टायलर

2. 'प्रोटेस्टेंट इथिक्स एण्ड दी स्प्रिट ऑफ कैपिटलिज्म' पुस्तक को किसने लिखा?

(क) मैलिनोवस्की (ख) प्रेजर

(ग) दुर्खीम (घ) वेबर

3. 'धार्मिक एवं लौकिक' की अवधारणा किसने प्रतिपादित किया?

(क) टायलर (ख) फ्रेजर

(ग) दुर्खीम (घ) ब्राउन

4. टोटम की अवधारणा का सम्बन्ध किसी समाजशास्त्री से है?

(क) दुर्खीम (ख) बेबर

(ग) पारसन्स (घ) मर्टन

5. 'द डिवीजन ऑफ लेबर सोसाईटी' नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं?

(क) दुर्खीम (ख) मार्क्स

(ग) वेबर (घ) मार्सेल मॉस

19.12 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ख), 2. (घ), 3. (ग), 4. (क), 5. (ग)

19.13 पारिभाषिक शब्दावली

Collective Representations	सामूहिक प्रतिनिधान
Collective Conscience	सामूहिक चेतना
Social Fact	सामाजिक तथ्य
Social Order	सामाजिक व्यवस्था
Individual Conscience	वैयक्तिक चेतना
Totamism	टोटमवाद
Ethics	नैतिकता
Primitive Religion	आदिम धर्म
Sacred	धार्मिक
Profen	लौकिक

इकाई–20 : इमाईल दुर्खीम एवं कार्ल मार्क्स

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 इमाईल दुर्खीम : परिचय व अवधारणात्मक व्याख्या
20.2.1 दुर्खीम की बौद्धिक समस्या की मूल मान्यताएँ
20.3 दुर्खीम : सैद्धान्तिक विश्लेषण
20.3.1 सामाजिक तथ्य का सिद्धान्त
20.3.2 आत्महत्या का सिद्धान्त
20.3.3 दुर्खीम का प्रकार्यवादी सिद्धान्त
20.4 मार्क्स : परिचय व अवधारणत्मक व्याख्या
20.4.1 मार्क्स के संघर्ष सम्बन्धी अवधारणा के मुख्य बिन्दु
20.4.2 मार्क्स के संघर्ष सम्बन्धी अवधारणा के परिवर्त्य
20.5 मार्क्स के संघर्ष के दृष्टिकोण का सैद्धान्तिक विश्लेषण
20.5.1 द्वन्द्व का सिद्धान्त
20.5.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त
20.5.3 कार्ल मार्क्स का परकीयकरण सिद्धान्त
20.5.4 कार्ल मार्क्स का वर्ग सिद्धान्त
20.5.5 वर्ग चेतना का अर्थ
20.6 सारांश
20.7 संदर्भ ग्रन्थ
20.8 बोध के प्रश्न
(क) लघु उत्तरीय
(ख) दीर्घ उत्तरीय
(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न
20.9 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर
20.10 पारिभाषिक शब्दावली

20.0 उद्देश्य

उपरोक्त इकाई के अध्यनोपरान्त विद्यार्थी निम्न तथ्यों से अवगत हो सकेंगे :

समाजशास्त्र के प्रकार्यवादी एवं संघर्षवादी दृष्टिकोण से परिचित हो सकेंगे।

- दुर्खीम के समाजशास्त्रीय अवदानों को जान सकेंगे।
- मार्क्स के समाजशास्त्रीय अवदानों को जान सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को समझ सकेंगे।
- समाज में होने वाले विचलन व संघर्ष सम्बन्धी कारकों को समझ सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

समाजशास्त्र विषय के सैद्धान्तिक विश्लेषण में दुर्खीम व मार्क्स स्वतन्त्र परिप्रेक्ष्य का निर्माण करते हैं। एक ओर दुर्खीम का परिप्रेक्ष्य समाज में प्रकार्यवादी प्रस्थापनाओं के आधार पर सैद्धान्तिक दृष्टि को निरूपित करना है वहीं मार्क्स का सैद्धान्तिक धरातल संघर्ष की वैचारिकी पर खड़ा है, जहाँ परिवर्तन का मूल आधार संघर्ष है। वस्तुतः ये दोनों विचारधारायें सामाजिक सम्बन्धों के निर्माण तथा उन सम्बन्धों के सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण भी करने पर बल देती हैं। दुर्खीम सामूहिक प्रतिनिधान, श्रम विभाजन, सामाजिक तथ्य, धर्म का विश्लेषण, आत्महत्या के सिद्धान्त के माध्यम से सामाजिक प्रकार्यों का विश्लेषण करते हैं। वहीं मार्क्स वर्ग संघर्ष, अलगाव, अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त व इतिहास की आर्थिक व्याख्या द्वारा सामाजिक परिवर्तन का सैद्धान्तिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

उपरोक्त दोनों ही सिद्धान्तकारों के सिद्धान्तों का विश्लेषण हम इस अध्याय के आगे की इकाईयों में करेंगे।

20.2 इमाईल दुर्खीम : परिचय एवं अवधारणात्मक व्याख्या

इमाईल दुर्खीम (1858–1917) ने अध्यापन एवं शिक्षण कार्य फ्रांसीसी विश्वविद्यालय से प्रारम्भ किया। उनके अध्यापन कार्य के दौरान इस तर्क को महसूस किया की विज्ञान विषय के प्राध्यापक मात्र वैध चिंतन के लिए "माडल" निर्मित करने के लिए प्रयत्नशील थे। उन्नीसवीं सदी के समाप्ति के साथ ही दुर्खीम ने अपने समकालीन बुद्धिजीवियों के साथ इस तर्क को महसूस किया कि विज्ञान के अत्यधिक प्रभाव के कारण समाज में निर्मित धार्मिक विश्वासों को काफी हद तक क्षति पहुंच रही है। उन्होंने इस तथ्य को बहुत बारीकी से महसूस किया कि परम्परागत धर्म नष्ट हो रहा है क्योंकि दुर्खीम का मानना था कि समाज की एकता सम्बन्धी प्रकार्यात्मकता इन्हीं सरल तुंतुओं द्वारा सम्भव है जिसका निर्माण समाज के सदस्यों द्वारा सामूहिक रूप से किया गया है।

दुर्खीम के अनुसार आधुनिक समाज का संकट विज्ञान पर आधारित नैतिकता द्वारा धर्मों पर आधारित परम्परागत नैतिकताओं के विस्थापन के कारण पैदा हुआ है। जिसके सन्दर्भ में दुर्खीम की कुछ सैद्धान्तिक मान्यतायें निम्नलिखित है –

20.2.1 दुर्खीम की बौद्धिक समस्या की मूल मान्यताएँ

- दुर्खीम समाज के सटीक एवं पद्धतिबद्ध अध्ययन के समर्थक थे जो कि मात्र विज्ञान की पद्धति के आधार पर सम्भव नहीं था।

- दुर्खीम इस तथ्य से पूर्व आश्वश्त थे कि विज्ञान समाज के सदस्यों को एकसूत्र में आबद्ध नहीं कर सकता है।
- दुर्खीम की नैतिक सैद्धान्तिक मान्यता यह थी कि समाज की सशक्तता व स्थायित्व बहुत हद तक लोगों की आस्थाओं व मूल्यों पर निर्भर थे।
- दुर्खीम वस्तुतः विज्ञान विरोधी नहीं थे, अंपितु यह "वैज्ञानिक तेवर द्वारा प्रेरित नैतिकता थी"
- दुर्खीम का लक्ष्य एक समाजशास्त्री के रूप में इस प्रश्न का उत्तर पाने का लक्ष्य रखा कि समाजशास्त्र किस प्रकार सामाजिक नैतिकता को प्राप्त करने में सहायक हो सकता है।
- आगस्त कॉम्ट के धार्मिक शिष्य के रूप में दुर्खीम ने "मानव के नैतिक एकता" को समाज के सार्वभौमिक प्रकार्य के रूप में स्वीकार किया।
- दुर्खीम ने अपने उपरोक्त मान्यताओं के समर्थन में चार बड़ी कृतियों की रचना की जो दुर्खीम की बौद्धिक यात्रा को स्पष्ट करते हैं। ये कृतियाँ हैं–
- द डिवीजन ऑफ लेबर (The division of labour) यह उनकी पहली पुस्तक है जो कि आधुनिक समाज में पाये जाने वाले विभेदीकरण को स्पष्ट करता है।
- दुर्खीम की दूसरी पुस्तक "Rules of Sociological Method" है जिसमें दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों की अवधारणा की विस्तार से चर्चा की है। तथ्य की प्रकृति का विश्लेषण करते हुए ही दुर्खीम ने "सामूहिक अंतःकरण" की अवधारणा का प्रतिपादन किया, जिसकी व्याख्या हम दुर्खीम के सैद्धान्तिक विश्लेषण के अगले अध्याय में करेंगे।
- दुर्खीम की तीसरी महत्वपूर्ण पुस्तक "ल सुसाइड" है। इस पुस्तक में ऐसी घटना का विश्लेषण है जो मनोविकारमूलक है। इस पुस्तक के आधार पर दुर्खीम एनॉमी या अप्रतिमानहिनता रूपी उस राक्षस पर प्रकाश डालना चाहते थे जिसने आधुनिक या औद्योगिक समाजों को बुरी तरह आतंकित कर रखा है। इस तथ्य का सैद्धान्तिक निर्वचन हम अगले अध्याय में करेंगे।
- दुर्खीम द्वारा लिखित चौथी पुस्तक है "The elementry form of Religious Life" है। जिसमें दुर्खीम ने धार्मिक व्यवस्था के मूलभूत संलक्षणों पर ध्यान केन्द्रित किया है। टोटमवाद को धर्म का सरलतम स्वरूप मानते हुए दुर्खीम ने इस पुस्तक में इसे धर्म के एक सामान्य समाजशास्त्रीय सिद्धान्त का आधार बनाया।

दुर्खीम के अवधारणात्मक व्याख्या से यह स्पष्टित होता है कि किस प्रकार दुर्खीम ने अपने सैद्धान्तिक मान्यताओं को समाज के अध्ययन तथा विश्लेषण में प्रयुक्त किया।

20.3 दुर्खीम का सैद्धान्तिक विश्लेषण

दुर्खीम के सैद्धान्तिक निर्वचन को हम निम्न आधारों पर विश्लेषित कर सकते हैं:

20.3.1 सामाजिक तथ्य का सिद्धान्त

सामाजिक तथ्य का विश्लेषण करते हुए दुर्खीम ने "सामाजिक अतःकरण की अवधारणा" का प्रतिपादन किया। फ्रेन्च भाषा में इसका अर्थ सामान्य चेतना तथा सामान्य विवेक दोनों होता है। दुर्खीम का मत है कि किसी समाज के सदस्यों में कुछ निश्चित मूल्य उनके मस्तिष्क पर सामान्य रूप से निर्मित होते हैं जिससे उस समाज के सदस्यों के सामान्य रवैये का परिचय मिलता है। ऐसे किसी समाज में सही अथवा गलत शब्द की परिभाषा उस समाज के सदस्यों के सामान्य रवैये से सम्बन्धित है। दुर्खीम के अनुसार "सामुहिक विवेक" दो कोटियों में विभक्त होता है "सामूहिक प्रतिनिधित्व" व "वैयक्तिक प्रतिनिधित्व"। सामूहिक प्रतिनिधित्व की समाज के औसत सदस्यों में व्याप्त सामान्य विश्वासों और भावनाओं की व्यवस्था मात्र है दूरी ओर वैयक्तिक प्रतिनिधित्व किसी व्यक्ति की प्राथमिकताओं या मूल्यों का घोतक है जैसे किसी को शाकाहारी पसंद है तो किसी को मांसाहारी भोजन, किन्तु जब किसी समुदाय या समूह के लोग सामूहिकता के साथ किसी भोग का त्याग करते हैं तो यह सामूहिक प्रतिनिधित्व का उदाहरण हो जाता है। जैसे हिन्दुओं द्वारा गो–मांस का त्याग करना इस दृष्टिकोण से सामूहिक प्रतिनिधित्व में व्यक्तिगत पसंद का कोई महत्व नहीं रह जाता। यह व्यक्तिपरक न होकर वस्तुपरक होती है। सामूहिक विवेक के विकास के संदर्भ में दुर्खीम का मत है कि 'विचारों का तीखा विवाद तथा भागीदारी नये मूल्यों तथा नई भावनाओं को जन्म देते हैं जो एक चिरस्थायी गुण हासिल कर लेते हैं"। यही मूल्य या भावनायें दुर्खीम के मतानुसार सामूहिकता की द्योतक हैं जिनसे सामाजिक घनिष्ठता का निर्माण होता है तथा सामजिक घनिष्ठता की परिणिति सर्जनात्मक और वस्तुतः एक इतर आदर्श से जुड़ी होती है जिससे सामाजिक जगत में मूल्यों का सूत्रपात होता है। दुर्खीम अपने उक्त सिद्धान्त के समर्थन में अनेक ऐतिहासिक दृष्टान्तों का उदाहरण देते हैं जैसे विश्व में होने वाले धार्मिक तथा पुर्नजागरण आन्दोलन इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। 18वीं सदी की फ्रांस की क्रान्ति तथा 19वीं सदी के समाजवादी आन्दोलन भी इसी के दृष्टांत थे। सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत होने वाले विभिन्न धार्मिक पर्व त्योहार, सार्वजनिक व्याख्यान, नाटकों तथा जलसों का आयेाजन इसी का नतीजा है। दुर्खीम का तर्क है कि ये होने वाले आयोजन सामाजिक जीवन की नीरसता को समाप्त करके मनुष्य स्मृति को पुर्नजीवित करने की इच्छा रखते हैं।

अपनी पुस्तक "The Rules of Socilogical Method" में प्रतिपादित उनका पहला नियम है कि "सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के रूप में देखें" वे इस बात पर बल देते हैं कि "स्वयं की इच्छा या उपज होने के स्थान पर सामाजिक तथ्य बाहर से इसे निर्धारित करते हैं ये ऐसे सांचो की तरह हैं जिससे हमारे क्रियाकलाप अपरिहार्य रूप से प्रभावित होते हैं।" अतः सामाजिक जीवन का लक्ष्य ही सामूहिक प्रतिनिधान है।"

दुर्खीम द्वारा उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक तथ्य और कुछ नहीं बल्कि समाज में प्रयुक्त सामूहिक शब्दावलियां हैं जिनसे समाज की प्रकार्यात्मक एकता बनी रहती है तथा समाज का अस्तित्व संरक्षित रहता है।

20.3.2 आत्महत्या का सिद्धान्त

दुर्खीम आत्महत्या को मृत्यु की एक सामान्य प्रक्रिया की तरह ही देखते हैं जो इसके शिकार किसी आदमी द्वारा स्वयं निष्पादित नियोजित सकारात्मक या नकारात्मक मृत्यु की प्रक्रिया का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष परिणाम होती है और जिसके द्वारा इस तरह का परिणाम हासिल करने का प्रयास किया जाता है। कनपटी पर रिवाल्वर के द्वारा स्वयं को गोली मार लेना तथा स्वयं को फांसी पर लटका लेना सकारात्मक क्रिया है। इसके विपरीत चलते हुए मकान के भीतर खुद को कैद रखना या मृत्यु होने तक खुद को भूखा रखना नकारात्मक क्रिया का उदाहरण है।

दुर्खीम आत्महत्या सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक कारकों का भी खंडन करते हैं जो कि आत्महत्या का कारण मनोरोग को मानते हैं दुर्खीम मनोवैज्ञानिक प्रकृति की व्याख्याओं का खंडन करने के बाद आत्महत्या के तीन विकारों की चर्चा करते है:

1. अहंमन्य आत्म हत्या (ईगोइस्ट सुसाइड)
2. परार्थवादी आत्महत्या (आल ट्रइस्ट सुसाइड)
3. हताशामूलक (एनोमिक सुसाइड)

दुर्खीम के अनुसार पहली आत्महत्या अर्थात् अहंमन्य आत्महत्या अत्यधिक व्यक्तिवाद का परिणाम होती है जबकि परार्थवादी आत्महत्या सामाजिक आदर्शों के अनुपालन के संदर्भ में होती है। जैसे–हिन्दू समाज में, सती प्रथा एवं डूबते हुए जहाज के कैप्टन का जहाज के साथ डूब जाना जबकि हताशामूलक आत्महत्या आधुनिक जीवन में व्याप्त निराशा के अनेक अवसरों से पैदा होती है। दुर्खीम के अनुसार समाज से वितृष्णा या विरक्ति आकांक्षाओं और उनकी सन्तुष्टियां के बीच जबर्दस्त दरार के कारण पैदा होती है।

दुर्खीम उक्त तीनों प्रकारों का विश्लेषण करने के पश्चात इस निष्कर्ष पर हुंचते हैं कि आत्महत्या एक ऐसी वैयक्तिक प्रघटना हे जिसका कारण अनिवार्यतः ामाजिक है।"

0.3.3 दुर्खीम प्रकार्यवादी सिद्धान्त

दुर्खीम अपने प्रकार्यवादी विश्लेषण को सामेहिक प्रतिनिधान तथा धार्मिक ल्यों के आधार पर स्पष्ट करते हैं। दुर्खीम मानते हैं कि सामूहिक प्रतिनिधान के ाछे चूँकि समस्त समाज की इच्छा निहित होती है इसलिए प्रकार्यात्मक रूप से र्खीम सामूहिक प्रतिविधान को सामाजिक संगठन एवं एकता हेतु आवश्यक मानते । दुर्खीम धर्म के प्रकार्यवादी स्वरूप का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि ामूहिक जीवन की समस्त वस्तुओं या घटनाओं को साधारण और पवित्र इन दो ागों में बॉटा जा सकता है। ये पवित्र वस्तुएँ समाज की प्रतीक या सामूहिक तना की प्रतिनिधि होती हैं। आस्ट्रेलिया की अरुण्टा जनजाति का अध्ययन

करके उससे प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर दुर्खीम कहते हैं कि धार्मिक अनुभव एक प्रकार की सामुहिक उत्तेजना के कारण है। यही उत्तेजना जो उनके व्यवहार में दिखाई देती है सामाजिक प्रकार्य का मुख्य स्रोत है। अपनी पुस्तक Soil Division of Labour में दुर्खीम ने सामाजिक एकता का विश्लेषण करते हुए यांत्रिक व सावयवी एकता रूपी वर्गीकरण प्रस्तुत किया तथा यान्त्रिक एकता का आधार सामूहिक व्यक्तित्व के रूप में तथा सावयवी एकता का स्वामत्व व्यक्ति के स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप में परिभाषित करते हुए आदिम समाज को यांत्रिक एकता तथा आधुनिक समाज को सावयवी एकता वाला समाज कहा है।

उपरोक्त सिद्धान्तों के आधार पर दुर्खीम ने समाजशास्त्र को अन्य समाज विज्ञानों से अलग व भिन्न साबित करने का जागरूक प्रयास किया। वे समाजशास्त्रीय अध्ययनों के लिए एक अलग पद्धति विकसित करने की आवश्यकता से अवगत थे और इसी बात को मद्देनजर रखकर उन्होंने समाज के अध्ययन के प्रति तुलनात्मक उवागम पर बल दिया। श्रम विभाजन, आत्महत्या, शिक्षा और धर्म सम्बन्धी उनके विश्लेषण ने कालान्तर मे विभिन्न सामाजिक समस्याओं की छानबीन और अध्ययन का पथ प्रशस्त किया, यही दुर्खीम का महान योगदान है।

20.4 मार्क्स : परिचय व अवधारणात्मक व्याख्या

कार्ल मार्क्स (1818, 1883) आधुनिक एवं वैज्ञानिक साम्यवाद तथा अधिकांश समाजवादी विचारधाराओं के सर्वमान्य जनक हैं। मार्क्स के पूर्व विचारकों यथा प्लेटों, सेण्ट साइमन, कोरियर, लुई ब्लाक जैसे विद्वानों ने भी राष्ट्रीय सम्पत्ति के समुचित वितरण तथा विविध वर्गों के सहभागिता द्वारा समाज के निर्माण की वकालत की किन्तु इन विद्वानों के विचार मुख्यतः राजनीतिक तथा धार्मिक आधार पर खड़े थे जबकि मार्क्स ने सर्वप्रथम साम्यवाद को न केवल मौलिक एवं नवीन रूप प्रदान किया अपितु उसे एक सुदृढ़ एवं वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित भी किया। पूरी दुनिया के श्रमिक एवं क्रान्तिकारी आन्दोलन मार्क्स के विचारों से अवश्य प्रभावित हुए हैं। शायद इसी कारण मार्क्स को सामाजिक संघर्ष के सिद्धान्तवेत्ता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है।

मार्क्स के सिद्धान्त की बौद्धिक समस्या यह थी कि सामाजिक परिवर्तन को कैसे सही ठहराया जाय तथा इसको किस प्रकार जन स्वीकृति दिलाई जाय। मार्क्स इस बात के लिए संकल्पित था कि किसी प्रकार से पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करके नई व्यवस्था को स्थापित किया जाय। इसी कारण मार्क्स का तर्क था कि सिद्धान्त सिर्फ बौद्धिक सन्तुष्टि के लिए नहीं होता अपितु सिद्धान्त ऐसा होना चाहिए जिसे व्यवहार में लाया जा सके। सिद्धान्त और व्यवहार के मिश्रित यव को मार्क्स प्रेक्सिस (Praxis) कहते हैं।

20.4.1 मार्क्स के संघर्ष सम्बन्धी अवधारणा के मुख्य बिन्दु

i. इतिहास के सभी समाज असमान वर्गीय संस्तरण में विभाजित हैं।

ii. असमान वर्ग की संरचना में भी हितों की सादृश्यता के आधार पर अलग–अलग वर्ग बनते हैं।

iii. उक्त वर्गीय समाज में प्रभुत्वशाली वर्ग अधीन वर्गों का शोषण करते हैं।

iv. साधनों की असमानता के कारण शक्ति का वितरण भी असमान होता है।

v. समाज में व्याप्त शोषण एवं प्रभुता के कारण असन्तोष उत्पन्न होता है और यही असन्तोष संघर्ष को जन्म देता है।

vi. मार्क्स का मत है कि समाज व्यवस्था में या तो परिवर्तन होता है अथवा संशोधन।

vii. सामाजिक संघर्ष की प्रघटना दो ध्रुवों में प्रकट होती है।

viii. सामाजिक सम्बन्धों की प्रकृति द्वन्दात्मक होती है।

ix. सामाजिक परिवर्तन का मुख्य स्रोत संघर्ष है।

उक्त बिन्दुओं का मूल सार यह है कि सामाजिक व्यवस्था में अन्तर्निहीत क्षेत्र ही सामाजिक संघर्ष का मूल कारण है जिनको मार्क्स ने उद्धृत किया है।

20.4.2 मार्क्स के संघर्ष संबंधी अवधारणा के प्रमुख परिवर्त्य (Main variables of conflict concept of Marks)

i. समाज के वर्गीय विभाजन के अन्तर्गत शोषित अथवा अधीनस्थ वर्ग में जितनी अधिक निकटता होगी उतनी ही अधिक सामूहिक चेतना होगी।

ii. समाज में उपलब्ध संसाधनों के वितरण में जितनी अधिक समानता होगी होने वाला संघर्ष भी उतना तीव्र होगा।

iii. शोषित वर्ग अथवा अधीनस्थ वर्ग शिक्षा के संसाधनों के जितना करीब होगा उसमें वर्गीय चेतना का विस्तार उतना ही तीव्र होगा।

iv. अधीनस्थ स्वयं के साथ होने वाले असमानता सम्बन्धी व्यवहार को जितना अधिक प्रसारित करेगा वर्गीय चेतना में उतनी ही अधिक वृद्धि होगी।

v. समाज में शोषक वर्ग जितना अधिक विखण्डित होगा अधीनस्थ वर्ग– वर्ग उतना लाभ प्राप्त करेगा।

vi. सामूहिक विश्वास की की पद्धति की वैचारिकी का विस्तार जितना अधिक समाज में होगा अधीनस्थ व्यक्ति उतना ही अधिक अपने हितों के प्रति जागरूक होगा।

उक्त परिवर्त्यों के आधार मार्क्स संघर्ष को सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत करते हैं। मार्क्स के प्रमुख सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य का इस अध्याय के अगले बिन्दु में करेंगें।

20.5 मार्क्स के संघर्षवादी दृष्टिकोण का सैद्धान्तिक विश्लेषण

मार्क्स के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण की व्याख्या करते हुए मैक्समिलियन रूबेल कहते हैं, "मार्क्स के चिंतन की मौलिकता आलोचनात्मक ढंग से अरस्तू से अब तक के सामाजिक ज्ञान की समूची थाती को संश्लिष्ट करने के उनके व्यापक प्रयास में निहित है।" मार्क्स की सम्पूर्ण वैचारिकी की हम निम्न सिद्धान्तों के आधार पर स्पष्ट कर सकते हैं :

20.5.1 द्वन्द का सिद्धान्त (Theory of Dvletic)

मार्क्स का द्वन्दात्मक भौतिकवाद हीगल द्वारा विकसित द्वंदात्मक व्याख्या की उपज है। यूनान में मूल रूप से प्रयुक्त द्वन्द शब्द किन्हीं विपरीत समूहों के मध्य वाद–विवाद के माध्यम से सत्य तक पहुंचने की प्रक्रिया थी जिसके अन्तर्गत तार्किक "थीसिस" (वाद) का विरोध तार्किक "एंटीथीसिस" (विवाद) द्वारा होता है तो अंत तक एक उच्चतर संश्लेषण (सिंथीसिस) की असामान्य गतिमयता (मूवमेन्ट) को जन्म देता है। मार्क्स का द्वन्दवादी सिद्धान्त किस प्रकार हीगल के द्वन्दवाद से प्रभावित है तथा किस सीमा तक भिन्न है मार्क्स इसे अपनी पुस्तक "दास कैपिटल" (Das Capital) में उद्धृत करते हुए कहते हैं कि "मेरी द्वन्दात्मक पद्धति हीगल की पद्धति से न सिर्फ भिन्न है बल्कि इसके विपरीत की है। हीगल के लिए मानव–मस्तिष्क की जीवन प्रक्रिया अर्थात् सोचने की प्रक्रिया जिसे 'विचार' के नाम से एक स्वतन्त्र विषय में पूरी तरह रूपान्तरित भी कर डालते हैं, वास्तविक दुनिया का विश्वकर्मा है और वास्तविक दुनिया "विचार" का सिर्फ वाह्य, प्रघटनात्मक रूप है। इसके विपरीत मार्क्स के लिए मानव मस्तिष्क के लिए परावर्तित भौतिक दुनिया के अलावा, जिसे चिंतन के भिन्न–भिन्न रूपो में बदला जा सकता है, विचार और कुछ भी नहीं, इसी कथन के पक्ष में मार्क्स ने कहा कि हीगल का द्वन्दवाद सिर के बल पर खड़ा था। मैंने उसे पैर के बल पर खड़ा कर दिया।

20.5.2 ऐतिहासिक भौतिक वाद का सिद्धान्त

मार्क्स के अनुसार जब द्वन्दात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त का अनुप्रयोग संस्कृति के सन्दर्भ में होता है तो यह परिवर्तित स्वरूप ऐतिहासिक भौतिक वाद को जन्म देता है। मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद इस मत को प्रस्तुत करता है की "उत्पादन की पद्धति आम तौर पर सामाजिक, राजनैतिक और बौद्धिक जीवन के चरित्र को निर्धारित करती है। मार्क्स द्वारा वर्णित ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्त में जो विध्यात्मक नियम निहित है उन्हें संक्षेप में हम निम्नलिखित ढंग से व्यक्त कर सकते हैं :

i. प्रत्येक विद्यमान संस्कृति संरचनात्मक दृष्टि से अतसर्म्बद्ध एक सम्पूर्णता है अतः उसे संपूर्णता की विधि संहिता, शैक्षिक कार्य व्यापार, धर्म, कला अथवा इसी तरह के किसी पक्ष को अपने आप मैं स्वतन्त्र कारक के रूप में नहीं समझा जा सकता है।

ii. संस्कृति सिर्फ एक अंतसम्बद्ध सम्पूर्णता ही नहीं बल्कि एक विकासशील सम्पूर्णता भी है ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार, स्वतन्त्र चर, आर्थिक उत्पादन का तरीका या पद्धति है हीगल ने इस सन्दर्भ में कहा कि "राजनैतिक इतिहास, सरकार के स्वरूप, कला, धर्म तथा दर्शन–इनमें से हर किसी का एक ही सामान्य मूल है जिसे "समय चेतना" (द स्पिरिट आफ टाइम) कहते हैं दूसरी ओर मार्क्स ने इसका खंडन करते हुए कहा कि इन सारी सांस्कृतिक प्रघटनाओं की जड़ जीवन की भौतिक दशाओ में निहीत है।

20.5.3 कार्ल मार्क्स का परकीयकरण सिद्धान्त (Alineation Theory of Karl Marx's)

इस सिद्धान्त को मार्क्स ने अपनी कृति 'The Capital' में विस्तार से वर्णित ही नहीं किया है अपितु अपनी पुस्तक Economic and Phelosophical Manuscript में मार्क्स ने परकीयकरण की व्याख्या की मार्क्स परकीयकरण को ठीक उसी प्रकार स्पष्ट किया है जिस प्रकार मनुष्य के स्वास्थ्य को स्पष्ट किया जाता है अर्थात् अस्वस्थ को देखकर ही स्वस्थ की परिभाषा कर सकते हैं। परकीयकरण सम्बन्धी मार्क्स की व्याख्या को निम्नलिखित चार बिन्दुओं पर रेखांकित कर सकते हैं :—

i. मनुष्य की अपनी ही उत्पादनशीलता से परकीयकरण।

ii. मनुष्य का अपने उत्पाद से परकीयकरण

iii. मनुष्य का अपने साथी से परकीयकरण

iv. मनुष्य का मानव जाति से परकीयकरण

कार्ल मार्क्स के अनुसार जब मनुष्य अपनी उत्पादन क्रियाशीलता की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से नहीं कर पाता है तो इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य जिस कारण से पशुओं से भिन्न है उसका उसको अनुभव नहीं हो पाता तथा मानवीय क्रियाओं से वह परीकृत रहता है अथवा परकीय कृत समझता है और यही मनुष्य का उसका जातिगत परकीयकरण होता है अर्थात् मनुष्य का अपने मानव–जाति से परकीयकरण होता है।

20.5.4 कार्ल मार्क्स का वर्ग संघर्ष सिद्धान्त

विश्व जगत में आनुवांशिक विशेषताओं को छोड़कर अन्य किसी भी आधार पर एक दूसरे से विभक्त समूह को वर्ग कंहते हैं। कार्ल मार्क्स ने आर्थिक उत्पादन की प्रक्रिया से जुड़े व्यक्तियों के पदों के प्रसंग में वर्ग को परिभाषित किया है। मार्क्स के अनुसार वर्ग समान विशेषताओं के लिए व्यक्तियों का एक समूह मात्र नहीं है, अपितु इस समूह के सदस्यों में अपने वर्ग के संबंध में जागरूकता भी होनी चाहिए। इसी जागरूकता को मार्क्स ने वर्ग चेतना (Class Consciousness) का नाम दिया है। इसी वर्ग चेतना के आधार पर मार्क्स ने उत्पादन प्रणाली से जुड़े दो बुर्जुआ वर्ग और सर्वहारा वर्ग की कल्पना की है।

20.5.5 वर्ग चेतना का अर्थ (मार्क्स)

मूलतः मार्क्सवादी साहित्य में वर्ग चेतना की अवधारणा का प्रयोग पूँजीवादी व्यवस्था के उस अवस्था को दर्शाने के लिए किया गया है जब सर्वहारा वर्ग दूसरे वर्ग अर्थात् बुर्जुआ वर्ग के संदर्भ में अपनी स्थिति के संबंध में अत्यधिक सचेत हो जाता है। इस चैतन्यता के कारण ही सर्वहारा वर्ग अपनी दयनीय स्थिति के बारे में जागरूक हो जाते हैं अर्थात् वे अपने आंपको बुर्जुआ वर्ग से भिन्न वर्ग के रूप में समझने लगते हैं। सामान्य अर्थ मे इस अवधारणा का प्रयोग बहुधा किसी समूह के आत्म चेतना के भाव के लिए भी किया जाता है जिसके कारण वह प्रस्थिति समूह के रूप में आत्म पहचान स्थापित करते हैं। कार्ल मार्क्स के अनुसार वर्ग संघर्ष अपरिहार्य मतभेद को प्रकट करता है जो अधिकांश समाजों में आर्थिक संगठन के स्वरूप के कारण उत्पन्न होता है। प्रत्येक युग में इस प्रकार संघर्ष Have's और Have's Not के बीच विद्यमान रहा है। मार्क्स कहता है कि समाज

के आरम्भिक दासत्व युग में दो वर्ग थे पहला वर्ग दासों का तथा दूसरा वर्ग उनके स्वामियों का इसके बाद मार्क्स ने सामंतवादी युग की चर्चा की तथा इसमें पहला सामन्ती तथा दूसरा वर्ग अर्द्ध–दास किसानों का है तीसरे तथा आधुनिक युग में मार्क्स दो वर्गों की चर्चा करता है, पहला पूँजीपतियों का वर्ग तथा दूसरा श्रमिकों का वर्ग इस प्रकार प्रत्येक युग में दो प्रमुख वर्ग रहते हैं इन वर्गों के चरित्र की व्याख्या करते हुए मार्क्स कहता है कि इनमें से एक वर्ग के हाथो में आर्थिक उत्पादन के समस्त साधन केन्द्रीभूत होते हैं जिनके बल पर यह दूसरे वर्ग का शोषण करता है इस प्रकार के वर्ग को मार्क्स हैव्स (Have's) जबकि दूसरा वर्ग जो शोषित होता है को मार्क्स ने हैव्स नॉट (Have's Not) की संज्ञा प्रदान करता है। यह शोषित वर्ग ही व्यापक असन्तोष के परिणाम स्वरूप वर्ग संघर्ष को जन्म देता है। 1848 के कम्युनिस्ट घोषणा पत्र में मार्क्स कहता है कि "अभी तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है।

मार्क्स ने वर्ग संघर्ष को स्पष्ट करने के क्रम में ऐसे आर्थिक परिवर्तनों का विश्लेषण किया है जो कि प्राचीन समय के गृह उद्योग की अवस्था से लेकर वर्तमान युग के फैक्ट्री उद्योग तक हुए हैं। मार्क्स के इस विश्लेषण के कुछ प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित है :

i. छोटे पैमाने के मिल मालिकों का शनैः–शनैः सब कुछ बड़े पूजीपतियों के हाथ में चला जाता है।

ii. प्रक्रिया क्रम में पूँजी का केन्द्रीकरण होता है।

iii. प्रक्रिया क्रम में श्रमिकों की क्रयशक्ति घटती है।

iv. अल्पसंख्यक पूँजीपति वर्ग द्वारा मनुष्यों का शोषण किया जाता है।

v. शोषण के कारण असन्तोष बढ़ता है।

vi. असन्तोष के कारण वर्ग संघर्ष का जन्म होता है।

मार्क्स वर्ग संघर्ष का मूल कारण शोषण को मानता है। पूँजीपति वर्ग श्रमिक वर्ग के श्रम का शोषण करता है जो सामाजिक संरचना में वर्ग संघर्ष को जन्म देता है।

20.6 सारांश

समाजशास्त्रीय सिद्धान्तकारों में दुर्खीम व मार्क्स वह केन्द्रीय धुरी हैं जिसके ईर्द–गिर्द समाजशास्त्र की सामाजिक दृष्टि का स्पष्ट अनुभव होता है इस कारण दोनों ही विचारक सर्वकालिक दृष्टि से श्रेष्ठ हैं जहाँ दुर्खीम प्रकार्यवादी विश्लेषण सामूहिक प्रतिनिधान की धारणा को समाज हेतु अवश्यम्भावी मानते हैं तो दूसरी तरफ मार्क्स सामाजिक संरचना में संघर्ष के सैद्धान्तिक विश्लेषण से सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन के संघर्षवादी प्रारूप का निर्माण करते हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टि से दोनों ने ही समाजशास्त्र में उन दृष्टियों का सूत्रपात किया है जो पूर्व में सामाजिक चिन्तकों की दृष्टि में समाहित नहीं थी। अतः हम इसे उक्त दोनों सिद्धान्तकारों के अतुलनीय योगदान के रूप में देखते हैं। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आपने दुर्खीम का जीवन परिचय, उनकी बौद्धिक

समस्या की मूल मान्यताएं, सामाजिक तथ्य का सिद्धान्त, आत्महत्या का सिद्धान्त, प्रकार्यवादी सिद्धान्त एवं मार्क्स के संघर्षवादी दृष्टिकोण, द्वन्द्व का सिद्धान्त, वर्ग चेतना आदि सिद्धान्तों की तथ्यपरक जानकी प्राप्त की।

20.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. बी0, कर परिमल : समाजशास्त्र : सामाजिक अन्तःक्रियाओं का अध्ययन, जवाहर पब्लिशर्स और डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली–2004
2. रावत, हरिकृष्ण : समाजशास्त्र विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर–2005
3. पाण्डेय, रवि प्रकाश : समाजशास्त्री सिद्धान्त : अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004
4- International Encylclopaedia of Social Sciences, Volumes 9 and 10 Article on Marxist sociology by T.B. Bottomore, Page 51.
5- Article on Karl Marx by Maxmilien Rubelin The International Encyclopaedia of Social Seicnecs, Volumes 9 and 10, Pages 35.
6- Carlonschrock, Making Peace with conflict, Herald Press, 1999.
7- Germon Ideology, mark-Engels, Sec 1, Vol. 5, Pages 59-60. quoted by Bottomore and Rubel in their book on Karl Marx, Page 80.
8. रावत, हरिकृष्ण, भारतीय सामाजिक विचारक, रावत पब्लिकेशन, जयपुर–2007

20.8 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक तथ्य से आप क्या समझते हैं ?
2. मार्क्स के अलगाव की अवधारणा से आप क्या समझते हैं ?
3. वर्ग चेतना से आप क्या समझते हैं ?
4. दुर्खीम के धर्म सम्बन्धी विचार की व्याख्या कीजिए ?
5. मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद से क्या आशय है ?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. दुर्खीम के सामाजिक तथ्य की अवधारणा को सामूहिक प्रतिनिधान के संदर्भ में विवेचित करें।
2. मार्क्स के वर्ग संघर्ष सिद्धान्त के कारकों पर प्रकाश डालें।
3. दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या सामाजिक कारकों पर अत्याधिक निर्भर है। इस कथन की विवेचना करें।

4. कार्ल मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवादी धारणा के आधार पर सामाजिक परिवर्तन की विवेचना कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. दुर्खीम के अनुसार सावयवी एकता किस समाज की विशेषता है?
   (क) परम्परागत समाज (ख) आधुनिक समाज
   (ग) आदिम समाज (घ) उपर्युक्त में से किसी से नहीं
2. कार्ल मार्क्स की कम्युनिस्ट घोषणा पत्र किस वर्ष प्रकाशित हुई?
   (क) 1843 (ख) 1846
   (ग) 1847 (घ) 1848
3. दुर्खीम ने अपने किस पुस्तक में सामाजिक तथ्य की विवेचना की है?
   (क) The Division of Labour
   (ख) The Functional Society
   (ग) The elementry form
   (घ) Rules of Sociological Method of religious hike
4. दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या का कौन का प्रकार सती प्रथा को प्रकट करता है?
   (क) अहमवादी आत्महत्या (ख) परार्थवादी आत्महत्या
   (ग) हताशामूलक आत्महत्या (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
5. मार्क्स के सिद्धान्त में 'हैव्स नाट' का सम्बन्ध किस वर्ग से है ?
   (क) शोषक वर्ग से (ख) शोषित वर्ग से
   (ग) शोषक एवं शोषित दोनों से (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

20.9 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ख), 2. (घ) 3. (घ) 4. (ख) 5. (ख)

20.10 परिभाषिक शब्दावली

Theory	–	सिद्धान्त
Labour	–	श्रम
Division	–	विभाजन
Suicide	–	आत्महत्या
Soliditry	–	एकता
Mechanical	–	यान्त्रिक
Organic	–	सावयवी

Religion	–	धर्म
Fact	–	तथ्य
Conflict	–	संघर्ष
Alienation	–	अलगाव
Class	–	वर्ग
Dialectic	–	द्वन्द
Communist	–	साम्यवाद
Capitalist	–	पूँजीवाद
Population	–	जनसंख्या
Surplus Value	–	अतिरिक्त मूल्य
Ideology	–	वैचारिकी
Representation	–	प्रतिनिधान
Functionalist	–	प्रकार्यवादी
Conciseness	–	चेतना

इकाई–21 : पूँजीवाद : कार्ल मार्क्स और मैक्स बेबर

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 पूँजीवाद का उद्गम और अर्थ

21.3 पूँजीवाद की अवधारणा

21.4 कार्ल मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद का लक्षण

21.5 मैक्स बेबर का पूँजीवाद

21.6 मैक्स बेबर के अनुसार पूँजीवाद का लक्षण

21.7 पूँजीवाद की व्याख्या : मार्क्स एवं बेबर

21.8 सारांश

21.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

21.10 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

21.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

21.12 पारिभाषिक शब्दावली

21.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- पूँजीवाद के अर्थ एवं अवधारणा को समझ सकेंगे।
- कार्ल के अनुसार पूँजीवाद के लक्षण एवं अर्थ को समझ सकेंगे।
- मैक्स वेबर के अनुसार पूँजीवाद को जान सकेंगे।
- मैक्स वेबर एवं मार्क्स के पूँजीवाद के आलोचनात्मक व्याख्या को स्पष्ट कर सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

पूंजीवाद का उदय उत्पादन की शक्तियों और सम्बन्धों से सम्बन्धित है। यूरोप में पूँजीवाद का उदय 15वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी तक हुआ।

पूँजीवाद के विकास के साथ ही उत्पादन की शक्तियाँ तीव्रता से बढ़ने लगी। इस क्रम में उत्पादन मशीनों से आरम्भ हुआ। जिसमें प्राकृतिक शक्तियों का ऊर्जा के स्रोत के रूप में उपयोग किया जाने लगा। उत्पादन शक्तियों का यह तीव्र विकास नये पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के कारण हुआ। जबकि विकास की प्रक्रिया मानव इतिहास के सभी पूर्ववर्ती युगों में होती रही है। उत्पादन साधनों पर स्वामित्व और उत्पादन साधनों से वंचित मजदूरों से श्रम शोषण की स्थिति इसमें दिखलाई पड़ती है। पूँजीवादी अधिक मुनाफा कमाने का क्रम बनाने लगे। जबकि इसमें श्रम शक्ति का ह्रास होने लगा जिससे शोषण की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी।

21.2 पूँजीवाद का उद्गम और अर्थ

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से पूँजीवाद का आरम्भ सामन्तवादी व्यवस्था में ही प्रारम्भ हो गया था। सामन्तवाद में किसानों से जो कर, बेगार लिये जाते थे वे सामन्त को पूँजीपति बना देते थे। पश्चिमी देशों में इस सन्दर्भ में व्यापक सामाजिक संरचना के परिवर्तन के रूप में देखा जा सकता है। मार्क्स ने समाजशास्त्र के अन्तर्गत पूँजीवाद को राजनैतिक अर्थशास्त्र का स्वरूप प्रदान किया। आर्थिक वैचारिकी के अन्तर्गत औद्योगिक पूँजीवाद का उदय हुआ जिसमें राज्य का हस्तक्षेप निर्णायक था। अतः इस आधार पर पूँजीवाद वह है जिसमें उत्पादन पद्धति का आधार पूँजी होता है। पूँजी का उद्देश्य मुनाफाखोरी करना है। पूँजीवाद के सभी स्वरूपों में उत्पादित, वस्तुओं पर निजी स्वामित्व होता है। पूँजीवाद का इस प्रकार से क्रेन्दिय लक्षण पूँजी है जो कि उत्पादन की पद्धति से सम्बन्धित होता है। पूँजीवाद का प्रयोग गैर मार्क्सवादी अर्थशास्त्री विभिन्न रूपों में करते हैं। जबकि मार्क्स ने समाज के सन्दर्भ में पूँजीवादियों और पूँजीवाद के पदों का प्रयोग किया है।

21.3 पूँजीवाद की अवधारणा

मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध कृति कैपिटल में उत्पादन की पूँजीवादी प्रणाली का विस्तृत विवेचन किया गया है। मार्क्स का तर्क है कि पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध बुनियादी संरचना है जो अधिसंरचना को बनाती है। इन सम्बन्धों के कारण शोषण वर्ग के राजनीतिक प्रभुत्व की विधियों में परिवर्तन आया है जिसके फलस्वरूप कानून के सम्मुख समानता की घोषणा की गयी। जबकि पूँजीवादी व्यवस्था में बुर्जुआ समाज का यह प्रयास होता है कि वह अपने प्रभुत्व की रक्षा करे और शोषित जनता को दबाये रखे। इस अवस्था ने मजदूर वर्ग की विचारधारा को सशक्त बनाया है। सामान्य रूप में पूँजीवाद का तात्पर्य पूँजी से ही है जबकि पूँजी के स्वरूप के रूप में उत्पादन की सामग्री, मशीन भण्डारों में भरी

कच्ची सामग्री आदि है। पूँजी की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके माध्यम से बाजार में श्रम खरीदा जा सकता है। पूँजीवाद में मुनाफाखोरी निहित होता है।

21.4 कार्ल मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद के लक्षण

पूँजीवाद के अन्तर्गत उत्पादन व्यवस्था में स्वामित्व के आधार पर उत्पादित वस्तुओं के निर्णय क्षमता निजी स्वामित्व के एक वर्ग के पास होती है। जिसका तात्पर्य है कि पूँजीपतियों का नियन्त्रण दुसरे व्यक्तियों के कार्यक्षमता पर होता है। बाजार व्यवस्था पूँजीवाद की केन्द्रिय अर्थव्यवस्था है। आवश्यकता और उत्पादन की प्रणाली माँग और पूर्ति बाजार के संकेतकों से स्पष्ट होते हैं। जिसका मूल्यांकन लाभ और मुनाफाखोरी के रूप में देखा जाता है। जबकि बाजार अर्थव्यवस्था में उपभोगता ही सर्वशक्तिमान है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सर्वाधिक निर्णायक स्थान मुद्रा का होता है। मुद्रा विनिमय की प्रणाली निर्धारित रहती है जिसका संचालन वित्तीय संस्थानों के माध्यम से होता है। पूँजीवाद के अन्तर्गत उत्पादन पर नियन्त्रण उत्पादन प्रक्रिया को श्रमशक्ति के माध्यम से निर्धारित करता है। इस निर्धारण में कुशल और अकुशल श्रमिकों का मूल्यांकन किया जाता है। पूँजीवाद के अन्तर्गत वित्तीय व्यवस्थाओं पर निर्णय की प्रक्रिया नियन्त्रण के माध्यम से स्पष्ट होता है। नियोजन की प्रक्रिया का सर्वमान्य निर्णय पूँजीपतियों द्वारा ही लिया जाता है। जबकि इस क्रम में मजदूर की सहभागिता कहीं नहीं होती है।

मार्क्स ने पूँजीवाद का विस्तृत वर्णन कैपिटल में किया इनके विश्लेषण का आधार उत्पादन की शक्तियाँ और उत्पादन सम्बन्ध से है। मार्क्स ने इस सन्दर्भ में सामान्य दृष्टिकोण प्रतिपादित किया कि जब उत्पादन शक्तियाँ बढती हैं तो पूँजीवाद का विस्तार होता है किन्तु इस विस्तार के साथ ही उत्पान सम्बन्ध, उत्पादन शक्तियों से बहुत दूर हो जाते हैं और परिणामस्वरूप द्वन्द होता है।

21.5 बेबर का पूँजीवाद

बेबर एक प्रख्यात विधि शास्त्री थे। बेबर के पूँजीवाद की परिभाषा और इसकी व्याख्या मार्क्स से भिन्न नहीं थी। बेबर ने मार्क्स के ऐतिहासिक विधि का सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन किया। बेबर का विचार है कि पूँजीवाद की व्याख्या से उद्यम बुनियादी इकाई है। संगठित उद्यम में मुनाफा प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य होता है। बाजार में जो आदान प्रदान होता है। उसमें धन को उपलब्ध कराना और मुनाफा प्राप्त करना केन्द्रिय लक्ष्य होता है। वास्तव में बेबर पूँजीवाद को उद्यम की ऐसी व्यवस्था मानते हैं जो पश्चिमी समाज के लिए नयी नहीं है। पश्चिमी पूँजीवाद में धन का संचय, मुनाफाखोरी और अर्जनशीलता रही है। बेबर इस

व्यवस्था को मुनाफाखोरी की व्यवस्था कहता है। जिसका संचालन बाजार अथवा उत्पादन तथा कार्य के माध्यम से संचालित होता है।

21.6 बेबर के अनुसार पूँजीवाद का लक्षण

बेबर ने आधुनिक पूँजीवाद में सन्निहित लक्षणों को स्पष्ट करते हुए कहा है कि आधुनिक पूँजीवाद में असीमित धन संचय की प्रवृत्ति होती है। जिस क्रम में व्यक्ति अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहता है। धन संचय की यह इच्छा वह उसे रिवाज अथवा परम्परा से आबद्ध नहीं करती है। धन संचय का लालच एक भावना को इंगित करती है जो आधुनिक समाज में ही हो ऐसा नहीं है। इस प्रक्रिया के पीछे मनोवैज्ञानिक विवेकीकरण होता है। बेबर कहते हैं कि आधुनिक पूँजीवाद में धन संचय का माध्यम व्यक्ति का विवेकीकरण है। आधुनिक पूँजीवाद में आर्थिक उपार्जन एक निश्चित सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में किया जाता है। जो संगठित उद्यम को दर्शाता है। यह उद्यम विवेकीकरण के द्वारा व्यवस्थित रूप में संचालित किया जाता है। बेबर स्पष्ट कहते हैं कि आधुनिक पूँजीवाद अपनी प्रकृति में तार्किक बुर्जुआ पूँजीवाद है। इस पूँजीवाद का मुख्य लक्षण अधिकारीतन्त्र का संगठन है। अधिकारीतन्त्र के पास स्वयं के आर्थिक तन्त्र होते हैं जिसके आधार पर उद्योग संचालित किये जाते हैं। बाजार के सम्बन्ध में इस तन्त्र के द्वारा अधिकतम मुनाफाखोरी दिया जाता है।

21.7 पूँजीवाद की व्याख्या : मार्क्स एवं बेबर

बेबर ने पूँजीवाद को स्पष्ट करते हुए कहा कि पूँजीवाद एक ऐसी उद्यमशीलता है जिसका उद्देश्य मुनाफे का असीमित संचय करना है। इसकी कार्यपद्धति अधिकारीतन्त्र और विवेकीकरण पर निर्भर करता है। बेबर का यह कथन मार्क्स के दृष्टिकोण से समानता को दर्शाता है किन्तु समानता होते हुए भी इन दोनों विचारकों के विचारधारा में अन्तर है। दोनों ही विचारक यह मानकर चलते हैं कि पूँजीवाद का सत्व बाजार के मध्यस्थता के मुनाफा कमाना है। जबकि बेबर इस तथ्य को अस्वीकार नहीं करते हैं कि पूँजीवादी उद्यमशीलता में कामगर भी सम्मिलित होते हैं जो मालिकों को अपना श्रम बेचने के लिए कानूनी रूप से स्वतन्त्र होते हैं। दोनों विचारकों में यह समानता है कि मार्क्स की ही भांति बेबर भी स्वीकार करते है कि आधुनिक पूँजीपति अपनी उद्यमशीलता में अधिक से अधिक तकनीकी साधनों का प्रयोग करते हैं। पूँजीपति इन तकनीकी साधनों में निरन्तर सुधार लाते हैं जिससे उन्हें अतिरिक्त मुनाफा प्राप्त हो सके। पूँजीवाद की व्याख्या में मार्क्स और बेबर में समानता होते हुए भी विभिन्नता है। बेबर के अनुसार आधुनिक पूँजीवाद का जो स्वरूप हमारे सामने है उसे निर्धारित करनें में प्रोटेस्टण्ट

आचारों का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

21.8 सारांश

इस अध्याय में आपने पूँजीवाद से सम्बन्धित मार्क्स और वेबर के विचारों को जाना। पूँजीवाद का उद्‌गम और अर्थ, पूँजीवाद की अवधारणा कार्ल मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद की अवधारणा, वेबर के अनुसार पूँजीवाद, वेबर द्वारा पूँजीवाद के सन्दर्भ में दिये गये लक्षण के साथ ही साथ मार्क्स तथा वेबर की पूँजीवादी विचारधारा की व्याख्या भी की गयी है। पूँजीवाद के अन्तर्गत मार्क्स और बेबर का दृष्टिकोण प्रायः समाज व्यवस्था में मुनाफाखोरी और श्रमिकों के शोषण से सम्बन्धित रही है। इस क्रम में पूँजीवादी समाज के सम्पूर्ण सदस्य नये उत्पादन के साधनों के उद्‌भव के साथ दो वृहद वर्गों में बंट जाते हैं। अध्ययन विश्लेषण के आधार पर स्पष्ट होता है कि अल्पसंख्यक वर्ग पूँजीपति वर्ग होता है और बहुसंख्यक वर्ग श्रमिक वर्ग होता है। संसाधन की प्रक्रिया पर पूँजीपति वर्ग का नियन्त्रण होता है और गरीब वर्ग श्रमिक होता है। जिस क्रम में धनी अर्थात पूँजीपति वर्ग और अधिक सम्पन्न हो जाते हैं जबकि श्रमिक वर्ग अपने श्रम का उचित मूल्य भी नहीं प्राप्त कर पाते हैं। कार्ल मार्क्स इसे सामाजिक परिवर्तन के रूप में स्वीकार करते हैं। इस क्रम में ही वह यह मानते हैं कि अधो–संरचना के अनुरूप ही अधि–संरचना की प्रकृति निर्धारित होती है।

मैक्स बेबर ने प्रोटेस्टेण्ट धर्म के आधार पर पूँजीवाद के विकास के लिए स्वतन्त्र आवश्यकताओं को स्वीकार किया। वह पूँजीवादी व्यवस्था में जीवन की कुशलता को धन के रूप में स्वीकार करते हैं। पूँजीवाद को धार्मिक विकास से जोडनें के पश्चात भी मैक्स बेबर मार्क्स के पूँजीवादी विचारधारा से पूर्णतया प्रभावित रहें हैं। यही कारण है कि मैक्स बेबर ने उद्यमशीलता के अन्तर्गत मुनाफाखोरी के प्रवृत्ति का विस्तृत विश्लेषण किया है और बाजार के सन्दर्भ में मार्क्स द्वारा दिये गये दृष्टिकोण को उचित माना है।

21.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, हरिशचन्द्र : आधुनिक समाजवैज्ञानिक सिद्धान्त परिचय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1991.
2. यादव, गोपाल : सामाजिक संदर्श : सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी वर्ष 1997.
3. सिंह, श्यामधर एवम् सिंह, अशोक कुमार : आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी वर्ष 2014.

4. दोषी, एस, एल. जैन, पी. सी. मार्क्स रावत पब्लिकेशन जवाहर नगर जयपुर, वर्ष 1996.

5. दोषी, एस, एल. जैन, पी. सी. बेबर रावत पब्लिकेशन जवाहर नगर जयपुर, वर्ष 1996.

21.10 सम्बन्धित प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद के अर्थ को स्पष्ट कीजिए?
2. मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद का प्रमुख लक्षण क्या है?
3. बेबर का पूँजीवाद क्या है?
4. बेबर के पूँजीवाद के प्रमुख लक्षण को स्पष्ट कीजिए?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मार्क्स के पूँजीवाद की व्याख्या करते हुए बेबर के पूँजीवाद से इसकी तुलना करें?
2. मार्क्स और बेबर के पूँजीवाद की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसकी समानता को स्पष्ट करें?

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी उत्पादन किस प्रकार की संरचना है?

   (क) बुनियादी संरचना (ख) अधिसंरचना

   (ग) राजनैतिक संरचना (घ) आर्थिक संरचना

2. पूँजीवाद का तात्पर्य है?

   (क) मुनाफाखोरी से (ख) कच्ची सामग्री से

   (ग) पूँजी (घ) श्रम

3. पूँजी का उद्देश्य होता है ?

   (क) उत्पादन (ख) संसाधन

   (ग) मुनाफाखोरी (घ) प्रणाली

4. बेबर के अनुसार संगठित उद्यम का उद्देश्य होता है ?

   (क) आदान–प्रदान (ख) धन का संचय

   (ग) अर्जनशीलता (घ) मुनाफा

5. पूँजीवादी उद्यमशीलता में सम्मिलित होते हैं ?

(क) बुर्जुआ (ख) पूँजीपति

(ग) कामगार (घ) अधिकारीतन्त्र

21.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (क) 2. (ग) 3. (ग) 4. (घ) 5. (घ)

21.12 पारिभाषिक शब्दावली

Capitalism	पूँजीवाद
Industrial Capitalism	औद्योगिक पूँजीवाद
Political Economy	राजनैतिक अर्थशास्त्र
Accumulation of Money	धन का संचय
Rationalisation	विवेकीकरण
Organized Enterprise	संगठित उद्यम
Bureaucracy	अधिकारीतन्त्र

खण्ड

6

मॉलिनास्की एवं रेडक्लिफ ब्राऊन

इकाई-22 5
मैलिनोवस्की की संस्कृति तथा प्रकार्य की अवधारणा

इकाई-23 12
जादू, विज्ञान तथा धर्म की अवधारणा

इकाई-24 20
संरचना की अवधारणा : रेडक्लिफ ब्राऊन

इकाई-25 29
प्रकार्य की अवधारणा : रेडक्लिफ ब्राऊन

इकाई-26 37
मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राऊन के विचारों की समालोचना

परामर्श-समिति

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति - अध्यक्ष
	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
प्रो0(डा0) जी0एस0शुक्ला	कुलसचिव

विशेषज्ञ समिति

डा0 के0के0 मिश्र	प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

डॉ0एम0एन0सिंह	पूर्व निदेशक, समाजविज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ0 इति तिवारी	एसो0 प्रोफेसर, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद
श्री रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद

पाठ्यक्रम लेखन समिति

1- डॉ0 इति तिवारी	एसो0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट. मु. वि.वि., इलाहाबाद।
2. डॉ रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट.मु.वि.वि. इलाहाबाद।
3. अशीष अंशु,	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय डिग्री कालेज, गनाई गंगोली,पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड ।
4. डॉ0 अरूणा कुमारी	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी।
5. स्वाती एस0 मिश्रा	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आर्य महिला कन्या पी.जी.कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
6. डॉ0 अशोक कुमार श्रीवास्तव	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र,श्रीराम सुरेश सिंह महाविद्यालय, मीरजापुर।
7. डॉ0 वन्दना राव	असि. प्रो. समाजशास्त्र, राम सुभग सिंह महाविद्यालय,कुर्मी पट्टी पथरदेवा, देवरिया।
8. डॉ0 जय प्रकाश सिंह	असि. प्रो. समाजशास्त्र, ठाकुर जगन्नाथ सिंह महाविद्यालय, जौनपुर।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड परिचय : मॉलिनास्की एवं रेडक्लिफ ब्राऊन

यह इस पाठ्यक्रम का छठवाँ खण्ड हैं । इस खण्ड के पूर्व खण्ड -पाँच में मार्क्स, दुर्खीम और मैक्स वेबर के सिद्धान्तों के तुलनात्मक पक्ष का वर्णन किया गया है। खंड-छः के अन्तर्गत मालिनास्की का जीवन परिचय देते हुए उनके संस्कृति तथा प्रकार्य की अवधारणा, जादू, विज्ञान तथा धर्म की अवधारणा एवं रेडक्लिफ ब्राऊन का जीवन परिचय देते हुए संरचना की अवधारणा, प्रकार्य की अवधारणा, मैलिनोवस्की एवं रेडक्लिफ ब्राउन के विचारों की समालोचना का तथ्यगत विश्लेषण किया गया है। जिसका वर्णन सारणीवार निम्नलिखित है।

इकाई-22 : इस इकाई के अन्तर्गत मैलिनोवस्की की संस्कृति तथा प्रकार्य की अवधारणा का विवेचन किया गया है। इस इकाई में मैलिनोवस्की द्वारा प्रतिपादित आवश्यकता का सिद्धान्त दिया गया है। जिसमें मनुष्य की मूल जैविक आवश्यकताओं और संस्कृति के संदर्भ में निर्धारित स्थिति का विवेचन किया गया है। इस इकाई में सांस्कृतिक व्यवहारों के जैविक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं का **अध्ययन किया गया है। आधुनिक** समाज में मान्यता एवं मूल्यों का विस्तारपूर्वक **विवेचन किया गया है। इस इकाई में** मैलिनोवस्की के प्रकार्यवाद की अवधारणा का मूल सार मानव की प्राथमिक जैविक आवश्यकता का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

इकाई-23: इस इकाई के अन्तर्गत मैलिनोवस्की के धर्म, जादू तथा विज्ञान सम्बन्धित दृष्टिकोण का विश्लेषण किया गया है। मैलिनोवस्की द्वारा प्रतिपादित धर्म से **सम्बन्धित** विचारों को प्रारम्भिक स्थिति से लेकर जादू तथा विज्ञान के सम्बन्ध में इनकी अवधारणाओं को अलग-अलग प्रकार से भिन्नता और समानता का अध्ययन इस इकाई में दिया गया है। रेडक्लिफ ब्राऊन और मैलिनोवक्सी के विचारों का आलोचनात्मक विवेचन भी इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है।

इकाई-24: इस इकाई के अन्तर्गत प्रसिद्ध मानवशास्त्री रेडक्लिफ ब्राऊन के संरचना संबंधी अवधारणा की तथ्यगत विवेचना की गयी है। इस इकाई में रेडक्लिफ ब्राऊन की वैचारिकी के अन्तर्गत यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि सामाजिक संरचना के अंग मनुष्य ही है। और स्वयं संरचना संस्थात्मक रूप में परिभाषित तथा नियमित सम्बन्धों के अन्तर्गत व्यक्तियों का एक व्यवस्थित रूप या क्रमबद्धता है मुख्यतः इस इकाई में रेडक्लिफ ब्राऊन की संरचना संबंधी विचारधारा के अन्तर्गत सामाजिक संरचना का अर्थ, अवधारणा एवं परिभाषा सामाजिक संरचना का विश्लेषण, जनजातीय समाज में संरचना की अवधारणा आदि बिन्दुओं का तथ्यपरक वर्णन किया गया है।

इकाई-25 : इस इकाई के अन्तर्गत रेडक्लिफ ब्राउन के प्रकार्य की अवधारणा का तथ्यपरक विवेचन किया गया है। इस इकाई में मुख्यतः यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि रेडक्लिफ ब्राऊन ने संस्कृति के अध्ययन के आधार पर प्रकार्य की अवधारणा को समझाया तथा प्रकार्यात्मक एकता की बात की हे अर्थात समाज व्यवस्था के सभी अंग साथ-साथ काम करते हुए एक दूसरे पर निर्भर होते हैं।ब्राऊन समाज को ही सर्वोपरि मानते हैं। इसके साथ साथ इस इकाई में प्रकार्य शब्द के विभिन्न अर्थ, प्रकार्य की

अवधारणा, प्रकार्यवाद पर विभिन्न समाज वैज्ञानिकों के विचार, रेडक्लिफ ब्राऊन का प्रकार्यवाद की आलोचना एवं नव-प्रकार्यवाद का विस्तृत वर्णन किया गया है।

इकाई-26 : इस इकाई के अन्तर्गत मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राऊन के विचारों के समालोचना का वर्णन किया गया है। इस इकाई में संस्कृति से सम्बन्धित संस्कृति के विकास तथा आवश्यक पक्षों का वर्णन किया गया है, जबकि व्यावहारिक प्रक्रिया के रूप में विश्वास और व्यवस्था को प्रभावित करने वाले धर्म तथा जादू के साथ ही आदिमकालीन कानून और नैतिकता का भी विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। रेडक्लिफ़ ब्राऊन द्वारा प्रतिपादित प्रकार्यवाद की आलोचना और सामाजिक सम्बन्धों के सिद्धान्तों का बोधगम्य विवेचन किया गया है। साथ ही साथ इस इकाई में रेडक्लिफ ब्राऊन और मैलिनोवस्की के सिद्धान्तों की समानता और उनके सिद्धान्तों की विभिन्नता का भी विवेचन किया गया है।

इकाई–22 : मैलिनोवस्की की संस्कृति तथा प्रकार्य की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

22. ब्रोलिस्ला कैस्पर मैलिनोवस्की : जीवन परिचय

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 मैलिनोवस्की की संस्कृति तथा प्रकार्य की अवधारणा

22.3 मैलिनोवस्की का 'आवश्यकताओं का सिद्धान्त'

22.3.1 मैलिनोवस्की के प्राथमिक जैवकीय आवश्यकता और उनके सांस्कृतिक प्रत्युत्तर

22.4 सारांश

22.5 सन्दर्भ ग्रंथ

22.6 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

22.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

22.8 पारिभाषिक शब्दावली

22. ब्रोलिस्ला कैस्पर मैलिनोवस्की : जीवन परिचय

ब्रोनसिला मैलिनोवस्की का जन्म 07 अप्रैल सन् 1884 ई. को पोलैण्ड के क्रेको शहर में हुआ था। यहीं पर उनकी प्रारम्भिक शिक्षा–दीक्षा हुई। उनके पिता अपने समय के प्रख्यात समाजशास्त्री थे। वे जेगोलियन विश्वविद्यालय में स्लाव भाषा के प्रोफेसर थे। मैलिनोवस्की विज्ञान वर्ग के छात्र थे और सन् 1908 ई. में उन्होंने जेगोलियन विश्वविद्यालय से भौतिकी तथा गणित विषय में पी–एच. डी. डिग्री प्राप्त की। यह विश्वविद्यालय पूर्वी यूरोप का प्राचीनतम शिक्षा का केन्द्र हुआ करता था। पी–एच. डी. की परीक्षा के दौरान उन्हें जेम्स फ्रेजर की प्रसिद्ध कृति द गोल्डेन बाउल पढी। स्वास्थ्य खराब होने के कारण उन्होंने भौतिकी और गणित की पढ़ाई बीच मे ही रोक दी, किन्तु स्वस्थ होने के पश्चात् उन्होंने दो वर्ष लाइपजिंग विश्वविद्यालय में व्यतीत किये। विलियम बुंट के दृष्टिकोण से मैलिनोवस्की प्रभावित हुए। बुंट जीवन के सांस्कृतिक पक्षों के प्रति व्यापक अन्तर्सम्बन्धों पर अध्ययन करने के लिए मानवीय जीवन के विश्लेषणात्मक पक्ष को स्वीकार किया।

वेस्टर मार्क के निर्देशन में स्नातकोत्तर छात्र के रूप में लंदन स्कूल ऑफ इकोनामिक्स में प्रवेश लिया। सन् 1916 ई. में आस्ट्रेलिया के आदिवासियों तथा मैलूद्वीप के लोगों पर प्रकाशित प्रबन्ध के लिए उन्हें डी. एस. सी. की उपाधि प्रदान की गयी। मैलिनोवस्की की मृत्यु 16 मई सन् 1942 ई. अमेरिका को न्यू हैवेन में हुई।

22.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको मैलिनोवस्की के संस्कृति तथा प्रकार्य सम्बन्धी अवधारणा से अवगत कराना है। इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप जान पायेंगे :

- मैलिनोवस्की का 'आवश्यकताओं का सिद्धान्त'
- मैलिनोवस्की के प्राथमिक जैवकीय आवश्यकता और उनके सांस्कृतिक प्रत्युत्तर को
- मैलिनोवस्की के प्रकार्य की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- मैलिनोवस्की के संस्कृति की अवधारणा को समझ सकेंगे।

22.1 प्रस्तावना

प्रकार्यवाद को जिन आरंभिक मानवशास्त्रियों ने अपने अध्ययनों में महत्वपूर्ण स्थान दिया, उनमें मैलिनोवस्की अग्रणी है। अपने ट्रोबियॉण्ड द्वीप समूह के अध्ययन में संस्कृति तथा प्रकार्य के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य किये उन्होंने बताया कि सार्वभौमिकता के स्तर पर सभी संस्कृतियों की अपनी कुछ निश्चित आवश्यकताओं होती है। मैलिनोवस्की ने अपनी पुस्तक 'ए साइण्टिफिक थ्योरी ऑफ कल्चर' (1944)' में संस्कृति एवं प्रकार्य के सम्बन्धों की विषद व्याख्या उन्होंने की। मैलिनोवस्की ने अपने अध्ययनों में ब्रिटिश मानवशास्त्र के अनुभावात्मक परंपरा का निर्वहन किया। उनके इस अनुशासन को हम आगे पूरी इकाई में देखेंगे कि किस प्रकार मैलिनोवस्की ने संस्कृति एवं प्रकार्य के अपने अध्ययन में आगे बढ़ाया।

मैलिनोवस्की ने मानव समाज में संस्कृति के प्रकार्यवादी पक्ष पर विशेष रूप से बल दिया है क्योंकि संस्कृति की अवधारणा स्वयं में एक जटिल अवधारणा है। यह मानव जीवन को सम्पूर्ण उपलब्धियों को अभिव्यक्त करता है। मैलिनोवस्की संस्कृति के संदर्भ में मानव के विशिष्ट कार्यों का विश्लेषण करता है। जिसके अंतर्गत मानव के प्राणिशास्त्रीय तथा सामाजिक दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। किसी संस्कृति की निरन्तरता उसकी शारीरिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता के संदर्भ में इस निर्भरता पर आधारित होती है कि वह पूर्ण होगी अथवा नहीं। संस्कृति के अन्तर्गत अनेक भाग और उपभाग होते हैं। जो सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में संगठित रहते हैं। जिसके सम्पूर्ण योग से सामाजिक ढाँचे का निर्माण सकारात्मक रूप से होता है। संस्कृति के अन्तर्गत

विभक्त प्रत्येक ईकाई का एक विशिष्ट महत्व तथा कार्य होता है। जो कि सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था की स्थिरता तथा निरन्तरता को बनाये रखता है। क्योंकि प्रत्येक के बिना सम्पूर्ण का अस्तित्व सम्भव नहीं होता है। और सम्पूर्ण के बिना प्रत्येक भी अर्थहीन होता है।

मैलिनोवस्की ने सांस्कृतिक परिवर्तन के दो पक्षों का उल्लेख किया है। वह परिवर्तन कारक अथवा शक्तियों का परिणाम हो सकते हैं। इस क्रम में प्रथम वह कारक एवं शक्तियाँ हो सकती हैं। जो समुदाय से स्वतः उत्पन्न होती है। जिसके फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के आविष्कार होते हैं। वह आविष्कार सांस्कृतिक परिवर्तन का कारक बन जाते हैं। दूसरे सांस्कृतिक परिवर्तन के संदर्भ में वह कहते हैं कि सांस्कृतिक परिवर्तन विभिन्न सांस्कृतियों के पारस्परिक संपर्क अथवा प्रभाव के कारण भी उत्पन्न होते हैं। इस क्रम में दूसरी प्रक्रिया वह है जिस मानवशास्त्र के अन्तर्गत प्रायः प्रसार की संज्ञा दी जाती है। मैलिनोवस्की जिस प्रक्रिया को प्रकार्य कहते हैं। इस प्रक्रिया को अधिकांश मानवशास्त्री संस्कृतिकरण की प्रक्रिया मानते हैं।

22.2 मैलिनोवस्की की संस्कृति तथा प्रकार्य की अवधारणा

मैलिनोवस्की अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ए साइन्टिफिक थ्योरी ऑफ कल्चर एंड अदर एसे' में प्रकार्यवाद के संदर्भ में कहते हैं कि प्रत्येक सांस्कृतिक घटना के सैद्धान्तिक विवेचन में प्रकार्यत्मक सिद्धान्त अवश्य निहित होते हैं। पद्धति के रूप में प्रकार्यवाद अत्यन्त प्राचीन है। इसका सम्बन्ध सांस्कृतिक घटनाओं की प्रकृति में स्पष्ट ज्ञान से है। विवाह, परिवार, आर्थिक व्यवस्था अथवा इकाईयाँ, उद्योग, राजनीतिक व्यवस्था, विधान और सांस्कृतिक वास्तविकता का पता प्रकार्यवाद के विवेचन से लगता है। मैलिनोवस्की का विचार है कि अलग–अलग लक्षणों का अध्ययन न कर उनका सम्पूर्ण से सम्बन्ध जानना आवश्यक है।

मैलिनोवस्की का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपनी संस्कृति में कुछ न कुछ योगदान अवश्य दिया जाता है। अतः समाज के जीवन को समझने हेतु संस्कृति की क्रिया को समझना आवश्यक है।

मैलिनोवस्की का मानना है कि संस्कृति का विकास संस्थाओं के विकास के माध्यम से होता है। उस संस्था में संस्था का कौन–सा पक्ष आवश्यक है एवं कौन–सा पक्ष अनावश्यक है? इसे समझने अथवा जानने हेतु 'प्रकार्य' को समझना आवश्यक होगा। सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के दौरान मानव उससे जुड़ा होता है अर्थात् वह एक–दूसरे के साथ किसी न किसी प्रकार सम्बन्ध द्वारा संबंधित रहता है। आगे मैलिनोवस्की पुनः कहता है कि प्रकार्य और आकार (Function and Form) सम्बन्ध होते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आकार और प्रकार्य एक दूसरे से सदैव घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हैं। इनके मध्य कोई भी विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर मैलिनोवस्की प्रकार्य को परिभाषित करते हुए

कहते हैं कि प्रकार्य का अर्थ प्रयोग अथव उपयोग और संबंध से है। प्रत्येक क्रिया में हर वस्तु का प्रयोग मनुष्य के किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया जाता है।

स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति एकीकृत तथा सामाजिक संरचना एवं प्रतीकात्मक सांस्कृतिक एकता को रेखांकित करते हुए मैलिनोवस्की कहते हैं कि समाजों में कुछ ऐसे तत्व या गुण विद्यमान होते हैं जो सार्वभौमिक रूप से पाये जाते हैं। ये तत्व समाज के जैविकी, संरचनात्मक एकता और प्रतीकात्मक सांस्कृतिक एकता के उपागम के रूप में हैं। ये तत्व इस प्रकार हैं :

1. **व्यक्तियों की सहभागिता** : समाज की सभी गतिविधियों में कैसे और किस प्रकार से मानव की सहभागिता होती है।

2. **लक्ष्य** : जो लोग इन गतिविधियों में सहभागी होते हैं। उसके लक्ष्य क्या हैं?

3. **मानक** : इसमें लोगों के सहभागिता के नियामक क्या हैं और कौन हैं?

4. **भौतिक उपकरण** : सामाजिक सदस्यों के व्यवहार को दिशा निर्देश देने वाले मूल्य, तकनीक, यन्त्र, औजार आदि जैसे उपकरण क्या हैं?

5. **गतिविधि** : इन तत्वों के रूप में देखा जाय तो यह कैसे सुनिश्चित किया जाता है कि यह व्यक्ति कौन सा कार्य करेगा।

6. **प्रकार्य** : समाज की एकता, अखण्डता एवं प्रेम बन्धुत्व बनाये रखने के लिए कौन–कौन सी गतिविधियाँ जिम्मेदार हैं ?

22.3 मैलिनोवस्की का 'आवश्यकताओं का सिद्धान्त'

मैलिनोवस्की कहता है कि मनुष्य की प्रमुख जैविकीय आवश्यकताएँ, संस्कृति के लिए आवश्यक दशाएँ अथवा स्थितियाँ निर्धारित करती हैं। देखा जाय तो सार्वभौमिक स्तर पर सभी संस्कृतियों की कुछ न कुछ आवश्यकताएँ होती हैं एवं मनुष्य की जीविका के लिए इन आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक होती हैं।

22.3.1 मैलिनोवस्की के प्राथमिक जैवकीय आवश्यकता और उनके सांस्कृतिक प्रत्युत्तर

मैलिनोवस्की अपने संस्कृति तथा प्रकार्य की अवधारणा में यह प्रदर्शित किया कि किसी भी संस्कृति में अनेक सांस्कृतिक व्यवहारों को जैवकीय एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित किया जा सकता है।

मैलिनोवस्की सामाजिक सांस्कृतिक मानवशास्त्र में क्षेत्रकार्य की परम्परा को आरम्भ किया। कहा जाता है कि सांस्कृतिक मानवशास्त्र का जन्मदाता मैलिनोवस्की ही है। मैलिनोवस्की ने प्रशान्त महासागर के ट्रोबियान्ड द्वीप पर जीवन जी रहे जनजातीय समूहों को अपने अध्ययन का आधार बनाया। अध्ययन के आधार पर यह बताया कि आदिम संस्कृतियों के लोगों की भी अपनी परम्परागत मान्यताएँ एवं मूल्य होते हैं। इन्हीं मान्यताओं एवं मूल्यों के आधार पर वे अपनी जीवन को गति देते हैं। इस प्रकार संस्कृतियों का विश्लेषण उनकी

मान्यताओं एवं मूल्यों के आधार पर ही करना चाहिए। मैलिनोवस्की की यह विचारधारा आज सांस्कृतिक सापेक्षवाद के नाम से स्थापित हो चुकी है। मानवशास्त्र में भी यह स्थापित हो गया है कि अन्य संस्कृतियों के अध्ययन में अध्ययनकर्ता को अपने सांस्कृतिक मूल्यों से स्वतंत्र रहकर अध्ययन करना चाहिए। तभी वे प्रमाणित तथ्यों को प्राप्त कर सकते हैं। मैलिनोवस्की ने संस्कृति को एक सम्पूर्णता के रूप में देखा, साथ ही उसके विभिन्न अंगों के बीच प्रकार्यात्मक एकीकरण की अनिवार्यता को स्वीकार किया है।

मैलिनोवस्की आगे कहता है कि किसी भी संस्कृति के समस्त तत्व परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित अथवा जुड़े होते हैं। उनमें किसी एक अंग अथवा एक भाग में होने वाला परिवर्तन अन्य तत्वों को बड़े स्तर पर प्रभावित करता है। इस प्रकार संस्कृति के विभिन्न अंगों के बीच इसी समन्वय अथवा 'संगति' को प्रकार्यात्मक समाकलन कहा गया है।

मैलिनोवस्की उद्विकासवादियों की 'सांस्कृतिक जीवाश्मों' की मान्यता का पूर्ण खण्डन किया है। साथ ही इस संदर्भ में यह स्थापित किया कि संस्कृति में किसी तत्व की विद्यमानता उसकी सार्थकता एवं उसके प्रकार्य को तथ्यगत रूप में प्रमाणित करती है।

जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के साथ–साथ जैव मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संस्कृति स्वयं अपनी कुछ आवश्यकताओं को जन्म देती है जिन्हें व्युत्पन्न आवश्यकताएँ भी कहा जाता है। इस प्रकार संस्कृतियों के विभिन्न तत्व आंशिक रूप से भौतिक संस्कृति तथा आर्थिक रूप से सामाजिक रीति रिवाजों एवं विश्वासों आदि के रूप में पाए जाते हैं। मनुष्य इन सभी प्रकार के तत्वों का प्रयोग अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए करता है। अतः विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों के अस्तित्व एवं उनकी सार्थकता को उपर्युक्त संदर्भ में ही समझा जा सकता है।

मैलिनोवस्की का मानना है कि समस्त प्राथमिक आवश्यकताएँ मूलभूत होती है। साथ ही साथ उनकी संतुष्टि भी अनिवार्य होती है। लेकिन यह कार्य व्यक्तिगत स्तर पर सम्भव नहीं है। अतः इन आवश्यकताओं की पूर्ति संगठनात्मक प्रयासों से ही किया जा सकता है। यह संगठनात्मक स्वरूप सभी समाजों में पाए जाते हैं। जिन्हें मैलिनोवस्की ने 'संस्थाओं' की संज्ञा देता है। मैलिनोवस्की आगे कहता है कि संस्थाओं की जड़े मानव स्वभाव की गहराईयों में होती है। इस तरह से मैलिनोवस्की ने मानव स्वभाव को प्राथमिक जैविकीय आवश्यकताओं के पर्याय के रूप में देखा।

22.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने मैलिनोवस्की की संस्कृति तथा उसके प्रकार्य सम्बन्धी विचार को आपने पढ़ा। आपने पढ़ा कि मैलिनोवस्की के मतानुसार मनुष्य की मूल जैविकीय आवश्यकताएँ संस्कृति के लिए आवश्यक दशाएँ निर्धारित

करती है। आपने यह भी समझा कि संस्कृति में अनेक सांस्कृतिक व्यवहारों को जैवकीय एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित किया जा सकता है। आपने यह भी जाना कि सिर्फ आधुनिक समाजों का ही नहीं बल्कि आदिम संस्कृतियों के लोगों की भी अपनी मान्यता एवं मूल्य होते हैं। आपने यह भी पढ़ा कि संस्कृति के तत्व आपस में पृथक नहीं होते वरन् एक दूसरे से अर्न्तसम्बन्धित होते हैं। आपने पूरी इकाई में देखा कि मैलिनोवस्की के इस प्रकार्यवादी अवधारणा का मूल सार मानव की प्राथमिक जैविकीय आवश्यकता है।

22.5 सन्दर्भ ग्रंथ

1. मुकर्जी, रवीन्द्रनाथ : सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2003
2. रावत, हरिकृष्ण : समाजशास्त्रीय चिन्तक एवं सिद्धान्तकार, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2007
3. पाण्डेय, रवि प्रकाश : समाजशास्त्रीय सिद्धान्त : अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य, विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, 2014
4- Malinowaski B., P.M. Kabery ed., The Dyanims of Culture Change : An inquiry into Race Relations in Africa, New Have, Yale University Press, 1946
5- Malinowaski B.: A Scientific theory of Culture & other Essays, Chapel Hill. N. Cardina: The University of North Carolina Press, 1944.

22.6 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मैलिनोवस्की के प्रकार्य सम्बन्धी अवधारणा को संक्षिप्त में बताएं।
2. मैलिनोवस्की के संस्कृति अवधारणा क्या है?
3. मानव के व्युत्पन्न आवश्यकताओं एवं उनके सांस्कृतिक प्रत्युत्तर पर संक्षिप्त चर्चा करें।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मैलिनोवस्की के 'आवश्यकता सिद्धान्त' की सविस्तार व्याख्या करें।
2. आपके विचार में क्या मानव के प्राथमिक जैविकीय आवश्यकताओं के सिर्फ सांस्कृतिक प्रत्युत्तर होते हैं? अपने उत्तर को सोदाहरण तार्किक व्याख्या करें।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'एक साइण्टिफिक थ्योरी ऑफ कल्चर' पुस्तक के लेखक कौन हैं?

(क) रेडक्लिफ ब्राउन (ख) मैलिनोवस्की

(ग) नाडल (घ) लेवी स्ट्रॉस

2. मैलिनोवस्की ने किस 'द्वीप समूह का अध्ययन किया था।

(क) अण्डमान (ख) लक्षद्वीप

(ग) फिजी (घ) ट्रोबियान्ड

3. मैलिनोवस्की इनमें से किस कॉलेज में रीडर एवं प्रोफेसर रहे?

(क) लंदन स्कूल ऑफ इकोनमी (ख) ऑक्स्फोर्ड

(ग) स्टेनफोर्ड (घ) फ्रैंकफर्ट

4. मैलिनोवस्की किस परंपरा के मानवशास्त्री थे?

(क) अमेरिकन (ख) फ्रैंकफर्ट

(ग) विक्टोरियन (घ) स्विडिश

22.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ख), 2. (घ), 3. (क), 4. (ग)

22.8 पारिभाषिक शब्दावली

Culture	संस्कृति
Function	प्रकार्य
Biological need	जैविकीय आवश्यकता
Socio-cultural	सामाजिक–सांस्कृतिक
Value	मूल्य
Cultural relativism	सांस्कृतिक सापेक्षवाद
Functional integration	प्रकार्यात्मक एकीकरण
Primary need	प्राथमिक आवश्यकता
Economic exchange	आर्थिक विनिमय
Institution	संस्था
Primary biological need	प्राथमिक जैविकीय आवश्यकता

इकाई–23 : जादू, विज्ञान तथा धर्म की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 मैलिनोवस्की का धर्म, जादू तथा विज्ञान सम्बन्धी दृष्टिकोण
23.3 मैलिनोवस्की के धर्म सम्बन्धी विचार
23.4 मैलिनोवस्की के जादू तथा विज्ञान पर विचार
23.5 धर्म तथा जादू में अन्तर
23.6 रेडक्लिफ ब्राउन और मैलिनोवस्की के विचारों की आलोचनात्मक विवेचना
23.7 सारांश
23.8 सन्दर्भ ग्रंथ
23.9 बोध के प्रश्न
(क) लघु उत्तरीय प्रश्न
(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न
23.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर
23.11 पारिभाषिक शब्दावली

23.0 उद्देश्य

इससे पूर्व की इकाई में आपने मैलिनोवस्की के संस्कृति तथा प्रकार्य सम्बन्धी अवधारणाओं को पढ़ा और समझा। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप मैलिनोवस्की के निम्न अवधारणाओं पर उनके विचारों को पढ़ेंगे :

- मैलिनोवस्की के धर्म पर विचार
- मैलिनोवस्की के जादू तथा विज्ञान पर विचार
- धर्म तथा जादू में मूलभूत अन्तर
- रेडक्लिफ ब्राउन और मैलिनोवस्की के विचारों की समालोचना

23.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में संस्कृति तथा प्रकार्य सम्बन्धी अवधारणाओं पर मैलिनोवस्की के विचारों को पढ़ने के बाद इस इकाई में हम मैलिनोवस्की के धर्म, जादू तथा विज्ञान पर विचारों को अध्ययन करेंगे। उनके विचारों को जानने के लिए 1948

में मैलिनोवस्की के प्रकाशित पुस्तक 'मैजिक, साइंस एण्ड रिलिजन एण्ड अदर ऐसेज' का सहारा लेंगे। इस इकाई के अध्ययन के क्रम में आप पाएंगे कि मैलिनोवस्की के विचार उपरोक्त पक्षों पर एकांगी नहीं, बल्कि उनके परिप्रेक्ष्य में काफी विविधता है। इस इकाई का आरम्भ हमने सर्वप्रथम धर्म पर मैलिनोवस्की के विचारों को आपको समझाने का प्रयास किया है। तत्पश्चात् जादू तथा विज्ञान की मूल अवधारणाओं को स्पष्ट करते हुए इन दोनों के मध्य समानता तथा विभिन्नता के पहलुओं पर भी गौर किया है। तथा इकाई के अन्त में रेडक्लिफ ब्राउन और मैलिनोवस्की के विचारों का एक समालोचनात्मक अध्ययन भी किया गया है। रेडक्लिफ के विचारों को आप आगे की इकाईयों में विस्तार से पढ़ेंगे।

23.2 मैलिनोवस्की का धर्म, जादू तथा विज्ञान सम्बन्धी दृष्टिकोण

मैलिनोवस्की धर्म तथा जादू के सम्बन्ध में प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण को प्रतिपादित करते हैं। वह इसे मौलिक आधार पर स्वीकार करते हैं। धर्म के सन्दर्भ में उनका कथन है कि धर्म के प्रति समाज में अलौकिक शक्ति पर विश्वास को माना जाता है। धर्म के सन्दर्भ में व्यक्ति पर किसी प्रकार के दबाव जैसे डरा अथवा धमकाकर या किसी अन्य प्रकार से धर्म के प्रति व्यक्ति को वश में नहीं किया जा सकता है। धर्म के प्रति आस्था, विश्वास, प्रार्थना, पूजा या आराधना के माध्यम से व्यक्ति की श्रद्धा को उसके पक्ष में बनाया जा सकता है। व्यक्ति का विश्वास होता है कि यह उनकी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं अथवा कर सकते हैं।

जादू के सन्दर्भ में मनुष्य इसे एक अर्जित शक्ति के रूप में स्वीकार करता है जो मनुष्य की स्वयं की शक्ति से अधिक शक्तिशाली हो सकता है। किन्तु इसकी कार्य पद्धति कुछ निश्चित ढंग के अधिकारों से सम्पादित किया जाता है। यही कारण है कि मानव इस प्रकार की शक्ति के सम्मुख आस्था से नतमस्तक होने के स्थान पर अधिकारपूर्ण से उससे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

23.3 मैलिनोवस्की के धर्म सम्बन्धी विचार

मैलिनोवस्की ने धर्म के अन्तर्गत व्यवहार तथा क्रिया के दोनों पक्षों समाजशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक आधार पर विश्लेषण किया है। वह धर्म के दोनों पक्षों में महत्वपूर्ण मानते हुए कहते हैं कि, "धर्म क्रिया का एक तरीका है, विश्वासों की एक व्यवस्था है यह समाजशास्त्रीय घटना एवं व्यक्तिगत अनुभव है।"

धर्म के सन्दर्भ में मैलिनोवस्की की उपरोक्त परिभाषा धर्म की चार प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित प्रकार से दर्शाती है :

प्रथम विशेषता : धर्म विश्वास की एक परिपूर्ण व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत अलौलिक शक्ति, आत्मा, परमात्मा अथवा किसी अन्य पर हो सकता है।

द्वितीय विशेषता : समाज में पाये जाने वाले प्रत्येक धर्म से सम्बन्धित कुछ प्रमुख क्रियाएँ होती हैं जिसके सन्दर्भ में कर्म को करना पड़ता है। जैसे– प्रार्थना, पूजा–पाठ, आराधना आदि। यह धार्मिक विश्वास ही मनुष्य को निष्क्रियता अथवा उदासीनता से दूर करता है।

तृतीय विशेषता : एक ही समाज में प्रत्येक व्यक्ति के भिन्न–भिन्न धर्म नहीं होते हैं। अतः धर्म एक सामाजिक घटना है।

चतुर्थ विशेषता : धर्म व्यक्तिगत अनुभव होते हैं जिससे व्यक्ति प्रभावित होता है। इस सन्दर्भ में व्यक्ति स्वतंत्र होता है कि वह धर्म को स्वीकार करें अथवा अस्वीकार करें।

23.4 मैलिनोवस्की के जादू तथा विज्ञान पर विचार

जादू के सन्दर्भ में मैलिनोवस्की का कथन है कि "जादू विशुद्ध रूप से व्यावहारिक क्रियाओं का योग है जिन्हें किसी आपेक्षित उद्देश्य की पूर्ति के साधन के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।" समाज में जब किसी आपेक्षित परिणाम को अन्य भौतिक प्रविधि के माध्यम से प्राप्त नहीं किया जाता है तब उस परिणाम को प्राप्त करने के लिए जादू को साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस आधार पर मैलिनोवस्की जादू के व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल देता है। आदिमकालीन आदिवासी लोग जादू के व्यावहारिक पक्ष तथा इसकी उपयोगिता सबसे अधिक करते रहे हैं। वह सार्वजनिक जीवन की उन समस्याओं के समाधान हेतु जादू का प्रयोग करते हैं जिनका समाधान वह अपनी बुद्धि और कौशल के आधार पर सामयिक परिस्थितियों में नहीं कर पाते हैं। परिस्थितिवश समस्याओं के समाधान हेतु जादू का प्रयोग अधिकांश किया जाता है। जादू चमत्कारिक दृष्टिकोण के प्रति विश्वास उत्पन्न करता है। यह विश्वास के साथ ही साथ साहस को व्यक्तियों हेतु प्रदान करता है। जादू मानसिक क्रियाओं में वशीकरण हेतु अधिक प्रभावी माना जाता है। मैलिनोवस्की का कथन है कि, "जादू वह शक्ति है जो कुछ व्यावहारिक हितो की पूर्ति के साधन के रूप में प्रयोग में लाई जाती है। मैलिनोवस्की जादू का वर्गीकरण करते हुए इसे दो भागों में विभाजित करते हैं – सफेद जादू और काला जादू। सफेद जादू के दो भेद होते हैं जिसके अन्तर्गत प्रथम भेद में मनुष्य की अनिश्चितता तथा उसके रक्षात्मक अनुप्रयोग की विधि होती है। यह स्थिति विभिन्न प्रकार के खतरों से बचने हेतु प्रयोग में लाया जाता है। जबकि दूसरे विभेद के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की चमत्कारिक घटनाओं जैसे जादूगर अपनी जादुई शक्ति से सामान्य लोग को आश्चर्यचकित करता है। सामाजिक रूप से सफेद जादू का उद्देश्य कल्याणकारी होता है जिसके कारण इसे सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है। जबकि काले जादू का उद्देश्य शत्रुओं को हानि पहुँचाने के लिए किया जाता है जिसके कारण इसे सामाजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं होती है। मैलिनोवस्की के अनुसार जादू और

विज्ञान के मध्य विभिन्न प्रकार की समानताओं तथा विभिन्नताओं का उल्लेख किया है।

जादू और विज्ञान की पहली समानता यह है कि दोनों का ही मनुष्य की प्रवृत्तियों और आवश्यकताओं से सम्बन्धित कोई न कोई निश्चित उद्देश्य होता ही है। जादू और विज्ञान दोनों ही नियम आधारित होते हैं। इसके अलावा दोनों में ही प्रविधि का प्रयोग किया जाता है। समानताओं के साथ–साथ कुछ आधारभूत भिन्नताएँ भी हैं। मैलिनोवस्की के अनुसार – विज्ञान इस विश्वास पर आधारित है कि अनुभव, प्रयत्न तथा तर्क सही पर जादू इस विश्वास पर आधारित है कि आशा व्यर्थ नहीं हो सकती, न ही इच्छा कभी धोखा दे सकती है।

23.5 धर्म तथा जादू में अन्तर

धर्म एवं जादू के अन्तर को मैलिनोवस्की ने अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया है :

1. धर्म एक सामाजिक कृत्य अथवा तथ्य है जबकि जादू को एक वैयक्तिक कृत्य के रूप में जाना जाता है।

2. जादू और धर्म के अधिप्राकृतिक अथवा अलौकिक शक्तियों में विश्वास किया जाता है। धर्म में पूजा–पाठ, प्रार्थना करके प्रसन्न करने और ऐसी प्रसन्नता से लाभ उठाने या उस शक्ति से हानियों से बचने के लिए प्रयत्न किया जाता है। जबकि इसके विपरीत जादू में उन शक्तियों को अपने वश में करके वैयक्तिक उद्देश्य की पूर्ति के प्रयोग में लाया जाता है।

3. धार्मिक क्रियाएं सबके द्वारा सभी के लिए संचालित की जाती है। जबकि इसके विपरीत जादू के लिए वहीं निपुण हैं जो जादुई क्रियाओं को जानता हो। इस प्रकार जादुई क्रियाएं वहीं लोग कर सकते हैं जो कि इन क्रियाओं में निपुण हैं।

मैलिनोवस्की के विचारों के सन्दर्भ में नैडेल कहते हैं कि "यह ठीक है कि धर्म मानव समूह के मूल्यों और मान्यताओं की रक्षा करता है, लेकिन वहीं बिना व्यक्ति के अभिवृत्तियों और विचारों से धर्म को गतिमान नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार धर्म सामाजिक और वैयक्तिक या मानसिक दोनों आधारों पर उत्पन्न होता है।"

23.6 रेडक्लिफ ब्राउन और मैलिनोवस्की के विचारों की आलोचनात्मक विवेचना

रेडक्लिफ ब्राउन और मैलिनोवस्की 19वीं सदी के विकासवाद के प्रबल आलोचक थे। मैलिनोवस्की एवं रेडक्लिफ ब्राउन की वैचारिकी थी कि वे महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र पर आधारित अध्ययन के द्वारा विकास की प्रक्रिया के अध्ययन में महत्वपूर्ण वृद्धि करेंगे। मैलिनोवस्की एवं रेडक्लिफ ब्राउन की वैचारिकी में जो

भेद था। वह तथ्यों पर अध्ययन की अपेक्षा "काल्पनिक इतिहास" द्वारा पूर्व का अध्ययन करना था। इसके बावजूद भी देखा जाय तो मैलिनोवस्की एवं ब्राउन के विचारों में कुछ समानताएं भी दृष्टिगोचर होती हैं, जो इस प्रकार हैं :

1. रेडक्लिफ एवं मैलिनोवस्की ने समाज की संरचना के अध्ययन पर विशेष बल दिया।

2. दोनों मानवशास्त्रियों ने प्रत्येक संरचनात्मक इकाई को प्रकार्यात्मक भूमिका अदा करने वाली इकाई माना है।

3. दोनों मानवशास्त्री समाज को एक आत्मनिर्भर व्यवस्था के रूप में देखते हैं। इसमें वे कहते हैं कि "प्रत्येक इकाई एक–दूसरे पर आश्रित होती हैं।"

4. दोनों मानवशास्त्रियों ने समाज की प्रकार्यात्मक संरचना के आधार पर मानव समाज को समझने पर बल दिया।

उपर्युक्त समानताओं के अतिरिक्त देखा जाय तो मैलिनोवस्की एवं ब्राउन के दृष्टिकोणों में कुछ व्यवहारिक एवं तथ्यात्मक अन्तर भी देखने को मिलते हैं, जिसकी विवेचना इस प्रकार है :

1. दोनों की वैचारिकी में जो पहला महत्वपूर्ण अन्तर है, वह है– प्रकार्यवाद शब्द। रेडक्लिफ ब्राउन मैलिनोवस्की के द्वारा प्रकार्यवाद शब्द को पसंद नहीं किया। लेकिन मैलिनोवस्की ने प्रकार्यवाद शब्द को बहुत बड़े स्तर पर प्रचारित – प्रसारित किया।

2. रेडक्लिफ ब्राउन का विरोध इस बात से है कि 'वाद–विचारधारा', विचारों का स्कूल है, दर्शन तथा विचारों के परिमंडल हैं। विज्ञान का इससे कोई लेना–देना नहीं है।

3. जो कुछ इसके पास है, वह मुख्यतः अध्ययन का तरीका है। इन रीतियों का चुनाव जो अध्ययन के हिसाब से सर्वोच्च हो।

4. एक वैज्ञानिक के किसी तरीके विशेष रूप से 'उत्कंठ संबंध' नहीं हो सकते। उनके लिए सभी समान रूप से महत्वपूर्ण होते हैं एवं मूल्यों से परिपूर्ण होते हैं।

5. देखा जाय तो ब्राउन एक अवयव संस्थान और समाज के मध्य उपस्थित भेद अथवा अन्तर को देखते हैं। इसके आधार पर वे कहते हैं कि कोई भी संरचना तभी तक योग्य होती है जब तक वह कार्य करती है अथवा प्रकार्यात्मक रूप में होती है। इस प्रकार संरचना और कार्य दोनों सामाजिक मानव विज्ञान के लिए महत्वपूर्ण अवधारणाएं हैं।

6. एक भेद यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि रेडक्लिफ ब्राउन अपने आप को प्रकार्यवादी विचारक के रूप में नहीं, बल्कि संरचनावादी विचारक के रूप में अपने को ज्यादा उपयुक्त मानते हैं। वहीं इस संदर्भ में मैलिनोवस्की प्रकार्यवादी और मानव समाज के व्यवहारों के समस्त सामाजिक संरचनाओं को समझने का प्रयास करते हैं।

7. रेडक्लिफ ब्राउन अपनी वैचारिकी को जहां समाज और सत्ता की आवश्यकताओं से प्रारम्भ करते हैं। वहीं मैलिनोवस्की अपनी विचारधारा के आरम्भिक बिन्दु के रूप में 'व्यक्ति' को मानते हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण रेडक्लिफ ब्राउन के उपागम को 'समाजशास्त्रीय प्रकार्यवाद' के रूप में देखा गया तो मैलिनोवस्की के विचारधारा को 'मनोवैज्ञानिक प्रकार्यवाद' के रूप में देखा गया।

8. रेडक्लिफ ब्राउन एवं मैलिनोवस्की के विचारधारा में एक अन्तर और दृष्टिगोचार होता है जिसमें एक अवधारणा जो मैलिनोवस्की के लिए मौलिक अवधारणा है अथवा की संस्कृति की अवधारणा है। वह ब्राउन के लिए मात्र उपतत्व (द्वितीय एवं प्रासंगिक) है। उनका मानना है कि सामाजिक संरचना का अध्ययन संस्कृति को सम्मिलित करता है। क्योंकि संरचना प्रेक्षण से संबंधित है और उन्हीं के बारे में आम आदमी देखता और सुनता है। इस प्रकार देखा जाय तो ब्राउन मानव विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान के रूप में स्थापित करना चाहते थे। और यह तभी संभव होगा, जब अनुभवजन्य आधारित अध्ययन को इसमें सम्मिलित किया जाय।

23.7 सारांश

इस इकाई में हमने आपको मैलिनोवस्की के धर्म, जादू तथा विज्ञान सम्बन्धी विचारों से अवगत कराया। धर्म के सम्बन्ध में उनके विचारों को सार के रूप में समझते हुए इस विचार को माना कि धर्म अलौकिक शक्ति के रूप में सामाजिक विश्वास को प्राप्त किये हुए हैं। जबकि जादू मनुष्यों द्वारा अर्जित की गयी शक्ति के रूप में स्वीकार किया जाता है। जादू और विज्ञान दोनो ही नियम आधारित होते हैं। इस इकाई में धर्म से सम्बन्धित मैलिनोवस्की के विचारों के सार को आपने प्रारम्भ में जाना। उसके पश्चात् जादू तथा विज्ञान को अलग–अलग आपको समझाने के साथ ही साथ इन दोनों अवधारणों के मध्य समानता तथा विभिन्नताओं के पहलू से भी आपका परिचय कराया गया। मैलिनोवस्की के ही समकालीन उसी विक्टोरियन परम्परा के एक अन्य मानवशास्त्री रेडक्लिफ ब्राउन दोनों ही विचारक विकासवाद को प्रबल आलोचक थे। इन दोनों के विचारों को आपने एक समालोचनात्मक दृष्टिकोण से पढ़ा और समझा।

23.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1. रावत, हरिकृष्ण : समाजशास्त्र विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2007
2. मुखर्जी, रवीन्द्रनाथ : सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2003
3. पाण्डेय, रविप्रकाश : समाजशास्त्रीय सिद्धान्त : अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य, विजय प्रकाशन, वाराणसी, 2014

4- Malinowaski, B. : Magic Science & Religion & other Essays, Glencoc Illionois, The Free Press, 1948

23.9 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. धर्म को परिभाषित कीजिए।
2. धर्म तथा जादू के मध्य मूलभूत अन्तर को स्पष्ट करें।
3. जादू तथा विज्ञान के मध्य समानता के आपसी तत्वों की चर्चा करें।
4. जादू से आप क्या समझते हैं?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मैलिनोवस्की के धर्म, जादू तथा विज्ञान सम्बन्धी अवधारणाओं पर सविस्तार चर्चा करें।
2. रैडक्लिफ ब्राउन और मैलिनोवस्की के विचारों का समालोचनात्मक मूल्यांकन करें।
3. वर्तमान समय में धर्म एवं जादू की उपादेयता की विवेचना कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'दि गोल्डन बाउ' पुस्तक के लेखक कौन हैं?

   (क) मैलिनोवस्की (ख) रैडक्लिफ ब्राउन

   (ग) जेम्स फ्रेजर (घ) इमाइल दुर्खीम

2. 'द फैमिली अमंब दि ऑस्ट्रेलियन एबोरिजनीस' पुस्तक के लेखक कौन हैं?

   (क) जेम्स फ्रेजर (ख) मैलिनोवस्की

   (ग) नडाल (घ) ब्राउन

3. टोटम का सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया?

   (क) दुर्खीम (ख) वेबर

   (ग) मैलिनोवस्की (घ) फ्रेजर

4. मैलिनोवस्की के अनुसार आवश्यकताएँ कितने प्रकार की है?

   (क) पाँच (ख) दो

   (ग) चार (घ) तीन

5. मैलिनोवस्की ने अपनी किस पुस्तक में धर्म, जादू तथा विज्ञान के बारे में लिखा?

   (क) ए सांइटिफिक थ्योरी ऑफ कल्चर

(ख) द फैमिली अमंग दि आस्ट्रेलिया एबोरिजवीस

(ग) मैजिक, साइंस एंड रिलिजन एण्ड अदर ऐसेज

(घ) सेक्स एंड रेप्रेशन सेवेज सोसाइटी

23.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ग), 2. (ख), 3. (क), 4. (घ), 5. (ग)

23.11 पारिभाषिक शब्दावली

Animis	जीववाद
Sacred	पवित्र
Profane	लौकिक
Totamism	टोटमवाद
Empiricism	अनुभवमूलक
Ethnography	मानवजाति वर्णन
Field work	क्षेत्रीय शोध कार्य
Structural Functionalist	संरचनात्मक प्रकार्यवादी

इकाई–24 : संरचना की अवधारणा : रेडक्लिफ ब्राउन

इकाई की रूपरेखा

24. जीवन परिचय : रैडक्लिफ ब्राउन (1881–1855)

24.0 उददेश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 सामाजिक संरचना : एक अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य

24.3 सामाजिक संरचना: अर्थ एवं परिभाषा

24.4 सामाजिक संरचना का विश्लेषण

24.5 रैडक्लिफ ब्राउन की संरचना की अवधारणा

24.6 जनजातीय समाज में संरचना की अवधारणा

24.7 सारांश

24.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

24.9 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

24.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

24.11 पारिभाषिक शब्दावली

24. ए.आर. रेडक्लिफ ब्राउन जीवन परिचय

एक मानवशास्त्री के रूप में ए0आर0 रैडक्लिफ ब्राउन की ख्याति विश्व प्रसिद्ध है। आपके चिन्तन ने समाजशास्त्रीय विचारधारा को बहुत ही प्रभावित किया है। आप प्रर्कावादी विचारधारा के समर्थक हैं। आपकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं :

1. The Development of social anthropology (1936)
2. Structure and Function in primitive society (1952)
3. A Natural Science of Society (1957).

एल्फ्रेड रेजिन्लड रेडक्लिफ ब्राउन का जन्म 17 जनवरी 1881 को इग्लैण्ड में बर्मिधम में स्पार्कबुक नामक स्थान पर हुआ था। एल्फ्रेड जब पॉच वर्ष के थे उनके पिता का निधन हो गया था। रेडक्लिफ ब्राउन की स्कूली शिक्षा बर्मिघम में हुई और बाद में बर्मिघम विश्वविद्यालय से प्री–मेडिकल किया। इसके उपरान्त वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालेज से एम0ए. की डिग्री प्राप्त की।

कैम्ब्रिज में वे डब्लू.एच.आर. रिवर्स तथा ए.डी. हैडन के सम्पर्क में आए इनसे प्रभावित होकर रैडक्लिफ ब्राउन भी नृशास्त्र में रूची लेने लगे।

1906 में उन्हें नृजातिशास्त्र में अध्ययन के लिए एंथनी विल्किन छात्रवृत्ति प्रदान की गई। इस छात्रवृत्ति और रायल सोसाइटी तथा भारत सरकार की वित्तिय सहायता से वह अण्डमान द्वीप के जनजातिय समूहों के अध्ययन हेतु गये। वहॉ उन्होंने 1908 तक क्षेत्रीय शोध कार्य किया। इंग्लैण्ड लौटकर वे लन्दन स्कूल ऑफ इकोनामिक्स में प्राध्यापक नियुक्त हो गए। अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण ब्राउन "अनार्की बाउन" कहलाने लगे।

1910 में ब्राउन पुनः जनजातियों के अध्ययन के लिए पश्चिमी आस्ट्रेलिया के दौरे पर गये। 1918 में सेहत बिगड़ने के कारण दक्षिण अफ्रीका के जोहन्सबर्ग जाना पड़ा। वहॉ 1920 में उन्हें केपटाउन विश्वविद्यालय में सामाजिक नृशास्त्र की प्रथम पीठ का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उनका देहांत अफ्रीका के ग्राहम्सटाउन में 24 अक्टूबर,1955 को हुआ था।

24.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- रेडक्लिफ ब्राउन के जीवन परिचय को जान पायेंगे।
- सामाजिक संरचना का अर्थ एवं परिभाषा को समझ जायेंगे।
- रेडक्लिफ ब्राउन की सामाजिक संरचना सम्बन्धी विचार को बता सकेंगे।
- जनजातिय समाज में संरचना की अवधारणा बता पायेंगे।

24.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आपको संरचना जो की समाजशास्त्रीय सिद्धान्त का मूल तत्व है, के बारे में विस्तार पूर्वक समझाया गया है। सरंचना क्या है? समाज कोई अखण्ड व्यवस्था नहीं है इसके अनेक अंग या इकाईयाँ होते है अर्थात अनेक इकाइयों के योगदान से समाज का निर्माण होता है पर इन इकाइयों (व्यक्ति, समूह, संस्था आदि) के सम्मिलित रूप को ही समाज नहीं कहते। प्रत्येक समाज में ये समिति, संस्थाएँ आदि एक निश्चित ढंग से व्यवस्थित रहती है, जिसके फलस्वरूप समाज का एक बाहरी रूप या प्रतिमान प्रकट होता है, इसी को सामाजिक संरचना कहते हैं। पारसन्स कहते हैं "सामाजिक संरचना परस्पर सम्बन्धित संस्थाओं, एजेन्सियों और सामाजिक प्रतिमानों साथ ही साथ समूह में प्रत्येक सदस्य द्वारा ग्रहण किये गये पदों व भूमिकाओं के विशिष्ट व्यवस्थित रूप को कहते हैं"।

24.2 सामाजिक संरचना : एक अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य

समाजशास्त्र मे दो आधारभूत अवधारणाए हैं, पहला सामाजिक संरचना तथा दूसरा सामाजिक व्यवस्था।

सामाजिक संरचना, समाज के ढॉचे की परिचालक है। जबकि सामाजिक व्यवस्था उसी समाज के प्रकार्यात्मक पक्ष की ओर संकेत करती है। समाज की अखण्ड व्यवस्था नहीं है उसके विभिन्न अंग व्यवस्थित ढंग से संयुक्त होकर एक रूपरेखा की रचना करते है, और इसी को सामाजिक संरचना कहते हैं। इसके विपरीत समाज के ये निर्माणक (constrtuent) अंग, तत्व या इकाईयों अपने–अपने निर्धारित प्रकार्यो (Function) के आधार पर परस्पर सम्बधित रहते हुए जिस संतुलन को उत्पन्न करते हैं उसे सामाजिक व्यवस्था कहा जाता है। "सामाजिक संरचना" से समाज की बाहरी रूपरेखा का बोध होता है जबकि सामाजिक व्यवस्था से समाज की आन्तरिक प्रक्रियाओं का। समाज वैज्ञानिकों का मत है कि सामाजिक संरचना रचनात्मक या प्रतिमानात्मक पक्ष से सम्बन्धित होने के कारण अपेक्षाकृत अधिक स्थिर धारणा है, जबकि सामाजिक व्यवस्था प्रकार्यात्मक पक्ष से सम्बन्धित होने के कारण अधिक क्रियाशील या गतिशील धारणा है।

24.3 सामाजिक संरचनाः अर्थ एवं परिभाषा

पारसन्स के अनुसार "सामाजिक संरचना परस्पर संबंधित संस्थाओं, एजेन्सियों और सामाजिक प्रतिमानों तथा साथ ही समूह में प्रत्येक सदस्य द्वारा ग्रहण किये गये पदों तथा कार्यो की विशिष्ट क्रमबद्धता को कहते हैं।"

मैकाइवर तथा पेज के शब्दों में "समूह निर्माण के विभिन्न तरीके संयुक्त रूप में सामजिक संरचना के जटिल प्रतिमान का निर्माण करते हैं। सामाजिक संरचना के विश्लेषण में सामाजिक प्राणियों की विविध प्रकार के मनोवृतियो तथा रूचियों के कार्य प्रकट होते हैं"

मेकाइवर तथा पेज के अनुसार सम्पूर्ण सामाजिक सरंचना एक अखण्ड व्यवस्था नहीं है। इसके अनेक खण्ड या स्वरूप होते हैं। सामाजिक संरचना के प्रमुख स्वरूपों में सामाजिक समूह, समुदाय गॉव, शहर, जाति, वर्ग, राज्य, चर्च, प्रजाति आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें से प्रत्येक का अपना एक ढ़ाचा होता है उन ढॉचों के सम्मिलित रूप को ही सामाजिक संरचना कहते हैं।

हैरी एम जानॅसन ने लिखा है किसी भी चीज की संरचना उसके अंगो में पाये जाने वाले अपेक्षाकृत स्थायी अन्तः सम्बन्धों को कहते है, तथा सामाजिक व्यवस्था लोगों की अन्तर सम्बन्धित क्रियाओं से बनती है इस कारण उसी संरचना को इस क्रियाओं में पाई जाने वाली नियमितता की मात्रा या पुनरूत्पति (recurrence) में ढूंढा जा सकता है।

24.4 संरचना का विश्लेषण

सामाजिक संरचना को एक विशिष्ट क्रमबद्धता के रूप में देखा जा सकता है। इस संगठन की कुछ इकाईयॉ है और वे है संस्थाए, एजेन्सियाँ तथा सामाजिक प्रतिमान। ये इकाईया विखरे रूप में अलग–अलग सामाजिक संरचना का निर्माण नहीं करती बल्कि उनमें एक पारस्परिक संबंध होता हैं। यह पारस्परिक सम्बन्ध ही निश्चित प्रतिमान का निर्माण करती है। इतना ही नही, सामाजिक संरचना के अन्तर्गत प्रत्येक सदस्य के कुछ पूर्व निश्चित पद तथा कार्य होते हैं। उनके ये पद तथा कार्य संस्थाओ, रीति–रिवाजों और रूढ़ियों द्वारा निर्धारित होते हैं। क्रमबद्धता या संगठन् की मात्रा एक ओर इन संस्थाओं रीति–रिवाजों और रूढियों के बीच सामंजस्य और दूसरी ओर समाज के सदस्यो की, समाज या समूह द्वारा निर्धारित विशिष्ट पदों तथा कार्यों को स्वीकार कर लेने की इच्छा व तत्परता पर निर्भर करती है।

कार्ल मैनहीम ने सामजिक संरचना को अन्तः क्रियात्मक सामाजिक शक्तियों का जाल माना है। 'जाल' शब्द स्वयं ही एक व्यवस्थित प्रतिमान का परिचायक हैं। जाल के समान सामाजिक संरचना भी एक क्रमबद्ध ताना–बाना है। सामाजिक संरचना का यह ताना–बाना उसकी सामजिक शक्तियाँ है। सामाजिक शक्तियों से तात्पर्य उन नियामक व नियन्त्रणात्मक साधनों से है जो सामाजिक जीवन को स्थिरता प्रदान करते हैं। ये शक्तियॉ अलग–अलग न होकर परस्पर क्रिया करती है, परन्तु सिर्फ शक्तियों से संरचना का निर्माण संभव नहीं हैं, शक्ति के साथ ही साथ जिन्सवर्ग ने सामाजिक संरचना के निर्माण हेतु समूहो, समितियों तथा संस्थाओं को सम्मिलित किया। "समूह से तात्पर्य मनुष्यों के किसी भी संग्रह से हो सकता है जिनमें एक–दूसरे के साथ सामाजिक संबंध होते हैं।" उसी प्रकार समिति एक–दूसरे से सम्बन्धित सामाजिक प्राणियों का एक समूह है जो निश्चित उद्देश्य या उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक सामान्य संगठन बना लेते हैं।" उसी प्रकार "सामाजिक संस्था समाज की एक संरचना है जिसे मुख्यतः एक व्यवस्थित प्रणालियों के माध्यम से लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठित किया जाता है"। इस प्रकार समाज की इन विभिन्न संस्थाओं की संरचनाओं के संयुक्त रूप को ही सामाजिक संरचना कहा गया है।

24.5 रैडक्लिफ–ब्राउन की संरचना की अवधारणा

रेडक्लिफ–ब्राउन ने (Structure and Function in Primitive Society-1952) में लिखा है "सामजिक संरचना के अंग (Components) मनुष्य ही है और स्वयं संरचना संस्थात्मक रूप में परिभाषित तथा नियमित सम्बन्धो के अन्तर्गत व्यक्तियों का एक व्यवस्थित रूप या क्रमबद्धता है।" मनुष्य परस्पर सामाजिक सम्बन्धों के जटिल जाल द्वारा एक–दूसरे से सम्बन्धित है। इसे ही सामाजिक संरचना कहते हैं। मनुश्य स्वयं ही इसका निर्माणकर्ता व नियामक दोनो ही होता है तथा सामजिक अन्तक्रियाओं से ये संबंध और स्पष्ट होते जाते है। यह

परिभाषित तथा नियमित संबंध ही समाज के सदस्यों को व्यवस्थित रूप प्रदान करता है। इसी व्यवस्थित रूप को सामजिक संरचना कहते हैं।

दूसरे शब्दों में, संस्थागत रूप में परिभाषित व नियमित सम्बन्ध व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों से एक निश्चित ढंग से संयुक्त करता है। इस संयुक्तीकरण के फलस्वरूप समाज के सदस्य अपनी समाज–व्यवस्था के अन्तर्गत एक निश्चित ढंग से व्यवस्थित जाते हैं। इस प्रकार से व्यवस्थित रूप जो प्रतिमान बनाता है, वही सामाजिक संरचना है।

रेडक्लिफ ब्राउन ने आस्ट्रेलिया व अफ्रीका के जनजातिय समाजों का अध्ययन किया। इन समाजों में नातेदारी व्यवस्था संस्थागत सम्बन्धों की ही अभिव्यक्ति है। ये संबंध एक विशिष्ट ढंग से नातेदारी को एक–दूसरे से संयुक्त करती है और उन्हें निश्चित प्रस्थिति भी प्रदान करती है। ये प्रस्थितियाँ संयुक्त रूप से जिस प्रमिमान का निर्माण करती हैं उन्हें नातेदारी संरचना कहते हैं।

उदाहरणस्वरूप "लावोला" (Labola) दक्षिण अफ्रीका की थोंगा और बाँटू जनजातियों में पाई जाने वाली एक प्रथा है। यह वधु–मूल्य यानी ढोर के रूप में दी जाती है, विवाह के समय। विवाह से सम्बन्धित यह प्रथा अनेक लोगों को एक–दूसरे से संयुक्त करती है। "लाबोला" एकत्रीकरण केबल मूल परिवार नही करता बल्कि सारे नाते–रिश्तेदार इसमें सहायता करते हैं। यही लाबोला फिर अन्य निकट संबंधियो के विवाह में काम आता है। इस प्रकार विवाह संस्था के द्वारा दो परिवारों के बीच आर्थिक सहयोग भी पनपता है।

इस रूप में संस्थागत रूप में परिभाषित व नियमित विवाह–सम्बन्ध दो परिवारों के सदस्यो को सामाजिक–आर्थिक रूप में एक निश्चित स्थिति प्रदान करता है एवं जिस प्रतिमान का निर्माण करता है वह सामजिक संरचना की ही एक उप–संरचना होती है।

ब्राउन ने (Structure and Function in Primitive Society 1952) में लिखा है कि संरचना एक "गतिशील निरन्तरता" हैं। मानव के सम्पूर्ण जीवन काल में निरन्तर कुछ न कुछ परिवर्तन होते रहते हैं, उसी प्रकार सामाजिक जीवन में मनुष्य की संरचना में निरन्तर बदलाव होता रहता है। परन्तु संरचना के आधारभूत तत्व नहीं बदलते हैं। परिवर्तन का तात्पर्य विकास व विनाश से है। बचपन से युवावस्था तक विकास तथा वृद्धावस्था में क्षमता क्षीण होने लगती है। तात्पर्य है, संरचना स्वयं तो स्थाई है परंतु आस–पास में परिवर्तन होते रहते है। समाज में नये सदस्य जन्म लेते है, अन्यत्र से लोग आकर बस जाते है, नये समुदायों का गठन होता है, लोग अन्यत्र भी चले जाते है, समाज के सदस्यो या मनुष्यों में होने वाले इन परिवर्तनों का प्रभाव 'संरचना' पर भी पड़ता है। इसके फलस्वरूप 'वास्तविक संरचना' में परिवर्तन हो सकता है और होता भी है परन्तु 'सामान्य संरचनात्मक स्वरूप' ही स्थिर रहता है।

24.6 जनजातीय समाज में संरचना की अवधारणा

रेडक्लिफ ब्राउन ने अपने अध्ययन का केन्द्र बिन्दु आस्ट्रेलिया व अफ्रीका के जनजातियों को बनाया तथा इनका समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विस्तृत अध्ययन किया। सहसम्बन्धों व नातेदारी व्यवस्था को समझा व इसे सामाजिक संरचना के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास किया।

नातेदारी व्यवस्था व उसकी रीतियों के संबंध में रैडक्लिफ ब्राउन के विचार उनकी कृतियों Africann Systems of kinship and Marriage (1950) एवं Structure and Function in Primitive Society (1952) में देखने को मिलता है।

नातेदारी व्यवस्था में समाज द्वारा मान्यता प्राप्त नाते–रिश्तेदार सम्मिलित होते है जो विवाह–संबंध या रक्त संबंध द्वारा संबधित होते हैं।

इसे दो श्रेणियों में बॉटा जाता है: 1. विवाह सम्बन्धी नातेदारी 2. रक्त सम्बन्धी नातेदारी। जनजातीय समाज में नातेदारी की रीतियों के बारे में ब्राउन ने विस्तारपूर्वक चर्चा की है।

विवाह सम्बन्धी नातेदारी में सिर्फ पति–पत्नी ही नहीं वरन् उनके निकट के रिश्तेदार भी आते हैं। रक्त सम्बन्धी में समान रक्त आधारित अर्थात माता–पिता व उनके बच्चे या भाई बहन। दूसरे शब्दों में, रक्त सम्बन्ध सिर्फ प्राणी शास्त्रीय न होकर समाजशास्त्रीय भी हो सकते हैं। जिन समाजों में बहुपति–विवाह प्रथा का प्रचलन है वहाँ पितृत्व प्राणिशास्त्रीय न होकर समाजशास्त्रीय पितृत्व को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। नीलगीरि में बहुपति–विवाही टोडा जनजति में सामाजिक पितृत्व का एक विशेष संस्कार "पुरसुतपिमी" द्वारा निश्चित होता है।

अनेक जनजतियों में ये रीतियॉ बहुत ही विलक्षण है। इन पर रेडक्लिफ ब्राउन के विचार–

1. **परिहार Avoidance** – "परिहार" का अर्थ यह है कि कुछ ऐसे रिश्ते हैं जो कि दो व्यक्तियों की बीच एक निश्चित सम्बन्ध तो स्थापित करते हैं, पर इस बात के निर्देष भी देते हैं कि वे एक–दूसरे से दूर रहें और पारस्परिक अन्तःक्रिया में यथा सम्भव प्रत्यक्ष भाग न ले। यूकाधिर जनजाति में वधु कभी भी ससुर व जेठ के सामने नही आती तथा दामाद अपने सास के चेहरे को कभी नही देखता। ओस्ट्याक जनजाति में वधु अपने ससुर के सामने और दामाद अपनी सास के सामने नहीं आते हैं जब तक उनके बच्चे पैदा न हो जाएँ। ब्राउन के मतानुसार ये संबध ऐसे होते हैं जिनके अत्याधिक घनिष्ठ होने पर परिवार के अन्य सदस्यों में द्वेश या ईर्ष्या उत्पन्न हो सकती है। जो कि स्वस्थ परिवारिक जीवन के लिए हानिकारक सिद्ध होगी।
2. **परिहास संबंध (Joking Relationship)** –जहाँ परिहार दो संबंधो को दूर–दूर करता है, वही परिहास दो संबंधियों को निकट लाता है। इसे

मधुर संबंधों के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। ब्राउन के अनुसार "परिहास सम्बन्ध दो व्यक्तियों का वह सम्बन्ध है जिसमें प्रथा द्वारा एक पक्ष को यह छूट रहती है की वह दूसरे पक्ष से हँसी–मजाक करे, पर दूसरा पक्ष उसका बुरा न माने।"

ब्राउन का मानना है कि परिहास संबंधो का एक प्रतीकात्मक अर्थ होता है, जिससे परिवारिक जीवन में सजीवता बनी रहती है।

24.7 सारांश

सामाजिक संरचना के संबध में जिन मानवशास्त्रियों ने अपने विचारों को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया हैं, उनमें रेडक्लिफ ब्राउन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। निश्चित रूप में प्रत्येक संरचना का निर्माण एकाधिक अंगों के संयोग से ही होता है। कोई भी संरचना अखंड नहीं होती है। सावयव अंगों में परस्पर एक संबंध होता है और यह संबंध अपेक्षाकृत स्थायी भी होता है। अंगो में अन्तः संम्बन्धों से अभाव का अर्थ होगा अपूर्ण संरचना।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि संरचना स्थायी तत्वों का एक प्रतिमान है और इस कारण इनमें अत्यधिक परिवर्तनशील तत्वों को सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

इस इकाई के अन्तर्गत आप सामाजिक संरचना का अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक संरचना का अर्थ एवं परिभाषा, रेडक्लिफ ब्राउन की संरचनात्मक वैचारिकी एवं जनजाति समाज में संरचना की अवधारणा से परिचित हुए।

24.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- टर्नर जे.एच. (1987), स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिक्ल थ्योरी, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर
- सिंधी, नरेन्द्र कुमार, (1998), समाजशास्त्रीय सिद्धात विवेचन एवं व्याख्या, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर।
- मुकर्जी, रविन्द्र नाथ, (2007), सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।

24.9 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. संरचना का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. ब्राउन के अनुसार सामजिक संरचना एक गतिशील निरन्तरता है। विवेचना कीजिए।
3. परिहास संबंध क्या है?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक संरचना से क्या तात्पर्य है? विवेचना कीजिए।
2. रेडक्लिफ ब्राउन के सामाजिक संरचना का सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
3. रेडक्लिफ ब्राउन के नातेदारी व्यवस्था की रीतियों पर अपने विचार को स्पष्ट कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. "समाज की भूमिका व्यवस्था ही संरचना का आधार है।" उपरोक्त कथन किसने दिया?

अ) रेडिक्लिफ ब्राउन ब) एस0एफ0 नैडल

स) आर0के0 मर्टन द) टालकाट पारसन्स

2. सामाजिक संरचना की अवधारणा का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया?

अ) हरवर्ट स्पेन्सर ब) एस0एफ0 नैडल

स) रेडक्लिफ ब्राउन द) आर0के0 मर्टन

3. सामाजिक संरचना अनेक अंगो की क्रमबद्धता को स्पष्ट करती है"। यह किसका कथन है?

अ) मैकाइवर ब) रेडक्लिफ ब्राउन

स) एस.एफ. नैडल द) हरबर्ट स्पेन्सर

4. "स्ट्रक्चर एण्ड फक्शन इन प्रिमिटिव सोसाइटी" पुस्तक के लेखक कौन है?

अ) रेडक्लिफ ब्राउन ब). मर्टन

स) बेवर द) दुर्खीम

5. निम्न में से कौन सामाजिक संरचना की विशेषता व्यक्त करता है?

अ) एक जनजातीय क्षेत्र ब) ग्रामीण विकास कार्यक्रम

स) अन्त' संबंधित संस्थाओं एव समूहों की क्रमबद्धता

द) एक भीड़

24.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (द) 2. (अ) 3. (स) 4. (अ) 5. (स)

24.11 पारिभाषिक शब्दावली

Social Structure	सामाजिक संरचना
Concept	अवधारणा

मॉलिनास्की एवं रेडक्लिफ ब्राऊन	Perspective	परिप्रेक्ष्य
	Tribal Society	जनजातीय समाज
	Avoidance	परिहार
	Joking Relationship	परिहास सम्बन्ध

इकाई–25 : प्रकार्य की अवधारणा : रेडक्लिफ ब्राऊन

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य
25.1 प्रस्तावना
25.2 प्रकार्य शब्द के विभिन्न अर्थ
25.3 प्रकार्य की अवधारणा
25.4 प्रकार्यवाद पर विभिन्न समाज वैज्ञानिकों के विचार
25.5 रेडक्लिफ ब्राऊन का प्रकार्यवाद
25.6 प्रकार्यवाद की आलोचना
25.7 नवप्रकार्यवाद
25.8 सारांश
25.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
25.10 बोध के प्रश्न
(क) लघु उत्तरीय प्रश्न
(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न
25.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का उत्तर
25.12 पारिभाषिक शब्दावली

25.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपके लिए संभव होगा :

- प्रकार्य के अर्थ को समझ सकेगें।
- प्रकार्य की अवधारणा से अवगत हो सकेगें।
- रेडक्लिफ ब्राऊन के प्रकार्यवादी विचार को जान सकेगें।
- नव प्रकार्यवाद किसे कहते है? इसे भी आप समझ सकेगें।

25.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आपको प्रकार्य के क्षेत्र में रेडक्लिफ ब्राऊन के योगदान को बताया गया है। इस इकाई में आपको विभिन्न समाजशास्त्रियों की दृष्टि से प्रकार्य के अर्थ के साथ–साथ विभिन्न विद्वानों के विचार तथा नवप्रकार्यवाद को जानने का मौका मिलेगा। रेडिक्लिफ ब्राऊन का कहना है कि "किसी भी प्रक्रिया के प्रकार्य से हमारा आशय सामाजिक जीवन में उसकी सम्पूर्ण भूमिका से और

सामाजिक संरचना को बनाये रखने में उसके योगदान से है। इसके अगले भाग में रैडक्लिफ ब्राऊन, स्पेन्सर जैसे सामजिक नृशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित परम्परागत प्रकार्यवाद के आधार तत्वों के बारे में बताया गया है।

इसके अंतिम भाग में प्रकार्यवाद का आलोचनात्मक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है।

25.2 प्रकार्य शब्द के विभिन्न अर्थ

समाजशास्त्र में "प्रकार्य" शब्द का उपयोग करते समय हमें इसके विभिन्न अर्थों की पूरी जानकारी होनी चाहिए। मर्टन के अनुसार "प्रकार्य" अर्थात् "फंक्शन" शब्द पाँच विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। "फक्शन" (Function) शब्द का पहला अर्थ अंग्रेजी में किसी सार्वजनिक समारोह या खुशी के मौके से है, जिसे आमतौर से रस्म–रिवाजों के साथ मनाया जाता है। मर्टन ने कहा है और आपको भी स्पष्ट होगा कि "फंक्शन" शब्द के इस अर्थ का समाजशास्त्रियों की अवधारणा से कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

इस शब्द को अंग्रेजी में व्यंवसाय (कार्य) की तरह भी लिया जाता है लेकिन समाजशास्त्र को इस अर्थ से भी कुछ लेना–देना नहीं है।

तीसरा "प्रकार्य" का अर्थ किसी पद पर कार्यरत व्यक्ति को दिये गए दायित्वों से है उदाहरण के लिए छोटे बच्चों के स्कूल के किसी अध्यापक का कार्य बच्चों को पढ़ाना है, डॉक्टर का काम बीमारों का चिकित्सकीय कार्य करना है इत्यादि। मर्टन के अनुसार यह परिभाषा पर्याप्त नहीं है। उनके अनुसार इस परिभाषा से इस बात से ध्यान हट जाता है कि "काम केवल किसी पद पर आसीन व्यक्ति द्वारा ही नहीं किया जाता, बल्कि अनेक सामाजिक काम–काज सामाजिक प्रक्रियाओं, सांस्कृतिक, विन्यासों और विश्वासों द्वारा भी सम्पन्न होते हैं। चौथे, "फंक्शन" शब्द का गणित में अर्थ एक और प्रकार से लिया जाता है। इसके अनुसार जब राशि Y का राशि X से सम्बन्ध एक नियमानुसार निर्धारित हो तो X राशि के एक मान के लिए X राशि का एक और केवल एक ही मान होता है। मर्टन का कहना है कि प्रकार्यात्मक विश्लेषण में "फंक्शन" या प्रकार्य का पाँचवा अर्थ महत्वपूर्ण है। यह अर्थ जीव–विज्ञान से लिया गया है। जहाँ इसका अर्थ "शरीर को बनाए रखने और उसकी देख–रेख में किसी शारीरिक प्रक्रिया के योगदान" से होता है।

प्रसिद्ध सामाजिक नृशास्त्री रैडक्लिफ–ब्राऊन ने "प्रकार्य" शब्द को इसी अर्थ में सामाजिक विज्ञानों में इस्तेमाल करते हुए लिखा है "किसी भी प्रक्रिया के प्रकार्य से हमारा आशय–सामाजिक जीवन में उसकी सम्पूर्ण भूमिका से और सामाजिक संरचना को बनाए रखने में उसके योगदान से है। एक अन्य प्रसिद्ध नृशास्त्री मैलिनोवॉस्की के अनुसार, सामाजिक और सांस्कृतिक इकाइयों के "प्रकार्य" से हमारा तात्पर्य है सांस्कृतिक प्रणाली में इन इकाइयों को एक दूसरे से सम्बद्ध हो कर निभायी गई भूमिका से है। समाजशास्त्र का विद्यार्थी होने के

समाजशास्त्र में प्रकार्यात्मक विश्लेशण की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। प्रकार्यवाद के क्षेत्र में कई विद्वानों ने मुख्य विचार दिये है। जिन्हें कॉम्ट (1793–1857) तथा हर्बर्ट स्पेन्सर (1820–1903) की कृतियों में देखा जा सकता है। आगे चलकर दुर्खीम (1858–1917) ने इस प्रकार के विश्लेषण को विकसित किया। प्रकार्यवाद सिद्धांत का संशोधित रूप हमें टालकट पारसन्स और राबर्ट मर्टन की कृतियों में देखने को मिलता है।

अगस्ट कॉम्ट जिन्हें समाजशास्त्र का संस्थापक माना जाता है, सर्वप्रथम समाज और सावयव का समान स्तर पर रखा। आपके अनुसार प्रकार्यवाद एक खास प्रकार का सावयववाद है। हर्बर्ट स्पेन्सर प्रकार्यवादी सिद्धांतवेत्ताओं की तरह ब्रह्माण्ड को कई भागों या खण्डों में बंटा हुआ देखते है। आपके अनुसार समाजशास्त्रीय खण्ड का सम्बन्ध कार्बनिक और अकार्बनिक खण्डों के साथ है। स्पेन्सर के अनुसार इस तरह का सम्बन्ध प्रकार्यात्मक सम्बन्ध है। स्पेन्सर के प्रकार्यवाद को विश्लेषणात्मक प्रकार्यवाद कहा जाता है। दुर्खीम ने स्पेन्सर की आलोचना करते हुए समाज को एक वास्तविकता माना तथा दुर्खीम "द डिविजन ऑफ लेबर इन सोसायटी" में सामाजिक तथ्यों का प्रकार्यात्मक विश्लेषण करते हैं। आपके अनुसार सर्वसम्मति द्वारा ही व्यक्तियों को एकीकृत करके समाज व्यवस्था में रखा जा सकता है। इसी सर्वसम्मति को उन्होंने सामूहिक चेतना यानि, समाज द्वारा स्वीकृत सामान्य विश्वासों और संवेगों में रखा है। दुर्खीम ने धर्म का प्रकार्यात्मक विश्लेषण किया। पारसंस मूल्यों के प्रति सर्वसम्मति को महत्वपूर्ण मानते हैं तथा समाज को एकीकृत बनाने के लिए मूल्यों की सर्वसम्मति को एक आधारभूत नियम मानते हैं। समाज में एकता स्थापित करने के लिए समाज के सदस्यों में परस्पर एक दूसरे के मूल्यों के प्रति आस्था, प्रतिबद्धता अति आवश्यक है। वस्तुतः पारसंस समाज को एक व्यवस्था की तरह मानकर चलते हैं। पारसंस सामाजिक व्यवस्था की चार बुनियादी प्रकार्यात्मक पूर्व आवश्यकताएँ बताई है।

1. अनुकूलन (Adaptalion)
2. लक्ष्य प्राप्ति (Goal Attainment)
3. एकीकरण और (Integration)
4. प्रतिमान अनुरक्षण (Latency)

ये पूर्व आवश्यकताएँ सामाजिक व्यवस्था की समस्याएँ है। अतः यदि ये पूर्व आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती तो व्यवस्था का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। व्यवस्था के सदस्यों की तो गतिविधियाँ जो इन पूर्व आवश्यकताओं को पूरा करती है, प्रकार्य है। पारसन्स के अनुसार प्रकार्यवाद व्यवस्था के साथ सम्बद्ध है, मर्टन ने प्रकार्यवादी विश्लेषण के लिए एक पेराडिम अर्थात् मॉडल बनाया। मर्टन ने प्रकार्यात्मक विकल्पों की चर्चा करते हुए प्रकार्यवाद को परिभाषित करते है। आपने प्रकार्य को तीन भागों मे विभाजित किया है: प्रकार्य (Function) दुष्प्रकार्य, (Dysfunction) अप्रकार्य (Non-function) मर्टन के अनुसार सामाजिक स्थिति

यह है कि कुछ सामाजिक इकाइयों के कार्य यदि प्रकार्यात्मक होते हैं, तो कुछ इकाइयों के कार्य अंषतः अकार्यात्मक, कुछ ने नकार्यात्मक और कुछ के पूर्णतया अकार्यात्मक। अतः सभी इकाइयों के कार्य सामाजिक संरचना व व्यवस्था के अस्तित्व की निरन्तरता के लिए अनिवार्य नहीं होते हैं। प्रकार्यवादियों के सिद्धांतों के विश्लेषण के आधार स्पष्ट होता है कि प्रकार्यवाद मनुष्यों की गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। ये गतिविधियॉ दुर्खीम के अनुसार समाज को एकीकृत करने के लिए है या पारसंस और मर्टन की पदावली में व्यवस्था को बनाए रखने के लिए होती हैं। जब गतिविधियॉ समाज या व्यवस्था के एकीकरण के लिए, लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए होती है तो उसे ही प्रकार्यवाद कहा जाता है।

25.5 रेडक्लिफ ब्राऊन का प्रकार्यवाद

समाजशास्त्र से प्रकार्यवाद का परिचय कराने का श्रेय हरबर्ट स्पेन्सर को जाता है, परन्तु इसे आगे बढ़ाने का कार्य मानवशास्त्रियों जैसे रैडक्लिफ–ब्राऊन, मैलिनोवस्की, नैडेल आदि ने किया। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मानवशास्त्रियों ने प्रकार्यवादी सिद्धांत को एक नया आयाम दिया।

रेडक्लिफ ब्राऊन एक प्रख्यात अमेरिका मानवशास्त्री थे। रेडक्लिफ ब्राऊन दुर्खीम की परम्परा पर चलते हैं। आपनें दुर्खीम के प्रकार्यवाद से प्रभावित होकर अपनी पुस्तक "Structure and Function in Primitive Society (1952)" में अपना प्रकार्यवाद सम्बन्धी विचार दिया। उन्होंने मौटे तौर पर दुर्खाइम के सिद्धांत में बुनियादी अन्तर कर स्वीकार किया हैं जिसे दुर्खाइम समाज की आवश्यकताएँ कहते हैं, ब्राऊन इन्हें जीवित रहने की आवश्यक दशा (Necessary Condition of Existence) मानते हैं।

ब्राऊन ने मैलिनोवस्की की भांति सांस्कृतिक तत्वों के कार्यो पर अत्यधिक बल दिया। परन्तु ब्राऊन सांस्कृतिक तत्वों के कार्यो के द्वारा 'व्यक्ति' के अस्तित्व पर अधिक जोर न देकर 'समाज' के अस्तित्व के अधिक प्रधानता देते हैं। आप सांस्कृतिक संगठन की सावयवी संगठन से तुलना कर अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। आपके अनुसार एक सावयव विभिन्न कोष्ठों की एक संगठित तथा जटिल व्यवस्था होती है और उन कोष्ठों से सावयव के विभिन्न अंगो का निर्माण होता है। सभी अंगों का सम्पूर्ण सावयवी व्यवस्था में एक या कुछ विशेष कार्य होता है। प्रत्येक अंग का कार्य बंटा हुआ है, फिर भी ये अंग एक–दूसरे से परे नहीं है, प्रत्येक अंग अपने कार्यो को उचित ढंग से करने के लिए दूसरे अंगो से सम्बन्धित तथा उन पर आश्रित होते है। इस प्रकार कार्य के आधार पर शरीर के विभिन्न अंगों में अन्तः सम्बन्ध तथा आत्मनिर्भरता होती है जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण शरीर या सावयव में एक प्रकार का संगठन पाया जाता है, जब तक सावयव जीवित है तब तक संगठन भी अनिवार्य है। ब्राऊन ने प्रकार्य के संस्कृति के आधार पर स्पष्ट किया है जिस प्रकार सावयव और इसके विभिन्न कोष्ठों में सम्बन्ध है उसी प्रकार का सम्बन्ध संस्कृति तथा उसके तत्वों और इसमें पाये जाने वाले संगठन में है।

ब्राऊन मानते हैं कि सामाजिक संरचना में किसी क्रिया अथवा अंग जैसे–दण्ड, दाह, संस्कार, धर्म, परिवार राजनीतिक संगठन, शिक्षण संस्था द्वारा सामाजिक जीवन के निरंतरता बनाये रखने में जो योगदान दिया जाता है, वह उसका प्रकार्य है। आपके अनुसार "किसी सामाजिक इकाई का प्रकार्य उस इकाई का योगदान है जो वह सामाजिक व्यवस्था की क्रियाशीलता के रूप में सामाजिक जीवन देता है" अर्थात् प्रकार्य एक आंशिक क्रिया द्वारा उस सम्पूर्ण क्रिया को दिया जाने वाला योगदान है जिसका कि वह एक अंग है।

इस प्रकार प्रत्येक समाज में एक प्रकार की एकता पाई जाती है। जिसे प्रकार्यात्मक एकता (Functional Unity) कहते हैं। प्रकार्यात्मक एकता ऐसी दशा है जिसमें समाज व्यवस्था के सभी अंग साथ–साथ कार्य करते हैं और उसमें पर्याप्त मात्रा में समानता या आंतरिक एकता बनी रहती है। अर्थात् उनमें इस प्रकार का संघर्ष नहीं पाया जाता है कि उस पर नियंत्रण न पाया जा सके। इस प्रकार समाज व्यवस्था में प्रकार्यात्मक रूप से परस्पर निर्भर इकाईयां होती हैं। अन्ततः यह कहने में कोई अतिषयोक्ति नहीं है कि ब्राऊन ने सामाजिक जीवन को सावयवी जीवन के साथ पूरी तरह दुर्खीम की भांति नहीं जोड़ा तथा समाज को ही वास्तविकता माना है।

25.6 प्रकार्यवाद की आलोचना

समाजशास्त्र से प्रकार्यवाद का परिचय हरबर्ट स्पेन्सर ने सर्वप्रथम कराया। जिसे विस्तार रेडिक्लफ ब्राऊन मौलिनोवस्की व नैडेल ने दिया। परन्तु वर्तमान में प्रकार्यवाद उस रूप में स्वीकार्य नहीं जिस रूप में मानवशास्त्रियों ने उसे प्रस्तुत किया। आज प्रकार्यवाद बदल कर "संरचनात्मक–प्रकार्यवाद" हो गया है। अर्थात इकाईयों के प्रकार्यो का अध्ययन उनकी वास्तविक संरचना से पृथक करके नहीं किया जा सकता है।

मर्टन व दुर्खीम द्वारा प्रकार्यवाद की आलोचना विशेष रूप से कि गई है। मर्टन का मानना था कि सामाजिक संरचना की सभी इकाईयां कोई न कोई सकारात्मक प्रकार्य करती हैं। कुछ इकाईयाँ प्रकार्य न कर अकार्य को अंजाम देती है। जिससे सामाजिक संरचना या व्यवस्था समाज को विघटित करने का कार्य करती हैं एवं कुछ तत्व समाज में नकार्यात्मक अर्थात (Nonfuctional) भूमिका में भी होती है।

मर्टन ने सार्वभौमिक प्रकार्यवाद की धारणा में संशोधन करते हुए कहा है कि एक इकाई के एक प्रकार्य सभी समाजों पर लागू नहीं हो सकते हैं। मर्टन के अनुसार प्रकार्यवादियों का यह दृष्टिकोण भी भ्रमपूर्ण है कि सामाजिक इकाई के द्वारा एक ही कार्य किया जाता है। वास्तव में एक इकाई के द्वारा एकाधिक प्रकार्य किए जा सकते हैं। साथ ही एक ही प्रकार के प्रकार्य को करने वाली एकाधिक इकाईयॉ या विकल्प सामाजिक संरचना के अन्तर्गत विद्यमान हो सकते हैं। प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण को तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपयुक्त नहीं समझा

जाता है क्योंकि दो इकाईयों के प्रकार्यो की तुलना संरचनात्मक सन्दर्भ की अवहेलना करके की जाए तो ऐसे अध्ययन के निष्कर्ष कदापि यथार्थ नहीं हो सकते हैं।

25.7 नव प्रकार्यवाद

सन् 1960 के दशक में संरचनात्मक प्रकार्यवाद का पतन शुरू हो गया था, किन्तु सन् 1980 के दर्शक के मध्य में इसका पुनर्उदभव नवप्रकार्यवाद के नये नाम से हुआ। नव–प्रकार्यवाद समाजशास्त्र में एक नवीन उपागम है। प्रकार्यवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप इसका विकास हुआ। इस प्रकार संरचनात्मक प्रकार्यवाद को पुनःजीवित करने का प्रयत्न ही नव–प्रकार्यवाद कहलाता है। नवप्रकार्यवादी दृष्टिकोण को जेफ्रे अलेक्जेण्डर, जॉर्ज रिट्जर और पाल कालोमी ने गति दी। नव–प्रकार्यवादियों के अध्ययन का केन्द्र व्यवस्था है, जब मनुष्य की क्रियाएँ संगठित और संरक्षित की जाती हैं तब व्यवस्था होती है एक क्रिया दूसरी क्रिया और अन्य क्रियाओं से प्रकार्यात्मक रूप से जुड़ जाती हैं। ये सब परस्पर जुड़ी हुई क्रियाएँ व्यवस्था को निर्मित करती हैं। यही नव–प्रकार्यवाद है।

नव–प्रकार्यवाद को विकसित करने में जेफ्रे अलेक्जेंडर ने महती भूमिका अदा की है। जेफ्रे अलेक्जेंडर और पॉल कॉलामी ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि "यह प्रकार्यवादी सिद्धांत की एक आत्म–आलोचनात्मक धारा है जो इसकी सैद्धान्तिक आत्मा को बनाये रखते हुए प्रकार्यावाद के बौद्धिक क्षेत्र में विस्तार करना चाहती है"। आलेक्जेंडर पुराने प्रकार्यवाद की समस्याएँ कमजोरियाँ, व्यक्तिवाद विरोध" परिवर्तन का विरोध 'रूढिवाद' 'आदर्शवाद' तथा 'आनुभाविकता" विरोधी अभिनीति' आदि को नवप्रकार्यवाद द्वारा दूर करना चाहते हैं। उन्होंने सामाजिक व्यवस्था के विश्लेषण में रूढिवादी प्रकार्यवाद को तिलांजलि देते हुए इसमें विचलन, सामाजिक परिवर्तन, संघर्ष, विभेदीकरण तथा व्यक्ति को भी पर्याप्त महत्व देकर नव प्रकार्यवाद को थोड़ा वामपंथ की ओर मोड़ दिया है जो समाज के वंचित, दीनहीन और पद्दलित वर्ग के पुनर्उत्थान के प्रति समर्पित है। अलेक्जेंडर ने अपने नवप्रकार्यवादी सिद्धांत द्वारा रूढ़िवादी प्रकार्यवाद का आदर्शवाद और भौतिकवाद के प्रति जो उपेक्षा का भाव रहा है, उसे भी दूर करने का प्रयास किया है।

25.8 सारांश

प्रकार्यवाद को आगे बढ़ाने में जिन मानवशास्त्रियों ने महत्वपूर्ण योगदान दिये है उनमें रेडक्लिफ ब्राऊन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रकार्य से तात्पर्य सरंचना का निर्माण करने वाली इकाइयों के कार्यो से है ब्राऊन ने अपने प्रकार्यवाद सिद्धांत को संस्कृति के अध्ययन के आधार पर समझाया तथा प्रकार्यात्मक एकता की बात की अर्थात् समाज व्यवस्था के सभी अंग साथ–साथ काम करते हुए एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। ब्राऊन समाज को ही सर्वोपरि मानते है।

प्रस्तुत इकाई में आप प्रकार्य की अवधारणा, उसके विभिन्न अर्थ, प्रकार्यवाद पर विभिन्न समाज वैज्ञानिकों के विचार, रेडक्लिफ का प्रकार्यवाद, प्रकार्यवाद की आलोचनात्मक व्यापार ए। नव प्रकार्यवाद से तथ्यपरक रूप में परिचित हुए हैं।

25.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- टर्नर जे. एच (1973) स्ट्रक्चर ऑफ़ सोशियोलॉजिकल थ्योरी, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
- दोषी, एस. ए. त्रिवेदी, एम. (1916) उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर।
- सिंधी, नरेन्द्र कुमार (1998) समाजशास्त्रीय सिद्धांत विवेचन एवं व्याख्या, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर।
- मुकर्जी, रविन्द्र नाथ, (2007), सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन दिल्ली।

25.10 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय

1. रेडक्लिफ ब्राऊन के प्रकार्यवाद का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
2. नवप्रकार्यवाद क्या है?
3. मर्टन के प्रकार्यवाद के प्रकारों को बताइये।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रकार्यवाद से क्या तात्पर्य है?
2. रेडक्लिफ ब्राऊन के प्रकार्यात्मक सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
3. नवप्रकार्यवाद क्या है? विवेचना कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रेडक्लिफ ब्राऊन ने प्रकार्यवाद में किसे महत्व दिया?

   (अ) समाज (ब) व्यक्ति (स) समूह (द) समुदाय

2. रेडक्लिफ ब्राऊन का प्रकार्यवादी सिद्धांत किससे प्रभावित था।

   (अ) स्पेन्सर (ब) दुर्खीम (स) नाडेल (द) मर्टन

3- Oystution अवधारणा का प्रयोग किसने किया?

   (अ) मर्टन (ब) दुर्खीम (स) काम्ट (द) रेडक्लिफ ब्राऊन

4. रेडक्लिफ ब्राऊन ने अपनी पुस्तक "Structure and Function in Primitive Society" किस वर्ष लिखी?

   (अ) 1951 (ब) 1952 (स) 1954 (द) 1955

25.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (अ) 2. (ब) 3. (स) 4. (द)

25.12 पारिभाषिक शब्दावली

Function	प्रकार्य
Dysfunction	अप्रकार्य
Concept	अवधारणा
New Functionalism	नव प्रकार्यवाद
Functionalism	प्रकार्यवाद

इकाई–26 : मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राऊन के विचारों की समालोचना

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य
26.1 प्रस्तावना
26.2 मैलिनोवस्की : संस्कृति की अवधारणा
26.3 मैलिनोवस्की : प्रकार्यवाद की अवधारणा
26.4 मैलिनोवस्की : धर्म और जादू
26.5 मैलिनोवस्की : कानून, अपराध एवं प्रथा
26.6 मैलिनोवस्की के प्रकार्यवाद की आलोचनाएँ
26.7 रेडक्लिफ ब्राउन : प्रकार्यवाद की अवधारणा
26.8 रेडक्लिफ ब्राउन :प्रकार्यवाद की आलोचना
26.9 रेडक्लिफ ब्राउन : सामाजिक संरचना का सिद्धान्त
26.10 रेडक्लिफ ब्राउन : नातेदारी व्यवस्था की रीतियाँ
26.11 मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राऊन के सिद्धान्तों में समानता
26.12 मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राऊन के सिद्धान्तों में विभिन्नता
26.13 सारांश
26.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
26.15 बोध के प्रश्न
(क) लघु उत्तरीय प्रश्न
(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न
26.16 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर
26.17 पारिभाषिक शब्दावली

26.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- संस्कृति की अवधारणा को समझ पायेंगे।
- मैलिनोवस्की के प्रकार्यवाद को समझ सकेंगे।
- धर्म और जादू के अर्थ तथा क्रिया को समझ पायेंगे।
- कानून अपराध एवं प्रथा को जान पायेंगे।

- रैडक्लिफ ब्राऊन के प्रकार्यवाद को समझ सकेंगे।
- रैडक्लिफ ब्राऊन के सामाजिक संरचना के सिद्धान्त को समझेंगे।
- रैडक्लिफ ब्राऊन के नातेदारी की व्यवस्था को समझेंगे।
- मैलिनोवस्की और रैडक्लिफ ब्राऊन के सिद्धान्तों की समानता को जान पायेगे।
- मैलिनोवस्की और रैडक्लिफ ब्राऊन के सिद्धान्तों की विभिन्नता को जान पायेंगे।

26.1 प्रस्तावना

समकालीन मानवशास्त्रिय एवं समाजशास्त्रीय चिन्तन के क्षेत्र में जिन विद्वानों ने अपनी अमिट छाप छोड़ी है उनमें मैलिनोवस्की का नाम अविस्मरणीय है। मूल रूप में मैलिनोवस्की एक मानवशास्त्री ही थे और उनकी समस्त कृतियों में आदिकालीन समाज व संस्कृति का ही अध्ययन देखने को मिलता है। आपके विचारों में सर्वाधिक रूप में समाजशास्त्रीय विचारधारा ही सम्बद्ध रही है। संस्कृति के सन्दर्भ में मैलिनोवस्की ने अत्यन्त ही मौलिक रूप में अपने विचारों को प्रस्तुत किया है एवं उसे मानवीय आवश्यकताओं के साथ जोड़ा है उसी प्रकार आदिकालीन समाजों में प्रचलित धर्म, जादू–टोना एवं विज्ञान को उन समाजों में प्रथा एवं परम्पराएँ किस रूप में अपराध को जन्म देतें हैं या उनमें पारस्परिक सम्बन्ध क्या है। इसका प्रयोगसिद्ध अध्ययन मैलिनोवस्की ने किया है।

रेडक्लिफ ब्राऊन प्रख्यात मानवशास्त्री रहें हैं। रेडक्लिफ ब्राऊन प्रकार्यवाद के समर्थक रहें हैं। वह प्रकार्यवाद तथा सावयवीवाद के मध्य अविच्छिन्न सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं। प्रकार्यवाद के सम्बन्ध में आप लिखते हैं कि "मानव समाज पर प्रयोग किये जाने वाले प्रकार्य की अवधारणा सामाजिक जीवन तथा सावयवी जीवन के अन्दर पायी जाने वाली समानता या समरूपता पर आधारित होती है। इस प्रकार की समरूपता और उससे सम्बन्धित कुछ परिणामों को दी जाने वाल मान्यता कोई नवीन नहीं है।" वह कहते हैं कि जहाँ तक मैं जानता हूँ, समाज के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु प्रयोग में लाने के लिए इस अवधारणा का प्रयोग सर्वप्रथम सन् 1895 ई. में इमाईल दुर्खीम ने प्रतिपादित किया था। रेडक्लिफ ब्राऊन ने प्रकार्यवाद की अवधारणा में यह माना कि संरचना तथा प्रकार्य की अवधारणाओं का प्रयोग तभी हो सकता है जब समाज तथा जीवित सावयव की समानता को स्वीकार कर लिया जाय।

सामाजिक संरचना के सिद्धान्त के अन्तर्गत रेडक्लिफ ब्राऊन का कथन है कि "सामाजिक संरचना के अंग मनुष्य ही हैं और स्वयं संरचना संस्थात्मक रूप में परिभाषित तथा नियमित सम्बन्धों के अन्तर्गत व्यक्तियों का एक व्यवस्थित रूप अथवा क्रमबद्धता है।" रेडक्लिफ ब्राऊन ने इसे स्पष्ट करने के लिए आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका के जनजातियों के सम्बन्धों की अभिव्यक्ति की है। रेडिक्लफ ब्राउन

का मानना है कि सामाजिक संरचना के अन्तर्गत सदैव गतिशीलता निरन्तरता बनी रहती है। इसका कारण है कि मानव जीवन में संस्कृति सदैव गतिशील रहती है।

रेडक्लिफ ब्राऊन नातेदारी व्यवस्था की रीतियों को दो भागों में विभाजित करते हैं विवाह सम्बन्धी नातेदारी और रक्त सम्बन्धी नातेदारी। यह दोनों नातेदारी व्यवस्था परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित रही है। रेडक्लिफ ब्राऊन विवाह सम्बन्धित नातेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत न केवल विवाह द्वारा सम्बद्ध पति–पत्नी ही आते हैं बल्कि इन दोनों के परिवारों के अन्य नातेदार रिश्तेदार भी आ जाते हैं। रक्त सम्बन्धित नातेदारी में वह लोग आते हैं। इस प्रकार रक्त सम्बन्ध केवल प्राणीशास्त्रीय आधार पर ही नहीं अपितु समाजशास्त्रीय आधार पर भी स्थापित होता है।

26.2 मैलिनोवस्की : संस्कृति की अवधारणा

प्रायः संस्कृति को एक सामान्य प्रकार के अनुप्रयोग में लिया जाता है किन्तु संस्कृति स्वयं एक जटिल अवधारणा के रूप में प्रकट होती है क्योंकि यह मानव जीवन के समस्त सामाजिक उपलब्धियों की अभिव्यक्ति को प्रकट करता है। अपने इस बहुकारकीय गुणों के कारण संस्कृति का क्षेत्र व्यापक रहा है। इसके विकास के क्रम में कुछ विद्वान संस्कृति से नैतिक उन्नति, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उन्नति को स्वीकार करते हैं। साधारणतः संस्कृति शब्द को संस्कार के रूपान्तरित शब्द के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यह स्थिति हिन्दू समाज में शुद्धि के लिए स्वीकार्य रहा है, जबकि इतिहासकारों के लिए संस्कृति शब्द, कलात्मक पक्ष अथवा बौद्धिक विकास की परम्परा रही है।

अन्य विद्वानों की भाँति ही मानवशास्त्री भी संस्कृति शब्द का प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में करते हैं। सामान्य रूप से उनके लिए संस्कृति सीखे हुए व्यवहार की वह समग्रता है जिसमें कि एक बच्चें का सामाजिक व्यक्तित्व फलता और फूलता है और इस रूप में वह मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बन जाता है। मैलिनोवस्की का कथन है कि संस्कृति की अवधारणा को बिना मानवीय आवश्यकताओं के समझा ही नहीं जा सकता है। संस्कृति को स्पष्ट करते हुए मैलिनोवस्की कहते हैं कि "संस्कृति पर्याप्त आवश्यकताओं की एक व्यवस्था तथा उद्देश्य मूलक क्रियाओं की एक संगठित व्यवस्था है।" इस मत के अनुसार जीवन के समग्र ढंग व्यवस्थित रूप से आ जाते हैं जो व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा अन्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं और उन्हें प्रकृति की बंधन से मुक्त करते हैं।

मैलिनोवस्की के अनुसार "संस्कृति मानव का वह साधन है जिसके द्वारा अथवा जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने लक्ष्यों को प्राप्त करता है।" इस प्रकार मैनिलोवस्की ने संस्कृति के प्रकार्यात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया है। उनके अनुसार मानव समाज में संस्कृति के कुछ विशिष्ट कार्य होते हैं। वह मानव की

प्राणीशास्त्रीय तथा सामाजिक दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संसाधनों को एकत्रित करती है। संस्कृति के अन्तर्गत अनेक भाग और उपभाग होते हैं जो सम्पूर्ण जीवन विधि में या सामाजिक जीवन में कोई न कोई कार्य होता है। इन समस्त भागों और उपभागों में जो पारस्परिक सम्बन्ध तथा प्रभाव होता है। उनके सम्पूर्ण योग से ही संस्कृति के ढाँचे का निर्माण होता है। इस प्रकार संस्कृति के अन्तर्गत प्रत्येक इकाई का एक विशिष्ट महत्त्व तथा कार्य होता है। जो कि सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था की स्थिरता तथा निरन्तरता को बनाये रखता है।

26.3 मैलिनोवस्की : प्रकार्यवाद

संस्कृति के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के खण्ड, इकाई तथा तत्व होते हैं किन्तु इन इकाईयों तथा तत्त्वों को स्वतंत्र रूप से मनमाने ढ़ंग से जोड़ देने पर अथवा मिला देने पर ही किसी समाज की संस्कृति नहीं बन सकती है। यहाँ तक की इन इकाईयों का एक दूसरे से पूर्णतया पृथक करके अध्ययन करने पर संस्कृति के सन्दर्भ में कोई यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता है। इसका कारण है कि संस्कृति के सन्दर्भ में निर्मित इस प्रकार की इकाईयाँ आकस्मिक अथवा अव्यवस्थित नहीं होती है। संस्कृति में इस प्रकार के खण्डों अथवा इकाईयों में पारस्परिक निर्भरता तथा अन्तःसम्बन्ध बने रहते हैं। जिसके कारण संस्कृति में एक प्रकार का संतुलन पाया जाता है। संस्कृति के मध्य संतुलन का तात्पर्य इकाईयों के परस्पर मिलकर कार्य करने की प्रवृत्ति होती है जिसे संस्कृति का संगठन कहते हैं।

मैलिनोवस्की के अनुसार संस्कृति वह साधन है जिसके माध्यम से मनुष्य शारीरिक तथा मानसिक और बौद्धिक स्तर को बनाये रखने में सफल हो पाता है मानव का समाज में महत्त्व सामाजिक प्राणी के रूप में है। उसकी अनेक आवश्यकताएँ होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति वह समाज में करता है। जिसके कारण वह मानव संस्कृति का निर्माता बनता है। इस आधार पर व्यक्ति शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक अस्तित्व को भी बनाये रखता है। दूसरे अर्थों में हम कह सकते हैं कि संस्कृति के विभिन्न अंगों का विशिष्ट स्वरूप होने के साथ ही साथ एक विशिष्ट कार्य भी होता है। अर्थात् संस्कृति का कोई भी पक्ष अनुपयोगी नहीं होता है। संस्कृति के प्रत्येक इकाई का मनुष्य के लिए कोई न कोई कार्य अवश्य होता है। किसी भी सांस्कृतिक तत्त्व का कोई अस्तित्व इस बात पर निर्भर करता है कि यह मानव के किसी न किसी काम में अवश्य आ रहा है अथवा नहीं।

मैलिनोवस्की स्पष्ट लिखते हैं कि "संस्कृति का प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण इस सिद्धान्त पर बल देता है कि हर प्रकार की सभ्यता में सभी प्रथा, भौतिक वस्तु, विचार और विश्वास कुछ आवश्यक प्रकार्य को सम्पन्न करते हैं। कोई न

कोई कार्य करने का लक्ष्य रखते हैं और समष्टि के अन्दर अपरिहार्य अंश के रूप में विद्यमान होते हैं।"

26.4 मैलिनोवस्की : धर्म और जादू

धर्म और जादू के सन्दर्भ में मैलिनोवस्की के विचार प्रकार्यवादी ही हैं। धर्म के सन्दर्भ में यह स्पष्ट है कि यह किसी न किसी प्रकार की अलौकिक शक्ति पर विश्वास करता है चूंकि इस सन्दर्भ में अलौकिक शक्ति के प्रति दबाव डालकर आस्था उत्पन्न नहीं की जा सकती है फिर भी उस शक्ति के सम्मुख श्रद्धा से, पूजा अथवा प्रार्थना करके उसे अपने पक्ष में स्वीकार्य करते हुए आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। जबकि इसके विपरित कुछ ऐसी भी शक्तियाँ होती है जो मनुष्य की अपनी शक्तियों से अधिक शक्तिशाली होती है परन्तु इन पर कुछ निश्चित ढंग से अधिकार किया जा सकता है। यही कारण है कि मानव इन शक्तियों के प्रति झुकने के स्थान पर इस पर अपना अधिकार स्थापित करके उससे अपने उद्देश्यों अथवा आवश्यकताओं की पूर्ति करवाता है। मैलिनोवस्की ने इसे जादू के नाम से सम्बोधित किया है। मैलिनोवस्की ने धर्म तथा जादू को मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन के रूप में प्रकट करते हैं।

मैलिनोवस्की धर्म के समाजशास्त्री तथा मनोवैज्ञानिक दोनों पक्षों को एक ही जैसा महत्त्वपूर्ण मानता है। वह कहते हैं कि "धर्म क्रिया का एक ढंग है और इसके साथ ही विश्वासों की व्यवस्था भी है। धर्म एक समाजशास्त्रीय घटना के साथ ही साथ एक व्यक्तिगत अनुभव भी है।" इस कथन के आधार पर धर्म की चार प्रमुख विशेषताओं को मैलिनोवस्की स्पष्ट करते हैं। जिनमें पहली विशेषता है– धर्म विश्वासों की एक व्यवस्था है। इसकी दूसरी विशेषता है कि प्रत्येक धर्म में विश्वासों से सम्बन्धित कुछ क्रियाएँ होती है। तीसरी विशेषता है कि धर्म एक सामाजिक घटना है और चौथी विशेषता है कि धर्म को मानना और न मानना स्वयं व्यक्ति के ऊपर निर्भर करता है और यह बात उसके व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा प्रभावित होता है।

मैलिनोवस्की ने जादू के सन्दर्भ में लिखा है कि "जादू विशुद्ध व्यवहारिक क्रियाओं का योग है जिन्हें कि उद्देश्यों की पूर्ति के साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। मैलिनोवस्की ने जादू के व्यवहारिक पक्ष पर अधिक बल दिया है। आदिम समाज में जादू की व्यवहारिकता व उपयोगिता अधिक थी। मैलोनोवस्की जादू को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "जादू वह शक्ति है जो व्यवहारिक हितों की पूर्ति के साधन के रूप में प्रयोग में लायी जाती है।" मैलिनोवस्की ने जादू का वर्गीकरण करते हुए समस्त प्रकार के जादू को दो भागों में विभाजित किया है। जिनमें से प्रथम को सफेद जादू तथा दूसरे को काला जादू कहा है।

सफेद जादू के दो भाग होते हैं। पहले भेद में वह जादू आता है जिन्हें की जीवन की अनिश्चितता तथा खतरों से मनुष्य की रक्षा करने हेतु कार्य में लाया जाता है जबकि सफेद जादू के दूसरे भेद में विचित्र घटनाएँ आती हैं।

इसके अन्तर्गत जब कोई व्यक्ति जादू के शक्ति से ऐसा कोई चमत्कार दिखाता है जिसकी कोई आशा नहीं कर सकता है तो उसे सफेद जादू की श्रेणी में रखते हैं। इन दोनों प्रकार के जादू को सफेद जादू इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनका उद्देश्य सामाजिक दृष्टिकोण से कल्याणकारी होता है। यही कारण है कि ऐसे जादू को समाज में स्वीकृति प्राप्त होती है।

मैलिनोवस्की आगे कहते हैं कि सफेद जादू के विपरीत काले जादू का उद्देश्य दूसरों को हानि पहुँचाना होता है। इसलिए इन्हें समाज की स्वीकृति प्राप्त नहीं होती है। जादूगर ऐसे जादू का प्रयोग अपने शत्रु के प्रति करते हैं। मैलिनोवस्की काले जादू के अन्तर्गत टोना–टोटका, तथा भूत–प्रेत सिद्धि को भी सम्मिलित करते हैं।

मैलिनोवस्की जादू और विज्ञान में तीन समानताओं का उल्लेख करते हैं। पहली समानता यह है कि दोनों का ही मनुष्य की प्रवृत्तियों और आवश्यकताओं से सम्बन्धित कुछ न कुछ उद्देश्य होता है। दूसरी समानता यह है कि जादू और विज्ञान दोनों ही कुछ निश्चित नियमों पर आधारित होते हैं। मनमाने ढंग से न तो जादू किया जा सकता है और न ही विज्ञान। तीसरी समानता यह है कि जादू और विज्ञान दोनों में एक विशेष प्रविधि का प्रयोग किया जाता है।

मैलिनोवस्की ने धर्म और जादू में चार आधारों पर अन्तर स्पष्ट किया है। जो निम्न प्रकार से हैं :

- प्रथम के रूप में वह यह मानते हैं कि धर्म एक सामाजिक कृत्य है जबकि जादू एक वैयक्तिक कृत्य है।
- मैलिनोवस्की कहते हैं कि जादू और धर्म दोनों में ही अधिप्राकृतिक और अलौकिक शक्तियों में विश्वास किया जाता है। धर्म में प्रसन्नता अथवा लाभ की प्रवृत्ति सन्निहित होती है जबकि जादू में शक्ति अथवा अधिकार का उपयोग उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रयोग में किया जाता है।
- मैलिनोवस्की ने तृतीय भेद के रूप में यह बताया कि धर्म और विज्ञान में एक अन्तर यह भी है कि धर्म में अलौकिक शक्ति के प्रति धार्मिक व्यक्ति के मन में पवित्रता की भावना होती है परन्तु जादू में जादूगर प्राकृतिक शक्तियों को श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता है। क्योंकि वह उसका भेद जानता है और वह उन पर नियन्त्रण पा सकता है।
- मैलिनोवस्की ने धर्म और जादू में चतुर्थ भेद करते हुए बताया कि जादू सबके लिए नहीं होती है इसे केवल उस विद्या में पारंगत व्यक्ति ही कर सकता है। यह सीखने की परम्परा होती है। इसके विपरीत धार्मिक क्रियाएँ सबके द्वारा और सबके लिए की जाती है।

26.5 मैलिनोवस्की : कानून, अपराध और प्रथा

मैलिनोवस्की ने आदिम कालीन समाजों में कानून के इस पक्ष पर बल देते हुए कहा है कि उस काल में कानून मुख्यतः कर्त्तव्यों और अधिकारों का एक योग

हुआ करता था। जिसे की परस्पर आदान प्रदान के द्वारा प्रथा के आधार पर क्रियाशील रखा जाता था। आदिम समाजों में कानून के प्रति मैलोनोवस्की का मत था कि इसे निर्मित करने के पीछे वास्तविक अभिमति, जनमत है जिसका महत्त्व उन समाजों में अधिक होता था।

मैलिनोवस्की ने आदिम समाज में कानून के प्रति कारणों को बताते हुए कहा है कि आदिवासी कानूनों का पालन अन्धों की भांति नहीं करते अथवा गुलामों की भांति इसका उपयोग नहीं करते हैं और न ही बिना किसी कारण के नियमों का प्रयोग अथवा पालन किया जाता है। आदिम समाज में पारस्परिक अन्योनाश्रितता, कर्त्तव्यबोध से सम्बन्धित रहें हैं जो कि कानूनों का पालन करवाते हैं वह कहते हैं कि कानूनों का पालन दास के रूप में न कराकर के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है क्योंकि समाज के नियमों में आवश्यकताओं की प्रधानता होती है जो कानून का पालन करवाती है।

मैलिनोवस्की ने लिखा है कि आदिम समाज में अपराध हेतु औपचारिक सामाजिक व्यवस्था का न्यायिक पक्ष नहीं था। इसका दायित्व परिवार के बुर्जुगों पर होता था। उस समय की अधिकांश जनजातियाँ वंशानुगत मुखिया को स्वीकार करती थीं जो सामाजिक न्याय की प्रक्रिया से अन्य लोगों को परिचित कराता था। मैलिनोवस्की कहते हैं कि आदिम समाज में अपराध निर्धारण के अनेक ढंग हुआ करते थे। इनमें से कुछ का निर्धारण दैविक शक्तियों के विश्वास पर छोड़ दिया जाता था अर्थात् वह शक्तियाँ ही यह निर्धारित करेगी की वह व्यक्ति वास्तव में अपराधी है अथवा नहीं। ऐसी स्थितियों के सन्दर्भ में व्यक्ति को कठिन परीक्षा देनी पड़ती थी। यदि सम्बन्धित परीक्षा के परिणाम सन्तोषजनक प्राप्त होते थे तो यह माना जाता था कि वह व्यक्ति निर्दोष है अन्यथा उसके दण्ड का निर्धारण किया जाता था।

26.6 मैलिनोवस्की के प्रकार्यवाद की आलोचनाएँ

अन्य प्रचलित तथा प्रसिद्ध सिद्धान्त की ही भाँति मैलिनोवस्की द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में निहित त्रुटियों की निम्न प्रकार से आलोचना की गयी

- सांस्कृतिक प्रकार्यवादियों का यह कथन कि किसी संस्कृति के संगठन तत्त्व अनिवार्यतः प्रकार्यात्मक होते हैं। मर्टन के अनुसार कुछ सांस्कृतिक गुण अप्रकार्यात्मक भी हो सकते हैं।
- समस्त सांस्कृतिक गुण और उनके प्रकार्यों की अपरिहार्यता की मान्यता भी तथ्य संगत नहीं है क्योंकि जो गुण किसी व्यक्ति या समूह के लिए सुप्रकार्यात्मक है वह किसी अन्य व्यक्ति के लिए यही गुण अप्रकार्यात्मक हो सकता है साथ ही वह उसके लिए अपरिहार्य नहीं हो सकता है।
- गोल्डेन विजर का कथन है कि मैलिनोवस्की ने संस्कृति के सभी पक्षों को आवश्यकता से अधिक अर्थ प्रदान किया है। जिसके कारण वे गुण संकुलों के अस्तित्व को स्वीकार नहीं कर सकते हैं।

- मैलिनोवस्की ने धर्म के प्रकार्यात्मक पक्ष पर इतना अधिक बल दिया है कि धर्म का वास्तविक आधार कमजोर हो गया है साथ ही वह केवल टोब्रियण्ड द्वीप के निवासियों के अध्ययन करके जो निष्कर्ष प्राप्त किया है उसे ही वह सभी समाजों पर समान रूप से लागू करता है।
- मैलिनोवस्की ने मनुष्य को आवश्यकताओं और इच्छाओं का बंडल मान लिया है जबकि संस्कृति के संगठन को स्वीकार करना मानव की उच्चतर भावनाओं और आदर्शों की अवहेलना करना है।

26.7 रेडक्लिफ ब्राउन : प्रकार्यवाद की अवधारणा

मानवशास्त्रियों तथा प्रकार्यवादियों में रेडक्लिफ ब्राऊन का नाम प्रतिष्ठालब्ध है। प्रकार्य के अवधारणा के आधार पर रेडक्लिफ ब्राऊन ने इसे स्पष्ट किया है। अतः रेडक्लिफ ब्राऊन के प्रकार्यवाद को जानने से पहले प्रकार्यवाद की अवधारणा को जानना आवश्यक है

प्रकार्य की अवधारणा समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक संगठन और व्यवस्था से सम्बन्धित है। डार्विनवाद के पश्चात् यह अवधारणा समाजशास्त्र के क्षेत्र में हर्बट स्पेन्सर द्वारा आयातित की गयी। समाजशास्त्र में इसके अनुप्रयोग का उद्देश्य सामाजिक जीवन में अथवा समाज में होने वाले निरन्तर परिर्वतन और समाज व्यवस्था को कुछ प्राणिशास्त्रीय सत्यताओं के आधार पर परिभाषित करना था। यह अवधारणा स्पष्ट करती है कि समाज की अखण्ड व्यवस्था उस प्रकार नहीं है जिस प्रकार की सावयव एक अखण्ड व्यवस्था न हो। सावयव का निर्माण अनेक पक्षों से निर्मित होता है तथा सभी पक्ष निर्धारित सीमा तक अपने–अपने कार्यों को करते हैं और उसी प्रकार उन पर सावयव की स्थिरता, निरन्तरता अथवा उसमें पाया जाने वाला संगठन निर्भर करता है। इसी प्रकार समाज भी अनेक इकाईयों से बना है और समाज व्यवस्था और संगठन भी इन इकाईयों के कार्यों पर निर्भर है। जिस प्रकार सावयव के विभिन्न अंग व कार्य प्रारम्भ से सुस्पष्ट नहीं होते हैं। अपितु उनका कार्य धीरे–धीरे निरन्तर विकसित होता है और इस विकास के कार्यों का विशेषीकरण भी हो जाता है। यह व्यवस्था नियम समाज पर भी लागू होता है।

रेडक्लिफ ब्राऊन प्रकार्यवाद तथा सावयवीवाद के अविच्छिन्न सम्बन्ध को स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि "मानव समाज पर प्रयोग किये जाने वाले प्रकार्य की अवधारणा सामाजिक जीवन तथा सावयवी जीवन में पायी जाने वाली समानता या समरूपता पर आधारित है। यह समरूपता उसके कुछ परिणामों को दी जाने वाली मान्यता के सन्दर्भ में कोई नई नहीं है।"

प्रकार्यवाद के अनेक सम्भावित अर्थ हो सकते हैं किन्तु उनमें से चार को महत्त्वपूर्ण माना गया है :

- गणितशास्त्रीय अर्थ में प्रकाय।
- उपयोगी कार्य कलाप के रूप में प्रकार्य।

- उपर्युक्त कार्य कलाप के रूप में प्रकार्य।
- व्यवस्था निर्धारित तथा व्यवस्था पोषक कार्य कलाप के रूप में प्रकार्य।

गणितशास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रकार्य का अर्थ उस तत्व से होता है जिसका मूल्य निर्धारण एक दूसरे या एकाधिक तत्वों के द्वारा होता है। यदि **अ** बराबर है **ब** के तो अ का प्रकार्य है ब का मूल्य निर्धारण करना। उपयोगी कार्य कलाप या कार्य के रूप में भी प्रकार्य का अर्थ लगाया जा सकता है। इस अर्थ में प्रकार्य शब्द का प्रयोग प्रतिदिन की बोल–चाल में होता है। सार्वजनिक तथा संस्थागत उत्सवों और कार्य कलापों को भी प्रकार्य कहा जाता है। उपर्युक्त कार्य कलाप के रूप में प्रकार्य महत्त्वपूर्ण होता है कि किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए या आवश्यकता की पूर्ति के लिए एक क्रिया बिना ही उपर्युक्त हुए ही उपयोगी हो। प्रकार्यवाद की एकाधिक अवधारणाएँ प्रकार्य के इसी अर्थ से सम्बन्धित है। व्यवस्था निर्धारित तथा व्यवस्था पोशक कार्यकलाप का तात्पर्य है कि सामाजिक जीवन आधारभूत रूप में व्यवस्थाओं में समाविष्ट होता है। इन व्यवस्थाओं में से किसी भी तत्व अथवा इकाई के विषय में निर्णय व्यवस्था द्वारा उसका निर्धारण व्यवस्था को बनाये रखने में उसके स्थान संन्दर्भ में किया जाना चाहिए। रेडक्लिफ ब्राऊन ने प्रकार्य के उपर्युक्त चतुर्थ अर्थों में परिभाषित करते हुए लिखा है कि "किसी सामाजिक तत्व का प्रकार्य उस तत्व का वह योगदान है जो कि वह सामाजिक व्यवस्था की क्रियाशीलता के रूप में सामाजिक जीवन को करता है।

रेडक्लिफ ब्राऊन ने प्रकार्यवाद की अवधारणा के अन्तर्गत यह माना है कि संरचना और प्रकार्य की अवधारणा का प्रयोग तभी हो सकता है जब समाज तथा जीवित सावयव की समानता को स्वीकार कर लिया जाय। रेडक्लिफ ब्राऊन ने लिखा है कि एक सावयव का जीवनकाल उसकी संरचना के प्रकार्य के रूप में देखा जा सकता है। प्रकार्य की निरन्तरता के माध्यम से ही संरचनाओं की निरन्तरता बनी रहती है। रेडक्लिफ ब्राऊन का विश्वास है कि सावयवी व्यवस्थाओं के द्वारा तीन प्रकार की समस्याओं को चिन्हित किया गया जो निम्नवत है :

- रचनाशास्त्र अर्थात संरचना का अध्ययन करना।
- शरीरशास्त्र अर्थात प्रकार्य का अध्ययन करना।
- उद्ववविकास।

यह तीनों प्रकार की समस्याएँ सामाजिक जीवन पर भी पक्षवत् लागू होती है क्योंकि हम सामाजिक संरचना के अस्तित्व को देख सकते हैं, व्यक्ति आवश्यक इकाईयों के रूप में एक सम्बद्ध समग्रता के अन्तर्गत कुछ निश्चित सामाजिक सम्बन्धों द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित है। संरचना की निरन्तरता सामाजिक जीवन की प्रक्रिया द्वारा बनाये जा सकते हैं। एक समुदाय का सामाजिक जीवन संरचना का प्रकार्य है।

26.8 रेडक्लिफ ब्राउन : प्रकार्यवाद की आलोचना

आधुनिक समाजशास्त्रियों ने परम्परागत प्रकार्यवादियों की अध्ययन पद्धति को अस्वीकार करते हुए समाजशास्त्र के अन्तर्गत प्रकार्यवाद को न मानकर

संरचना प्रकार्यवाद माना है। इस सन्दर्भ में संरचनात्मक प्रकार्यवादी दृष्टिकोण रखने वाले विद्वानों ने प्रकार्यवाद की आलोचना निम्न प्रकार से की है :

- मर्टन का कथन है कि प्रकार्यवादियों द्वारा यह विश्वास बना लेना कि सामाजिक संरचना की सभी इकाईयाँ कोई न कोई उपयोगी अथवा सकारात्मक प्रकार्य करती है यहाँ यह भी हो सकता है कि कुछ इकाईयाँ प्रकार्य के स्थान पर अकार्य करती हों और इस प्रकार सामाजिक संरचना अथवा व्यवस्था को संगठित करने की दिशा में न होकर विघटित करने की दिशा में हो। यह भी है कि कुछ इकाईयाँ किसी प्रकार का कार्य न करते हुए भी नकार्यात्मक स्थिति में होते हुए भी सामाजिक संरचना में बनी रहती है।

- मर्टन कहते हैं कि प्रकार्यवादियों ने एक इकाई से सम्बन्धित प्रकार्य को सभी समाजों पर लागू किया है जो गलत है। एक समाज के विभिन्न इकाइयों के जो प्रकार्यात्मक परिणाम है वह दूसरे समाज पर लागू नहीं भी हो सकता है। मर्टन के अनुसार सार्वभौमिक प्रकार्यवाद की धारणा में संशोधन आवश्यक है।

- मर्टन का कथन है कि प्रकार्यवादियों का यह तर्क कि एक सामाजिक इकाई द्वारा एक ही कार्य किया जाता है यह कथन भ्रमपूर्ण है। वास्तव में एक सामाजिक इकाई द्वारा एक से अधिक प्रकार्य किया जा सकता है और साथ ही एक ही प्रकार के प्रकार्य को करने वाली एक से अधिक इकाईयाँ अथवा विकल्प सामाजिक संरचना के अन्तर्गत विद्यमान हो सकते हैं।

- प्रकार्यवाद के दोषों में एक महत्त्वपूर्ण दोष यह है कि इसके समर्थक इकाईयों के प्रकार्यों का अध्ययन करके उन्हें संरचनात्मक संदर्भ से पृथक करते हैं जबकि आधुनिक अध्ययनों में यह स्पष्ट हुआ है कि संरचनात्मक संदर्भ के बिना इकाईयों के प्रकार्यों की वास्तविकताओं को जाना नहीं जा सकता है।

26.9 रेडक्लिफ ब्राउन : सामाजिक संरचना का सिद्धान्त

सामान्यतः यह कहा जाता है कि प्रत्येक संरचना का निर्माण एक से अधिक अंगों के संयोग से निर्मित होता है। कोई भी संरचना अखण्ड नहीं हो सकती है। यहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि संरचना में पाये जाने वाले इस प्रकार के अंगो में परस्पर एक सम्बन्ध होता है और यह सम्बन्ध अपेक्षाकृत स्थायी भी होता है यदि इस प्रकार के अंगों का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यधिक अस्थायी हो तो संरचना के निर्माण के लिए आवश्यक सहयोग प्रदान करना उन अंगों के लिए सम्भव ही नहीं होगा। अंगों में अन्तःसम्बन्धों के अभाव का अर्थ होगा अपूर्ण संरचना। इस प्रकार कहा जा सकता है कि संरचना स्थायी तत्वों या अंगों का एक प्रतिमान है और इस कारण इनमें अत्यधिक परिवर्तनशील तत्वों को सम्मिलित नहीं किया जा सकता है।

रेडक्लिफ ब्राऊन ने स्पष्ट लिखा है कि "संरचना के अंग मनुष्य के ही है और संरचना संस्थात्मक रूप में परिभाषित तथा नियमित सम्बन्धों के अन्तर्गत व्यक्तियों का एक व्यवस्थित रूप अथवा क्रमबद्धता है।" आपने अपने अध्ययन के

अन्तर्गत यह स्पष्ट लिखा है कि "मनुष्य परस्पर सामाजिक सम्बन्धों के जटिल जाल द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित है।" जाल के लेखन के सन्दर्भ में आपने सामाजिक संरचना को स्पष्ट किया है जबकि सामाजिक अन्तःक्रिया मनुष्यों के द्वारा ही होती है और इन सामाजिक अन्तःक्रियाओं के समय यह सम्बन्ध अधिक स्पष्ट तथा नियमित हो जाते हैं।

रेडक्लिफ ब्राऊन के अनुसार सामाजिक संरचना एक गतिशील निरन्तरता है। वह एक मकान की संरचना की भांति स्थिर नहीं होता है अपितु जीवित मनुष्य के शारीरिक ढाँचे तथा उसके क्रिया व्यवहार की भांति एक गतिशील निरन्तरता है। जिस प्रकार मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन काल में प्रकृति उसके शारीरिक ढाँचे में समय–समय पर परिवर्तन करती रहती है। उसी प्रकार सामाजिक जीवन में मनुष्य सामाजिक संरचना को भी निरन्तर परिवर्तित करता रहता है। इस प्रकार यह भी ज्ञात होता है कि संरचना स्वयं तो स्थायी है किन्तु उसके अन्तर्गत दूसरे पक्षों में परिवर्तन होता रहा है। समाज के सदस्यों अथवा मनुष्यों के मध्य होनें वाले परिवर्तनों का प्रभाव संरचना पर भी पड़ता है। फलस्वरूप वास्तविक संरचना में परिवर्तन हो सकता है और होता भी है परन्तु सामान्य संरचना स्वरूप की भांति बहुत कुछ स्थिर रहता है। इस क्रम में वास्तविक संरचना का तात्पर्य स्वयं समाज के सदस्यों अथवा मनुष्यों से है जिनसे वास्तविक संरचना बनती है। रेडक्लिफ ब्राऊन ने सामाजिक संरचना के स्थायी पक्ष पर बल दिया है। उनका कहना है कि ऐसा बहुत ही कम होता है कि कोई समुदाय अथवा समाज संसार के अन्य सभी समाजों से पूर्णतया पृथक हो और उसका अन्य समाजों से कोई भी सम्पर्क न हो। वर्तमान में सामाजिक सम्बन्धों का जाल समस्त संसार में फैला हुआ है फिर भी प्रत्येक सामाजिक संरचना का एक स्थायी पक्ष होता है जो सदस्यों के व्यवहार और व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। उसी प्रकार सामाजिक संरचना के अध्ययन में भी स्थानीय आधारों का अध्ययन आवश्यक है।

26.10 रेडक्लिफ ब्राउन : नातेदारी व्यवस्था की रीतियाँ

सन् 1950 ई. में आपने अपने अध्ययन अफ्रिकन सिस्टम किनसिप ऑफ मैरिज तथा सन् 1952 ई. में आप के अध्ययन स्ट्रक्चर एण्ड फंक्सन इन प्रिमिटिव सोसाईटी में नातेदारी व्यवस्था एवं उसके रीतियों से सम्बन्धित अध्ययन में देखने को मिलता है। साधारणतः नातेदारी व्यवस्था में समाज द्वारा मान्यता प्राप्त वह नातेदार या रिश्तेदार सम्मिलित होते हैं जो कि विवाह अथवा रक्त सम्बन्धों द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित हो इसलिए नातेदार रिश्तेदार को दो भागों में विभाजित किया गया है। जिसके अन्तर्गत प्रथम को विवाह सम्बन्धित नातेदारी और दूसरे को रक्त सम्बन्धित नातेदारी कहा गया है।

विवाह सम्बन्धित नातेदारी

विवाह सम्बन्धित नातेदारी के अन्तर्गत न केवल विवाह सम्बन्ध के द्वारा सम्बद्ध पति–पत्नी ही आते हैं बल्कि इन दोनों के परिवारों के अन्य रिस्तेदार भी आ जाते हैं जैसे– साला–बहनोई, सास–दामाद, साली–जीजा, सास–बहू आदि।

रक्त सम्बन्धित नातेदारी

रक्त सम्बन्धित नातेदारी के अन्तर्गत वह व्यक्ति आते हैं जो कि समान रक्त के आधार पर एक–दूसरे से सम्बन्धित होते हैं जैसे– माता–पिता और उनके बच्चों के मध्य अथवा दो भाई बहनों के मध्य का सम्बन्ध रक्त सम्बन्ध पर आधारित होता है। रक्त सम्बन्धित नातेदारी में रक्त सम्बन्ध वास्तविक भी हो सकता है और काल्पनिक भी हो सकता है। रक्त सम्बन्ध का महत्त्व प्राणिशास्त्रीय के साथ–साथ समाजशास्त्रीय भी होता है।

रेडक्लिफ ब्राऊन ने नातेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत दो सम्बन्धियों के मध्य के निर्धारण के लिए कुछ निर्धारित और निश्चित सामाजिक नियम तथा रीतियों की चर्चा की है। जिसे वह नातेदारी की रीतियाँ कहते हैं। जिनके सम्बन्धों में वह परिहार के नियम को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। परिहार के अन्तर्गत वह ऐसे सम्बन्धों को जिनमें सम्बन्ध तो आमने–सामने के होते हुए प्रत्यक्ष या सक्रिय रूप से भाग न ले जैसे पुत्र–वधू तथा सास–दामाद का सम्बन्ध प्रमुख है।

रेडक्लिफ ब्राऊन ने नातेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत परिहास सम्बन्ध का भी उल्लेख किया है। यह सम्बन्ध परिहार के विपरित होता है क्योंकि परिहार सम्बन्ध दो व्यक्तियों को एक दूसरे से दूर ले जाता है जबकि परिहास सम्बन्ध दो व्यक्तियों को मधुर सम्पर्क सूत्र में बाँधता है। रेडक्लिफ ब्राऊन के अनुसार परिहास सम्बन्ध का एक प्रतिकात्मक सम्बन्ध होता है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति एक दूसरे के साथ हँसी मजाक करते हैं।

26.11 मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राऊन के सिद्धान्तों में समानताएँ

मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राऊन के सिद्धान्तों में कुछ समानताएँ भी है जिन्हें निम्न प्रकार से स्पष्ट किया गया है :

- मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राऊन दोनों ही दुर्खीम से प्रभावित है किन्तु दोनों के प्रभावों का स्वरूप भिन्न–भिन्न है। रेडक्लिफ ब्राऊन दुर्खीम के विचारों से सहमत दिखलाई देते हैं तो मैलोनोवस्की खण्डन–मण्डन के रूप में दिखाई देता है।
- गोल्डनर का कथन है कि मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राऊन दोनों सांस्कृतिक उद्वविकास के विरोधी हैं।
- दोनों ही जर्मन तथा आस्ट्रियन प्रसारवादियों की उस विचारधारा के विरूद्ध हैं जिसमें संस्कृति को अलग–अलग स्थानों से प्रसारित हो कर आये और वह सांस्कृतिक गुणों का आकस्मिक समन्वय माना है क्योंकि दोनों ही संस्कृति समाज को परस्पर निर्भर अंशों में ठोस समष्टि मानते हैं।
- दोनों विचार प्रकार्यवाद को प्रथा या संस्था अथवा किसी भी सामाजिक सांस्कृतिक पक्षों के सांस्कृतिक प्रभाव या अंशदान के रूप में स्वीकार करते हैं।

दोनों ही विचारक वर्तमान सामाजिक संस्थानों के अध्ययन पर बल देते हैं। दूसरे शब्दों में दोनों ही सामाजिक संस्थाओं के ऐतिहासिक स्वरूप के स्थान पर वर्तमान स्वरूप पर अधिक ध्यान देते हैं।

- अपने विश्लेषणात्मक पक्ष के रूप में दोनों ही सावयवी सादृश्य का प्रयोग करते हैं।
- दोनों ही क्षेत्रगत अनुभव के आधार पर अपने प्रकार्यवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया तथा दोनों के निष्कर्ष आदिम जनजातियों के अध्ययन पर आधारित है।
- दोनों यह स्वीकार करते हैं कि यदि किसी समूह को जीवित रहना है तो उसे कुछ आधारभूत अनिवार्यता को पूर्ण करना होगा।
- दोनों विचारक प्रकार्यवाद के अध्ययन के लिए तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का प्रयोग करते हैं वह इसकी अनिवार्यता को स्थापित करते हैं तथा इसे उद्विकासियों के तुलनात्मक पद्धतियों से भिन्न रूप में प्रस्तुत करते हैं।

26.12 मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राऊन के सिद्धान्तों में असमानताएँ

मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राऊन के सिद्धान्तों में समानताओं के साथ ही साथ असमानताएँ भी पायी जाती है। दोनों विचारकों के असमानताओं को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है

- रेडक्लिफ ब्राऊन संस्कृति के स्थान पर समाज के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित करते हैं तथा स्वयं को संस्कृति के स्थान पर समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के रूप में प्रतिष्ठा करते हैं, जबकि मैलिनोवस्की समाज के अपेक्षा संस्कृति के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित करते हैं।
- रेडक्लिफ ब्राऊन की दृष्टि में सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न घटकों द्वारा पूर्ण व्यवस्था के पक्ष में किया गया अंशदान ही प्रकार्य है, जबकि मैलिनोवस्की सांस्कृतिक व्यवस्था के घटकों द्वारा समष्टि और व्यष्टि दोनों के पक्ष में किये गये अंशदान को प्रकार्य की संज्ञा देते हैं।
- रेडक्लिफ ब्राऊन के प्रकार्यवाद में मानव की बुनियादी जैविकीय आवश्यकताओं को कोई भी स्थान प्राप्त नहीं है। जबकि मैलिनोवस्की ने प्रत्येक सांस्कृतिक तत्व को किसी न किसी बुनियादी जैविकीय आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में संलग्न किया।
- रेडक्लिफ ब्राऊन के ऊपर इमाईल दुर्खीम की सामाजिक सीमैक्य की धारणा के नाम को परिवर्तित करके उसे यथावत अपना लिया है जबकि इसके विपरीत मैलिनोवस्की के ऊपर दुर्खीम का प्रभाव विवादात्मक रहा है।

26.13 सारांश

मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राऊन के विचारों की समालोचना के आधार पर यह ज्ञात होता है कि मैलिनोवस्की ने संस्कृति को मानवीय विकास का अभिन्न साधन माना है। संस्कृति के अन्तर्गत प्रकार्यवादी पक्ष की महत्ता को स्पष्ट करते हुए सामाजिक पूर्ति का आवश्यक पक्ष माना है। प्रकार्यवाद के अन्तर्गत ही मैलिनोवस्की ने धर्म और जादू को स्वीकार किया जिसमें धर्म को विश्वासों की व्यवस्था और जादू को व्यवहारिक क्रियाओं का योग माना है। मैलिनोवस्की आदिकालीन समाजों में कानून पक्ष को परस्पर प्रथागत तथा कर्त्तव्यबोध से सम्बन्धित किया है। जिसमें नैतिकता के आधार पर सामाजिक व्यवस्था के न्यायिक पक्ष का अध्ययन विश्लेषण किया है।

प्रकार्यवाद के सन्दर्भ में रेडक्लिफ ब्राऊन ने समाज के व्यवस्था को क्रियाशील अंगों की व्यवस्था पर विश्लेषित किया है। समाज में प्रकार्यवाद की अवधारणा का प्रयोग तभी सम्भव है जब समाज तथा जीवित सावयव की समानता को स्वीकार कर लिया जाय। रेडक्लिफ ब्राऊन ने मैलिनोवस्की की भांति ही सामाजिक संरचना के सिद्धान्त में मनुष्य को संरचना का अभिन्न अंग माना है। इसका कारण है कि वह सामाजिक अन्तःक्रिया को विशेष महत्त्व प्रदान करते हैं।

26.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, हरिशचन्द्र : आधुनिक समाजवैज्ञानिक सिद्धान्त परिचय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1991.
2. यादव, गोपाल : सामाजिक संदर्श : सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी वर्ष 1997
3. सिंह, श्यामधर एवम् सिंह, अशोक कुमार : आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी वर्ष 2014.
4. दोषी, एस, एल. जैन, पी. सी. : इमाईल दुर्खीम, रावत पब्लिकेशन जवाहर नगर जयपुर, वर्ष 1996.
5- Crime and Custom in Savage Society-1928.
6- A Scientific Theory of Culture-1944
7- Magic, Science and Religion-1948.
8- The Development of Social Anthropology-1936.

26.15 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. संस्कृति की अवधारणा क्या है?

2. प्रकार्यवाद किसे कहते हैं?
3. धर्म तथा जादू क्या होता है?
4. कानून तथा अपराध को स्पष्ट कीजिए।
5. प्रकार्य किसे कहते हैं?
6. रेडक्लिफ ब्राऊन के अनुसार प्रकार्यवाद क्या है?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मैलिनोवस्की के संस्कृति तथा प्रकार्यवाद की अवधारण को स्पष्ट कीजिए।
2. धर्म, जादू तथा कानून, अपराध एवं प्रथा क्या है?
3. रेडक्लिफ ब्राऊन के प्रकार्यवाद की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करें।
4. रेडक्लिफ ब्राऊन के सामाजिक संरचना का मूल्यांकन कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मानवशास्त्रियों के अनुसार संस्कृति क्या है?

(क) समाजीकरण (ख) बौद्धिक चिन्तन
(ग) आध्यात्मिक उन्नति (घ) नैतिक उन्नति

2. जादू का सम्बन्ध किससे है?

(क) धर्म से (ख) विज्ञान से
(ग) दर्शन से (घ) व्यवहारिक क्रिया से

3. मैलिनोवस्की ने जादू और विज्ञान में कितनी समानताओं का उल्लेख किया है–

(क) तीन (ख) चार
(ग) पाँच (घ) छः

4. मैलिनोवस्की ने कानून, अपराध और प्रथा का निर्धारण किन समाजों के सन्दर्भ में किया है?

(क) सभ्य समाज (ख) बर्बर समाज
(ग) आदिम समाज (घ) आधुनिक समाज

5. रेडक्लिफ ब्राऊन ने संरचना और प्रकार्य की अवधारणा का प्रयोग को कहाँ स्वीकार किया है?

(क) समाज में (ख) समाज तथा जीवित सावयव में
(ग) सावयव में (घ) यांत्रिक में

6. रेडक्लिफ ब्राऊन ने नातेदारी प्रथा में से कितने पक्ष का अध्ययन किया है।

(क) एक (ख) दो

(ग) तीन (घ) चार

26.16 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (क) 2. (घ) 3. (क) 4 (ग)
5. (ख) 6. (ख)

26.17 पारिभाषिक शब्दावली

Culture	संस्कृति
Functionalism	प्रकार्यवाद
Religion and Magic	धर्म एवं जादू
Law, Crime, Custom	कानून, अपराध, प्रथा
Social Structure	सामाजिक संरचना

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड

7

पारसन्स एवं मर्टन

इकाई-27 5
सामाजिक प्रणाली की अवधारणा- पारसन्स

इकाई-28 14
प्रकार्यवाद और सामाजिक परिवर्तन - पारसन्स

इकाई-29 21
व्यक्त एवं अव्यक्त प्रकार्य - मर्टन

इकाई-30 31
संदर्भ समूह का सिद्धान्त - मर्टन

इकाई-31 45
पारसन्स और मर्टन के विचारों की समालोचना

परामर्श-समिति

प्रो0 एम0 पी0 दुबे	कुलपति - अध्यक्ष वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
प्रो0(डा0) जी0एस0शुक्ला	कुलसचिव

विशेषज्ञ समिति

डा0 के0के0 मिश्र	प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

डॉ0एम0एन0सिंह	पूर्व निदेशक, समाजविज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ0 इति तिवारी	एसो0 प्रोफेसर, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद
श्री रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद

पाठ्यक्रम लेखन समिति

1- डॉ0 इति तिवारी	एसो0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट. मु. वि.वि., इलाहाबाद।
2. डॉ रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र विभाग, उ.प्र.रा.ट.मु.वि.वि. इलाहाबाद।
3. अशीष अंशु,	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय डिग्री कालेज, गनाई गंगोली,पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड ।
4. डॉ0 अरूणा कुमारी	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी।
5. स्वाती एस0 मिश्रा	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आर्य महिला कन्या पी.जी.कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
6. डॉ0 अशोक कुमार श्रीवास्तव	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र,श्रीराम सुरेश सिंह महाविद्यालय, मीरजापुर।
7. डॉ0 वन्दना राव	असि. प्रो. समाजशास्त्र, राम सुभग सिंह महाविद्यालय,कुर्मी पट्टी पथरदेवा, देवरिया।
8. डॉ0 जय प्रकाश सिंह	असि. प्रो. समाजशास्त्र, ठाकुर जगन्नाथ सिंह महाविद्यालय, जौनपुर।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड परिचय : पारसन्स एवं मर्टन

यह इस पाठ्यक्रम का सातवाँ खण्ड हैं । इस खण्ड के पूर्व खण्ड -छः में मैलिनोवस्की एवं रेडक्लिफ ब्राऊन के जीवन का परिचय देते हुए उनके अवदानों का तथ्यपरक विवेचन किया गया है। खंड सात के अन्तर्गत टॉलकॉट पारसन्स का जीवन परिचय देते हुए उनके सामाजिक प्रणाली की अवधारणा एवं प्रकार्यवाद एवं सामाजिक परिवर्तन के साथ साथ राबर्ट के. मर्टन का जीवन परिचय देते हुए उनके व्यक्त और अव्यक्त प्रकार्य, संदर्भ समूह का सिद्धान्त एवं पारसन्स एवं मर्टन के विचारों के समालोचना का तथ्यपरक विश्लेषण किया गया है। जिसका संक्षिप्त परिचय सारणीवार इस प्रकार है।

इकाई-27 : इस इकाई के अन्तर्गत पारसन्स के सामाजिक प्रणाली की अवधारणा का विवेचन किया गया है। अध्ययन के अन्तर्गत अन्तःक्रिया की स्थिति के साथ ही साथ सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न भागों के अध्ययन पद्धति को दिया गया है। सामाजिक व्यवस्था और परिवर्तन के सन्दर्भ में पारसन्स द्वारा सामाजिक प्रणाली, व्यक्तित्व व्यवस्था, सांस्कृतिक प्रणाली के साथ ही साथ सामाजिक व्यवस्था के सिद्धान्तों की आलोचनात्मक व्याख्या की गयी है। यह स्थिति इस अध्ययन के सम्बन्धित विचारों को व्यावहारिकता प्रदान करने के साथ ही साथ अध्ययन के वैज्ञानिक पक्षों को भी दिया गया है।

इकाई-28: इस इकाई के अन्तर्गत पारसन्स के प्रकार्यवाद और सामाजिक परिवर्तन को विश्लेषित किया गया है। इस इकाई में मुख्यतः पारसन्स के प्रकार्यवादी विचार के अन्तर्गत यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि किसी भी सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए अनेक सामाजिक नियम होते हैं। इन नियमों में कुछ सामाजिक प्रकार्य अवश्य होते हैं। इसके साथ ही साथ इस इकाई में सामन्जस्य या अनुकूलन, लक्ष्य प्राप्ति एकीकरण, प्रतिमान, अनुरक्षण के साथ साथ प्रकार्यवाद एवं सामाजिक परिवर्तन आदि बिन्दुओं का तथ्यपरक विवेचन किया गया है।

इकाई.29 : इस इकाई के अन्तर्गत मर्टन द्वारा प्रतिपादित व्यक्त एवं अव्यक्त प्रकार्य का वर्णन किया गया है। इस इकाई में जिन महत्वपूर्ण बिन्दुओं की विवेचना की गई है उसके मर्टन का जीवन परिचय, प्रकार्य का अर्थ एवं परिभाषा, प्रकार्य की विशेषताएं प्रकार्य एवं अकार्य में अन्तर, प्रकट एवं अप्रकट प्रकार्य प्रकट एवं अप्रकट प्रकार्य में अन्तर प्रकार्य की मानवीय समाज में उपादेयता आदि प्रमुख है।

इकाई-30: इस इकाई के अन्तर्गत मर्टन के "सन्दर्भ समूह सिद्धान्त" की विवेचना की गयी है। इस इकाई में मर्टन के सन्दर्भ समूह के सिद्धान्त के विवेचन को, सापेक्षित वंचना की अवधारणा, समूह सदस्यता की अवधारणा, गैर सदस्यता की अवधारणा, अग्रिम समाजिकरण, सकारात्मक एवं नकारात्मक संदर्भ समूह के साथ साथ संदर्भ समूह के निर्धारक तत्वों के अन्तर्गत - संदर्भ व्यक्ति, सदस्यता समूहों में से संदर्भ समूहों का चयन, गैर सदस्यता समूहों का चयन, मूल्यों तथा प्रतिमानों को परिभाषित करने के लिए संदर्भ समूहों की भिन्नता निरन्तर सक्रिय सम्पर्क वाले उप समूहों अथवा प्रस्थिति-श्रेणियों में से संदर्भ समूहों का चयन आदि बिन्दुओं पर स्पष्ट किया गया है।

इकाई-3.1 : इस इकाई के अन्तर्गत पारसन्स और मर्टन के विचारों की समालोचना की विवेचना की गयी है। इनके समालोचना के रूप में सामाजिक व्यवस्था के अर्थ एवं परिभाषा तथा पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था का विश्लेषण किया गया है। समालोचना के सन्दर्भ में पारसन्स द्वारा समाज व्यवस्था के चार चरों का उल्लेख किया गया है। इसके प्रभावी पक्षों को दर्शाने के लिए संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक मॉडल को प्रस्तुत किया गया है। जिसमें सामाजिक क्रियाओं का विश्लेषण किया गया है। इस इकाई में मर्टन द्वारा प्रतिपादित सीमावर्ती सिद्धान्त तथा उसकी आलोचनाओं को दिया हे, जो समाज के दोनों पक्षों सूक्ष्म एवं बृहद का बोध कराता है। मर्टन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त प्रकार्यवाद की समालोचनाओं का उल्लेख, प्रकट तथा अप्रकट प्रकार्यवाद के रूप में किया गया है। इस अध्ययन में कर्ता के कार्य व्यवहार का अध्ययन विस्तारपूर्वक किया गया है।

इकाई–27 : सामाजिक प्रणाली की अवधारणा–पारसन्स

इकाई की रूपरेखा

27. टालकॉट पारसन्स : जीवन परिचय

27.0 उद्देश्य

27.1 प्रस्तावना

27.2 सामाजिक प्रणाली : अर्थ एवं अवधारणा

27.3 सामाजिक व्यवस्था के तत्व

27.4 सामाजिक व्यवस्था के सरचनात्मक तत्व

27.5 पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था के मूल आधार

27.5.1 संरचनात्मक आयाम

27.5 2 प्रकार्यात्मक आयाम

27 6 पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्त की आलोचना

27.7 सारांश

27.8 सन्दर्भ ग्रंथ

27.9 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

27.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्नो के उत्तर

27.11 पारिभाषिक शब्दावली

27. टालकन्ट पार्सन्स : जीवन परिचय

अमेरिकन समाजशास्त्री टालकन्ट पार्सन्स का जन्म सन् 1902 ई. में हुआ था। यह जिज्ञासु प्रवृत्ति के उत्कृष्ट विद्यार्थी थे। स्नातक स्तर की उपाधि सन् 1924 ई. में आपने एम्हर्ाट कालेज से प्राप्त की। स्नातक में आप की रूचि प्राणिशास्त्रीय दृष्टिकोण के प्रति अधिक थी। किन्तु वालहेल्मीन्टन की प्रेरणा से आप ने अपनी रूचि को परिवर्तित किया और संस्थागत अर्थशास्त्र पर ध्यान केन्द्रित करते हुए अर्थशास्त्र विषय में भी स्नातक की उपाधि प्राप्त की। सन् 1927 ई. में आपने हेण्डलवर्ग से पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। पी–एच.डी में आपके शोध निबन्ध का विषय था द कान्सेप्ट आफ कैप्टलिज्म इन द थियरी आफ मैक्स बेबर एण्ड वार्नर सोमवर्ट। वर्ष 1924–25 में पार्सन्स ने लन्दन स्कूल ऑफ इकोनामिक्स में हाबहाऊस, जिंसबर्ग और मैलोनोवस्किी के साथ रहकर समाजशास्त्र और मानवशास्त्र का अध्ययन किया। सन् 1925 ई. के अन्त में जर्मनी में अध्ययन

के लिए छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। सन् 1925–26 ई. में हैण्डबर्ग विश्वविद्यालय में उन्हें मैक्स बेबर की कृतियों का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। सन् 1927 से 1931 तक आप हावर्ड विश्वविद्यालय में प्राध्यापक पद पर अर्थशास्त्र विभाग में थे। इसके पश्चात् सन् 1936 ई तक पार्सन्स उसी विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के अध्यापक थे। सन् 1936 ई. मे ही आपने समाजशास्त्र के असिस्टेन्ट प्रोफेसर की नौकरी प्राप्त की और सन् 1944 ई. में आप समाजशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त किये गए। हावर्ड विश्वविद्यालय में सन् 1946 ई. में सामाजिक सम्बन्धों का एक पृथक विभाग स्थापित किया गया। यह विभाग समाजशास्त्र, मनोविज्ञान तथा मानवशास्त्र में अन्तर्विभागीय सहयोग पर एक प्रयोग था। सन् 1978 ई. में हैण्डबर्ग विश्वविद्यालय ने उन्हें ज्ञान के क्षेत्र में उनकी असाधारण उपलब्धियों के लिए सम्मानित करने के उद्देश्य से आमंत्रित किया किन्तु उसी रात पार्सन्स की मृत्यु हो गयी।

27.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- सामाजिक व्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- पारसंस के सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- सामाजिक प्रणाली के रचना के तीन मुख्य अंगों को समझ सकेंगे।
- सामाजिक व्यवस्था के प्रति एक विशिष्ट अभिमति बना सकेंगे।

27.1 प्रस्तावना

पारसन्स के समाजशास्त्रीय दृष्टि क्रम का प्रथम प्रयास उनके क्रिया सिद्धान्त में देखने को मिलता है। इन्होंने सर्वप्रथम अपने क्रिया सिद्धान्त को लक्ष्य से जोड़ा। आपके अनुसार सामाजिक क्रिया के लिए तीन शर्तों का होना आवश्यक है– कर्ता, परिस्थिति एवं अभिप्रेरणा। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि ये सभी क्रियाएं शून्य में नहीं होती, वरन् इनका एक सामाजिक, भौतिक पर्यावरण होता है। जो संस्थागत होता है अर्थात् समाज के मान्य मूल्यों, आदर्शों व नियमों से संरचित होता है। इसी को सामाजिक व्यवस्था के रूप में हम समझ सकते हैं। इस सन्दर्भ में पारसन्स का मानना है कि कर्ता बेशक अपनी क्रिया को करने के लिए स्वतंत्र है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। क्योंकि उसकी क्रियाएं समाज के मूल्यों से निर्देशित होती है। समाज के मूल्य व नियम एक व्यवस्था बनाते हैं, जिसे सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था कहा जा सकता है। इस प्रकार पारसन्स ने सामाजिक क्रिया व्यवस्था के अन्तर्गत तीन व्यवस्थाओं की चर्चा की है। सामाजिक व्यवस्था सांस्कृतिक व्यवस्था एवं व्यक्तित्व व्यवस्था। प्रस्तुत इकाई क्रम में सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में पारसन्स के विचारों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

27.2 सामाजिक प्रणाली : अर्थ एवं अवधारणा

पारसन्स ने सामाजिक प्रणाली की अवधारणा का विस्तृत एवं तथ्यपरक विवेचन अपनी पुस्तक "द सोशल सिस्टम" में किया है। पारसन्स की यह पुस्तक 1951 में प्रकाशित हुई। पारसन्स सामाजिक प्रणाली की अवधारणा के संदर्भ में कहते हैं कि व्यक्ति को सामाजिक प्राणी होने के नाते अनेक आवश्यकताएं होती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक सामाजिक क्रियाओं को करता है। इन्हीं सामाजिक अन्तःक्रियाओं के परिणामस्वरूप एक सामाजिक व्यवस्था स्थापित होती है।

पारसन्स सामाजिक व्यवस्था को परिभाषित करते हुए कहता है कि "सामाजिक व्यवस्था आवश्यक रूप में अन्तःक्रियात्मक सम्बन्धों का एक जाल है।"

पारसन्स पुनः कहता है कि "सामान्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक व्यवस्था एक ऐसी परिस्थिति में जिसका कि कम से कम एक भौतिक या पर्यावरण संबंधी पहलू हो अपनी इच्छाओं या आवश्यकताओं की आदर्श–पूर्ति की प्रवृत्ति से प्रेरित एकाधिक वैयक्तिक कर्ताओं की एक दूसरे के साथ अन्तर्क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होती है और इन अन्तक्रियाओं में लागू हुए व्यक्तियों का पारम्परिक संबंध तथा उनकी परिस्थितियों के साथ संबंध सांस्कृतिक रूप में संरचित या स्वीकृत प्रतीकों की एक व्यवस्था द्वारा परिभाषित और मध्यस्थित होता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रत्येक समाज में कुछ निश्चित प्रतीक होते हैं । यहीं प्रतीक उस समाज के मूल्यों एवं आदर्शों को व्याख्यायित भी करते हैं। इन्हीं मूल्यों को कर्ता स्वीकार भी करता है। इस प्रकार समाज में प्रत्येक कर्ताओं से अपनी–अपनी भूमिका के निर्वहन की आशा की जाती है। समाज के समस्त कर्ता एक–दूसरे के मूल्यों एवं आदर्शों को मानते एवं जानते हैं। जिसके कारण सामाजिक अन्तःर्क्रिया का जन्म होता है। यही अन्तर्क्रिया सामाजिक अन्तर्क्रिया को जन्म देती है।

27.3 सामाजिक व्यवस्था के तत्व

पारसन्स के अनुसार सामाजिक व्यवस्था के तत्व अधोलिखित है :

1. सामाजिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण तत्व यह है कि इसमें एक से अधिक कर्ता होने चाहिए।

2. प्रत्येक कर्ताओं के बीच अन्तःक्रिया होना आवश्यक है क्योंकि प्रत्येक कर्ता अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक–दूसरे के साथ अन्तःक्रिया करते हैं। इन्हीं अन्तःर्क्रियाओं के माध्यम से एक सामाजिक व्यवस्था स्थापित होता है।

3. कर्ताओं के बीच प्रत्येक अन्तःक्रियाएँ उद्देश्यपरक होती है। इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कर्तागण सामाजिक अन्तःक्रियाएँ करते हैं।

4. अन्तःक्रियाओं को घटित होने के लिए एक आवश्यक सामाजिक परिस्थिति होती है। जिसका भौतिक या पर्यावरणीय पक्ष हो।

5. अन्तःक्रियाओं द्वारा जनित व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों की सांस्कृतिक व्यवस्था

27.4 सामाजिक व्यवस्था के संरचनात्मक तत्व

सामाजिक व्यवस्था के संरचनात्मक तत्व अधोलिखित हैं :

1. नातेदारी व्यवस्था
2. सामाजिक स्तरीकरण
3. शक्ति व्यवस्था
4. धर्म तथा मूल्य संगठन

27.5 पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था के मूल आधार

पारसन्स की सामाजिक व्यवस्था के प्रमुख आधारों को दो भागों में बाँटा जा सकता है

1. संरचनात्मक आयाम
2. प्रकार्यात्मक आयाम

27.5.1 संरचनात्मक आयाम

संरचनात्मक आयाम पर अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया गया है :

(क) संरचना पक्ष

किसी भी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में सामाजिक संरचना एक महत्वपूर्ण नियामक के रूप में होती है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि समाज की संरचना ही सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करती है। जिस तरह की सामाजिक संरचना होगी। उसी तरह की सामाजिक व्यवस्था भी निर्मित होगी। पारसन्स संरचनात्मक पहलू से जुड़े पक्षों को अधोलिखित भागों में विभक्त करके विश्लेषण किया है।

(ख) मूल्य

मूल्यों को परिभाषित करते हुए पारसन्स कहता है कि मूल्यों प्रतीकों की वह प्रणाली है जो विकल्प के चुनाव को मानदण्ड निर्धारित करती है। और सबके लिए समान रूप से खुली रहती है। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही मूल्य के सबलोग भागीदार हो सकते हैं। व्यवस्था स्थापित करने के लिए मार्ग का चुनाव

मूल्यों पर ही निर्भर करता है। इस प्रकार, देखा जाये तो किसी भी सामाजिक व्यवस्था के स्थापना में मूल्यों का विशेष कार्य तथा योगदान होता है

(ग) संस्कृति

पारसन्स सामाजिक व्यवस्था को स्पष्ट करते हुए कहता है कि संस्कृति सामाजिक व्यवस्था की प्रमुख आधार है। इस प्रकार देखा जाये तो कोई भी सामाजिक व्यवस्था वहाँ की संस्कृति पर ही आधारित होती है। संस्कृति व्यक्ति को ऐसे शासनों का ज्ञान करती है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी मूलभत आवश्यकता की पूर्ति करता है। प्रत्येक संस्कृति में व्यक्ति के व्यवहारों को नियंत्रित करने के लिए आदर्शात्मक भी सहायक होते हैं किन्तु आदर्श प्रतीकों के माध्यम से व्यक्तियों के बीच सम्प्रेषण होता है। यहाँ इन प्रतीकात्मक तत्वों को भी विश्लेषित किया जा रहा है

1. **ज्ञानात्मक प्रतीक** : ज्ञानात्मक प्रतीक कर्ता के बीच विश्वास से सम्बन्धित पद्धतियों का निर्धारण करते हैं। प्रतीकों के माध्यम से कर्ता अपने विचारों को गति देता है।

2. **मूल्यानात्मक प्रतीक** : मूल्यानात्मक प्रतीक मुख्यत: मानव के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित होते हैं। ये मूल्य व्यवस्था में नैतिक मापदण्डों पर आधारित होते है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रतीकों में ही मूल्य समाहित होते हैं। प्रतीकों के माध्यम से व्यक्ति उचित एवं अनुचित पक्षों का निर्धारण करता है।

3. **भावनात्मक प्रतीक** : भावनात्मक प्रतीक मानव में मानवीय भावनाओं से सम्बन्धित होते हैं। भावनात्मक प्रतीक व्यक्ति के भावनात्मक पक्षों को गति प्रदान करते हैं। भावनात्मक प्रतीक व्यक्ति के क्रियाओं से जुड़े रूचि और अरूचि को व्यक्त करते हैं।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृति मानव समाज की वह अमूल्य निधि है। जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है। संस्कृति के माध्यम से ही व्यक्ति अपने व्यवहारों का निर्धारण करता है। इस प्रकार एक सामाजिक व्यवस्था निर्मित होती है।

(घ) आदर्श

आदर्श मानव समाज के वह मूल्य होते हैं जिन्हें वह स्वीकार कर लेता है। यह आदर्श प्रतीकों के रूप में कहावतों के रूप में, कहानियों के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी व्यक्ति किये जाते हैं। आदर्शों के ही आधार पर व्यक्ति उचित और अनुचित का निर्धारण करता ह। साथ ही साथ आदर्शों के माध्यंम से व्यक्ति अपनी भावनाओं को भी व्यक्त करता है।

27.5.2 प्रकार्यात्मक आयाम

प्रकार्यात्मक आयाम के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्वों का वर्णन किया गया है :

1. **पर्याप्त प्रेरणा :** पर्याप्त प्रेरणा से तात्पर्य यह है कि कर्ता का पर्याप्त मात्रा में अभिप्रेरित होना है। व्यक्ति समस्त कार्य आवश्यकता के वशीभूत होकर करता है अथवा उससे प्रेरित होता है। यहाँ प्रश्न यह है कि कोई भी कार्य करने के लिए 100 में 5 प्रतिशत व्यक्ति तैयार हैं। और 95 प्रतिशत व्यक्ति तैयार नहीं है। तो क्या समाज में सामाजिक व्यवस्था चल पायेगी। पारसन्स इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि आबादी का एक बड़ा भाग अपनी मूलभूत आवश्यकताओं से प्रेरित होकर जब कार्य में भाग लेने के लिए तैयार होगा तभी कोई सामाजिक व्यवस्था चल पायेगी। व्यक्ति कोई भी कार्य दो प्रकारों से प्रेरित होकर करता है– 1. नकारात्मक, 2. सकारात्मक। जब विघ्न डालने के लिए कार्य करता है तो वह नकारात्मक होता है और जब व्यक्ति लोगों का सहयोग, सबके हित में अपना हित देखकर कार्य करने में अभिप्रेरित होता है तो यह सकारात्मक रूप होता है।

2. **सांस्कृतिक विशेषताएँ** : जब व्यक्ति क्रियात्मक सम्बन्धों के द्वारा अत्यधिक अभिप्रेरित होता है तो वह कार्य करने के लिए तत्परता से तैयार हो जाता है। अब उसके सामने जीवन के मूल्य होने चाहिए। जीवन के मूल्य संस्कृति में ही निहित होते हैं। सांस्कृतिक आवश्यकताओं में दो महत्वपूर्ण पक्ष है। इन्हीं के द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों के एक दूसरे के पास पहुँचाया जाता है।

3. **प्रतिमानों की सुरक्षा और तनाव को करना** : जब व्यक्ति आवश्यकताओं की पूर्ति अपने सामाजिक मूल्यों के अनुरूप करता है तो उसे एक आदर्श स्थिति कहते हैं। लेकिन इस सन्दर्भ में पारसन्स का कहना है कि किसी भी समाज में यह आदर्श अभियोजन सम्भव नहीं है। इस प्रकार तनाव अथवा विघटन उत्पन्न होता है। इसी सन्दर्भ में पारसन्स पुनः कहता है कि यदि तनाव अथवा विघटन को कम अथवा समाप्त नहीं किया जायेगा तो यह सामाजिक व्यवस्था को भंग कर देगा। इसलिए आवश्यक है मूल्यों के प्रतिमानों और तनाव को नियंत्रण में रखा जाये।

4. **अनुकूलन** : पारसन्स कहता है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को वर्तमान साधनों के अनुकूल रखना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो समाज में विघटन हो जायेगा। अनुकूलन के अन्तर्गत पारसन्स आर्थिक दशाओं, आर्थिक साधनों एवं संस्थाओं तथ्यपरक अध्ययन किया है।

5. **लक्ष्य प्राप्ति :** जब व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक आदर्श रूप में कार्य करता है तो वह अपने लिए उन भूमिकाओं का चुनाव करता है जो उसके लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होती है। लेकिन मानव समाज में सभी लोगों ऐसा करने लगेंगे तो सामाजिक व्यवस्था भंग हो जायेगी। अतः राज्य, समाज में व्यक्ति को उसके लक्ष्यों के प्रति नियंत्रित रूप से लेकर चलता है।

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि उपयुक्त वर्णित सभी कारक सामाजिक व्यवस्था के स्थापना के लिए उत्तरदायी हैं।

27.6 पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्त की आलोचना

पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्त की आलोचनाओं को अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया गया है :

1. पारसन्स सामाजिक व्यवस्था को मूल्यों के अनुकूल रहने वाली व्यवस्था माना है। इस सन्दर्भ में कुछ आलोचकों का कहना है कि ऐसी अवस्था में सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक क्रान्ति संभव नहीं है।

2. पारसन्स का सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्त कहीं न कहीं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से जुड़ा है।

3. पारसन्स के सिद्धान्त के संदर्भ में टीमाशेफ कहता है कि पारसन्स का सामाजिक व्यवस्था का सिद्धान्त संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था में अन्तर उत्पन्न नहीं कर पाता है। जबकि संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था दोनों अंत में एक हो जाते हैं।

4. पारसन्स में अपने सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्त को प्रत्यक्षवादी व्यवहारवाद से पृथक करते हुए क्रिया के ऐच्छिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

5. पारसन्स की भाषा–शैली अत्यन्त जटिल है। पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्त की आलोचना करते हुए सी. राइट मिल्स कहते हैं कि "पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्त सामग्री में 50 प्रतिशत शब्द सिर्फ जाल हैं, 40 प्रतिशत समाजशास्त्र की किसी भी पाठ्यपुस्तक में पायी जाने वाली सामग्री हैं, शेष 10 प्रतिशत जो कुछ है वह सैद्धान्तिक रूप में उपयोगी हैं, लेकिन वह भी अस्पष्ट होने के कारण काम में नहीं आ सकता।"

6. पारसन्स के सिद्धान्त की अलोचना करते हुए विभिन्न आलोचक कहते हैं कि पारसन्स के सिद्धान्त में आधुनिकता एवं मौलिकता नहीं है। उनके विचार उतने ही पुराने हैं जितने कि अरस्तु के.

27.7 सारांश

पारसन्स के अनुसार सामाजिक प्रणाली और कुछ न होकर व्यक्तियों के बीच होने वाली बार–बार दोहराई जाने वाली अन्तःक्रियाएं हैं जो कालान्तर में संस्था का रूप ले लेती है। अतः अन्तःक्रियाओं का संस्थाकरण ही सामाजिक व्यवस्था है। पारसन्स के शब्दों में संस्थागत प्रतिमानों को अवधारणात्मक स्तर पर सामाजिक प्रणाली कहा जा सकता है। सामाजिक व्यवस्था के विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए पारसन्स ने लिखा है कि सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत विभिन्न भागों में पारस्परिक निर्भरता का गुण पाया जाता है। यह पारस्परिक निर्भरता व्यवस्था की केन्द्रीयता है। व्यवस्था का एक गुण है कि अंग आपस में प्रकार्यात्मक रूप से जुड़े होते हैं, जिन्हें श्रम विभाजन कहा जाता है। इसके साथ ही सामाजिक प्रणाली के एक सीमा तक स्थायित्व का गुण पाया जाता है। यद्यपि

व्यवस्था के अंगों में बदलाव आता है, स्वयं संस्था भी बदल जाती है फिर भी प्रणाली का साम्यानुकूलन बराबर बना रहता है। पारसन्स यह मानते हैं कि यद्यपि सामाजिक व्यवस्था यथास्थिति को बनाए रखती है फिर भी पारसन्स कहते हैं कि इसमें परिवर्तन आता है। जब भी पारसन्स परिवर्तन की चर्चा करते हैं तो इससे उनका अर्थ यह है कि व्यवस्था जहाँ एक ओर यथास्थिति बनाए रखती है, वही लक्ष्य प्राप्ति के लिए अनुकूलन भी करती है। यह अनुकूलन ही व्यवस्था को बनाए रखता है। पारसन्स ने सामाजिक प्रणाली के अन्तर्गत व्यक्तित्व व्यवस्था, सांस्कृतिक प्रणाली तथा सामाजिक प्रणाली का सम्पूर्ण सामाजिक प्रणाली के सन्दर्भ में उपप्रणालियाँ कहा है।

27.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1. दोषी, एस.एल., जैन पी.सी. : नयी दिशाएं, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2005
2. मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ : सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2003
3. पारसन्स, टॉलकॉट : द सोशल सिस्टम, 1951
4. पारसन्स, टॉलकॉट : एशेज इन सोशियोलॉजिकल थ्योरी, 1964

27.9 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पारसन्स ने सामाजिक प्रणाली के अंतर्गत कौन–कौन सी विशेषताओं का उल्लेख किया है?
2. सामाजिक प्रणाली की रचना के कौन–कौन से पक्ष हैं? स्पष्ट कीजिए।
3. व्यक्तित्व प्रणाली की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पारसन्स की सामाजिक प्रणाली की अवधारणा की विवेचना कीजिए।
2. सामाजिक प्रणाली के अन्तर्गत इसकी उप–प्रणालियों की विवेचना कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पारसन्स द्वारा 'The Social System' पुस्तक किस सन् में प्रकाशित की गई।

(क) 1937 ई. (ख) 1957 ई.

(ग) 1951 ई. (घ) 1963 ई.

2. सामाजिक प्रणाली के अन्तर्गत पारसन्स ने कितनी उप–प्रणालियों की चर्चा की है?

(क) दो (ख) तीन

(ग) पाँच (घ) चार

3. मानवीय क्रियाओं को आधार एवं अर्थ प्रदान करती हैं।

(क) व्यक्तित्व प्रणाली (ख) सांस्कृतिक प्रणाली

(ग) राजनीतिक प्रणाली (घ) भौतिक प्रणाली

4. सामाजिक प्रणाली को किसके साथ समायोजन करना होता है।

(क) जैव प्रणाली (ख) मनोवैज्ञानिक प्रणाली

(ग) सांस्कृतिक प्रणाली (घ) भौतिक प्रणाली

27.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ग), 2. (ख) 3. (ख), 4. (घ)

27.11 पारिभाषिक शब्दावली

Social System	सामाजिक प्रणाली
Personality System	व्यक्तित्व प्रणाली
Cultural System	सांस्कृतिक प्रणाली
Physical System	भौतिक प्रणाली

इकाई–28 : प्रकार्यवाद और सामाजिक परिवर्तन–पार्सन्स

इकाई की रूपरेखा

28.0 उद्देश्य

28.1 प्रस्तावना

28.2 प्रकार्यवाद और सामाजिक परिवर्तन

28.2.1 सामन्जस्य या अनुकूलन

28.2.2 लक्ष्य प्राप्ति

28.2.3 एकीकरण

28.2.4 प्रतिमान अनुरक्षण

28.3 प्रकार्यवाद एवं सामाजिक परिवर्तन

28.4 सारांश

28.5 सन्दर्भ ग्रंथ

28.6 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

28.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

28.8 पारिभाषिक शब्दावली

28.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप

- प्रकार्यवाद के अवधारणा के सम्बन्ध में समझ सकेंगे।
- पारसन्स के प्रकार्यवाद को समझ सकेंगे।
- प्रकार्यवाद और सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था की चार मौलिक प्रकार्यात्मक पूर्वावश्यकताओं को समझ सकेंगे।
- प्रकार्यवाद एवं सामाजिक परिवर्तन को समझ सकेंगे।

28.1 प्रस्तावना

अमेरिकन समाजशास्त्री टालकाट पारसन्स ने सन् 1947 में अमेरिकन समाजशास्त्रीय परिषद की वार्षिक सभा में भाषण देते हुए कहा कि सामाजिक व्यवस्था की वास्तविकताओं को तब तक ठीक से नहीं समझा जा सकता। जब

तक उस व्यवस्था को बनाने वाली इकाईयों के प्रकार्यों को भी न समझ लिया जाए। वास्तव में प्रकार्यवाद सामाजिक विश्लेषण की एक ऐसी विद्या व प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है जिसमें किसी संगठन के क्रियाशीलता को उसके अंग–प्रत्यंग के प्रकार्यों के सम्बन्ध में समझने का प्रयास किया जाता है। पारसन्स ने अपने प्रकार्यवादी विश्लेषण में मैलिनोवस्की, परेटो और दुर्खीम आदि विद्वानों के प्रकार्यात्मक सिद्धान्तों से कुछ–कुछ विचारों को ग्रहण किया है। पारसन्स ने कहा है कि सामाजिक व्यवस्था के संचालन के लिए अनेक नियम उपनियम होते हैं। जिनके कुछ न कुछ प्रकार्य होते हैं। इन प्रकार्यों से ही समाज की कार्य प्रणाली में एकात्मकता बनी रहती है। सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए पारसन्स द्वारा कुछ समाज की पूर्व आवश्यकताओं या शर्तों का उल्लेख किया गया है, जिनके बिना व्यवस्था जिंदा नहीं रह सकती। पारसन्स के इस सिद्धान्त को प्रकार्यात्मक सिद्धान्त कहा जाता है। इस सन्दर्भ में पारसन्स ने यह भी स्पष्ट किया है कि इन प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं का सम्बन्ध केवल सामाजिक व्यवस्था से ही नहीं अपितु व्यक्ति की वैयक्तिक व्यवस्था से भी होता है। प्रकार्यवाद के दृष्टिकोण के अन्तर्गत पारसन्स ने अपने विचारों को प्रकार्यात्मक पूर्वावश्यकताओं के सन्दर्भ में समझाने का प्रयत्न किया है।

28.2 प्रकार्यवाद

पारसन्स अपने प्रकार्यवादी वैचारिकी को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "द सोशल सिस्टम" में स्पष्ट किया है। आप प्रकार्यवाद को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि किसी भी सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए अनेक सामाजिक नियम होते हैं। इन नियमों में कुछ न कुछ सामाजिक प्रकार्य अवश्य होते हैं। इस तथ्य के प्रमाणीकरण के संदर्भ में आप व्यवसायी नियमों का उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं कि व्यवसाय के विभिन्न क्षेत्रों में निश्चित प्रकार्य होते हैं। जैसे– व्यवसाय में प्रवेश करने की अर्हता, स्थितियों को निर्धारण, व्यवसाय में कार्यरत लोगों के अधिकारों तथा कर्तव्यों का निर्धारण करना, नियोक्ता एवं कर्मचारियों के बीच सम्बन्धों की शर्तों को निर्धारित करना तथा अन्य सहकर्मियों के साथ–साथ पारस्परिक सम्बन्धों एवं अन्तःक्रियाओं का एक निश्चित स्वरूप तैयार करना आदि उस व्यवस्था के विभिन्न प्रकार्य होते हैं।

प्रकार्यवाद के संदर्भ में पारसन्स पुनः कहता है कि प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने हेतु कुछ प्रकार्यात्मक आवश्यकताएं होती हैं। इन प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं को संबंध केवल सामाजिक व्यवस्था से नहीं, बल्कि व्यक्ति की वैयक्तिक व्यवस्था से भी है। वैयक्तिक व्यवस्था में बने रहने की प्रकार्यात्मक आवश्यकता यह है कि व्यक्ति के विकास हेतु सावयव के साथ–साथ सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थितियां अवश्य हों जिससे व्यक्ति को अपना विकास करने तथा अपनी भूमिकाओं को निभाने का अवसर प्राप्त हो। इसी तरह से सामाजिक व्यवस्था की प्रकार्यात्मक आवश्यकता यह है कि इसे क्रियाशील बनाये रखने वाले सदस्यों का अस्तित्व बना रहे। और उनका सामाजिक प्राणी के रूप

में इस प्रकार विकास हो कि उनका निर्धारित सहयोग एवं योगदान प्राप्त होता रहे। इस प्रकार देखा जाय तो किसी भी व्यवस्था को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करें जिससे उन सदस्यों का अस्तित्व बना रहे। इसके साथ–साथ प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिककरण के कुछ साधन अथवा संस्कार का होना आवश्यक है जिसके माध्यम से एक जैविक प्राणी को सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित किया जा सके। जिससे वह सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल हो सके।

पारसन्स कहता है कि सामाजिक व्यवस्था की प्रत्येक इकाई का समग्र से तथा समग्र का प्रत्येक इकाई से गहरा सम्बन्ध होता है। किसी भी इकाई को एक दूसरे से अलग करके समझना हमारी भूल होगी, क्योंकि इनके बीच प्रकार्यात्मक सम्बन्ध होते हैं।

इस प्रकार पारसन्स का स्पष्ट विचार है कि प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था मुख्यतः समाज के विभिन्न वैयक्तिक कर्ताओं के बीच प्रकार्यात्मक अन्तर्सम्बन्धों और अन्तःक्रियाओं पर आधारित है।

पारसन्स कहता है कि सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी चार मौलिक प्रकार्यात्मक पूर्व आवश्यक दशाएँ होती हैं। इनकी विवेचना इस प्रकार हैं :

28.2.1 अनुकूलन

प्रायः देखा जाता है कि समाज में बहुत सी ऐसी अनेक परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनके साथ अनूकूलन करके ही सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व को बनाये रखा जा सकता है। यदि अनुकूलन नहीं किया जाय तो व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती है।

28.2.2 लक्ष्य प्राप्ति

मूल्य प्रतिमान वैयक्तिक लक्ष्य प्राप्ति की अपेक्षा सामूहिक लक्ष्य प्राप्ति पर अत्यधिक बल देता है। लक्ष्य प्राप्ति समस्त समाजों की उस आवश्यकता को प्रकट करती है जिसके अनुसार उन्हें लक्ष्य का निर्धारण करना पड़ता है। इस निर्धारण से सामाजिक गतिविधियों को एक सकारात्मक दिशा प्राप्त होती है। प्रायः लक्ष्य निर्धारण का यह कार्य राजनैतिक संस्थाओं के द्वारा किया जाता है।

28.2.3 एकीकरण

एकीकरण समाज में एकता एवं संगठन को बनाये रखने की आवश्यकता पर विशेष बल देता है। इस बल के पीछे मुख्य उद्देश्य यह होता है कि प्रत्येक इकाईयाँ विभिन्न स्तर पर एक दूसरे के साथ इस प्रकार सहयोगात्मक संबंध स्थापित रखे, जिससे कि सामाजिक व्यवस्था में एकता व संगठन बना रहे। प्रायः एकीकरण का सम्बन्ध संघर्ष के समाधान अथवा सामन्जस्य से भी है। यहाँ इसका आशय यह है कि सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न भागों में पारस्परिक सामंजस्य स्थापित रहे। देखा जाये तो राज्य अथवा कानून वह संस्था है, जो इन आवश्यकताओं

की पूर्ति करती है। इस तरह से सामाजिक व्यवस्था विघटित अथवा टूटने से बच जाती है।

28.2.4 प्रतिमान

किसी भी सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व अथवा निरन्तरता के लिए यह भी आवश्यक है कि समाज के महत्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रतिमानों की स्थिरता को कायम रखने के लिए उचित मूल्य प्रतिमानों को लागू किया जाय। इसके लिए समाज अनेक उपायों अथवा पद्धति को अपनाता है। सामाजिक स्तरीकरण उनमें से एक पक्ष है। जिसके द्वारा समाज में स्थितियों तथा कार्यों का निश्चित विभाजन कर दिया जाता है। जिससे समाज में स्थिरता बनी रहती है। सामाजिक मूल्यों के मौलिक प्रतिमान को कायम रखने का दायित्व प्रतिमान अनुरक्षण में निहित होता है। प्रायः ये सामाजिक मूल्य समाज में संस्थागत रूप में होते हैं। इस प्रकार के प्रकार्य को करने वाली संस्थाओं में परिवार, शिक्षाएं व्यवस्था एवं धर्म को देखा जा सकता है।

28.3 प्रकार्यवाद एवं सामाजिक परिवर्तन

पारसन्स के नाम की गणना एक प्रकार्यवादी सामाजिक उद्विकासवादी के रूप में की जाती है। पारसन्स कहता है कि समाज, सामाजिक उद्विकास के चलते निम्न विभेदीकरण से उच्च विभेदीकरण की ओर अग्रसर होता है। आगे उनका यह भी कहना है कि सामाजिक विकास का सिद्धान्त बहुत कुछ हद तक एक जैविक विकास के सिद्धान्त की परछाई हैं।

सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में पारसन्स कहता है कि संचार मानव के विकास का दूसरा प्रमुख उद्विकासिय सार्वभौमिक तत्व रहा है। भाषा संचार का प्रमुख साधन है। इस प्रकार देखा जाय तो समाज के उद्विकास के साथ–साथ भाषा की भी उत्पत्ति हुई। भाषा के अभाव में लोग एक दूसरे से संचार अथवा वार्तालाप नहीं कर पाते थे। इस प्रकार देखा जाय तो भाषा ने मानव समाज में ज्ञान–विज्ञान और चिन्तन की विकास यात्रा में बड़े स्तर पर मदद की। दुनिया का कोई भी समाज ऐसा नहीं है जहाँ भाषा का अभाव हो। वहीं नातेदारी एवं धर्म के अभाव में मानव समाज की अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। इस प्रकार नातेदारी एवं धर्म के द्वारा विकास स्वाभाविक रूप से समय के साथ समाज में हुआ।

सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में पारसन्स आगे कहता है कि मानव की विकास यात्रा आदिम स्तर से होते हुए उन्नत स्तर, मध्यवर्गीय समाज से होते हुए आज औद्योगिक समाज के पायदान पर खड़ी है। पारसन्स द्वारा वर्णित उपरोक्त विन्यास यात्रा का क्रमवार विवेचन इस प्रकार है।

1. **आदिम स्तर :** इस स्तर में मनुष्य पशुओं के समान जीवन व्यतीत करता था। लेकिन इस स्तर के उत्तरार्द्ध तक पहुँचते–पहुँचते विभिन्न प्रकार के प्रतीकों के सहारे मनुष्य अपने विचारों, विश्वासों, इच्छाओं एवं मनोवृत्तियों को व्यक्त

किया करते थे। मानव समाज की इस विकासयात्रा को पारसन्स संघटक प्रतीकवाद नाम देता है।

2. **उन्नत आदिम स्तर** : जैसे–जैसे मानव सभ्यता को सीढ़ियों को पार करता गया वैसे–वैसे वह उन्नत स्तर की तरफ अग्रसर होता गया। पारसन्स कहता है कि इसी स्तर के समाज के अन्दर सर्वप्रथम सामाजिक संस्तरण की उत्पत्ति हुई। जिसके कारण सामाजिक समानता में कमी आयी। वहीं वर्ग जैसी अवधारणा का भी प्रादुर्भाव हुआ। खेती, पशु–पालन आदि जैसे पेशे विकसित हुए। साथ ही धर्म का स्पष्ट स्वरूप उभरकर सामने आया।

3. **मध्यमवर्गीय समाज** : मानव सभ्यता के विकासक्रम के तीसरे चरण को पारसन्स मध्यमवर्गीय समाज कहा है। साथ ही इस चरण में दो उप चरणों की चर्चा करता है – प्राचीन समाज एवं ऐतिहासिक समाज। पारसन्स इस चरण में कहता है कि धर्म का इतना अधिक प्रभाव हो गया है कि लोगों के दिन–प्रतिदिन के जीवन को बड़े स्तर पर प्रभावित करने लगा। साथ ही साथ इसी स्तर में भाषा एवं साहित्य का विकास बड़े स्तर पर हुआ। शिक्षा–दीक्षा का प्रादुर्भाव हुआ। पारसन्स प्राचीन मिस्र, चीन एवं रोम की सभ्यताओं को मध्यवर्गीय समाज को उदाहरण के रूप में देखता है।

4. **औद्योगिक समाज** : सामाजिक परिवर्तन अथवा मानव की विकास यात्रा के चौथे पायदान को उद्योगीकृत समाज का नाम देता है। इस समाज में बड़े स्तर पर विभेदीकरण की वैचारिकी विकसित हुई। साथ ही साथ मानव समाज में विशेषीकरण का प्रादुर्भाव हुआ। राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच एक अलगाववाद की खाईं बड़े स्तर पर दिखाई देने लगी। परम्परागत वैचारिकी एवं विश्वासों के स्थान पर वैज्ञानिक चिन्तन तथा आधुनिकता ने अपनी जगह बना ली। वहीं समूहवाद के स्थान पर व्यक्तिवाद को बड़े स्तर पर बल मिला। आध्यात्मवाद के स्थान पर भौतिकवादी मूल्य ने अपनी पकड़ मजबूत की।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि मानव सभ्यता अपने परिवर्तन के बहाव में विभिन्न चरणों से गुजरती हुई आज आधुनिकता ही नहीं, वरन् उत्तर आधुनिकता के मुहान पर खड़ी है।

28.4 सारांश

पारसन्स प्रकार्यवाद से इतने प्रभावित थे कि उन्हें लगता था कि आधुनिक समाज हर तरह से सम्बद्ध व एकीकृत है। उन्होंने यह कभी नहीं देखा कि समाज में श्रम विभाजन इतना अधिक बढ़ गया है कि समाज की एकता खतरे में आ गई है। पारसन्स ऐसे अमेरिकी समाजशास्त्री रहे हैं जिन्होंने अपनी सामाजिक क्रिया के व्याख्या में संस्कृति, व्यक्तित्व व समाज–व्यवस्था के तत्वों का समन्वित तरीके से प्रयोग किया। अपने सामाजिक विश्लेषण में पारसन्स ने सामाजिक स्तरीकरण के सन्दर्भ में कहा है कि यह मनमाने ढंग से नहीं किया जाता। इसके तीन आधार हैं : 1. गुण, 2. व्यवहार कुशलता, 3. मिल्कियत। इन तीनों आधारों के मूल्यांकन

की बात समाज के केन्द्रीय मूल्य प्रतिमानों के अनुसार किया जाता है। जो अनुकूलन, लक्ष्य प्राप्ति, एकीकरण तथा प्रतिमान स्थिरता है।

इनमें प्रथम दो अनुकूल व लक्ष्य प्राप्ति को पारसन्स ने बाह्य तथा लक्ष्यात्मक माना है, जबकि एकीकरण व यथास्थिति को आंतरिक व साधनात्मक माना है। अनुकूलन को पारसन्स ने भौतिक तत्वों से सामन्जस्य बैठाने की प्रक्रिया कहा तथा इसे आर्थिक व्यवस्था कहा है। लक्ष्य प्राप्ति के सन्दर्भ में आपका कथन है कि प्रत्येक व्यवस्था का कोई न कोई साधनों की लक्ष्य पूर्ति में लगाना तभी संभव है, जब शक्ति का प्रयोग किया जाए– राज्य की संस्था षक्ति का प्रयोग करती है। पारसन्स इसे राजनीतिक व्यवस्था कहते हैं।

समाज–व्यवस्था में अनेक उप व्यवस्थाएं होती हैं। अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था, शैक्षणिक व्यवस्था, सैन्य व्यवस्था आदि उप व्यवस्थाओं का परस्पर ऐसा सन्तुलन होना चाहिए कि सभी मिल–जुलकर समाज व्यवस्था को चलाने में सहायक हो। अतः सभी उपव्यवस्थाओं को एक सूत्र में बांधे रखने का कार्य एकीकरण कहलाता है। पारसन्स इसे सांस्कृतिक व सामुदायिक संगठन की व्यवस्था मानते हैं। यह कार्य समाज में धर्म व कानून करते हैं। प्रतिमान अनुरक्षण का कार्य समाज तनाव प्रबन्ध व सामाजिक नियन्त्रण के माध्यम से कार्य करता है। जिसमें परिवार व शिक्षा व्यवस्थाएं प्रमुख भूमिका निभाती हैं। इस प्रकार से समाज के यह घटक अपने परिवर्तन से सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गतिमान बनाए रखते हैं।

28.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गुप्ता, एम.एल., शर्मा, डी.डी. : समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2004
2. रावत, हरिकृष्ण : समाजशास्त्रीय चिन्तक एवं सिद्धान्तकार, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2003
3. मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ : सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
4. मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ : समकालीन उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त. विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
5. पाण्डेय, रविप्रकाश : समाजशास्त्रीय सिद्धान्त : अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य, विजय प्रकाशन, वाराणसी, 2014

28.6 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरी प्रश्न

1. पारसन्स ने सामाजिक जीवन की कौन–कौन सी विशेषताएं बतलाई है?
2. पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था की कितनी पूर्वावश्यकताओं को बतलाया है?

3. पारसन्स के अनुसार लक्ष्य प्राप्ति का सम्बन्ध किस व्यवस्था से होता है?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पारसन्स के प्रकार्यवाद व सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या कीजिए।
2. पारसन्स के द्वारा गिनाए गए पूर्वावश्यकताओं का उल्लेख कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पारसन्स ने 'अमेरिकन समाजशास्त्र परिषद' की किस वर्ष की सभा में प्रकार्यवाद की वकालत की?

   (क) सन् 1945 ई. (ख) सन् 1947 ई.
   (ग) सन् 1951 ई. (घ) सन् 1937 ई.

2. पारसन्स ने समाज की कितनी पूर्वावश्यकताओं को गिनाया है?

   (क) दो (ख) तीन
   (ग) चार (घ) पाँच

3. पारसन्स ने अनुकूलन को किस प्रकार की व्यवस्था कहा है?

   (क) राजनीतिक (ख) आर्थिक
   (ग) सांस्कृतिक (घ) सामुदायिक

4. राजनीतिक व्यवस्था को पारसन्स ने किस प्रकार के प्रतिमानों से सम्बन्ध किया है।

   (क) लक्ष्य प्राप्ति (ख) अनुकूलन
   (ग) प्रतिमान (घ) एकीकरण

5. धर्म व कानून किस प्रकार के सामाजिक केन्द्रीय प्रतिमान से सम्बन्ध है।

   (क) एकीकरण (ख) प्रतिमान स्थिरता
   (ग) अनुकूलन (घ) लक्ष्य प्राप्ति

28.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ख), 2. (ग), 3. (क), 4. (क), 5. (क)

28.8 पारिभाषिक शब्दावली

Functionalism	प्रकार्यवाद
Adaptation	अनुकूलन
Integration	एकीकरण
Goal Achievement	लक्ष्य प्राप्ति
Social Change	सामाजिक परिवर्तन

इकाई–29 : व्यक्त और अव्यक्त प्रकार्य – मर्टन

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य

29.1 प्रस्तावना

29.2 राबर्ट के. मर्टन : जीवन परिचय

29.3 प्रकार्य : अर्थ एवं परिभाषा

29.4 प्रकार्य की विशेषताएं

29.5 अकार्य : अर्थ एवं परिभाषा

29.6 प्रकार्य एवं अकार्य में अन्तर

29.7 प्रकट एवं अप्रकट प्रकार्य

29.8 प्रकट एवं अप्रकट प्रकार्य में अन्तर

29.9 मर्टन के प्रकार्य की मानवीय समाज़ में उपादेयता

29.10 सारांश

29.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

29.12 बोध के प्रश्न

(क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

29.13 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

29.14 पारिभाषिक शब्दावली

29.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- राबर्ट के मर्टन के जीवन परिचय को जान पायेंगे।
- प्रकार्य की परिभाषा सहित उसकी विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे।
- प्रकार्य तथा अकार्य के मध्य एवं प्रकट एवं अप्रकट प्रकार्य में मध्य अन्तर कर सकेंगे।
- मर्टन के सिद्धान्त का मानवीय समाज में महत्व को जान पायेंगे।

29.1 प्रस्तावना

राबर्ट के. मर्टन ने समाजशास्त्र में कई भिन्न विषयों का आलोचनात्मक परीक्षण किया है। इनमें से कुछ प्रमुख विषय, सामाजिक संरचना, प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य, विचलन और एनोमी, भूमिका सिद्धान्त, कर्मचारी तन्त्र, मध्यवर्ती सीमा सिद्धान्त तथा ज्ञान का समाजशास्त्र प्रमुख हैं। प्रस्तुत इकाई मुख्य रूप से मर्टन के जीवन परिचय के साथ उनके प्रकार्यवाद पर केन्द्रित है। प्रकार्य जहाँ किसी सामाजिक संरचना की इकाई द्वारा सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को प्रदान किया गया वह कार्य है जो व्यवस्था को अनुकूलन में सहायता प्रदान करता है। वही अकार्य या अप्रकार्य इकाई द्वारा सम्पादित किया जाने वाला कार्य है जो सामाजिक व्यवस्था के सुचारू रूप से चलाने में बाधा या अवरोध उत्पन्न करता है। प्रकट तथा अप्रकट प्रकार्य दोनों सामाजिक व्यवस्था के लिए लाभदायक होते हैं। लेकिन एक प्रत्यक्ष रूप से तथा दूसरा अप्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुँचाता है। अस्तु प्रस्तुत इकाई में हम इन्हीं पक्षों की विवेचना करेंगे।

29.2 राबर्ट के. मर्टन : जीवन परिचय

राबर्ट के. मर्टन का नाम आधुनिक युग के उन समाजशास्त्रियों में लिया जाता है, जिन्होंने समाजशास्त्र को समृद्ध बनाने एवं स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनका जन्म अमेरिका के फिलाडेल्फिया नगर में सन् 1910 में हुआ था। मर्टन ने हाईस्कूल की परीक्षा सन् 1927 में पास की तथा स्नातक की उपाधि ओबरलिन से प्राप्त की थी। स्नातक की परीक्षा पास करने के बाद मर्टन का प्रवेश स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए अमेरिका के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय हावर्ड में हुआ। इसी विश्वविद्यालय में मर्टन को सोरोकिन तथा टालकट पारसन्स जैसे विद्वानों का शिष्यत्व प्राप्त हुआ। हावर्ड विश्वविद्यालय से सन् 1936 में टालकट पारसन्स के निर्देशन में अपनी पी–एचडी. की उपाधि पूर्ण की। मर्टन पारसन्स के सफलतम शिष्यों में से एक थे। बाद में अपनी विद्वता के कारण हार्वर्ड जैसे विश्वविद्यालय में अपने शैक्षिक गुरु पारसन्स के सेवानिवृत्ति के बाद उसी पद पर कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। हार्वर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षक के रूप में कार्य करने से पूर्व सन् 1939 में टूलेन विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्त हुए जहाँ 1940 में प्रोफेसर तथा 1941 में चेयरमैन का पद प्राप्त हो गया। टूलेन विश्वविद्यालय से मर्टन कोलम्बिया विश्वविद्यालय चले गये। जहाँ सन् 1947 में इनकी पदोन्नति प्रोफेसर के रूप में हो गयी। सन् 1955 के लगभग मर्टन कोलम्बिया विश्वविद्यालय के ही Bureau of Allied Social Research के निदेषक बन गये। राबर्ट के मर्टन की पहली कृति Science Technology and Society in Seventeenth Century England (1938) है। मर्टन द्वारा लिखित Social Theory and Social Structure सर्वप्रथम सन् 1949 में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद इस

पुस्तक के कई संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। आज इस पुस्तक को समाजशास्त्रीय साहित्य की महत्वपूर्ण पुस्तक के रूप में देखा जाता है। इसी पुस्तक में मर्टन ने सामाजिक संरचना एवं विसंगति, प्रकट तथा अन्तर्निहित प्रकार्य, सन्दर्भ समूहों का सिद्धांत, ज्ञान का समाजशास्त्र तथा विज्ञान के समाजशास्त्रों के अध्ययनों का विस्तृत विश्लेषण व व्याख्या प्रस्तुत किया है। मर्टन की स्वयं या अन्य विद्वानों के साथ लिखी गयी अन्य पुस्तकों में Sociology Today – Problems and Prospects (1959), Reader in Bureaucracy (1952), Continuties in Social Research (1950), The Student Physicial : Introductory Studies in the Sociology of Medical Edcuation (1957) आदि नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

29.3 प्रकार्य : अर्थ एवं परिभाषा

प्रकार्य शब्द का समाजशास्त्र में पदार्पण जीवन विज्ञान से हुआ है। सर्वप्रथम हरबर्ट स्पेंसर ने समाजशास्त्र में संरचना तथा प्रकार्य शब्दों का प्रयोग किया था। स्पेंसर के अनुसार जिस प्रकार मानव शरीर के विभिन्न अंग जैसे हाथ, पैर, नाक, कान आदि विभिन्न प्रकार के कार्यों द्वारा एक ही शरीर में सम्बन्धित सभी कार्यों को सम्पादित करते हैं ठीक उसी प्रकार सामाजिक संरचना की विभिन्न इकाईयाँ अपने–अपने कार्यों को सम्पादित करती हैं, जिसे प्रकार्य कहा जाता है।

मर्टन ने अपनी पुस्तक Social Theory and Social Structure में प्रकार्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "प्रकार्य वे अवलोकित परिणाम है जो कि सामाजिक व्यवस्था के अनुकूलन या सामंजस्य को बढ़ाते हैं।" रेडक्लिफ ब्राउन के अनुसार, "किसी सामाजिक इकाई का प्रकार्य उस इकाई का वह योगदान है जो वह सामाजिक जीवन को देती है।" एक अन्य परिभाषा में ब्राउन कहते हैं कि, "प्रकार्य आंशिक क्रिया द्वारा उस सम्पूर्ण क्रिया को दिया जाने वाला योगदान है जिसका कि वह एक भाग है।" जानसन ने प्रकार्य की परिभाषा इस प्रकार की है कि, "किसी भी आंशिक संरचना जैसे एक उपसमूह, एक भूमिका, एक सामाजिक नियम अथवा एक सांस्कृतिक मूल्य का वह योगदान, जो वह एक सामाजिक व्यवस्था या उपव्यवस्था की एक या अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करें, 'प्रकार्य' कहा जाता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं में प्रकार्य के विभिन्न रूपों को बताया गया है। सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि प्रकार्य समाज और संस्कृति की इकाई का वह योगदान है जो इनकी निरन्तरता एवं व्यवस्था बनाये रखने में सहायक होती है। प्रकार्य द्वारा सामाजिक इकाई समाज की आवश्यकता को पूरा करने तथा उसमें सामंजस्य एवं अनुकूलन करने में सहायक होती है।

मर्टन ने अपनी पुस्तक Social Theory and Social Structure में प्रकार्य को विस्तार रूप से समझाया है और यह कहा है कि अंग्रेजी के Function शब्द का प्रयोग पाँच विभिन्न अर्थों उत्सव के रूप में, व्यवसाय के रूप में, पद पर आसीन व्यक्ति के कार्यकलाप के रूप में, गणितशास्त्रीय रूप में तथा जीव विज्ञान के अर्थ में प्रयोग किया गया है। मर्टन के अनुसार प्रकार्य का प्रयोग केवल विभिन्न अर्थों के रूप में ही नहीं किया गया है, अपितु प्रकार्य को प्रकट करने के लिए भी अन्य शब्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे उपयोगिता, प्रयोजन, प्रेरणा, लक्ष्य तथा परिणाम आदि।

29.4 प्रकार्य की विशेषताएं

प्रकार्य की निम्नलिखित महत्वपूर्ण विशेषताएं होती है :

1. प्रकार्य का सम्बन्ध सामाजिक संरचना का निर्माण करने वाली इकाईयों से होता है।

2. प्रकार्य सामाजिक संरचना की इकाईयों द्वारा किये जाने वाले उन्हीं कार्यों को कहते हैं, जो समाज द्वारा स्वीकृत तथा मान्य हो।

3. प्रत्येक प्रकार्य का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। लेकिन मुख्य रूप से प्रकार्य का उददेश्य सामाजिक एवं मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।

4. प्रकार्य समाज में अनुकूलन एवं सामंजस्य बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जिसके कारण सामाजिक संगठन एवं व्यवस्था बनाये रखने में सहायक होते हैं।

5. सामाजिक संरचना की इकाईयों द्वारा किये जाने वाले सभी कार्यों को प्रकार्य नहीं कहा जा सकता है, बल्कि केवल उन्हीं कार्यों को प्रकार्य करते हैं, जो समाज द्वारा अपेक्षित होता है।

6. प्रकार्य एक गतिशील अवधारणा है। एक समय में जो कार्य समाज के लिए उपयोगी हो सकता है, वही प्रकार्य कहलाता है। लेकिन वही कार्य दूसरे समय में समाज के लिए अनुपयोगी होने पर प्रकार्य की श्रेणी में नहीं आएगा।

7. समाज में बहुत से प्रकार्य है जो सामाजिक संरचना की विभिन्न इकाईयों द्वारा सम्पादित की जाती हैं लेकिन मोटे तौर पर इन्हें धार्मिक, आर्थिक, राजनीति, सामाजिक आदि प्रकार्यों में बाँट सकते हैं।

29.5 अकार्य : अर्थ एवं परिभाषा

अकार्य की अवधारणा का प्रयोग प्रकार्य की विरोधी अवधारणा के रूप में देखा जाता है। जैसे प्रकार्य उसे कहते हैं जब कोई सामाजिक व्यवस्था को बनाये

रखने में सकारात्मक भूमिका अदा करें। इसके विपरीत यदि कोई सामाजिक संरचना की इकाई ऐसा कार्य करें जो सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में बाधा उत्पन्न करें या नकारात्मक भूमिका अदा करें तो उसे अकार्य कहा जाता है। उदाहरण के लिए परिवार सामाजिक संरचना की एक महत्वपूर्ण इकाई है। परिवार में सम्पत्ति का साझा स्वामित्व होता है तथा इसका संचालन एक मुखिया (परिवार का मुखिया) द्वारा किया जाता है। यदि परिवार में सभी सदस्य सहयोग एवं समन्वय की भावना से काम करते हैं तो परिवार की सम्पत्ति व प्रतिष्ठा में वृद्धि काफी होती है। वह परिवार का प्रकार्य है। इसके विपरीत यदि परिवार में कलह व वैमनस्य है तो परिवार की सम्पत्ति व प्रतिष्ठा को हानि पहुँचती है। इसे अकार्य कहा जाता है। जहाँ प्रकार्य सामाजिक व्यवस्था को संचालन में सहयोग प्रदान करते हैं। वहीं अकार्य सामाजिक व्यवस्था के संचालन में अवरोध उत्पन्न करते हैं। अकार्य को अप्रकार्य के नाम से भी जाना जाता है।

मर्टन ने अपनी पुस्तक Social Theory and Social Structure में अकार्य को प्रकार्य के विरोधी के रूप में परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "प्रकार्य वे अवलोकित परिणाम है जो कि सामाजिक व्यवस्था के अनुकूलन या सामंजस्य को बढ़ाते हैं।" अकार्य वे अवलोकित परिणाम है जो कि व्यवस्था के अनुकूलन या सामंजस्य को कम कर देते हैं।"

जानसन ने प्रकार्य व अकार्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "यदि कोई भी आंशिक ढाँचा, कोई उप समूह, भूमिका, सामाजिक मानदण्ड अथवा सांस्कृतिक मूल्य, सामाजिक प्रणाली या उपप्रणाली की एक या अधिक सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में योग दे तो यह कहा जाता है कि यह प्रकार्यमय है, यदि वह इनमें से एक में या अधिक आवश्यकताओं को पूरा करने में बाधा उपस्थित करें तो उसे अकार्य कहा जाता है।"

प्रकार्य एवं अकार्य का अभिप्राय अच्छे एवं बुरे से नहीं है। तथा इसका मूल्यों से सीधा सम्बन्ध भी नहीं है, बल्कि प्रकार्य एवं अकार्य एक गतिशील अवधारणा है। एक व्यवस्था के लिए जो प्रकार्यात्मक है वहीं दूसरी व्यवस्था के लिए अप्रकार्यात्मक हो सकता है तथा दूसरे समय में उसी के लिए प्रकार्यात्मक भी हो सकता है।

29.6 प्रकार्य एवं अकार्य में अन्तर

प्रकार्य तथा अकार्य में निम्नलिखित अन्तर है :

1. प्रकार्य सामाजिक व्यवस्था के लिए लाभकारी होते हैं, जबकि अकार्य सामाजिक व्यवस्था के लिए हानिकारक होते हैं।

2. प्रकार्य इकाई द्वारा दिये जाने वाले वे कार्य होते हैं जो सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने तथा अनुकूलन में सहायक होते हैं। इसके विपरीत अकार्य , वे

कार्य या परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में बाधा उत्पन्न करते हैं।

3. प्रकार्य वे कार्य होते हैं जिनको सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है जबकि अकार्यों को सामाजिक मान्यता नहीं प्राप्त होती है।

4. प्रकार्य सामाजिक हित में होते हैं तथा प्रकार्य करने वालों की प्रशंसा होती है। उन्हें इसके लिए पुरस्कृत भी किया जाता है जबकि अकार्य समाज के लिए अहितकारी होते हैं तथा समाज इसकी आलोचना करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर दण्ड की भी व्यवस्था करता है।

5. प्रकार्य सकारात्मक प्रकृति के होते हैं तथा सामाजिक नियमों के अनुकूल होते हैं जबकि अकार्य नकरात्मक प्रकृति के होते हैं तथा सामाजिक नियमों के प्रतिकूल होते हैं।

29.7 प्रकट एवं अप्रकट प्रकार्य (Manifest & Latent Function)

प्रकट तथा अप्रकट प्रकार्य की अवधारणा राबर्ट के. मर्टन ने अपनी पुस्तक Social Theory and Social Structure में प्रतिपादित किया। मर्टन स्वयं प्रकट एवं अप्रकट प्रकार्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि, "प्रकट प्रकार्य प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाले वे परिणाम है जो सामाजिक व्यवस्था में अनुकूलन तथा समायोजन लाते हैं तथा उस व्यवस्था में सम्मिलित सदस्यों द्वारा मान्य तथा इच्छित होते हैं।"

'अप्रकट प्रकार्य वे परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था में समायोजन या अनुकूलन तो लाते हैं किन्तु व्यवस्था के सदस्यों द्वारा न तो मान्य होते हैं और न इच्छित ही।"

जानसन के अनुसार, "प्रकट प्रकार्य वे होते हैं जो अभीष्ट और अभिज्ञात होते हैं, अप्रकट प्रकार्य न तो अभीष्ट होते हैं और न अभिज्ञात ही।"

जब कुछ प्रकार्यों के परिणाम पहले से ही ज्ञात होते हैं तथा निश्चित व स्वीकृत होते हैं तो उसे प्रकट प्रकार्य कहा जाता है लेकिन कभी–कभी कुछ प्रकार्यों के ऐसे परिणाम भी मिलते हैं जो हम पहले कभी नहीं सोचे होते। यद्यपि ये परिणाम भी प्रकट प्रकार्य की ही भांति सामाजिक व्यवस्था के अनुकूलन व सामंजस्य में सहायता ही करते हैं।

प्रकट और अप्रकट प्रकार्य को एक उदाहरण द्वारा आसानी से समझाया जा सकता है। एक व्यक्ति आई.ए.एस. अधिकारी बनने के लिए पढ़ाई कर रहा है। उसका प्रकट प्रकार्य आई.ए.एस. अधिकारी बनकर पैसा कमाना तथा प्रतिष्ठा बढ़ाना है। यह उस व्यक्ति का प्रकट प्रकार्य है लेकिन व्यक्ति के आई.ए.एस. अधिकारी बन जाने के बाद यदि उसका विवाह एक पढ़ी–लिखी सुन्दर कन्या

तथा प्रतिष्ठित परिवार में हो जाय तो यह उस व्यक्ति का अप्रकट प्रकार्य होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकट एवं अप्रकट दोनों प्रकार के प्रकार्य व्यक्ति व समाज के लिए लाभदायक होते हैं। अन्तर सिर्फ यह है कि अप्रकट प्रकार्य अप्रत्यक्ष रूप से लाभदायक होता है जबकि प्रकट प्रकार्य प्रत्यक्ष रूप से लाभदायक होता है।

29.8 प्रकट एवं अप्रकट प्रकार्य में अन्तर

प्रकट एवं अप्रकट प्रकार्य में प्रमुख अन्तर इस प्रकार है :

1. प्रकट प्रकार्य वे होते हैं जो बाहरी रूप से स्पष्ट होते हैं तथा जिन्हें पूरा करने के लिए कर्त्ता सजग रूप से प्रयास करता है। इसके विपरीत अप्रकट प्रकार्य बाह्य रूप से स्पष्ट नहीं होते तथा इसे पूर्ण करने के लिए कर्ता द्वारा सजग प्रयास भी नहीं किया जाता है।

2. प्रकट प्रकार्य कर्ता द्वारा पूर्व इच्छित होते हैं जबकि अप्रकट प्रकार्य पूर्व इच्छित नहीं होते हैं।

3. प्रकट प्रकार्य सम्भावित परिणाम होते हैं जिनके बारे में कर्ता पहले से ही जागरूक एवं आशान्वित होता है। इसके विपरीत अप्रकट प्रकार्य असम्भावित परिणाम होते हैं जिसके बारे में कर्ता को पहले से आशा नहीं रहती है।

4. प्रकट प्रकार्य द्वारा पहले से ही स्वीकृत एवं मान्य होता है। जबकि अप्रकट प्रकार्य कर्ता द्वारा न तो पहले से ही स्वीकृत होता है और न ही मान्य।

29.9 मर्टन के प्रकार्य की मानवीय समाज में उपादेयता (Utility of Merton's Functionism in Human Society)

मर्टन के प्रकार्य का मानव समाज को समझने तथा उसके जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में महत्वपूर्ण योगदान है। सामाजिक संरचना का निर्माण समाज की विभिन्न इकाईयों द्वारा किया जाता है। ये इकाईयाँ एक निश्चित प्रकार का कार्य करके सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मानव एक सामाजिक प्राणी है तथा उसे अपने जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता पड़ती है। इस स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में मर्टन के प्रकार्यवाद का महत्वपूर्ण योगदान है।

मर्टन का प्रकट एवं अप्रकट प्रकार्य दोनों सामाजिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने में सकारात्मक भूमिका निभाते हैं। एक स्थान पर मर्टन ने स्वयं लिखा है कि, "कई बार हमें ऊपरी दृष्टि से एक व्यवहार अतार्किक लगता है किन्तु उसका सामाजिक दृष्टि से महत्व होता है।" उदाहरण के लिए होपी

जनजाति के लोग वर्षा लाने के लिए गाँव के बाहर आग जलाकर खूब धुँआ करते हैं। उनका विश्वास है कि यह धुँआ ऊपर जाकर बादल बन जायेगा तथा फिर वर्षा होगी। इस उत्सव का प्रकट प्रकार्य उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि इसका अप्रकट प्रकार्य। इसका अप्रकट प्रकार्य यह है कि जब लोग एकत्र होते हैं। उनमें एक दूसरे के सुख–दुःख में एक होने के भाव पनपते हैं तथा सम्बन्धों में घनिष्ठता पैदा होती है। वेबलन के अनुसार महँगी वस्तुओं को खरीदने का प्रकट प्रकार्य यह है कि वस्तुएँ अच्छी हैं लेकिन अप्रकट प्रकार्य यह है कि इससे व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ती है।

इस प्रकार मर्टन के प्रकार्य का मानव समाज में महत्वपूर्ण भूमिका है जो उनके सामाजिक जीवन का मार्गदर्शन करने में सहायक होता है।

29.10 सारांश

राबर्ट के. मर्टन आधुनिक समाजशास्त्रियों में एक महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ हैं। जिन्होंने समाजशास्त्र को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। उनके द्वारा दी गयी प्रकार्य की अवधारणा, प्रकट तथा अप्रकट प्रकार्य की अवधारणा समाजशास्त्र का मार्गदर्शक बनकर उभरी है। प्रकट कार्य जहाँ समाज की सामाजिक व्यवस्था व सन्तुलन को बनाये रखने में प्रत्यक्ष सहयोग देते हैं तो वहीं अप्रकट प्रकार्य, अप्रत्यक्ष सहयोग द्वारा सामाजिक व्यवस्था व संरचना को संतुलित रखने में अप्रतिम स्थान रखते हैं। मर्टन द्वारा दिया गया अप्रकार्य या अकार्य की अवधारणा जो कि सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में बाधा उत्पन्न करती है। समय के साथ–साथ परिवर्तित होकर सामाजिक व्यवस्था के लिए लाभदायक भी हो सकता है। इसी प्रकार मर्टन का गैर प्रकार्य की अवधारणा यह सिद्ध करती है कि सामाजिक इकाईयों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कुछ कार्य ऐसे भी हैं जो सामाजिक व्यवस्था के लिए अब अनुद्देश्यपूर्ण तथा असंगत हो गये हैं।

29.11 सन्दर्भ

1. मर्टन, राबर्ट के. : सोशल थ्योरी एण्ड सोशल स्ट्रक्चर
2. मुकर्जी, आर.एन. : सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली
2. रावत, हरिकृष्ण : समाजशास्त्रीय चिन्तक एवं सिद्धान्तकार, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
3. मुखर्जी, आर.एन. : उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली
4 Bogardus, Emony S. : The Development of Social Thought, 4th Edition, Allied Pacific Private Ltd., Bombay, 1960

5. पाण्डेय, रवि प्रकाश : समाजशास्त्रीय सिद्धान्त : अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009

29.12 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रकार्य एवं अकार्य के मध्य पाये जाने वाले अन्तरों को संक्षेप में लिखिए।
2. अकार्य का अर्थ बताते हुए उसे परिभाषित कीजिए।
3. अप्रकट प्रकार्य को एक उदाहरण सहित बताइये।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. राबर्ट के. मर्टन का संक्षिप्त जीवन परिचय देते हुए उनकी प्रमुख कृतियों का उल्लेख कीजिए।
2. प्रकार्य का क्या अभिप्राय है? इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्ण कीजिए।
3. प्रकट तथा अप्रकट प्रकार्य को परिभाषित करते हुए इनमें पाये जाने वाले प्रमुख अन्तरों को लिखिए।
4. मर्टन के प्रकार्य का मानवीय समाज में क्या उपयोगिता है? निबन्धात्मक शैली में लिखिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1- Social Theory and Social Structure पुस्तक के लेखक हैं।

(क) रेडकिल्फ ब्राउन (ख) लेवी स्ट्रास

(ग) राबर्ट के. मर्टन (घ) मैलिनोवस्की

2. प्रकार्य को प्रकट तथा अप्रकट रूप में वर्गीकृत किया।

(क) राबर्ट के. मर्टन ने (ख) जानसन ने

(ग) नाडेल ने (घ) रेडक्लिफ ब्राउन

3. अकार्य (दुष्प्रकार्य) होते हैं।

(क) इच्छित है (ख) मान्य है

(ग) अनुकूलन को कम कर देता है। (घ) अनुकूलन में मदद करता है

4. प्रकट प्रकार्य का आशय है।

(क) मान्य व इच्छित होते हैं

(ख) न तो मान्य, न ही इच्छित होते हैं

(ग) केवल मान्य होते हैं इच्छित नहीं

(घ) केवल इच्छित होते हैं मान्य नहीं

29.13 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ग), 2. (क), 3. (ग), 4. (क)

29.14 पारिभाषिक शब्दावली

Function	प्रकार्य
Dysfunction	अप्रकार्य
Structure	संरचना
Characteristics	विशेषता
Manifest function	प्रकट प्रकार्य
Latent Function	अप्रकट प्रकार्य
Social System	सामाजिक व्यवस्था
Anomi	विसंगति
Perspective	परिप्रेक्ष्य
Beurocracy	कर्मचारीतंत्र
Functionalism	प्रकार्यवाद
Reference Group	संदर्भ समूह
Knowledge of Sociology	ज्ञान का समाजशास्त्र
Family	परिवार
Importance	उपयोगिता

इकाई 30 : संदर्भ समूह का सिद्धांत–मर्टन

इकाई की रूपरेखा

30.0

30.1 प्रस्तावना

30.2 संदर्भ समूह की अवधारणा

30.2.1 सापेक्षिक वंचन की अवधारणा

30.2.2 समूह और समूह सदस्यता की अवधारणा

30.2.3 गैर–सदस्यता की अवधारणा

30.2.4 अग्रिम समाजीकरण

30.2.5 सकारात्मक और नकारात्मक संदर्भ समूह

30.3 संदर्भ समूह के निर्धारक तत्व

30.3.1 संदर्भ व्यक्ति

30.3.2 सदस्यता समूहों में से संदर्भ समूहों का चयन

30.3.3 गैर–सदस्यता समूहों का चयन

30.3.4 मूल्यों तथा प्रतिमानों को परिभाषित करने के लिए संदर्भ समूहों की भिन्नता

30.3.5 निरंतर सक्रिय संपर्क वाले उपसमूहों अथवा प्रस्थिति–श्रेणियों में से संदर्भ समूहों का चयन

30.4 सारांश

30.5 संदर्भ ग्रन्थ सूची

30.6 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

30.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

30.8 पारिभाषिक शब्दावली

30.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त

- संदर्भ समूह की अवधारणा को समझ सकेगें।
- यह बताना कि लोग अपनी भूमिका–निर्वहन तथा उपलब्धियों का मूल्यांकन करने के लिए अलग–अलग संदर्भ समूहों, सदस्यता समूहों तथा गैर–सदस्यता समूहों का चुनाव क्यों करते हैं।
- विभिन्न संदर्भ समूहों के प्रति लोगों के झुकाव के कारण सापेक्षिक वंचना की अनुभूति का विश्लेषण कर सकेगें।
- यह पता लगाना कि किस प्रकार आपके द्वारा अपने संदर्भ व्यक्तियों एवं संदर्भ समूहों का चुनाव किया जाता है तथा उसी के अनुरूप अपनी जीवन–शैली, दृष्टिकोण आदि का निर्धारण कर सकगें।

30.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आपको संदर्भ समूह के सिद्धांत का परिचय देने का प्रयास किया गया है। विशेषकर यह बताया जा रहा है कि अमरीकी समाजशास्त्री रॉबर्ट के. मर्टन ने किस प्रकार अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सोशल थ्योरी एण्ड सोशल स्ट्रक्चर' (1949) में इस सिद्धांत की विस्तृत विवेचना की है।

30.2 संदर्भ समूह की अवधारणा

संदर्भ समूह की अवधारणा का विकास सर्वप्रथम एच. हाइमेन ने अपने 1942 में लेख 'Psychology of Status' में किया है। व्यक्ति का व्यवहार बहुत कुछ मात्रा में इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस समूह का सदस्य है अथवा किस समूह से अपने को सम्बन्धित मानता है। आपको यह कहना आवश्यक नहीं कि सभी लोग समूहों में रहते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहने के लिए आपको कुछ सम्बन्धों के बीच रहना पड़ता है। और फिर एक समूह है क्या? सम्बन्धों का ताना–बाना ही तो समूह है।

उदाहरण के लिए, एक विद्यार्थी अन्य विद्यार्थियों के एक समूह से जुड़ा होता है, जिनके साथ वह निरन्तर रूप से सक्रिय संपर्क में रहता है। आपको पता है कि आप अपने समूह के सदस्यों से किस प्रकार के संबंधों की अपेक्षा करते हैं। दूसरे शब्दों में आपका आचरण, व्यवहार, सम्बन्ध रखना आदि सदैव उस समूह से निर्देशित होता है, जिससे आप सम्बन्धित है। जब तक आपका व्यवहार विद्यार्थियों के समूह की अनुकृत अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं ढ़लता तब तक आप विद्यार्थी के रूप में आचरण नहीं कर सकते। इसी से विद्यार्थी के रूप में आपकी पहचान होती है।

इसी प्रकार, आप एक परिवार के सदस्य है। आपको पता है कि परिवार एक महत्वपूर्ण प्राथमिक समूह है, जो हमेशा आपके व्यवहार और अपेक्षाओं को

आकार देता है। यदि आप पूरी तरह ही जड़–विहीन नहीं हैं तो आपके लिए अपने माता–पिता, भाई–बहन, मित्र, दोस्त आदि के साथ अनेक तरह के सम्बन्ध के बगैर संभवतः अपने अस्तित्व की कल्पना तक करना संभव न होगा।

आपको यह समझना चाहिए कि कोई भी अलग–थलग रहकर सामान्य जीवन नहीं जी सकता। व्यक्ति कुछ सम्बन्धों के बीच रहते हैं और जिस समूह से वह सम्बन्धित हैं, उनकी अपेक्षाओं को उनकी सहमति प्राप्त होती है। इस प्रकार जिस समूह से वे जुड़े है, वह उनके संदर्भ समूह की भाँति काम करता है।

अतः यह समझा जा सकता है कि संदर्भ समूह क्या है? संदर्भ समूह वह है, जिसके आधार पर व्यक्ति अपनी उपलब्धियों, व्यवहार भूमिका, आकांक्षाओं आदि का मूल्यांकन करता है। संदर्भ समूह ही व्यक्ति को बताता है कि वह गलत काम कर रहा है अथवा सही। इससे यह तथ्य भी सामने आता है कि उसका सदस्यता समूह, अर्थात् जिससे वह जुड़ा है, वही उसका संदर्भ समूह है।

इस प्रकार समस्या यहीं खत्म नहीं हो जाती। जीवन इससे भी अधिक जटिल है। जिनसे आप सम्बन्धित नहीं हैं, वे गैर–सदस्यता समूह भी संदर्भ समूह की तरह काम कर सकते है। जीवन अत्यंत गतिशील है, इसलिए समय–समय पर आपको उन लोगों के बारे में भी जानकारी मिलती रहती है, जो आपके समूह से सम्बन्धित नहीं है और कभी–कभी आपको हैरान होकर स्वंय से प्रश्न करना पड़ता है कि दूसरे लोग आपसे अधिक शक्तिशाली एवं प्रतिष्ठित क्यों हैं?

इस तुलनात्मक विवेचन के कारण व्यक्ति स्वयं को वंचित महसूस करने लगता है। वह उस समूह का सदस्य बनने की कामना करता है, जिससे वह जुड़ा हुआ नहीं है, किन्तु जो अधिक शक्तिशाली एवं प्रतिष्ठित है। फलस्वरूप इस बार वह अपनी उपलब्धियों और काम का मूल्यांकन गैर–सदस्यता समूह के आधार पर करता है।

उदाहरण के लिए, एक युवा विद्यार्थी को लीजिए। उस पर उसकी पाठ्य–सामग्री के अध्ययन तथा परीक्षा आदि का बोझ होता है। वह सचमुच कठोर परिश्रम करता है। उसके पास आराम करने तक की फुरसत नहीं होता है। उसी समय उसको एक अलग तरह के समूह–क्रिकेट खिलाड़ियों के समूह का पता चलता है जो उसकी ही भाँति युवा तथा शिक्षित हैं। वह देखता है कि वे लोग क्रिकेट खेलते हैं, विदेशों मे जाते हैं, जीवन का आनंद लेते हैं, धन कमाते हैं और अखबारों में उनके बारे में खूब लिखा जाता है। क्रिकेट खिलाड़ियों के समूह की सफलता की कहानी से वह अति प्रभावित होता है और उसको लगता है कि एक विद्यार्थी के रूप में वह वंचित और उपेक्षित है। इस प्रकार, क्रिकेट खिलाड़ी उसके संदर्भ समूह की तरह काम करना शुरू कर देते हैं। इस एहसास के परिणाम से, वह पढ़ाई की बजाए क्रिकेट खेलने में अधिक समय लगाने लगता है और आशा करता है कि एक न एक दिन वह भी क्रिकेट खिलाड़ी बनकर

उनकी तरह अपना जीवन यापन करेगा।

असलियत में केवल सदस्यता समूह ही नहीं बल्कि गैर–सदस्यता समूह भी संदर्भ समूह की तरह काम करते हैं। मनुष्य केवल अपने समूह के सदस्यों की दृष्टि से नहीं बल्कि दूसरे समूहों के लोगो की दृष्टि से भी स्वयं को परखते है।

इन सभी तथ्यों को जान लेने के बाद आपको यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि मर्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सोशल थ्योरी एंड सोशल स्ट्रक्चर (1949) में संदर्भ समूह के सिद्धांत को किस प्रकार विकसित किया है।

30.2.1 सापेक्षिक वंचन की अवधारणा

"सापेक्षिक वंचन" के सम्बन्ध में मर्टन की समझ संदर्भ समूह और संदर्भ समूह के आचरण के प्रति उसके विवेचन से अत्यधिक सम्बद्ध है। इसके बिना संदर्भ समूह को पूर्ण रूप से नहीं समझ सकते। मर्टन ने 1949 में प्रिंस्टन विश्वविद्यालय प्रेस से प्रकाशित "द अमेरिकन सोल्जर" के निष्कर्षो के विश्लेषण के दौरान सापेक्षिक वंचन का उल्लेख किया। इस कृति में यह विवेचन करने का प्रयास किया गया था कि अमरिकी सैनिक अपने बारे में क्या सोचा करते थे और अपने भूमिका–निर्वहन और व्यावसायिक उपलब्धियों आदि का मूल्यांकन कैसे किया करते थे।

'द अमेरिकन सोल्जर' के सरल किंतु सार्थक निष्कर्षो का विवेचन प्रस्तुत है:

"सेना में अविवाहित सैनिकों से अपनी तुलना करते हुए विवाहित जवान यह महसूस करता था कि फौज में भर्ती होने से अविवाहित लोगो की अपेक्षा वह अधिक त्याग करता है और विवाहित सैनिकों से अपनी तुलना करते हुए वह यह सोच सकता था कि उससे उन बलिदानों की अपेक्षा की जा रही है, जिससे वे लोग पूरी तरह बचते रहे हैं।" मर्टन के अनुसार यही स्थिति सापेक्षिक वंचन कहलाती है और इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है क्योंकि प्रसन्नता तथा वंचन स्वयं में परिपूर्ण नहीं होते। अतः इसकी मात्रा इस पर निर्भर करती है कि उसे ऑकने के लिए कौन–सा पैमाना अपनाया गया है। यह संदर्भ के स्वरूप पर निर्भर है। विवाहित सैनिक की चिंता यह नहीं है कि उसे क्या मिलता है और उस जैसे दूसरे विवाहित सैनिकों को क्या प्राप्त होता है। इसकी बजाए उसकी चिंता यह है कि वह किस चीज से वंचित हो रहा है। वह जानता है कि उसके अविवाहित साथी तुलनात्मक दृष्टि से स्वतंत्र हैं। उन पर पत्नी या बच्चों का दायित्व नहीं है। इसलिए वे उन जिम्मेदारियों से मुक्त हैं जिनसे विवाहित लोग बच नहीं सकते। दूसरे शब्दों में विवाहित सैनिक उस प्रकार की स्वतंत्रता से वंचित हैं जिसका उनके अविवाहित साथी आनंद उठा रहे है। इसी प्रकार विवाहित सैनिक अन्य विवाहित असैनिक लोगों के साथ तुलना करने पर भी अपने आप को वंचित महसूस करता है। इसका कारण यह है कि विवाहित असैनिक व्यक्ति अपनी पत्नी

तथा बच्चों के साथ रहकर अपनी जिम्मेदारी निभा सकता है, किन्तु विवाहित सैनिक इस सुख से वंचित है क्योंकि सैनिक होने के कारण वह सामान्य पारिवारिक जीवन का आनंद उठाने की स्थिति मे नहीं है।

अब इस स्थिति को समझा जा सकता है। विवाहित सैनिक जिस प्रकार के संदर्भ समूह से अपनी तुलना करता है, उसी के अनुसार वह स्वयं को वंचित महसूस करता है। ऐसा ही एक और निष्कर्ष यह है, "विदेश में गया सैनिक देश में रह रहे सैनिकों से अपनी तुलना करने पर अपने पारिवारिक सम्बन्धों तथा उन सुविधाओं को याद करके अधिक दुःखी होता है जिनका वह अमेरीका में आदी हो चुका है।

इन उदाहरणों को देखने से संदर्भ समूह का अध्ययन बहुत रोचक लगता है। पुरूष एवं स्त्रियाँ हमेशा अपनी स्थिति की तुलना दूसरों की स्थिति से करते रहते हैं। इसी कारण उनमें बेचैनी तथा परिवर्तन एवं आगे बढ़ने की इच्छा बनी रहती है।

30.2.2 समूह और समूह सदस्यता की अवधारणा

संदर्भ समूह का अध्ययन करने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि आखिर समूह है क्या। मर्टन ने समूह तथा समूह–सदस्यता की तीन विशेषताएँ बताई है :

i. पहली विशेषता है : परस्पर संपर्क की आवृत्ति। दूसरे शब्दों में समूह की समाजशास्त्रीय अवधारणा का सम्बन्ध उन अनेक लोगों से है, जो एक–दूसरे के साथ बार–बार सक्रिय में आते है।

ii. दूसरी विशेषता है कि सक्रिय संपर्क में आने वाले लोग स्वयं को सदस्य के रूप में परिभाषित करते हैं। दूसरे शब्दों में वे यह अनुभव करते हैं कि सक्रिय संपर्क के स्वरूप के बारे में उनकी निश्चित (अनुकृत) अपेक्षाएँ है, जो उनके लिए तथा अन्य सदस्यों के लिए नैतिक दृष्टि से अनिवार्य है।

iii. तीसरी विशेषता है कि एक–दूसरे के सक्रिय संपर्क में रहने वाले लोगो के अन्य लोग "समूह से सम्बन्धित" बताते हैं– "अन्य लोगो" में समूह के सदस्य तथा गैर सदस्य दोनों शामिल हैं।

इसी संदर्भ में आपको जानना चाहिए कि समूह किस प्रकार सामूहिकताओं (Collectivities) एवं सामाजिक श्रेणियों (Social Categories) से भिन्न हैं। यह सही है कि सभी समूह सामूहिकताएँ है किंतु सभी सामूहिकताएँ अनिवार्यतः समूह नहीं होते। जिन सामूहिकताओं में सदस्यों के बीच सक्रिय संपर्क का अभाव होता है, वे समूह नहीं कहलाते। उदाहरण के लिए राष्ट्र एक सामूहिकता है, समूह नहीं क्योंकि राष्ट्र से सम्बन्धित सभी लोग एक–दूसरे से सक्रिय संपर्क नहीं करते। सामूहिकता बनाम राष्ट्र में समूह तथा उप–समूह होते है।

सामाजिक श्रेणियाँ सामाजिक प्रस्थितियों का समुच्चय होती हैं, जिनके धारकों में सक्रिय संपर्क नहीं होता। उदाहरण के लिए एक ही लिंग, आयु, वैवाहिक स्थिति अथवा आय आदि के लोग सामाजिक श्रेणियाँ होते हैं, समूह नहीं।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सामूहिकताओं तथा सामाजिक श्रेणियों की अपेक्षा सदस्यता समूह लोगों के रोजमर्रा के आचरण को अधिक स्पष्ट तथा निश्चित रूप से प्रभावित करते हैं। समूह के सदस्य अपनी पहचान के प्रति सचेत रहते हैं और उन्हें मालूम होता है कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए।

30.2.3 गैर–सदस्यता की अवधारणा

मर्टन नें कहा कि इस तथ्य में कोई बात नहीं है कि लोग अपने ही समूह के अनुकूल आचरण करते हैं। किन्तु संदर्भ समूह का अध्ययन इस कारण दिलचस्प बन जाता है कि "लोग अपने आचरण तथा मूल्यांकनों के निर्धारणों के लिए अक्सर अपने समूह से भिन्न अन्य समूहों के अनुकूल अपने को ढ़ालते है।"

इसी संदर्भ में मर्टन गैर–सदस्यता पर ध्यान देने का आग्रह करता है। वास्तव में गैर–सदस्य वे हैं जो सदस्यता की सक्रिय संपर्क तथा परिभाषा सम्बन्धी कसौटियों पर खरे नहीं उतरते। परंतु जैसी कि मर्टन की मान्यता है, सभी गैर–सदस्य एक ही प्रकार के नहीं होते। मोटे तौर पर गैर–सदस्यों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है

i. कुछ लोग समूह की सदस्यता की कामना कर सकते हैं।

ii अन्य लोग इस प्रकार के संबंध के प्रति उदासीन हो सकते है।

ii कुछ और ऐसे भी हो सकते हैं, जो समूह से असम्बद्ध रहने को प्रेरित हों।

उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति के पिता उद्योगपति हैं और उनका एक कारखाना है। स्वाभाविक है कि कारखाने के कामगारों के संदर्भ में वह व्यक्ति गैर–सदस्य है। उस समूह से उसका कोई नाता नहीं है। इसके बावजूद तीन निम्नलिखित संभावनाएं हैं :

माना कि वह अत्यंत संवेदनशील है, उसने मार्क्स का अध्ययन किया है और उसका दृढ़ विश्वास है कि केवल श्रमिक वर्ग ही अन्याय तथा शोषण से मुक्त नई व्यवस्था को जन्म दे सकता है। मतलब यह है कि गैर–सदस्य होते हुए भी वह स्वयं को मजदूरों के साथ जोड़ना चाहता है, उनके अनुभव को जानना चाहता है और उसी के अनुरूप वह अपनी जीवन–शैली को बदलता है। मर्टन के अनुसार ऐसा होने पर गैर–सदस्यता समूह उसके लिए सकारात्मक संदर्भ समूह बन जाता है।

द्वितीय संभावना के रूप में, वह व्यक्ति अपनी मौजूदा स्थिति से संतुष्ट है और किसी बात की परवाह नहीं करता। इस प्रकार, उसके जीवन पर श्रमिकों

का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। भावार्थ यह है कि वह गैर–सदस्य बना रहता है और श्रमिकों के समूह के साथ जुड़ने की उसकी कोई इच्छा नहीं है।

तृतीय संभावना के रूप में, गैर–सदस्य के रूप में वह व्यक्ति मजदूरों से घृणा करता है और सोचता है कि वे न तो योग्य है और न ही शिक्षित तथा उनकी संस्कृति में कोई अच्छी बात नहीं है। इसके फलस्वरूप श्रमिकों से अपनी दूरी बनाए है। इस प्रकार मर्टन का मानना है कि वे श्रमिक उसके लिए नकारात्मक संदर्भ समूह के रूप में काम करते है।

30.2.4 अग्रिम समाजीकरण

मर्टन ने गैर–सदस्यता समूह के संदर्भ में अग्रिम समाजीकरण की चर्चा की है। वह बहुत साधारण है। यह एक तरह से उस समूह के लिए स्वयं को तैयार करना है, जिससे वह व्यक्ति जुड़ा हुआ तो नहीं है, किन्तु उसका सदस्य बनना चाहता है। यह किसी गैर–सदस्यता संदर्भ समूह के मूल्यों एवं जीवन–शैली को अपनाने के समान है। मर्टन का कहना है कि अग्रिम सामाजीकरण से किसी व्यक्ति को दो तरह से लाभ हो सकता है। प्रथम तो उस समूह में ऊँचा उठने में मदद मिलती है। द्वितीय उस समूह का हिस्सा बन जाने के पश्चात् स्वयं को उसके अनुरूप ढ़ालना सरल हो जाता है।

एक उदाहरण से मर्टन का कथन अच्छी तरह से समझा जा सकता है। कल्पना कीजिए कि गाँव के निम्न मध्यम वर्ग का एक बालक दून स्कूल के लड़कों को अपना संदर्भ समूह मानने लगता है और इसलिए अग्रिम समाजीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत दून स्कूल के लड़कों जैसी तेजी तथा आन–बान की नकल करने लगता है। अब यदि वह बालक सचमुच दून स्कूल में भर्ती हो जाए तो उसका अग्रिम समाजीकरण प्रकार्यात्मक हो जाएगा तथा नए वातावरण के अनुसार अपने को ढ़ालने में उसे आसानी होगी।

मर्टन ने अग्रिम समाजीकरण के प्रकार्यात्मक परिणामों के साथ–साथ उसके दुष्प्रकार्यात्मक परिणामों की भी चर्चा की है। यदि प्रणाली में गतिशीलता की संभावना बिल्कुल नहीं है तो निम्न मध्यम वर्ग के बालक को दून स्कूल में कभी प्रवेश नहीं मिल पाएगा (वह आपको ही देखना है कि स्थिति वास्तव में ऐसी है या नही)। उस हालत में अग्रिम समाजीकरण उस बालक के लिए दुष्प्रकार्यात्मक बन जाएगा। इसके दो कारण है। पहला यह कि वह उस समूह का सदस्य नहीं बन पाएगा, जिसकी वह कामना करता है और दूसरा यह कि प्रत्याशी समाजीकरण अर्थात् गैर–सदस्यता समूह के मूल्यों की नकल के कारण वह अपने समूह के सदस्यों द्वारा नापसंद किया जाने लगेगा। मर्टन के अनुसार वह "सीमांत व्यक्ति" (Marginal Man) बन कर रह जाएगा। प्रत्याशी समाजीकरण अपेक्षाकृत उदार सामाजिक संरचना में ही प्रकार्यात्मक बन सकता है, क्योंकि वहां गतिशीलता (Mobility) की संभावनाएं रहती हैं। किंतु गतिशीलता के अपेक्षाकृत अभाव वाली

सामाजिक संरचना में यह दृष्प्रकार्यात्मक सिद्ध होगा।

मर्टन ने एक और दिलचस्प बात कही। गतिशीलता के अभाव वाले समाज में किसी व्यक्ति द्वारा गैर–सदस्यता समूह को संदर्भ समूह के रूप में चुने जाने की संभावनाएँ बहुत कम होती हैं। यही कारण है कि गतिशीलता के अभाव वाली प्रणाली में जहाँ प्रत्येक स्तर के अधिकार, पूर्वापेक्षाएँ तथा कर्तव्य आम तौर पर नैतिक रूप से सही माने जाते हैं, वहाँ निष्पक्ष स्थितियों के ठीक न होने के बावजूद भी व्यक्ति कम वंचित महसूस करेगा। किंतु गतिशील समाज में, जहां व्यक्ति सदैव ही अपनी स्थिति की तुलना अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न लोगों से करता रहता है, वह निरंतर अप्रसन्न एवं असंतुष्ट रहता है।

30.2.5 सकारात्मक और नकारात्मक संदर्भ समूह

मर्टन के अनुसार संदर्भ समूह दो प्रकार के होते हैं। पहला सकारात्मक संदर्भ, समूह, जिसे व्यक्ति पसंद करता है और आचरण का निर्धारण करने तथा उपलब्धियों एवं काम–काज का मूल्यांकन करने के लिए उसे गंभीरता से अपनाता है। दूसरा है नकारात्मक संदर्भ समूह, जिसे व्यक्ति नापसंद तथा अस्वीकार करता है और उसके अनुरूप आचरण करने की बजाय उसके विपरीत प्रतिमानों को अपनाता है। मर्टन के अनुसार, "सकारात्मक प्रकार में समूह के प्रतिमानों अथवा मानको का अभिप्रेरणात्मक आत्मसात् किया जाता है और यह स्वयं के मूल्यांकन का आधार होता है, जबकि नकारात्मक प्रकार में अस्वीकृति का भाव निहित है, जिसमें प्रतिमानों की अस्वीकृति ही नहीं, बल्कि विपरीत प्रतिमानों की रचना भी शामिल है।"

इस विभाजन के उदाहरण ढूँढ़ने कठिन नहीं है। कल्पना कीजिए कि किसी देश के लोगों का उपनिवेशवादी स्वामियों के प्रति क्या रूख रहता है। कुछ ऐसे देशवासी होते हैं जो अपने उपनिवेशवादी शासकों की सफलता की कहानी पर मुग्ध हो जाते हैं और उनकी जीवन–शैली अपनाने, उनकी भाषा बोलने तथा उनकी खान–पान की आदतों को अपने जीवन में उतारने में गर्व महूसस करते है। दूसरे शब्दों में उनके लिए उपनिवेशवादी वर्ग सकारात्मक संदर्भ समूह है।

दूसरी ओर ऐसे देशवासी भी होते हैं जो उपनिवेशवादियों से उनकी शोषणकारी प्रवृत्ति, अहंकार, अत्याचार आदि के कारण नफरत करते हैं और उनके प्रतिमानों का अनुसरण करने की बजाय उपनिवेशवादियों से अपनी भिन्नता बनाए रखने के लिए विपरीत प्रतिमानों की रचना कर लेते है। उनके लिए उपनिवेशवादी नकारात्मक संदर्भ समूह है।

30.3 संदर्भ समूह के निर्धारक तत्व

उन कारकों को जान लेना आवश्यक है जिनके आधार पर संदर्भ समूह का चयन किया जाता है। यही कारण है कि मर्टन ने लोगों द्वारा उनके संदर्भ

व्यक्ति के चयन, विभिन्न सदस्यता समूहों में से किन्हीं समूहों के चयन, और अंततः गैर–सदस्यता समूहों के चयन को वरीयता दिए जाने की असंख्य संभावनाओं का उल्लेख किया है। मर्टन ने उन निर्धारक तत्वों की चर्चा की है जिनसे प्रेरित होकर एक ही व्यक्ति आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक जीवन जैसे अलग–अलग उद्देश्यों के लिए अलग–अलग संदर्भ समूहों का चयन करता है। इन सभी तत्वों के बारे में जानकारी मिल जाने से संदर्भ समूह के आचरण की गतिकी को समझने में निश्चय ही काफी मदद मिलेगी।

30.3.1 संदर्भ व्यक्ति

यह ध्यान में रखना जरूरी है कि लोग संदर्भ समूहों का ही नहीं, संदर्भ व्यक्तियों का भी चयन करते हैं क्योंकि कुछ व्यक्ति अपने चमत्कारिक प्रभाव, प्रस्थिति, चमक–दमक आदि से लोगों को अपनी ओर खींच लेते हैं। उदाहरण के लिए, समूह के रूप में क्रिकेट खिलाड़ी आपको उतना आकर्षित नहीं कर पाएँगे, जितना व्यक्ति के रूप में सचिन तेन्दुलकर। इस प्रकार, क्रिकेट खिलाड़ी आपके लिए संदर्भ समूह नहीं है, जबकि सचिन तेन्दुलकर संदर्भ व्यक्ति बन सकता है।

संदर्भ व्यक्ति को प्रायः भूमिका–आदर्श (Role-Model) की तरह माना जाता है। किंतु मर्टन ने इनमें अंतर बताया है। भूमिका आदर्श की अवधारणा का क्षेत्र सीमित होता है क्योंकि इसमें किसी व्यक्ति की एक या दो चुनी हुई भूमिकाओं के मामले में उसे आदर्श माना जाता है। किंतु जो व्यक्ति संदर्भ व्यक्ति के साथ स्वयं को संबद्ध करेगा वह "अनेक भूमिकाओं में उस व्यक्ति के आचरण तथा मूल्यों को आत्मसात् करना चाहेगा।

दूसरे शब्दों में यदि अपने विराट कोहली को अपना संदर्भ व्यक्ति स्वीकार किया है तो अपने विराट कोहली की अनेक भूमिकाएं उसका हंसना–बोलना, वेशभूषा, महिलाओं के साथ व्यवहार, मॉडल के रूप में काम करना, स्वयं में एकाकार करनी चाही होगी। मर्टन का कहना है कि जीवनीकार, प्रशंसकों की पत्रिकाओं के संपादक और प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन की झूठी–सच्ची खबरें छापने वाले पत्रकार लोगों को अपना संदर्भ व्यक्ति चुनने को प्रोत्साहित करते हैं।

30.3.2 सदस्यता समूहों में से संदर्भ समूहों का चयन

हर व्यक्ति अनेक समूहों से जुड़ा होता है। अपने परिवार से लेकर पड़ोस के क्लब या फिर जाति समूह, राजनीतिक दल और धार्मिक संगठन से उसका सम्बन्ध रहता है। प्रश्न यह है कि क्या वह अपने आचरण का निर्धारण करते हुए या अपनी उपलब्धियों तथा भूमिका–निर्वाहन का मूल्यांकन करते हुए इन सभी समूहों को गंभीरता से लेता है? उसे मालूम ही होता है कि सभी सदस्यता समूह समान रूप से महत्वपूर्ण नहीं होते। उनमें से कुछ का ही संदर्भ समूह के रूप में चयन किया जाता है।

उदाहरण के लिए, मर्टन की मान्यता है कि विभिन्न समूहों में उस अंतर की मात्रा में पर्याप्त भिन्नता है, जिनके आधार पर सदस्यता की परिभाषा की जा सकती है। कुछ समूह एकदम अनौपचारिक होते हैं जिनकी कोई सीमा तय करना कठिन होता है, जबकि कुछ समूह एकदम स्पष्ट होते हैं और उनके सदस्य बनने की औपचारिक प्रक्रियाएं होती है। इसके अलावा, सदस्य की अपने समूह के प्रति आत्मीयता की मात्रा के आधार पर ही समूहों में अंतर किया जा सकता है। और भी अनेक विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर समूहों में अंतर किया जा सकता है। ये हैं, समूह की संभावित अवधि, उसका गतिशील होना अथवा उसमें गतिशीलता का अभाव, सामाजिक विभेद की मात्रा और समूह के प्रतिमानों के प्रति संभावित अनुरूपता की मात्रा।

गैर–सदस्यता समूह के स्वरूप को समझ लेने पर व्यक्ति स्वयं फैसला कर सकता है कि इनमें से कुछ का संदर्भ समूह के रूप में क्यों चयन किया जाता है। आपको इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण दिए गए हैं। अपने परिवार के सदस्यों के प्रति आपकी आत्मीयता किसी फिल्मी क्लब के सदस्यों की तुलना में कहीं अधिक होती है। अतः इस बात की पूरी संभावना है कि अपने जीवन के प्रमुख निर्णय करने में फिल्म क्लब नहीं, अपितु आपका परिवार आपके लिए संदर्भ समूह के रूप में काम करेगा।

इसी प्रकार, जिस समूह की सदस्यता अधिक समय तक चलने की संभावना नहीं होती (उदाहरण के लिए स्नातक उपाधि के विद्यार्थियों की एक कक्षा केवल तीन वर्ष तक चलेगी) उसे संदर्भ समूह के रूप में अपनाने की संभावनाएं कम होती हैं। किन्तु जो समूह लंबी अवधि तक चलने वाले होते हैं, जैसे कि नातेदारी या जाति समूह, वे अवश्य ही संदर्भ समूह बनते हैं।

30.3.3 गैर सदस्यता समूहों का चयन

यह समझना आवश्यक है कि लोग क्यों और किन परिस्थितियों में गैर–सदस्यता समूहों का अपने संदर्भ समूह के रूप में चयन करते हैं। मर्टन के अनुसार, इसके लिए मुख्यतया तीन कारक उत्तरदायी हैं। पहला यह है कि संदर्भ समूह का चयन इस बात पर निर्भर करता है कि कुछ समूहों की "समाज की एक संस्था की दृष्टि से प्रतिष्ठा प्रदान करने की क्षमता" कितनी है। यह बात एकदम सीधी है। समाज में सभी समूहों की शक्ति और प्रतिष्ठा एक जैसी नहीं होती। उदाहरण के लिए ऐसा देखने में आता है कि हमारे यहाँ विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक अपने स्तर की तुलना अक्सर भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस.) के अधिकारियों से करते हैं। इस प्रकार प्राध्यापकों की अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठा तथा अधिकार प्राप्त है। जिस गैर–सदस्यता समूह को अधिक प्रतिष्ठा एवं अधिकार प्राप्त नहीं हैं, उसके संदर्भ समूह बनने के संभावना बहुत कम है।

द्वितीय कारक यह है कि इस बात की जाँच की जाए कि आम तौर पर

किस प्रकार के लोग गैर–सदस्यता समूहों को अपने संदर्भ समूहों के रूप में अपनाते हैं। मर्टन का कहना है कि सामान्यतया किसी समूह में "अलग–थलग पड़ गए लोग" ही गैर–सदस्यता समूह के मूल्यों को "संदर्भ के प्रतिमानों" के रूप में अपनाते हैं। कारण स्पष्ट है कि अपनी विद्रोही प्रवृत्ति अथवा आगे बढ़ने की प्रबल इच्छा के फलस्वरूप वे अपने समूह से असंतुष्ट रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप उनके लिए गैर–सदस्यता समूहों के मूल्यों को अपना लेने की संभावनाएँ अधिक रहती हैं। इसके उदाहरण के रूप में मर्टन ने "अभिजन वर्ग के हताश व्यक्ति" का उल्लेख किया है, जो उस वर्ग की राजनीतिक विचारधारा को अपना लेता है, जो उसके अपने वर्ग से कम शक्तिशाली होता है।

वह सामाजिक प्रणाली जिसमें सामाजिक गतिशीलता की अपेक्षाकृत दर ज्यादा है उसमें गैर–सदस्यता समूह के सदस्यों को अपने समूह का सदस्य बनाने के संभावनाएँ ज्यादा हो जाती हैं। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि अधिक गतिशील प्रणालियों में लोग अपने से अलग समूहों से अवगत हो पाते हैं और उनमें अपनी स्थिति में निरंतर बदलाव लाने की इच्छा पैदा होती रहती है।

30.3.4 मूल्यों तथा प्रतिमानों को परिभाषित करने के लिए संदर्भ समूहों की भिन्नता

व्यक्ति किसी संदर्भ समूह का चयन क्यों करता है? इसके अनेक कारण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, वह गांधीवादियों को अपना संदर्भ समूह इसलिए मानता है क्योंकि गाँधीवादी लोग समर्पित होते हैं और उनके राजनीतिक–आर्थिक सिद्धांतों से उसकी सहमति है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि गांधीवादियों के सभी कामों से वह सहमत है। वह जीवन के प्रति उनके परम्परावादी दृष्टिकोण, ब्रह्मचर्य, निरामिश भोजन इत्यादि से असहमत हो सकता है। जीवन–शैली, खान–पान या यौन सम्बन्धी नैतिक मूल्यों के मामले में वह उदारवादियों को अपना संदर्भ समूह मान सकता है। मर्टन के अनुसार, यह नहीं समझा जाना चाहिए कि लोगों के लिए वही समूह आचरण के प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से संदर्भ समूह की भूमिका निभाते हैं।

इसलिए संदर्भ समूह का चयन अंततः उन मूल्यों तथा प्रतिमानों के सवरूप एवं स्तर पर निर्भर करता है जिन्हें व्यक्ति महत्व देता है। जो समूह किसी के लिए राजनीतिक विचारधारा के मामले में संदर्भ समूह है, हो सकता है, धार्मिक सिद्धांतों के मामले में वह एकदम असंगत हो। इसलिए ऐसा भी हो सकता है कि साम्यवादी दलों को वोट देने वाले लोग रामकृष्ण मिशन जैसे धार्मिक संगठन के प्रति भी झुकाव रखते हों।

30.3.5 निरंतर सक्रिय संपर्क वाले उपसमूहों अथवा प्रस्थिति–श्रेणियों में से संदर्भ समूहों का चयन

एक छात्रा की दुविधा की कल्पना कीजिए जिसकी दो अस्मितका है।

पहली यह कि वह छात्रों की प्रस्थिति श्रेणी की सदस्या है और दूसरी यह कि वह अपने उपसमूह जिसमें उसके माँ, बाप, भाई, बहन आदि सभी सदस्य हैं, वह उसकी भी सहसदस्यता है।

अब क्या यह मानना हमेशा तर्कपूर्ण होगा कि वह छात्रा अपने उपसमूह के विचारों के विरूद्ध छात्र संघ के प्रभाव में आकर अपनी कक्षा का बहिष्कार करे। परंतु अपने उपसमूह के सदस्यों जैसे माँ–बाप, भाई–बहन, मित्र आदि के निरंतर सम्पर्क में रहने के कारण अंततः वह यह फैसला कर सकती है कि किसी भी स्थिति में कक्षा का बहिष्कार करना उचित नहीं है। दूसरे शब्दों में जहाँ तक छात्र राजनीति का सम्बन्ध है, उसकी प्रस्थिति श्रेणी (छात्राओं का एक अलग समूह) नहीं अपितु उसका उपसमूह–संदर्भ समूह बन जाता है।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि संदर्भ समूह का चयन करना बहुत जटिल होता है। यही कारण है कि मर्टन ने मतदान सम्बन्धी आचरण की चर्चा करते हुए कहा है कि मजदूर यूनियन जैसे औपचारिक संगठन उस संघ के कुछ सदस्यों के लिए ही सशक्त संदर्भ समूह के रूप में काम करते हैं, जबकि अन्य लोगों के लिए यूनियन में उनके निकट के साथी ही संदर्भ भूमिका निभाते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं है कि उप–समूह (परिवार जैसा प्राथमिक समूह) सदैव संदर्भ समूह के रूप में काम करता है। मर्टन का कहना है कि प्राथमिक समूह में परस्पर विरोधी मूल्य उभर आते हैं तो उसकी प्रभाव क्षमता कम या न के बराबर रह जाती है और समाज का प्रभाव अधिक बलशाली बन जाता है।

इस कथन को व्यक्ति अपने जीवन में ही अनुभव कर सकता है। प्रेम विवाह के बारे में उसके अपने परिवार में अलग–अलग राय हो सकती है। उसके माता–पिता संभवतः इसके पक्ष में हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में इस बात की अधिक संभावना है कि वह अपने परिवार पर निर्भर रहने की बजाय उस राय का समर्थन करना चाहेगा जो उसकी अपनी पीढ़ी यानी उस जैसे युवा लड़कों और लडकियों की है। यह स्थिति पीढ़ीगत अंतर (Generation Gap) का परिणाम है।

30.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको यह जानकारी मिली कि संदर्भ समूह के सिद्धान्त आचरण का अध्ययन बहुत उपयोगी है। इसके मुख्य निम्नलिखित कारण है :

i) इस सिद्धान्त द्वारा यह समझने में सहायता मिलती है कि लोग कब और क्यों अपनी स्थिति की तुलना दूसरों की स्थिति से करते हैं, और उसी के अनुरूप अपने आचरण, जीवन–शैली तथा भूमिका–निर्वाहन को ढ़ालते हैं।

ii) इस सिद्धान्त द्वारा यह भी पता चलता है कि कब और कैसे सदस्यता

समूह तथा गैर–सदस्यता समूह संदर्भ समूह के रूप में कांम करते हैं।

iii) इससे संदर्भ समूह के सिद्धान्त के संरचनात्मक परिणामों तथा प्रभावों को समझने के साथ–साथ यह जानने में सहायता मिलती है कि किस प्रकार अपेक्षाकृत गतिशीलता वाली सामाजिक प्रणाली में लोग गैर–सदस्यता समूहों का संदर्भ समूह के रूप में चयन करने को प्रेरित होते हैं, और इसके फलस्वरूप किस प्रकार अपने समूह के प्रति व्यक्ति की अनुरूपता उस समूह में परिवर्तन द्वंद्व तथा प्रगति की संभावनाओं को जन्म देती है।

30.5 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मर्टन, आर.के. : अमेरिकन सोल्जर।
2. दोशी एवं त्रिवेदी : उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2005।
3. रावत, हरिकृष्ण : समाजशास्त्र विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2005।
4. पाण्डेय, रविप्रकाश : समाजशास्त्रीय सिद्धान्त : अभिगम एवं परिप्रेक्ष्य, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004।

30.6 बोध प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अग्रिम समाजीकरण की व्याख्या कीजिए।
2. सकारात्मक तथा नकारात्मक संदर्भ समूह में अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
3. संदर्भ समूह सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
4. गैर–सदस्यता संदर्भ समूह को स्पष्ट कीजिए।

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. संदर्भ समूह से आप क्या समझते हैं? इसके तत्वों की विवेचना कीजिए।
2. सापेक्षिक वंचन क्या है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'संदर्भ समूह' पद का विरचन किसने किया है?

(a) हायमेन

(b) समनर

(c) आर.ए. निस्बेट

(d) आर.के. मर्टन

2. किसने कहा है कि 'प्रस्थिति एवं भूमिका एवं भूमिका' संदर्भ समूह व्यवहार का 'संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य' प्रदान करते है?

(a) पारसन्स

(b) सिल्वर वर्ग

(c) आर. के. मर्टन

(d) एम. एफ. निमकॉफ

3 संदर्भ समूह व्यवहार के मुख्य आधार का निर्माण किससे होता है?

(a) ईर्ष्या से

(b) तुलनात्मक से

(c) तुलनात्मक अभाव बोध से

(d) उपर्युक्त में से कोई नहीं

4. संदर्भ समूह व्यवहार निम्नलिखित में से किसका परिणाम है?

(a) वचन का

(b) सापेक्ष वंचन का

(c) सापेक्ष प्रेरणा का

(d) प्रेरणा का

30.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1- (a) , 2- (c), 3- (c), 4- (b)

30.8 पारिभाषिक शब्दावली

Reference Group	संदर्भ समूह
Relative Deprivation	सापेक्षित वंचना
Concept	अवधारणा
Advance Socialization	अग्रिम समाजीकरण
Positive Reference Group	सकारात्मक संदर्भ समूह
Negative Reference Group	नकारात्मक संदर्भ समूह
Non-Membership	गैर–सदस्यता

इकाई–31 : पार्सन्स और मर्टन के विचारों की समालोचना

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य

31.1 प्रस्तावना

31.2 सामाजिक व्यवस्था : अर्थ एवं परिभाषा

31.3 पार्सन्स की समाज व्यवस्था का विश्लेषण

31.4 पार्सन्स के समाज व्यवस्था का विश्लेषणात्मक समीक्षा

31.5 पार्सन्स के समाज व्यवस्था का विश्लेषणात्मक समालोचना

31.6 मर्टन का मध्य–सीमावर्ती सिद्धान्त

31.7 मर्टन के मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त की आलोचना

31.8 मर्टन का प्रकायवाद

31.9 मर्टन के प्रकार्यवाद की समालोचना

31.10 सारांश

31.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

31.12 बोध के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

31.13 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

31.14 पारिभाषिक शब्दावली

31.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- सामाजिक व्यवस्था के अर्थ एवं अवधारणा को आप समझ सकेंगें।
- पार्सन्स की व्यवस्था विश्लेषण को जान सकेंगें।
- पार्सन्स के व्यवस्था विश्लेषण की समीक्षा को जान सकेगें।
- पार्सन्स के व्यवस्था विश्लेषण की समालोचना को जान सकेगें।
- मर्टन का मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त की अवधारणा को समझ पायेगें।
- मर्टन के मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त की आलोचना का ज्ञान होगा।

- मर्टन के प्रकार्यवाद के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- मर्टन के प्रकार्यवाद की समालोचना को समझेगें।

31.1 प्रस्तावना

सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में पारसन्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त समाजशास्त्र की महत्वपूर्ण चिन्तन इकाई को दर्शाता है। पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था के सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् 1937 ई. प्रकाशित पुस्तक 'द स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन' में दिया था। समाजवैज्ञानिक सिद्धान्तकारों द्वारा चली आ रही परम्परा के अन्तर्गत उपयोगितावाद की मान्यताओं से समझौता करते आ रहें थे। पारसन्स ने व्यवस्था के अन्तर्गत स्वतन्त्र और नियन्त्रण के मध्य सन्तुलनवादी दृष्टिकोण को प्रतिपादित किया। उपयोगितावाद व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रबल पक्ष को प्रस्तुत करते थे जबकि सामाजिक अथवा राजकीय नियन्त्रण की मात्रा को कम करके दर्शाने का प्रयास करता है। सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने के लिए उपयोगितावादी किसी प्रकार के सामाजिक दबाव के पक्ष में नहीं थे। उनकी मान्यता थी कि यदि समाज की आर्थिक शक्तियों को मुक्त छोड़ दिया जाय तो व्यवस्था अपने आप उत्पन्न हो जायेगी। व्यवस्था के क्रम में उपयोगितावादी सिद्धान्त की मान्यताओं के आधार पर चलने वाले पाश्चात्य समाज में दुष्परिणाम प्रकट होने लगे थे। व्यवस्था सिद्धान्त के प्रकाश मे आने के पूर्व कारक सिद्धान्तों का प्रभाव अधिक था। इन सिद्धान्तों के अन्तर्गत व्याख्या के लिए सामाजिक घटनाओं के निर्धारण में भिन्न–भिन्न प्रकार के कारकों के महत्त्व को प्रतिपादित करने का प्रयास किया जाता है। साधारणतया यह सिद्धान्त भौगोलिक, जैविकीय आर्थिक अथवा इसी प्रकार के कारकों को प्रभावी बनाने का प्रयास करते रहें हैं। विभिन्न कारकों के सन्दर्भ में सामाजिक घटनाओं के स्पष्टीकरण का प्रयास किया गया परन्तु स्वयं सामाजिक घटनाओं के व्यवस्थात्मक पक्ष को तात्विक निर्भरता एवम् अन्तःक्रियात्मकता के आधार पर उसे एक व्यवस्था पक्ष का रूप प्रदान किया गया। ऐसी स्थिति में सामाजिक घटनाओं के व्यवस्थात्मक पक्ष को केवल आकस्मिक, आंशिक और गौण प्रयास किया गया।

पार्सन्स ने सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत सभी चरों में स्वतंत्रता एवं आश्रितता दोनों प्रकार की विशेषताओं को विद्यमान माना है। वह व्यवस्था के किसी विशिष्ट चर को स्वतंत्र तथा शेष को आश्रित न मानकर सभी चरों को स्वतंत्र एवम् आश्रित दोनों प्रकार की विशेषताओं को स्वीकार करते हैं।

मर्टन आरम्भ से ही समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक तथ्यों को स्वीकार करते हैं। यही कारण है कि मर्टन पार्सन्स के सामाजिक व्यवस्था के सिद्धान्त को सामाजिक दर्शन के रूप में स्वीकार करते हैं। क्योंकि पार्सन्स के सिद्धान्त में तथ्यगत जीवन का समावेश नहीं किया गया। मर्टन कहते हैं कि सामाजिक जगत

जैसा प्रतीत होता है उसे वैसा ही प्रस्तुत करना चाहिए। इस सन्दर्भ में वह अपना ध्यान व्यक्ति पर नहीं व्यक्ति के स्थान पर सामाजिक व्यवस्थाओं पर केन्द्रित करते हैं। क्योंकि सामाजिक संरचना नूतन अभिप्रेरणाओं, परिवर्तित आचरणों और सक्रियता के विभिन्न स्वरूपों से प्रतिमानित होता है। मर्टन कहते हैं कि समाज के विषय में जब तक पर्याप्त आँकड़ें उपलब्ध न हो जाय तब तक पार्सन्स के सिद्धान्त की तरह महान सिद्धान्त बनाना उचित नहीं है। मर्टन का तर्क है कि जब तक समाज विज्ञान की अनुसधान पद्धतियाँ विकसित नहीं हो जाती है तब तक हमें मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त बनाना चाहिए। इस प्रकार मर्टन विचलनकारी व्यवहारों के कारणों की शारीरिक संरचना व मनोवैज्ञानिक दशाओं में नहीं ढूढ़तें हैं बल्कि सामाजिक संरचना में ढूढ़तें हैं।

मर्टन ने अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से भिन्न–भिन्न क्षेत्रों हेतु प्रयुक्त किया जिनमें प्रमुख रूप से मध्य–सीमावर्ती सिद्धान्त है।

31.2 सामाजिक व्यवस्था : अर्थ एवं परिभाषा

पार्सन्स समाज को व्यवस्था के रूप में स्वीकार करता है। व्यवस्था के गुण के आधार पर प्रकट करते हुए पार्सन्स कहता है कि यह गुण किसी संगठन में उत्पन्न होता है। यदि किसी संगठन के अंग इस प्रकार से अन्तःसम्बन्धित हो कि किसी एक अंग पर प्रभाव पड़ने पर पूरा संगठन प्रभावित हो तथा पूरे संगठन पर प्रभाव पड़ने पर संगठन का सबसे पिछड़ा पक्ष भी प्रभावित हो तो इस दशा में व्यवस्था स्वतः उत्पन्न हो जाती है। अंश और सम्पूर्ण का प्रभाव ऐसा हो कि अंश का प्रभाव सम्पूर्ण और सम्पूर्ण का प्रभाव अंश पड़े तो व्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। समाज के विभिन्न अंग इस प्रकार के संगठन से सम्बद्ध होते हैं। पार्सन्स ने इस प्रकार के सम्बन्ध को समाज व्यवस्था के अन्तर्गत अन्तर्गामी तथा निर्गामी सम्बन्ध कहा है। पार्सन्स समाज व्यवस्था को उसके प्रकार्यात्मक पक्ष के आधार पर स्पष्ट करता है। वह कहते हैं कि व्यवस्था के रूप में समाज तब तक ही चल सकता है जब तक उसमें संगठन और सन्तुलन बना रहता है और इसके माध्यम से मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है। इस दशा में समाज व्यवस्था निरन्तर चलती रहने वाली अथवा जीवित रहने वाली घटना है।

पार्सन्स का कथन है कि किसी भी प्रतिमान का सम्यक ज्ञान तब तक सम्भव नहीं जब तक व्यक्ति उस पूरी व्यवस्था के सन्दर्भ में ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता है। वह कहते हैं कि किसी प्रतिमान की व्याख्या व्यवस्था के सन्दर्भ में की जा सकती है। पार्सन्स व्यवस्था की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि:

- किसी व्यवस्था की सर्वाधिक सामान्य और आधारभूत विशेषताएँ अंशों अथवा चरों की पारस्परिक निर्भरता पर होता है।

- एन्थनी गिडिंग्स का कथन है कि यदि संरचना, शरीर रचना प्रतिमान के बोध को प्रकट करती है और प्रकार्य इसका बोध कराता है कि प्रतिमान किस प्रकार से क्रिया कराता है तो व्यवस्था पूर्ववर्ती दोनों के स्वरूपों का बोध कराती है।
- हैरी जे. वाईट ने सामाजिक व्यवस्था कें सम्बन्ध में कहा है कि व्यवस्था विश्लेषण अन्तःक्रियारत तत्त्व समूहों के व्यवहार एवं उनकी संरचना का अध्ययन है।
- केन मेंजिस का कथन है कि व्यवस्था सिद्वान्त विश्लेषण व्यवस्था के अन्दर सम्पूर्ण व्यवस्था के लिए क्रियाओं के प्रकार्यों पर ध्यान केन्द्रित करता है तथा व्यवस्था के तत्वों को उनके सम्बन्धों की संगठित समष्टि के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करता है।
- पार्सन्स का कथन है कि व्यवस्था की अपनी संरचनाओं तथा प्रतिक्रियाओं और बाहरी संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं के मध्य सैद्वान्तिक तथा व्यवहारिक रूप से महत्त्वपूर्ण भेद विद्यमान है तथा वह बने रहने की दिशा में प्रवृत्त रहता है। सीमाएँ इस अर्थ में जहाँ तक विद्यमान नहीं है वहाँ परस्पर निर्भरता की घटनाओं की श्रृंखला को व्यवस्था के रूप में देखना सम्भव नहीं है। वह किसी दूसरी अधिक व्यवस्था से सम्बद्ध होती है।
- केन मेंजिस का कथन है कि किसी समय किसी संतुलित व्यवस्था के अन्तर्गत यदि कोई त्रुटि उत्पन्न हो जाय तो इस त्रुटि की प्रतिक्रिया स्वतः उत्पन्न होने लगेगी जो व्यवस्था को पुनः संतुलन की अवस्था में बनाने का प्रयास करेगी।

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर स्पष्ट होता है कि सामाजिक व्यवस्था का निरूपण चरों के आधार पर निर्भर करता है। व्यवस्था अंशों की पारस्परिकता पर निर्भर करता है। सीमानुरक्षण की प्रक्रिया के आधार पर सैद्वान्तिक और व्यवहारिक दोनों स्वरूपों में विद्यमान रहता है। सामाजिक व्यवस्था में गतिमान संतुलन क्षतिपूरक यांत्रिकता द्वारा पुनःस्थापित कर लेती है।

पार्सन्स सामाजिक व्यवस्था के सिद्वान्त को चार समस्याओं के आधार पर विश्लेषित करता है व्यवस्था को बनाये रखने के लिए इन चरों की पूर्ति आवश्यक होती है। यह निम्न प्रकार से होते हैं

- समायोजन
- लक्ष्यपूर्ति
- संकुलन
- संरूप–अनुरक्षण

समायोजन

समायोजन की उप–व्यवस्था के अन्तर्गत वह सभी प्रकार्य आते हैं जिनके द्वारा सदस्यों के भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। समाज में व्यक्ति की आवश्यकताएँ अनन्त होती है जबकि इसकी तुलना में साधन सीमित होते हैं। सामाजिक व्यवस्था का यह कार्य होता है कि सीमित साधनों से अधिक से अधिक सदस्यों की अधिक से अधिक का उपयोग समायोज होता है। पार्सन्स इस व्यवस्था को अर्थ तन्त्र की संज्ञा भी देते हैं।

लक्ष्यपूर्ति

सामाजिक व्यवस्था के कुछ निर्धारित लक्ष्य होते हैं। साधनों को लक्ष्यों की पूर्ति के लिए संलग्न करना तभी हो पाता है जब निर्धारित शक्ति का प्रयोग किया जाय। राज्य जैसी संस्था शक्ति का प्रयोग करती है। पार्सन्स इस व्यवस्था को राजतन्त्र की संज्ञा देता है।

संकुलन

सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक उप–व्यवस्थाएँ भी होती है। जैसे– अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था, शैक्षणिक व्यवस्था, सैन्य व्यवस्था आदि। उनका कथन है कि इस प्रकार की उपव्यवस्थाओं का परस्पर ऐसा संकुलन होना चाहिए कि सभी मिलकर समाज व्यवस्था को चलाने में सहायक हों। इस दृष्टिकोण से सभी उप व्यवस्थाओं को एक सूत्र में बंधे रहने का कार्य संकुलन कहलाता है।

संरूप–अनुरक्षण

समाज व्यवस्था सदैव गतिमान रहती है। व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के तनाव और विचलन की प्रवृत्तियाँ बनी रहती हैं। व्यवस्था सुचारू रूप से तभी गतिमान रहेगी जब इन प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण रखा जायेगा। समाज व्यवस्था की ओर से यह सतत प्रयास किया जाता है कि सदस्यों की इच्छाएँ यर्थाथता की सीमा से अधिक न होने पाये। इस प्रकार सांस्कृतिक मर्यादाओं के माध्यम से ही सदस्यों की इच्छाओं को सीमित रखना समाज व्यवस्था का कार्य है।

31.3 पार्सन्स की समाज व्यवस्था का विश्लेषण

पार्सन्स का व्यवस्था विश्लेषण सामान्य व्यवस्था विश्लेषण से पृथक है। पार्सन्स के व्यवस्था विश्लेषण की आधारभूत मान्यताएँ निम्न प्रकार से है

- पार्सन्स के व्यवस्था विश्लेषण पर जीव विज्ञान का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।
- पार्सन्स का व्यवस्था विश्लेषण गणितीय अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र दिखलाई

पड़ता है।

- पार्सन्स के व्यवस्था विश्लेषण में व्यवस्था की धारणा में अनेक प्रकार के आरेखीय चरों को सम्मिलित किया गया है।
- पार्सन्स के व्यवस्था विश्लेषण में सीमा सम्बन्धी समस्याओं तथा व्यवस्थात्मक अन्तःपरिवर्तनों पर अधिकाधिक बल दिया गया है।
- पार्सन्स का व्यवस्था विश्लेषण प्रकार्यवाद द्वारा विशेषीकत भी है

31.4 पार्सन्स के समाज व्यवस्था का विश्लेषणात्मक समीक्षा

सामाजिक सन्दर्भ में व्यवस्था विश्लेषण के लिए पार्सन्स का योगदान महत्त्वपूर्ण है। ए. डब्लू. गोल्डनर का कथन है कि यह विद्या यद्यपि सेन्ट साइमन, अगस्त कोंत, रेडक्लिफ–ब्राऊन, मैलोनोवस्की आदि की कृतियों में विद्यमान थी किन्तु पद्वतिशास्त्रीय दृष्टिकोण से इसका सबसे अधिक आत्म चेतनवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का श्रेय पार्सन्स के संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक माडल को जाता है। पारसन्स ने एकाधिक कारकों के आधारभूत महत्त्व को प्रस्तुत करते हुए सम्पूर्ण समाज व्यवस्था की विवेचना की है। गोल्डनर की दृष्टि में पार्सन्स के व्यवस्थात्मक उपागम का प्रमुख महत्त्व यह है कि यह मानव समूहों के एकत्व का चित्र प्रस्तुत करता है वहीं व्यक्त करता है कि जो सभी सामाजिक क्रियाओं, सभी समाजों, सभी नागरिकों व्यवस्थाओं के विषय में सत्य है।

यद्यपि पार्सन्स के संक्रिया–सिद्धान्त अथवा व्यवस्था विश्लेषण की जो आलोचनाएँ हुई हैं वह असंगत नहीं है किन्तु यहाँ यह महत्त्वपूर्ण है कि पार्सन्स की रूचि अनुभवात्मक यथार्थों के वर्णन में नहीं अपितु सम्पूर्ण समाजों के अध्ययन हेतु उपयोगी विश्लेषणात्मक प्रविधि के विकास में रही है। अपनी इस अध्ययन रूचि के कारण पार्सन्स समाज व्यवस्था और इसकी उप व्यवस्थाओं तथा उनकी संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक संघटकों की अत्यधिक विस्तृत अवधारणात्मक योजनाओं को प्रस्तुत करते हैं। इस आधार पर पार्सन्स के दृष्टिकोण पर अनुभवात्मक यर्थाथ की अवहेलना का आरोप न्याय संगत नहीं कहा जा सकता है। पार्सन्स का लक्ष्य किसी भी प्रकार के संगठनात्मक समूह की स्थिरता में परिलाक्षित व्यवस्था की दृष्टि से उसके तुलनात्मक अध्ययन हेतु एक विश्लेषणात्मक उपकरण को विकसित कर प्रस्तुत करना था। यही कारण है कि उनके द्वारा प्रस्तुत अवधारणात्मक योजना का एक अमूर्त चरित्र जो कि एक गुण को दर्शाता है न कि उनके सैद्धान्तिक अवगुण को दर्शाता है।

31.5 पार्सन्स के समाज व्यवस्था की विश्लेषणात्म समालोचना

पार्सन्स ने सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त में प्रतिमान चर के योजनाओं को केन्द्र में रखते हुए विभेदीकरण के अक्षों के आधार पर एक चतुर्थ क्रियात्मक

तालिका का प्रयोग किया इसे उन्होंने विशेषीकरण की आवश्यकता मानी। किन्तु प्रतिमान चर की सेवाएँ एवं त्रुटियों को इंगित करते हुए अनेक लोगों द्वारा इनकी आलोचना की गयी जो निम्न प्रकार से है :

- पार्सन्स द्वारा प्रतिपादित प्रतिमान के चर मापन के योग्य नहीं होते क्योंकि इन्हें परस्पर जटिलता के रूप में प्रस्तुत किया गया और इनकी व्यवहारिक परिभाषा भी नहीं दी गयी। जबकि कुछ समाजशास्त्रियों ने प्रतिमान चर योजना में निहित अवधारणाओं को परिष्कृत करके परिमार्जित रूप में अनुसंधान के लिए उपयोगी बनाया है।

- अनुकूलन के समय समाज में **कर्त्ता के** समक्ष चयन का विकल्प प्रतिमान चरों द्वारा प्रस्तुत द्विभाजनों **के रूप** में नहीं होता है जबकि सातत्यता के रूप में विद्यमान होते हैं।

- पासन्स ने अपने प्रतिमान चर मूलतः टानीज के सिद्धान्त गेमिलशाफ्ट और गैशिलसाफ्ट से लिया के आधार पर किया है। परन्तु अपने अध्ययन विश्लेषण में पार्सन्स ने अपने प्रतिमान चर सामाजिक सम्बन्धों और व्यवस्थाओं के लिए किस प्रकार से अधिक उपयोगी माना है; निश्चित नहीं किया है।

- डान मर्टेण्डल का आरोप है कि प्रतिमान चर को क्रिया करने हेतु चयन कि द्वन्द के रूप में पार्सन्स द्वारा परिभाषित करना अति यर्थाथवादी स्वरूप को प्रकट करता है। इसका कारण है कि द्वन्दात्मक स्थिति में कभी–कभी कर्त्ता द्वारा यह निर्धारित करना कठिन हो जाता है कि वह दो विकल्पों में से किसका चयन करे और किसे छोड़े, ऐसे दुविधा की स्थिति में कर्त्ता क्रिया ही नहीं कर पाता है।

- समाज व्यवस्था में जिस समय कर्त्ता को विशेष प्रतिमान के अनुसार क्रिया करनी होती है उस समय प्रतिमान चरों द्वारा प्रस्तुत विकल्प असत्य भी हो सकते हैं क्योंकि ऐसी स्थितियों में कर्त्ता के विकल्पों के चयन की स्वतंन्त्रता समाप्त हो जाती है और उसे निर्धारित प्रतिमान के अनुसार क्रिया करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

31.6 मर्टन का मध्य–सीमावर्ती सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को **प्रतिपादित** करने के लिए मर्टन ने द्वि–ध्रुवीय अध्ययन पद्धति को **अपनाया। प्रथम के पक्ष** को उन्होंने वृहद् दृष्टिकोण तथा दूसरे को लघु या सूक्ष्म दृष्टिकोण कहा **है**। इस प्रकार का दृष्टिकोण सिद्धान्त के रूप मे सम्पूर्ण समाज व्यवस्था पर लागू किया है। सूक्ष्म अध्ययन में लघु सामाजिक समस्याओं का चयन किया जाता है। जबकि वृहद अथवा विस्तृत अध्ययन में वृहद समाजशास्त्रीय समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार वृहद तथा सूक्ष्म अध्ययन के आधार पर प्रतिपादित सिद्धान्त समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के दो किनारे हैं। मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त इन दोनों के मध्य की स्थिति है। परिवर्तित

आधार पर यह कहा जा सकता है कि मध्य सीमा का सिद्धान्त न तो सामाजिक व्यवस्था के सब कुछ को समेटने वाले अथवा सम्पूर्ण व्यवस्था से सम्बन्धित होते हैं और न ही सामान्य बुद्धि पर आधारित सिद्धान्त होता है। सिद्धान्तकार मध्यम मार्ग को अपनाते हुए सम्बन्धित सिद्धान्त को प्रतिपादित करता है।

मर्टन ने मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि "मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त वह सिद्धान्त है जो कि एक ओर दिन प्रतिदिन के शोध में प्रचुर मात्रा में प्रकट होने वाले लघु किन्तु आवश्यक कार्य निर्वाही प्राकल्पनाओं एवं दूसरी ओर सामाजिक व्यवहार, सामाजिक संगठन व सामाजिक परिवर्तन में समस्त निरक्षित समानताओं की व्याख्या करने वाले एक समन्वित सिद्धान्त को विकसित करने हेतु सब कुछ को सम्मिलित करते हुए किए गए व्यवस्थित प्रयत्नों के मध्य स्थित होता है।

मर्टन यह कहते हैं कि समाजशास्त्र में मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त का उपयोग मुख्यतः प्रयोग सिद्ध अनुसंधानों के मार्गदर्शन के लिए किया जाता है। मर्टन कहते हैं कि कुछ समाजशास्त्री सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित ऐसे सामान्य एवं अत्यन्त विस्तृत समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को प्रतिपादित करने का प्रयास करते हैं जिसके अन्तर्गत सामाजिक व्यवहार, संगठन एवं परिवर्तन के अनेक पक्ष आ जाते हैं। यह समाजशास्त्रीय यह आशा करते हैं कि उनके इस प्रकार के सिद्धान्तों से सामाजिक अनुसंधान कर्त्ताओं के प्रयोग सिद्ध सभी समस्याएँ प्राप्त हो जायेगी। किन्तु मर्टन इसे उचित नहीं मानता है।

31.7 मर्टन के मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त की आलोचना

मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त को विभिन्न प्रतिष्ठित समाजशास्त्रियों का समर्थन प्राप्त होता हुए भी बहुत से विद्वानों ने इसके नीति को अस्वीकार करते हुए इसके दोषों का उल्लेख किया है। राबर्ट बीरस्टीड ने इसकी आलोचना करते हुए कहा है कि मानव समाज की वृहद समस्याओं को ही छोड़ देने को कहा जाता है। जिनके विषय में सामाजिक विचारधारा के इतिहास में हमारे पूर्वजों ने भी सोचा था। यहाँ यह प्रयत्न स्वप्न के रूप में प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों ने मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि यह समाजशास्त्र के क्षेत्र में असम्बद्ध विशिष्ट सिद्धान्तों द्वारा कुंठित होता है।

31.8 मर्टन का प्रकार्यवाद

परम्परागत प्रकार्यवादी विश्लेषण से मर्टन का प्रकार्यवाद कुछ भिन्न है। कुछ आलोचकों ने मर्टन के प्रकार्यवादी विश्लेषण को सन्तुलित प्रकार्यवाद की संज्ञा दी है। इस सन्दर्भ में मर्टन के प्रकार्यवादी विश्लेषण के योगदान को दो भागों में विभक्त करते सन्तुलन की स्थिति का मूल्यांकन किया जा सकता है। जो

निम्न प्रकार से है :

- मर्टन ने विचलनकारी व विघटनकारी प्रवृत्तियों को भी अपने प्रकार्यवादी विश्लेषण में स्थान दिया है।
- मर्टन ने अप्रकट परिणामों की व्याख्या करके प्रकार्यात्मक विश्लेषण के अधूरेपन को दूर किया है।

सामाजिक व्यवस्था के क्रम में प्रकट परिणाम उन परिणामों को कहते हैं जिनके घटित होने का पूर्वानुमान होता है। ऐसे परिणाम को पहले से जाना जाता है और उसी के अनुरूप कार्य किया जाता है। जिससे अनुमानित परिणाम प्राप्त हो सके। सामाजिक घटनाओं के विश्लेषण में इन परिणामों के प्रभाव को स्थान प्राप्त होना चाहिए।

अप्रकट परिणाम वह परिणाम होते हैं जिन्हें न तो कर्त्ता जानता है और न ही उसके विषय में कोई दृष्टिकोण विकसित करता है लेकिन इस प्रकार के परिणाम उसके व्यवहार से ही फलित होता है। इस प्रकार प्रकट और अप्रकट परिणामों की अवधारणा से किसी भी सामाजिक घटना का विश्लेषण पूर्ण हो जाता है।

31.9 मर्टन के प्रकार्यवाद की समालोचना

प्रकार्यवाद की वृहद परम्परा से संलग्न मर्टन का प्रकार्यवादी दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण है। समाजशास्त्र के क्षेत्र में प्रकार्यवादी चिन्तक के रूप में मर्टन का नाम अग्रणी है। पार्सन्स की तुलना में मर्टन का ध्यान सर्वप्रथम प्रकार्य सम्पन्न करने वाले पक्षों और स्वयं प्रकार्य पर केन्द्रित होने के कारण प्रकार्यात्मक विश्लेषण के रूप में चर्चित रहा है किन्तु मर्टन के प्रकार्यवाद की त्रुटियाँ भी कम नहीं हैं। इन त्रुटियों के आधार पर मर्टन के प्रकार्यवाद की आलोचना निम्न प्रकार से की गयी है

- मर्टन ने प्रकार्यवाद को जो किसी व्यवस्था के अनुकूलन और व्यवस्थापन पर सहायक द्रष्टव्य के रूप में परिभाषित किया है इसे तीमासेफ उसे प्रकार्य का आशय परिणाम नहीं अपितु परिणामों द्वारा व्यवस्था के लिए किया गया अंशदान मानता है।
- सोरोकिन का आरोप है कि मर्टन एक ओर तो प्रकार्यात्मक सिद्धान्तों को व्यक्तिनिष्ठ मूल्यांकनों, रूढ़िवादी अथवा बुनियादी विचारधाराओं तथा विभिन्न प्रयोजनताओं से बचाने की चेतावनी देते हैं और दूसरी ओर प्रकार्य और दुष्प्रकार्य की अवधारणाओं को इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि उनका प्रकार्यवाद स्वयं व्यक्तिनिष्ठ रूप में मूल्यांकनात्मक, विचारात्मक और प्रयोजनात्मक बन जाता है।

31.10 सारांश

पार्सन्स ने सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में चरों के महत्त्व को स्वीकार किया है। वह सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत प्रतिमान की व्याख्या को व्यवस्था के सन्दर्भ में स्वीकार करते हैं। सामाजिक व्यवस्था के सिद्धान्त को चार चरों के आधार पर विश्लेषित करते हैं। जिसे वह सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक भी मानते हैं। पार्सन्स ने व्यवस्था विश्लेषण के सन्दर्भ में संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक माडल को प्रस्तुत करके सामाजिक क्रियाओं को विश्लेषित किया है।

मर्टन के समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था के निरूपण के लिए तथ्यों को स्वीकृति प्रदान की है। मर्टन समाज विज्ञान में अनुसंधानात्मक पद्धतियों पर बल देता है। यह पद्धतियाँ मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त के रूप में समाज के दोनों पक्षों सूक्ष्म, वृहद को दर्शाता है जिसके आधार पर सिद्धान्त के रचनाकार मध्यम मार्ग को अपनाते हुए सम्बन्धित सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। परम्परागत प्रकार्यवाद से भिन्न मर्टन संतुलित प्रकार्यवाद को प्रकार्यवादी विश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत करते हैं। जो प्रकट तथा अप्रकट प्रकार्यवाद के रूप में स्पष्ट होता है और समाज वैज्ञानिक इसके माध्यम से कर्त्ता के कार्यव्यवहार का अध्ययन करते हैं।

31.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, हरिशचन्द्र : आधुनिक समाजवैज्ञानिक सिद्धान्त परिचय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1991.
2. यादव, गोपाल : सामाजिक संदर्श : सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी वर्ष 1997
3. सिंह, श्यामधर एवम् सिंह, अशोक कुमार : आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी वर्ष 2014.
4- The Structure of Social Action 1937
5- Essay in Sociological Theory -1949.
6- The Social System-1951
7- Towards a general Theory of Action-1951.
8- Working papers in the Theory of Action-1953.
9- Family, Socialization and Interaction Process-1955.
10- Science, Technology and Society in Seventeenth Century England-1938.

11- Sociology Theory and Social Structure-1949.

12- Continuities in Social Research-1950.

13- Reader in Bureaucracy-1952.

14- The Student-Physician; Introductory Studies in the Sociology of Medical Education 1957.

15- The Freedom to Read; Prospective and program-1957.

16- Sociology Today-Problem and Prospects-1959.

31.12 सम्बन्धित प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पार्सन्स के समाज व्यवस्था से आप क्या समझते हैं?
2. पार्सन्स के समाजव्यवस्था सिद्धान्त की आलोचना कीजिए?
3. मर्टन का मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त क्या है?
4. मर्टन का मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त की आलोचना कीजिए?
5. मर्टन के प्रकार्यवाद को स्पष्ट कीजिए?
6. मर्टन के प्रकार्यवाद की आलोचना को बताईये?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पार्सन्स की समाज व्यवस्था का आशय स्पष्ट करते हुए उसकी आलोचना को स्पष्ट कीजिए?
2. पार्सन्स के व्यवस्था विश्लेषण की आलोचनात्मक व्याख्या करें?
3. मर्टन के मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या को स्पष्ट करें?
4. मर्टन के प्रकार्यवाद की अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए उसकी आलोचनाओं को स्पष्ट करें?

(ग) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पार्सन्स कहाँ के समाजशास्त्री थे?

   (क) फ्रान्स (ख) इटली

   (ग) अमेरिका (घ) जर्मनी

2. पार्सन्स ने सामाजिक क्रिया में किसको सर्वप्रमुख माना है?

   (क) व्यक्ति को (ख) अर्न्तसम्बन्ध को

(ग) चर को (घ) समाज को

3. पार्सन्स के व्यवस्था विश्लेषण के कितने निर्धारक तत्व है?

(क) तीन (ख) चार

(ग) पाँच (घ) छः

4. मर्टन का जन्म कहाँ हुआ था?

(क) अमेरिका (ख) जर्मनी

(ग) इटली (घ) फ्रान्स

5. मर्टन ने समाज व्यवस्था के सिद्धान्त में क्या प्रमुख माना है?

(क) तथ्यो को (ख) क्रिया को

(ग) दर्शन को (घ) व्यक्ति को

6. मर्टन में मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त में कितने ध्रुवीय अध्ययन को महत्त्व दिया है?

(क) द्वि ध्रुवीय अध्ययन (ख) तीन ध्रुवीय अध्ययन

(ग) चतुर्थ ध्रुवीय अध्ययन (घ) पंचम् ध्रुवीय अध्ययन

31.13 वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (क) 2. (ग) 3. (ख) 4. (क) 5. (क) 6. (क)

31.14 पारिभाषिक शब्दावली

Function	प्रकार्य
Social System	सामाजिक व्यवस्था
Middle Range Theory	मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त
Functionalism	प्रकार्यवाद
Accommodation	समायोजन
Dysfunction	अप्रकार्य
Reference Group	संदर्भ समूह